

श्रीमदाचार्यश्रीनिवामशास्त्रिकविनायकान्तविरचित

चन्द्रमहीपतिः

पार्वतीविवृतिसहित

कमला

प्राक्कथनलेखक

श्रीनरहरि विष्णु गाडगील

समावेक्षकौ

क० श्रीहनुमत्प्रसादशास्त्री (संस्कृतभाषायाम्)

डा० श्रीशतरोटिमुखर्जी (आङ्ग्लभाषायाम्)

वाणी ममैव मुरगा यदि रञ्जयित्री न प्राचये रसविदामवनानदानम् ।
सायन्ननीपु मकरन्दवनीपु मृन्ना किं मलिनवामु परमन्त्रणमारमन्ते ॥

*

*

*

दानायिनो मनुक्तरा यदि कर्णनालैर्दूरीकृता करिखरेण मदन्धबुद्ध्या ।
सम्येव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा मृन्ना पुनर्विकचपचवने वनन्ति ॥

निर्माणकाल १९६१ वैश्वम्

प्रथममुद्रणकाल २०१६ वैश्वम्

प्रकाशक

श्रीनिवासशास्त्री

११८ अमहस्ट स्ट्रीट

कलकत्ता ६

[पुनमुद्रणाधिकार स्वायत्तीकृतो लखनेन]

मूल्यम रुप्यकपटकम्

पुस्तकप्राप्तिस्थान

- (१) जाबो १७ निवतल्ला स्ट्रीट कलकत्ता ७
- (२) भारद्वाज टिडिङ्ग कम्पनी ५४ इजरा स्ट्रीट कलकत्ता १
- (३) बम्बई पुस्तक भण्डार १९५।५ महाभागाधी रोड कलकत्ता
- (४) चौखम्बा संस्कृत सिरीज आफिन । चौखम्बा विद्या भवन
कोक वाराणसी ।
- (५) भारद्वाज भवन राजगढ़ पो० सादुपुर राजस्थान ।
भारत के समस्त प्रख्यात पुस्तक विक्रेताओं के निवेद ।

वैयाकरणकेदारिणां
पूज्यजनैक-
श्रीनवरङ्गरायशास्त्रिणां
करारविन्दयोः समर्पणम्

आराध्यदेव !

श्रीचरणसान्निध्ये समधिगतं शास्त्रप्रवागमयं-
जगतो विभीषिकान्वतमस विलुम्पति । तस्य
क्षीयमाणज्ञानप्रकाशस्य कतिपयानवशिष्ट-
शब्दागूनवचित्य त्वात् एष सम्भालयितुम-
शक्यः सम्भाव्यमानः श्रीमद्भ्य एव सादरं
सत्प्रदं सलज्जञ्च प्रत्यावर्त्तयता समर्प्यते-

- श्रीनिवासेन

श्रावणी पूर्णिमा १९९१ वैशख.

भारद्वाजभवनम्,

राजगड, बीकानेर

(राजस्थान)

जायमानो वै साहस्रिभिर्ऋणैर्ऋणवाञ्जायते । तत्र—

—ऋणं देवस्य योगेन ऋषीणां पाठकर्मणा ।

सन्तत्या पितृलोकानां शोचयित्वा परित्यजेत् ॥

इति हि धर्मशास्त्रकाराः समामनन्ति । तत्र ऋषीणां पाठकर्मणोस्तिवचनस्य तात्पर्यमिदमेव यद्विभिः प्रज्ञानेनैव विलोक्य यद् ग्रन्थेषूपनिबद्धं तत्सा-
भिनिवेशमनुशीलनीयं तदनुह्या नव्याश्चापि ग्रन्था विरचनीया इति ।
एवमेवपिप्रतिपादितं रिक्तं परिरक्षितं परिवर्द्धितञ्च स्यात्, ऋषि ऋणञ्च
निर्यातित स्यात् । अथन्यतया पुनरस्माकमद्यत्वे खलु निरल्पतमा एव
ऋषिऋणविनयाय प्रयासमातिष्ठन्ति, सुविरलतमाश्च तत्र साफल्यमधि-
गच्छन्ति । एष्वेव च सुविरलतमेध्वन्यतमः श्रीश्रीश्रीनिवासशास्त्रि-
महाभागः । साहित्यव्याकरणादिविविधशास्त्रेषु कृतश्रमेण विषदिचदप-
श्चिमेन शास्त्रिमहोदयेन रसभरनिर्भरेण गद्येन चन्द्रभूषतिकया समुपनिबद्धा ।
“श्रौजः समाप्तभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्” इत्युपदेशमनुपाल-
यतापि शास्त्रिमहोदयेन लेशतोऽपि प्रसादो न परित्यक्तो न वा आधुर्य-
मूर्त्तारितमित्यहो सुवर्णोऽपि परमामोदः । प्रमादा अत्र वर्तन्ते केचन,
पर चाकुरतरण्याः कपोलकज्जलवत् प्रभवन्ति ते कयागतमूलकर्मण-
हन्तुम् । अवश्यमेव समास्वादनीयः कयाया अस्या रसः महोदयः ।
प्रतिविद्यालयं प्रतिमहाविद्यालयं प्रतिपुस्तकशालञ्च रक्षणीयमिदम् ।
पुस्तकस्यास्य कृते शास्त्रिमहोदयो राष्ट्रकर्णधारः पारितोषिकेण सधर्द्धनीय
इति नः प्रतिभाति ।

अत्र पद्यान्यपि भूयासि विलसन्ति । तेषु च कानिचन ग्रन्थकृत एव,
अपराणि च तेषां तेषां कवीनाम् । सर्वाण्येव सरसानि मनोहराणि च ।
इतरकविषु च प्रतिवादिद्विरदपञ्चानने पण्डितराजजगन्नाथे शास्त्रि-
महोदयस्य बहुमानो दृश्यते । शास्त्रिमहाभागस्य गद्ये पद्ये च सममेध
नैपुण्यं परिलक्ष्यते ।

चिरञ्जीवतु शास्त्रिमहोदयश्चिरञ्च समलङ्करोतु सुरसरस्वती-
मीदृशीभिः सुमनोमालाभिरिति शिवम् ।

८, भूपेन्द्र बोस एवंभू
बलकृष्ण
२१।४।५६.

श्रीसितीशचन्द्रचट्टोपाध्यायः

मञ्जुपासम्पादकः

चन्द्रमहोपति.



वेद्याकरणकेशरी श्रीनवरङ्गरायशास्त्री



राजभवन

जयपुर १

पञ्चायराज्यपाल महामहिम श्रीनरहरि विष्णु गाडगील महोदय का प्राक्कथन ।

मनुष्य प्रातःकाल उठ कर अपने शरीर के कार्य करना है, फिर अपने धान्यों के, फिर मिट्टी के, फिर दूसरों के । यह सब पहलुओं में लागू होता है । कुठ स्वयं बन कर राष्ट्र को बनाने का उद्देश्य उत्तमपुरुषों का सभी राष्ट्रों में रहा है । उन्हीं सब कार्यक्रमों के एक प्रणालीमय निरूपण को उस पुरुषोत्तम के द्वारा या बाद में एक बाद का स्वरूप मिलता है । इसी उद्देश्य से विश्व में विद्यमान के लिये विभिन्न बाद देने जाते हैं । बाद के प्रणाली एवं उसके अनुगामी उस बाने बाद को ही सर्वाधिक विश्वप्रतियोग्य मानते हैं । परन्तु इन सब बादों से ऊपर उठ कर इनकी बान्धविष्ठा देखने से सभी अपूर्ण से दिगाई पड़ते हैं । यही कारण है कि अनेकों बाद विश्वमय पर आये और बिलीन हो गये । परन्तु सर्वोदय एक ऐसा समन्वयारमक बाद है जिसने स्यादित्व की क्षमता है । लेखक ने सर्वभ्युदय का प्रयोग विशेष उद्देश्य से किया है और व्याख्या की है... 'सर्वे' 'सर्व मनुष्यों द्वारा' 'सर्वभूमि' 'सर्व काल और स्थितियों में' 'सर्वसमै' 'मर के लिये' 'सर्वसमाप्त' 'सर्व उपायों से' 'सर्वस्व' 'प्राणिमात्र का' अर्थात्- 'ममन्तात् उदय' 'सर्वभ्युदय' ।

इससे उसकी व्यापकता न और चार चाद लग जाते हैं, सबका उत्कर्ष और वह भी सर्वतोभावेन। लेखक की दृष्टि में यह कोई वाद नहीं अपितु स्वभाव है और वह स्वभाव मानव में सृष्टि के आदि से है।

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

यहा सब के लिये कर्याण और सुख की कामना है, बहुजनो के लिये नहीं। यह पुरातन ऋषि का सर्वप्रथम आशीर्वाद है, सकल्प है। यह कोई हवाइ किला नहीं अपितु विश्वरोगों की व्यवहारणीय अव्यर्थ महौषध है। इसकी आधारशिला है आध्यात्मिक अद्वैत। समन्वय, सामञ्जस्य, सामरस्य इसकी प्रणाली है। यह वस्तुतः जीवनमात्र के लिये जीवनमृत है। यह मानवनिर्मित वैषम्य को दूर करता है और प्राकृतिकवैषम्य को घटाता है। यहा प्राणिमात्र के लिये समादर प्राप्त है। इसमें स्वामी और नौकर का, मिलमालिक और मजदूर का अन्तर नाममान का रहता है। यदि पर में कोई नौकर कार्य करता है तो वह कृपा करता है कि अपना कार्य छोड़ कर हमारा कार्य करता है। अतः उसके लिये हम द्रव्य भाव नहीं रखना चाहिये, अपितु समादरभाव रखना चाहिये। “भोजन जीवनस्तराधिपतिसम स्यात्।” इसी प्रकार व्यापारिक प्रतिष्ठानों में काम करने वालों का अधिपति के समान स्त्व होना सर्वाभ्युदय का उद्देश्य है। दस घोस आदमी मिल कर काम करें तो वह सामंशरी का काम है अगर उसमें कोई अधिक हड़पना चाहे तो वह बेहयापन है तथा चोरी है।

सर्वाभ्युदय का उद्देश्य है दूसरों के लिये जीवो, ऐसा समाज निर्माण जिसमें व्यक्ति को सर्वविध विकास का अवसर प्राप्त हो। इसमें न अमीर न गरीब, फिर भिक्षु का तो प्रश्न ही नहीं।

आज धर्म को धर्म का मूल्य नहीं मिलता। किन्तु यथाकथञ्चित् जीवनधारण के लिये कुछ मिलता है। शेष वह सामंशर हड़प जाता है जिसे आज की पूँजीवादी भाषा में “स्वामी” कहा जाता है। इस हराम की कमाई का नितादरण सर्वाभ्युदय के लिये परमावश्यक है। यन्त्रों का उपयोग मानवविज्ञान

के लिये हो, धनसंचय के लिये नहीं। आज मानवता सभ्य में है और हमसे प्राग पाने का एक मात्र साधन है "सर्वाभ्युदय"।

हमारा इन शताब्दियों का ईतिहास पूँजीवाद से प्रभावित होकर स्वार्थ-सोच से नितान्त दूषित रहा है। हममें से ही कुछ ने विदेशोंसे अतनायियों को भारतविद्वान के लिये बुलाया। हमारे भीतर विद्यमान स्थापों के बल पर ही उनका शासन चला। मनमाने अत्याचार हुये और अन्त में भारतमाना के गढ़ हुये। आज भी यत्र, तत्र, सर्वत्र राजनीति, व्यापार और सम्प्रदाय में यह स्वार्थ ही सर्वोपरि है। सरकारी नौकरियों व व्यापारिक प्रतिष्ठानों में ऊँचे पदों में स्वार्थ व पक्षपात ही दृष्टिगोचर होता है। तिकड़्मो स्वार्थी समानशील अधिकारियों से सांठगाँठ कर झटाचार फैलाते हैं। ऐसे अश्रम मनुष्यों से न तो समाज की रक्षा होती है न उत्थान। धनार्जनके अतिरिक्त इनका कोई उद्देश्य नहीं होता। इस प्रकार की धनलोभता से पतन अवश्यमान है। इन तथा समाज में व्याप्त अन्य समस्त दोषों के लिये सर्वाभ्युदयवाद अनोप-धीय है। आइये, हम स्वार्थदर्श इतिहास को उज्ज्वल बनाने के लिये दृष्टिबद्ध हों।

हिमालय के समान उज्ज्वलधवल, आकाशके समान विशाल, वायु के समान व्यापक एव सूर्य के समान सप्रम संतुलन वाष्प में गद्यप्रणयों की अस्पृहा कारण उस समय के रसिकों की दृष्टि का अभाव ही प्रतीत होता है। उस समय छन्दोबद्ध विषयों का ही मनना स्वास्वादन करते थीं। और विरोधक पद्यात्मक रचना ही कविता मानी जाती थी। यही कारण रहा होगा कि इस वाष्प में गद्यप्रणय अगुल-गमनीय ही रहे। अब इस जोर विद्वानों का ध्यान जायेगा तो अवश्य ही उसकी पूति हो जायेगी। आधुनिक काल में साहित्य की श्रीरुद्धि में अपिष्ट हाथ गद्यप्रणयों का ही रहता है। अन्य भाषाओं का साहित्य गद्यप्रणयों के ही अन्तर पर ससृष्ट हुआ है।

श्रान्ति लाने में सबसे प्रथम काम साहित्य का है। उद्भुत मनुष्यों के मस्तिष्क पर प्रभाव डालने वाला साहित्य ही मस्तिष्क में श्रान्ति लाने की शक्ती रखता है। आज भी हम राधा का पुत्रा उल्लेख हैं और राम की पूजे हैं तथा कृष्ण को प्रणाम करते हैं और ब्रम्हो गली देने हैं, विभिन्न

तीर्थस्थानों की यात्रा करते हैं। यह सब साहित्य के कारण हुआ और हो रहा है। अतः उत्तम साहित्य ही राष्ट्रके स्थायी स्तंभ हैं।

कवि समय का प्रतिनिधि होता है, उसकी रचना यद्यपि इतिहास नहीं होती पर उस समय का ज्ञान अवश्य कराती है। यह बात प्रस्तुत लेखक की कृति के अन्दर सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। लेखक ने जिस विषय को चुन कर जो सर्वथा मौलिक अभिनवकृति साहित्य को दी है वह सामयिक तो है ही पर भाषासौष्ठव से अभिराम व मोहक भी है। सम्भवतः संस्कृतसाहित्य में यह सर्वप्रथम पुस्तक है जिसमें लेखक ने सर्वाभ्युदय की स्थापना की है।

पुस्तक का बाह्य कलेवर भाया है। सर्वप्रथम उसी की ओर पाठक का ध्यान जाता है और वह आकर्षित होता है। भाव या उद्देश्य तक तो धीरे गम्भीर बुद्धि वाले ही जा पाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक की भाषा की छटा बहुत आकर्षक है जो लेखक को प्राचीन कवियों की श्रेणी में उपस्थित करती है। वर्णन में छोटे छोटे पदों के कारण सुगमता होते हुए भी कहीं कहीं बाण और दण्डी के जैसे दण्डक भी हैं। यद्यपि लेखक ने अन्तमें लिखा है कि—न्यासि कचन कचन प्रीत्यै विदुषा मया नु काठिन्यम्।

नीरजमृदुला तन्वी कुचयो कठिनैव सम्भाति ॥

प्रकृतिवर्णन

लेखक प्रकृतिवर्णन में अद्भुत योग्यता रखता है। पाठकों की इन मनोमोहक अशों का आनन्द अवश्य लेना चाहिये। लेखक इसी तरह आधुनिक शैली के प्रयोगमें भी सफल हुआ है।

उद्देश्यनिरूपण

यद्यपि पुस्तक के अन्तमें लेखक ने प्रतिपाद्य वस्तु का सर्वाङ्गनिरूपण किया है किन्तु पुस्तक के प्रथमपद में ही उसकी झलक प्रतीत होती है। सूर्यप्रभा के साथ प्रथम आलाप, स्वतन्त्रता संग्राम के मुकुटमे का वर्णन, दुर्भिक्ष, बाढ़ और दुर्घटना आदि के विवरण में उसका प्रयत्न अनुष्ठान दिखाया गया है।

समस्त पुस्तक में लेखक के विविध विषयों के ज्ञान की स्पष्ट छाप स्थल स्थल पर दिताई देती है, जिसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं। जीवन में प्रतिदिन व्यवहरणीय भोजनों तथा यन्त्रजनों व वैज्ञानिकनयनों का समन्वय साहित्यमयी भाषा में करके पाठकों के लिये एक अद्भुत उपयोगी कोष दिया है। यथा—

“प्रोदयनोत्प्रेव कुचमईनेन सङ्कुचिनशोपमवद् यामिनो, निप्राथ शब्दलैभैरवीत्वं जह्विमावयोः”। “निष्पादति सूत्रमिव ज्ञानार्थयुक्तिः”, “व्यासिलङ्गमिव प्रभूतनिवेशभा-समान”, “सङ्गमसङ्गममिव सञ्जितानेकज्ञानन”, “सन्देन्दुसेता इव विद्वान्तन्याख्याता”। “तुष्युतामो मधुरितिव धात्रं शोऽल्लहतिः”।

‘रसगुणलिज्जरितारदसेवनशीणतयः साक्षाच्चद्र इवालक्षि’। ‘स्वर्गादिमिरिगुहायामामज्जीयं रसायननास्त्रचेर’, ‘प्रहर नासविदु’ पुष्पातुगमिव सेवमानायामनुपेयामिर्दुस्व-धारभिरिव सिग्गमानायां वपुनलां”, “विविधकया सविमाना सासवा समस्मचूर्णां चरुसंहितेव वमी होलिका। सुत्रां याम्मटेन केनाप्युत्तरेण नावतस्ये।” “अस्या वाणी भगवद्मक्तिरका कवितैव सरसा गात्रप्रकाशवत् स्वच्छा, शिगुहासवत् सरला, पनजलि-भणितिरिव भावपूर्णा सुबोधा च विद्यते।”

“चन्द्रस्तु न नाऽऽज्जकौफकिं सासङ्कात्मजपेरीयूपायनोमधुसुधवः”, “आयुवेद-धायमेव लक्ष्मीविलासमागी”, “प्रियवालमनोस्मदार्जर्ग इव”, “कामेश्वरमोदकमुदिता”, “रम्पाणि चित्राणि पुष्पदशो कानां सशोशोनां सर्वनामानि चाष्टकिनानि सन्ति”, “रचिनङ्गहृन्पातो पररुचि, यागप्रतिदैत्यारिः श्रोत्रो विगुदयो होतृकारः”, “बभूव इव मुस्यमज्ञायमानमस्त्रिनया”, “सोऽय वारणायां नामोपिततः कालो वर्तते”, यत् कुङ्कुमेनाच् किनोऽबिनोऽङ्गुष्ठितः शान्तिङ्गुष्मिङ्गो गुणरत्नैः, “अतुल्यारस्य यदि परसर्वर्गः” इव सोदाहणो राजा राजते।

कुछ ऐसे वाक्य हैं जो जीवन की उपदेश देते हैं, चमत्कृत करते हैं। यथा—

“धर! धर्तार्यः कुरोऽपि पुतिमिदं शोच्ये जायति धमति”। “दृपेऽपि विरं भवति सौन्दर्येऽपि सरलम्”, “अपटनोपपटनापटोयसः पाटवं खाटपाटस्य को जानीते”, “अतुराधमिः कान्तारमन्तयनि”, “दैवदत्तेन दृष्टः शशिलयेऽपि शिवमग्नेऽपि मुखो न तिष्ठति”, “वस्तुतो रत्न स्थान एव राजते”, “पुमान्मुचे सर्वं विस्मयति”, “महामदो लक्ष्मीविष्णु”, “आर्त-धनलो भगवान् स्वतः सर्वं साधयति”, “लिवद्वजनेव विचारमलिना सन्ध्या शय्यां भेजे”,

“भोजनप्रिये विप्र मनस्वितेव नेक्ष्यते स्माह्लाद”, “सुमिक्षे वणिगिव दुर्दृश्यदशमासोजगरम्”,
 “द्वैकारणकाव्ये स्सानुभूतिरिव कचन कचन प्रेक्ष्यते स्म जनावस्थिति”, “परतन्त्रताया
 घृतादनात् स्वतन्त्रताया घासादनमरीय”, “मरुमणि प्रतापो घासमेव जघास”, “स्वाधिनो
 देदया वा स्युर्विदेदया वा स्वायें लुण्ठतां रक्त शोषयता धनिना वा नान्तरम्”, “कुशाग्रबुद्धि-
 र्योगशील सद्यः साफल्यमश्नुते”, “मृत्युमुख विशता कोऽवसर उत्सवस्य”, “समुद्र
 शुष्कोऽपि मानस सरस्तिरस्कर्तुं प्रभवत्येव”, “दृढप्रतिज्ञ साहसिनं नर प्राकृतिक्यौ बाधा
 निश्चितपयाज्ञ निवारयितुं शक्ता”, “साधनाविरहितं कथं प्राप्नुयान्मानवोऽमीप्सितम्”,
 “ममप्रासाद साधनास्थलं न भोगभूमि”, “दोषा देव! भावनाश्रया”, “मात्सर्यं भोगभूमावेव
 भवति न साधनास्थले”, “आप्रियमेतन् प्रेयसीनां दुःखम्”, “प्रज्ञावता प्रज्ञायास्तदेव सुकर्म
 येनानाढम्बरमप्रदर्शनं जगतो विराजो भगवतोऽफलाभिलाषमर्चनं भवेदिति”, “अहिंसा प्रेम
 च मानवस्वभावः”, “चित्छायायां नरो विवेकविच्युतो भवति ।”

अन्तर्में सर्वाभ्युदयस्थापना में महाकवियों के पद्यरत्नोंके गुम्फन ने इस खर्णपुस्तक
 को हीरकमण्डित सा कर दिया है। मैं चाहता हूँ कि इस प्रकार के सदर्थों का समाज में
 अधिकाधिक आदर हो। और सद्यःप्रचार की दृष्टि से इसका परीक्षाओं में सर्वत्र
 सन्निवेश हो, ताकि संस्कृतसाहित्य की श्रीवृद्धि को प्रोत्साहन मिले।

अन्तर्में आधुनिक भाषा की इस उत्कृष्टतम कृति के विद्वान् लेखक कविपण श्रीनिवास
 शास्त्री की भूरि भूरि धन्यवाद के साथ आशीर्वाद देता हुआ परामर्श देता हूँ कि वे
 संस्कृतसाहित्य के विशाल भवन में इसी प्रकार के अन्य ग्रन्थ भी दें।

चण्डीगढ़

दिनांक १९३५९

अत्यन्त आनन्द और स्नेह के साथ

अभ्यस्तानेकदेशमापोऽनल्पलिपिद्वः कलिप्रताविद्विद्यल्लभस्य तुलनात्मक-
भाषाशास्त्रे सम्मानिताभ्यापदो भारतशासनसङ्घटितसंस्कृतायोस्य भूतपूर्वाध्यक्षः पद्म-
भूषणोऽहम्। सुनीतिप्रसारचट्टोपाध्यायः M.A. (CALCUTTA), D.LIT. (LONDON)



महापति
विधान-परिषद्
गङ्गेश्वर
कलिकाता ।

Chairman
Legislative Council
West Bengal, Calcutta
December 2, 1958.

सभापति
विधान-परिषद्
पश्चिमवङ्ग
कलकत्ता ॥

I have gone through the Sanskrit work in both prose and verse "CHANDRA MAHIPATI" which has been composed by Kaviraj Shri Shrinivas Shastri of the Shri Visuddhanand Saraswati Marwari Hospital in Calcutta. This is a work of a new type in which he has sought to give in simple sanskrit prose, with verse stanzas in different metres occasionally interspersed, an exposition of the Sarvodaya ideal, in the form of a story. The Author has a very remarkable facility in the use of Sanskrit and he is a true poet to whom Sanskrit Versification in different Styles comes most easily. I am sure, a book like this will be very much appreciated by those who can read Sanskrit, and it should be useful for students of Sanskrit who want some good reading matter outside of the classical texts which they have to study.

I wish a wide publicity for this Book and I TRUST ON ITS OWN MERITS it will be accepted by our sanskrit Scholars all over the country.

Suniti Kumar Chatterjee



GOVERNMENT SANSKRIT COLLEGE

Calcutta, the 14th January, 1959.

No. 2339/A1

I have gone through the book entitled "CHANDRA MAHIPATI" by Pt. Shriniwas Shastri. It has given me very great pleasure to notice that even in present time a Scholar can write sanskrit Prose with much ease and flexibility of style. I would only wish the book a wide publicity.

Dr. GAUBINATH SHASTRI,

Principal

Sanskrit College, Calcutta.

Judge High Court

36, Ballygunge Park,

Calcutta-19.



Calcutta

I have read with great pleasure and interest CHANDRA MAHIPATI a sanskrit work of Kaviraj Shriniwas Shastri of S.V.S M. Hospital, 118, Amherst St, Calcutta-9. The book is well written. The Story rings true to the universal ideals of the Hindu Sanatan Dharma. The author has done a distinct service First, to the ideals of such Dharma and Secondly, to the cause of Sanskrit. It is a Commendable endeavour.

Dated Monday the 9th day of February, 1959

(Sd) P. B. MUKHARJI

(Honourable Justice High Court Calcutta)
President, Bangiya Sanskrit Shiksha Parishad.



MINISTER
Law Deptt. and Local Self-Government
and Panchayats Department
Government of West Bengal.

६२-५९

मैंने पं० श्रीनिवासजी शास्त्री का “चन्द्रमहीपति” नाम का उपन्यास संस्कृत भाषा में पढ़ा। शास्त्री जी ने इस उपन्यास को अत्यन्त सुन्दर रूप से लिखा है। इसके भाव और भाषा दोनों ही सफ़हनीय हैं। यह पुस्तक संस्कृतज्ञों के लिए पठनीय है। इस सफलता के लिए मैं पण्डितजी का अभिनन्दन करता हूँ।

ईश्वरदास जालान

विश्वविख्यातश्रीसरभाभूतोपमुखर्जीमहोदयज्येष्ठपुत्रस्य, लोकनायकस्य मुत्तारमनो-
ऽमरकोशैः श्रीरामाग्रसादमुखर्जीमहाशयस्याप्यजस्य न्यायसिन्धुरामाग्रसादमुख्योपाध्यायस्य—
Phone ४८-१८९१ ७७, आशुतोषमुखर्जी रोड, कलकत्ता-२५

कविराजश्रीनिवासशालिग्रहितं कथाकाव्यमालोक्य परां प्रीतिमातवानस्मि।
प्रथमंस्तीया पदविन्यासपरिपाटी, आधुनिकविभिन्नविषयाणामनुशीलनशैली, भारतीय-
संस्कृताभ्युपमानुरक्तिश्चास्य काव्येऽस्मिन् मया समवलोकिताः। व्याकरणसाहित्या-
युर्वेदादिषु वैदुष्यमुपेयुषः शालिणः काव्यकलानैपुण्य मनीषिमनःप्रोगतहेतुतामर्हति।

परमेश्वरसादात् श्रीनिवासस्य कवे. काव्यमिदं यस्मिन्नेऽर्पयते शिवेतरक्षतये चास्तु
इति मे शुभावासाः।

श्रीरामाग्रसाद मुख्योपाध्याय न्यायसिन्धुः

कविचक्रचक्रवर्तिनश्चक्रवर्त्तिनो महामहोपाध्यायस्य श्रीकालीपद-
सर्काचार्यस्य कविकाव्यप्रशस्तिः —

श्रीश्रीनिवासशालिग्रहितं नामाशुणैः समाल्लिखम्।

चन्द्रमहीपतिकाव्यं गवनिबद्धं मया दृष्टम् ॥१॥

गद्यसहृदयहृद्य कविगुणनिकर्यं चिरं वदन्त्वार्याः।

बाणसुवन्धुप्रमुखाः कन्यो यत्र श्रिताः कीर्त्तिम् ॥२॥

सस्कृतकाव्यविभूति क्रमशः क्षीणा वसुन्धरापृष्ठे ।
 दस जनयति तापं सुचिरात्तत्रासुरकानाम् ॥३॥
 पद्य कथमपि हृद्य बहवः कवयः सदा निबध्नन्तः ।
 सम्प्रत्यपि सन्तोषं विदधति यत्नैस्नायासैः ॥४॥
 किन्तु न गद्यनिबन्धे भास्ति बहूना विपश्चिता यज्ञः ।
 अथवा सत्यपि तस्मिन् स्वल्पजनानामिहोत्कर्षः ॥५॥
 श्रीश्रीनिवासशास्त्री व्यरचयदेतद् यदुत्तमं काव्यम् ।
 सुषट्तिगद्यमयं तत् सुखयति चित्तं सच्चित्तानाम् ॥६॥
 कृतं बहुसवित्तं निर्दुष्टचित्तं स्वयां धियोपात्तम् ।
 कवितोत्कर्षात् सत्यं प्राकृतमप्राकृतं भाति ॥७॥
 नूनं कल्पनरत्नं कविना यज्ञाद् कृतं परं चित्रम् ।
 बाणप्रभृतिवर्तीनां स्मरणं येन प्रसिद्धानाम् ॥८॥
 साकिं कापि समृद्धा स्वभावसिद्धा मतिनयाविद्धा ।
 सुकवेरन समिद्धालङ्कृतिशास्त्रे तथा श्रद्धा ॥९॥
 ललितालङ्कृतिरभ्यध्वनिपदसुभगा कृतिर्यथा योषा ।
 विलसत्सुरसविशेषा रसयति धेतो रसज्ञानाम् ॥१०॥
 शब्दपयोनिधिपारं न किमयमाप्तं कवीश्वरो बादम् ।
 येन निवक्षितभावा विवृता सर्वे स्फुटाकारम् ॥११॥
 कापि सुरम्यं गीतं कापि सुषर्णं प्रसङ्गतो नदम् ।
 सारस्रतगतिभेदे कथयति निखिले कवेर्दाक्षिणम् ॥१२॥
 प्रोच्छ्रसदच्छतरङ्गा रिङ्गति गङ्गा यथा निरासङ्गा ।
 प्रसरति ललितोल्लासा तद्वत् सुकवेरितो भाषा ॥१३॥
 एष हि काव्यनिबन्धः सुमधुरबन्धः प्रसाधितानन्दः ।
 सुकवेरस्य किल स्याद् विजयपताका जगत्सिन्धुः ॥१४॥
 दशयतु देवतवाणोमृतिपरिवादं जनैः कृतोन्नादम् ।
 मानरहितमहिमानं यद्वत् किलासौ ससम्मानम् ॥१५॥

श्रीश्रीनिवासशास्त्री मुकुटविषयेऽपि मुकुटमेव ज्ञाता ।

रसिकविशेषमेव सम्यक्तु नियत सारस्वता ॥१६॥

शमयविरहितमनुश्चरमयमीशाह्यावसादात् ।

एव ललितनिकन्वैरान्ध्र जयतस्तथा टिण्यात् ॥१७॥

ईदृशकाव्यविचारान् विदुषा मुग्धा हृद विदुष्यन्ताम् ।

संस्कृतमायामसमा राष्ट्रियभाषापदे येभ्याम् ॥१८॥

जयति कविदुल्लभे श्रीनिवासो नवीन

शुभवृत्तपुराणोगशविद्याप्रदीप ।

जयति विदुषबाणो तेन हस्तमिमाना

जयति भरतमुमिल्लगुणैरेषमाना ॥

१३९१ बङ्गब्दीय सौरमार्गशीर्षस्य } महामहोपाध्यायश्रीकालीपदतत्काचार्यस्य ।
नवोदयदिग्दर्शनीया लिपिरेषा ।

म० म० डा० श्रीयोगेन्द्रनाथतर्कसाङ्ख्यवदान्ततीर्थानन्तामाशीर्वाद —

कविराजश्रीनिवासशास्त्रिप्रणीतचन्द्रमहोपतिनामकः चन्द्रमौ मया साधयन्त
मवालोकि । चन्द्रमौऽयमधुनातनी समस्या हृदयान्, ईदृशान्तरीं प्रणालीं व्यवहरन्,
प्राचीनकवीनां मनोज्ञमयुरा रीतिसम्पत्तिशायनो बाणस्य प्रबन्धसौन्दर्यम्,
कालिदासस्य स्वाभाविकताम्, दण्डिन पद्यकल्पितम्, भारवेरर्थगौरवम् भाषस्य पाण्डित्यम्,
हर्षस्य वर्णननैपुण्यम्, त्रिविक्रमभट्टस्य श्लेषम्, शङ्करस्वार्द्धतर्कदातृत्वं पुनः पुनः
स्मारयति । मन्ये संस्कृतसाहित्येऽयमपूर्वो विषयो लेखनेन सापेक्षकार निबद्धः ।
अमेणास्य प्रसीदन्नहं सन्नेहमाशिषा सखीवयामि ।

म० म० डा० योगेन्द्रनाथतर्कसाङ्ख्यवदान्ततीर्थ टि० लिट्,
दिनाङ्क २७-३ ५९

सत्यं परं धीमहि

महामहोपाध्यायमहाकविभारताचार्यश्रीहरिदाससिद्धान्तवागीशमहोदयानामाशीर्वचनं
ब्रह्मक्षरं देवनागरीलिप्याम्—

श्रीश्रीनिवासशास्त्रिप्रणीतं चन्द्रमहोपतिकाव्यमवलोक्य नितरामानन्दितोऽस्मि । येन
हि पदे पदे अनुप्रासालङ्कारभूषणकारेण काव्यमिदं स्मृतिपथमानयति महाकविश्रीहर्षद्वृत
महाकाव्य नैषधीयचरितम् । स्थाने स्थाने भावगाम्भीर्यं माधुर्यमातनोति ।
प्रायेण नानाविधा अर्थालङ्कारा नितरां शीर्णान्त हृदयम् । तन्मन्ये काव्यमिदं
कान्यारसरसिकेषु पण्डितमण्डलेषु सर्वथा समादरं लप्स्यते इति ।

श्रीहरिदाससिद्धान्तवागीशशर्मा

तारिख २२-७-१३६५

महनीयमहिम्नोः श्रीजीवन्यायतीर्थश्रीनारायणचन्द्रस्मृतितीर्थयोः—

गद्यपद्यरचनानिपुणश्रीश्रीनिवासकृतकाव्यविशेषम् ।

चन्द्रभूषतिविचित्रचरित्र शोभ्यन्ननुत्तमोदमुपैमि ॥

शक्तिप्रकाशकुकी कविरेव नव्यं काव्यं परैरपरिशीलितमार्गगामी ।

निर्माय निर्मलमतिः सुमनोमनस्तु धामन्दसान्द्रससौरभमातनोति ॥

भट्टपत्नीवाल्मीकिश्रीजीवन्यायतीर्थशर्मणः

अत्र ममापि सम्मतिरस्ति प्रीतिमाशीर्वचोऽपि नितरतो भट्टपत्नीवाल्मीकि-
श्रीनारायणचन्द्रस्मृतितीर्थशर्मणः ।

कलिकाताविश्वविद्यालयाध्यापकशास्त्रब्राह्मणविद्यासागरमीमांसा-
न्यायसाहित्याचार्यश्रीपी०एन०पट्टाभिरामशास्त्रिणाम्—

पण्डितवरैः श्रीश्रीनिवासशास्त्रिभिर्विरचितं 'चन्द्रमहोपति'-नामकं मधुरं गद्यकाव्य-
महमवलोक्यम् । संस्कृतवाङ्मये गद्यकाव्यानां सत्यपि वैशिष्ट्ये तद्विरचने लोकानां
प्रशस्तिर्लक्ष्मणायैव । तत्रापि सरसानां सरलावाद्य गद्यानां वैरत्यमेवेति कथनं नासद्वत्तमिव ।
तदिदं वैरत्यं श्रीशास्त्रिणोऽसद्वत्तमाना इव ग्रन्थमिमं रचयाम्बभूवुरिति ते नितरामग्नितन्दीया

एव । अस्मिन् काव्ये न केवलं कथावस्तु सहृदयानां मनांसि रञ्जयति, वर्णनावानुयम्, सरलानामेव पदानां शुष्कत्वम्, प्रायो दीर्घसमासराहित्यम्, शैल्या मधुरिमा आमूलचूल प्रसादगुणप्रवाहश्चेति नूनं हृदयान्यावर्जयन्ति । स्वतन्त्रेऽस्मिन् भारते शिक्षाधिकारिण इमं प्रन्थं शिक्षाक्रमे संयोज्य साकं निलिम्पवाण्याः प्रचारेण श्रीशान्तिः पुरस्कर्तुं रिति विश्वसिद्धि ।

६११।५९

पट्टाभिरामशास्त्री

अधिगतमस्माभिरान्तमधीतञ्च जयपुराभिजनेन श्रीमता श्रीनिवामशास्त्रिणा विरचितं चन्द्रमहोपतिरियाख्यमुपन्यासगजम् । एतादृशे मनोऽभिरामे वस्तुनि रञ्जयति नैकान्तत उच्चैर्भादः । पठितुं प्रवृत्तस्थारामाप्य त्यक्त्वा खिद्यते पुरोषस्तिरक्त- निज्ञानोत्सुकं चेतो जनस्य । सखीलापि सरलापि खलितबन्धशास्त्रिणी भापेति यत् सत्यं सुवर्णे गन्धसम्बन्धोऽयम् । क्रमोत्कर्षमारोहन्ती विचिन्ना घटनापरम्परा उत्कृष्टा- कण्टकितानि करोति पठनां चेतोसि । एतस्य परिच्छेदाः प्रत्येकमेकनिश्चाद्यसमाप्यतया विन्वाद्यसङ्गज्ञानलभन्त । तत्र तत्र वृथिता वनशैलकृष्णदिरूपा प्रकृतिरपि दृष्टावर्त्त- पतिरस्य सस्थापनामिव विदधाति मानसस्य । न केवलं गद्यनियन्त्राय पद्यनद्वयानपि दृश्यतेऽस्य कवेर्महार्हं पण्यजातम् । एतानि च पद्यानि न केवलं सहजकवित्वसर- सान्यवित्वाहार्यकविप्रतिभाभामुरैः श्लेषयमकविनादिभिर्भूषितानि चिन्ताशक्त्युन्मेषेऽपि किमपि साहाय्यं विदधति पाठकानाम् । खलता खलबधिगुणेष्वल्पभाषणमपीति विदन्मपि प्रसङ्गादिपरमालोचनयानैव विस्मन् नवीनस्थास्य कविप्रकाण्डस्योत्तरोत्तरोन्नति- मीशसकाशे मुदढमाशासे इति शुभम् । साष्ट्यतीर्थस्य श्री उपेन्द्रमोहनदेवशमणः ।

१८८० शर्कीयसौरमासस्य पञ्चमदिवसीयम् ।

}

मुनीन्द्रविद्यायतनम्

४, आनन्द लेन, कलकत्ता ।

गम्भिरश्रीनगेन्द्रनाथशास्त्रिणः, ईश्वरचन्द्रशास्त्रिणश्च ।

श्रीबालाजीमन्दिरचान्दोदयडोदाख्यश्रीधर्मचन्द्रोत्थपीठाधीश्वर
वेनान्तशिरोमणिश्रीमदनिरुद्धाचार्यवेङ्कटाचार्याणाम्—

सरलया सरसया सस्कृतभाषया सुदक्षतम सरसमेकमुपयास चन्द्रमहीपतिनामक
श्रीनिवासशास्त्रिणो निबन्धु । यस्मिन् वर्तमानकालिको जनसमुदाचार समुपन्यस्त ।
काव्यरसिना कव्यासिकाध्वेसमवलोकैरनित्याम्रेष्ठयाम । स्वतन्त्रया शैल्या कवि
स्वाभिप्रायानाविकूरोनि । अधिकरोति चौपबिबद्धा तेषु । प्रथस्य कर्त्रे वेदोक्ता
अक्षिप आशासाना यय प्र यस्य प्रथनमभिलषाम, इति सम् ।

कलकत्ता—दिनाङ्क २८ १ ५९

अनिरुद्धाचार्यवेङ्कटाचार्य

ता० २५ २६ २७ दिसम्बर १९४० में प्रथम बोकानेरराज्यसाहित्य-
सम्मेलन, डा० श्रीदशरथ शर्मा एम० ए० के सभापतित्वमे हुआ था । उसमें
चन्द्रमहीपति को प्रथमश्रेणी का प्रमाणपत्र निवायकों ने दिया था, एवं नीचे लिखी
सम्मति दी ।

मैंने पण्डितवर श्रीनिवासजी शास्त्री द्वारा रचित चन्द्रमहीपति का कुछ अंश देखा
एवं पढ़ा है, प्रसार वास्तव में सुख है । ऐश्वर्य महोदय ने कवित्व एवं सस्कृतज्ञान
दोनों का ही अच्छा परिचय दिया है । आपके चित्रालङ्कार वास्तवमें अपने दगके
बहुत अच्छे नमूने हैं । आशा है कि आप नवीन दगसे कुछ नवीन उपन्यास एवं
आचार्यायिकाओं की शिक्षण सस्कृतसाहित्यसंसार को अवश्य उपकृत करेंगे । आपने
कथानक को पयाप्त रोचक बनाया है प्रकृतिवर्णन की भी कमी नहीं । हम आशा हैं कि
सस्कृतसाहित्य के विद्वान् इनकी कृति को अपना घर ऐश्वर्य महोदय की उत्साहवृद्धि एवं
सस्कृतसाहित्य की शोभित्ति करेंगे ।

२७/१२/४०

(डा०) दशरथ शर्मा

बोकानेरराज्यसाहित्यसम्मेलनप्रधानसभापति ।

हृगर कालेज, बीकानेर के हिन्दीविभागाध्यक्ष स्थातनामा श्रीस्वामी नरोत्तम दासजी—

श्रीमान् पंडित श्रीनिवासजी शास्त्री की अमिन्नव अनुपम कृति चन्द्रमहापति के कई ठेक अक्षरों में देखे और सुने । यह ग्रंथ पंडितजीकी काव्यशक्ति का सुन्दर परिचायक है । वर्णना की निराली छटा के साथ साथ अलंकारादि का तथा व्याकरणविषयक विविध बातों का मनोहारी सौन्दर्य ग्रंथ में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है । पंडितजी की यह रचना सर्वप्रकारेण अभिनन्दनीय है । आशा है जिस प्रकार की अनेकानेक सुन्दर रचना से पंडितजी अमरबाणी के भंडार को भरते रहेंगे ।

पौषदि १४ स० १९९७

नरोत्तमदास स्वामी एम० ए०

सप्रमोदमिवभावेद्यते यद्राजस्थानोयविद्वन्मणिमालायामभिनवमणीयमानस्य श्रीमत श्रीनिवासशास्त्रिण आयुर्वेदाचार्यस्याभिनवा कृति “चन्द्रमहापति”—नामक सत्कृतोपन्यासग्रन्थोऽस्तु समालोकि । इत प्रागपि किंवाद्वादशोऽस्य दशो गौस्तमानाणि । महामय इषावसरो यदधुनापि सस्कृतविदुषामुर्वराशक्तिसम्पन्न मल्लिकार्जुनोदरि सर्वविद्यगुणसम्पन्नानि काव्यानि निर्मातुं प्रभवति । काव्यस्यास्य मया, भाव, रीति, गुणालङ्कारादियोजन चेति सर्वमेव मनोहारि । ग्रन्थरत्नमिदं माताय सृष्टियेतुर्मगवती भारती प्रमीदतामिति निर्मायन मनसाऽऽशासे—

हनुमत्प्रसादरामा (साहित्याचार्य)

विद्यावारिधि

प्रधानाध्यापक

सरदारशाहूर

पौ० क० १३

वै० स० १९९७

विद्याधरशास्त्री एम० ए०

सस्कृतविभागाध्यक्ष —

हृगर कालेज, बीकानेर

एच० आर० सरकृत कालेज

रामगढ (सीकर)

राजस्थान

शब्दजलमाण्डगार इव ललितहास्यरुनिसमवित सस्कृतभाषाविकासहस्तुत्वाद्ध्येतव्यं सामर्थ्यव्याप्य श्रीनिवासशास्त्रिणश्चन्द्रमहापति कमलानामको ग्रंथ ।

वृद्धिकामस्त्रिकालदर्शी तोर्धराजमिश्रज्योतिषी ।

श्रीनिवासशास्त्री का चन्द्रमहीपति देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । वर्णनशैली, भाषा प्रवाह विशेषरूप से उल्लेखनीय है । मानसिक भावों का सघन उपन्यास के तत्त्वों में प्रधान गुण माना जाता है जिसे सुन्दर रूपसे सन्निविष्ट किया है ।

रामकृष्ण भारती, शास्त्री, बी० ए० साहित्यरत्न

सदरदाहर, २६।१२।४०

सरस्वती कालेज, लाहौर

Sri Bhandarakere Mutt Udipi, (South Kinara)

Dated 22 1959

Camp कलकत्ता ।

स्वलिप्रीमत्परमहंसपरिव्राजकत्वाद्यनेकविरुदाहिनवदिक द्वैतमतप्रतिष्ठापकजगद्गुरुश्री
मन्मथाचार्यशुभसम्प्रदायप्रवर्तकश्रीमदुडुपिमण्डरकेरिमठाधिपतिश्रीविद्यामान्यतीर्थ-
स्वामिपादाश्चन्द्रमहीपतिनामकग्रन्थकर्तृभ्य श्रीनिवासशास्त्रिभ्यो नारायणस्मरण
पूर्वक निवेदयामि—युष्मक चन्द्रमहीपतिनामको ग्रन्थ सर्वाभ्युदयायात्युपयुक्त
प्रतिभासते, मनोहरकथाप्रसङ्गेन जनानां चित्तकषक इति मन्यमानहे । अस्मिन् ग्रन्थे
सर्वे जना आदर करिष्यन्तीति वयमाशास्महे, इत्यनेननारायणस्मरणानि ।

[वेदविद्याप्रयतमानमानस

कलिकातास्थो व्यापृतवैरिष्ठ

श्रीकालीप्रसादसेतान]

Naurang

6 South End Park

P O Rash Behari Avenue.

Calcutta 29

22nd March 1959

The publication of CHANDRA MAHIPATI by Kaviraj Shrinivas Shastri is a very interesting event in the field of modern Indian literature. It is a novel written in modern Sanskrit. The style is Composite partly of the old and partly of the new. Ingenious forms of grammar and of descriptions of nature alternate with coined scientific expressions and modern political and social topics. I must state frankly that all the translations of the scientific words are not likely to be accepted by the public. But that does not affect the merit of the book. It is a bold attempt to employ Sanskrit once again as a medium for popular literature. What is more is that the book is bound to prove to be a source of inspiration to writers in Sanskrit even including himself .. .

(Sd) Ksh. Prasad Khaitan



लेखकस्य द्वित्राः शब्दाः

युगद्धये व्यनीने पञ्चविंशतिं सम्प्राप्तो युवेव चन्द्रमहीपतिमग्मग्मूपातो निःसृत्य सृग्मूर-
निह्रो वीजाङ्कुर इव श्रीमतां समग्रं समायात एव ।

सर्वत्र राष्ट्रे स्वातन्त्र्यपूरे प्रवहति, प्रत्येकस्य मानसे सुखेन समृद्धया च युक्तं राष्ट्रं शब्दं
व्याकुले, विदुषां संसारे विभिन्नभाषासु सत्त्वप्यनेकेषु ग्रन्थरत्नेषु “सर्वोऽप्यर्थो धुयैः
स्पृष्टो वक्ष्यीह तयापि मे । सत्सन्दर्मां शरितता ममता केन वार्यते” । इति ह्युक्तदिशा
दुःसाहसेन मयैव निरुद्धः । पर संस्कृतलेखकानामाधिको स्थितिभीषणा, प्रकाशनमतिकुश्रमम् ।
अधुनैतत्प्रकाश्यते—इति विचार्यैवाहं प्रसीदामितमाम् ।

विशे यमति योवनोचितया निरनुभवया स्वेच्छाचारितया, अवहुत्तया, अनहुदशितया
च सह लेखनवचनाभ्यासः शैशवमुलगा पण्डितमन्यता चासीत् । अतः सन्दर्भेऽस्मिन्
तत्सुलभमौद्धत्यं कचन कचन विद्यते । परिग्रहफल्गुत्वमपि शिशोः प्रमोदास्पदम् ।
सद्विशेष्यहं तयाविधमेव सुदापयितुं निरदिशम्, यतो बालकवेर्मानसस्य परिचयः
पाठ्यैर्मयावच्छ्रम्येत । प्रौढकवीनां मकरन्दस्वन्दिन्यः पीयूषमाश्च्योतयन्त्यो ह्यारैकमव्यो
रचना भवद्भिरनेकश आस्तादिता, सम्प्रतीमां बालकाकलीमप्याकलयन्तिवति ।

पदार्थस्याभिव्यक्तये सन्धिनियमे कचन कचन शैथिल्यमवलम्बितम् । तदर्थं
पूज्यान् धृष्टान् क्षमापयै ।

उपमानोपमेये समानलिङ्गवचनतायाः शास्त्रीया परिपाटी विद्यते, परम्, “नोपमा
पूज्यायाल यनोद्देशो न भीमताम्” इति दण्डिनः काव्यादर्शस्याश्रयेण तां विद्वत्सख्यं
परितर्कितवानस्मि ।

महनीयमहिममण्डिताः कुन्दकुमुदविलसत्सत्कीर्त्तयस्तपोमूर्त्तयो
मान्याः ! पुरा भारते भारवाहा अपि संछृतां वार्षं भाषन्ते स्म । परमद्य तु कतिपय
एव तत्र शक्ताः । यदेवमेवामविष्यत्तदा संस्कृतग्रन्थाः पुरातत्त्वविभागसंस्कृतागारस्य
सम्पत्स्वरूपा एकाभिविध्यन् । समस्तमस्तकमण्डिता अस्मदादिभिर्जीवद्भिरपि पुत्रैरुपेक्षिता
जननी शोचनीया दयनीया चेदिदं महद् दुःस्वावहम् । किं भवद्भ्य एतदेव रोचते ?

अवधार्यताम्, कथमद्य हिन्दी एषते ? नवोदितेषां कथं राष्ट्रभाषासिंहासन-
मप्यास्ते ? कथमस्याः साहित्यश्रीरैषिष्ट ? तत्र कारणमासीद् यशवीनानामल्प-
ज्ञानमपि रचना जनैरुद्धताः । विशेषतो न गणनीया अपि रचनाः परीक्षासु स्थानं

प्रापिता । एकरुश आसन्नविशानि सस्करणानि तेषा भूतानि । स्वल्पज्ञाना अपि लेखका कण्ठमधुरिणा मधमापूरयन्तस्तु कान्तपदैर्घशो धनद्यापु । फलतो नवीनाया अपि अल्पज्ञो रुवाहुल्येन लोकप्रियतामुपेताया हि या राष्ट्रभाषात्वं भूतमेव ।

परं सस्कृतम् प्रथमतो लेखका एवाङ्गुलिनप्या, तेऽपि दीना जीवनयात्रायां व्यपृता वीतरचनानैपुण्या विरचयापि प्रकाशयितुमकल्या प्रकाशितेऽपि च क्वेतन् न सम्भते । सरूनाजीविनोऽपि सस्कृतप्रधानं क्रीत्वा न पठति । सस्कृतपरीक्षा सद्यालका विश्वविद्यालयेषु पाठ्यनिर्धारयित्रीसमिते सस्कृतसदस्याश्च नवीना रचना परीक्षासु न सन्निवेशयितुं गृहीतशयया इव प्रेक्ष्यते । केवलं प्राचीनानि घृष्टपिष्टानि पुस्तकानि निवेश्यते । अस्या स्थितौ कथं सम्भाव्येत सस्कृतोजतिः ?

याम्, सन्नापि विपमकष्टेष्वस्माभिः प्रतिज्ञतव्यम्, समस्तभाषाजनन्या आद्य भाषाया उन्नये चक्षितव्यम् । नवीनलेखकानां सवदने, स्वप्रभावेण नवीनरचनानां परीक्षासु सन्निवेशने लेखनप्रकाशनविक्रयण च सोत्साहैस्माभिर्भविष्यन् । प्रथमं विकृतं गत्वा नवीना कृती कृतुं जिज्ञासितव्यम् येन ता ग्रन्थास्तिष्ठेयुः । विद्यालये पद्येन वा एता कनीरुपहृत् प्रेरयितव्यम् । महादशाना विद्यधनानां सस्कृत प्राणानां विदुषामाशीवचनैरेव दुर्द्वेऽस्मिन् पथि सान्द्रं प्रयातुं पात्र्यते ।

देववाण्या अनयोपासका अप्रतिमा प्रतिभावंतस्तस्यै सोत्साहमिदं विधास्यतीत्याशासानो विरममि । अथवा मामकीन धर्मस्तु धीमता करारविद्योराधानानन्तरं मुपरमति सम्प्रत्यमिमकतव्ये धीमन्तं प्रमणम् ।

एतावत्सरसिजकुडमलस्य कृत्य

भित्वाऽम्भ सरसि विनिर्गमो यद्विर्यत् ।

आभोदो विकसनमिन्दिरानिवास-

स्तत्सव दिनरुक्कृत्यमामनन्ति ॥

पुस्तकमिदं धीमता समक्षमेव, कररुद्धणाय दपणनं किम् ? प्रथमधीयतां धीमता विचारान् ज्ञानुमहमुत्सुकः ।

रामनवमी,
२-१६ वैक्रम
११८, धर्महर्ष स्ट्रीट
कलकत्ता ९
१७१४१५९

}

श्रीः

“चन्द्रश्चन्द्र इवातन्द्रः”

(समालोचना)

छेत्तकः—कविराजः श्रीहनुमत्प्रसादरात्रो, साहित्याचार्यः, आयु-
र्वेदाचार्यः, विद्याभूषणः, विद्यावागीशः, संस्कृतार्णवः, जामनगरस्थे
आयुर्वेदीयस्नातकोत्तरशिक्षणकेन्द्रे मौलिकसिद्धान्तविभागस्याध्यक्षः ।

‘वाग्जन्मवैकल्यमसह्यारत्यं गुणाद्भुते वस्तुनि मौनिता चेत् ।’

नेत्रात्रियन्ते बहुभाषिणं तु दुर्गे पथि प्रक्रमणं मदोद्यम् ॥

अथमुद्यतेऽभिनवोऽपि परिपूर्णः, सकलकलोऽपि निष्कलकः, सनिश्चातोऽप्य-
मन्दानन्दप्रकाशः, कथाकाव्यबन्ध बन्धुरयनः, उपन्यासाकाश भासयन्, रसिकजनमनांसि
पश्यन्चन्द्रमहीपतिः । इतो विंशतेर्वर्षेभ्यः प्रायशः काश्चित्कला एवादोदयात्, अधुना
व्यपिलाभिस्ताभिर्मध्येगमन मोदमानो नभो ह्रिचन्द्र शरीकति ।

यद्यपि भाषान्तराणां बाह्म्यानि गद्यैरेव तुन्दितयन्ति नपूषि, स्तत्पान्येष तेषु
पद्यानि प्रचकासति । पान्तु सरस्वतीवाङ्मयस्य कवेनान्यथा । इह तु वेदाः पद्यगयाः,
पुराणानि पद्यात्मकानि, स्मृतयः पद्यगतयः, आनुवंदोऽपि पद्यैः सुवेदः, आस्तामन्यत्,
कोषोऽपि न पद्येषु निजौष । छन्दोऽनुरोनादसत्तन्वा अपि तस्मिन्नेव पद्ये
स्यैव प्रासरन् कवय इति तु मन्ये देशस्यास्य आबन्धैस्तावताया गानैकामिष्यद्भ्यस्तां
पश्यतः सरस्वतीरेव साहाय्यम् । यद्यपि “नैऋतोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः”
इतिवत्, “नैक पद्य न गद्य वा रसभावविदः कवेः” इत्यपि वक्तुं शक्यम्, अन्वसरंश्च
तमेतमाभाषकः बाणदण्डिसुबन्धुसदृशा महाकवयो निबन्ध-शुद्ध से निरवशैर्गद्यैरपि
श्रायाणि वाच्यानि, तथापि ते सन्त्यष्टुगुल्लिगणनीयाः ।

अभूनातिचिरातीतायां शताब्द्यामपि राजप्याबयोरवशीषति, नानाविधगद्यपद्य-
निबन्धवन्धनैरुपि, जेगीयमानावधानविधानावदानः, घटिकसतकोपाधि, श्रीमान-
म्बिकादत्तध्यासो नाम गद्वाकविः, यदीय ‘शिवराजविजय’ नाम गद्यकाव्यं सीष्टवेन,
सारत्येन, भाषाव्युपेत्या, विषयविरुद्धपरिपाट्या चातीव प्रशस्यते मनीषिभिः ।
पुनरयमातरति रङ्गभूमौ राजस्थानीय एव गद्वाकविः श्रीनिवासो नाम वस्तुतः

संस्वर्तनीनिवासो विद्वन्मूर्धन्यश्चन्द्रमहीपति प्रकाशयन् द्वितीयानपि महाकवीन्
सद्वितीयान् विदधत् ।

यद्यपीदं युगमस्ति तुलनात्मकसमालोचनाया, तथापि कस्यचित्त्वर्णनेन कस्यचित्
महनेन शुद्धिमेदापादनं पूर्वेणा कृतिकीर्तिविलोपनञ्च न रचिर मन्यन्ते नोरागरोपा
मनीषिणः । नैव नासस्त्रादशा अपि चाटुकारा केवलकवय कपयो ये दिनैकपर्या
प्ताहारलाभपरितुष्टा पचपप्रामाद्योऽपि 'त्वमर्कस्तव सोम' इति स्तुवन्तो वाच
विलापयानासु, परन्तु न सर्वेऽपि तादृशा, न वा सर्वे कुचरुचनयनवदनेऽस्मियन्तः ।
दैहि राष्ट्रम् समाजम्, धर्मम्, संस्कृतिञ्च समुज्जीवयितुं कृतो वाचो देव्या वरदानस्य
श्लाघ्य सदुपयोग, वस्तुतस्तु त्रिकालवन्दनीया सर्वस्य जगतः । श्लाघ्यताया अयमेव
परीक्षानिकयो यजनसेवा सर्वाभ्युदयकामना च ।

प्रस्तुतमभिनव चन्द्रमहीपतिनामधेय काव्य परीक्षमाणा सर्वथा निर्दोषमेतदा
कलमाम् । इह काश्चिद् दृष्टिकोणान् पुरस्कृत्यैव समालोचनं विदध्या, ते वेमे क्रमशः —

(१) लक्षणानुसारेण यद्यपि कथाकाव्यमिदं व्यपदेश्यु शक्यम् कादम्बर्यादिवत्
वासवदत्तादिवच्च, कल्पितनायकादिमत्त्वात्, तथैव शरम्भे बहुभिः श्लोकैर्मङ्गलादिसमाच
रणाञ्च, तथापि तत्रैवान् कथासम्बद्धानां नायकनायिकादीनां देशनगरादिपरिचय
पूर्वमेव न दीयते, अपि ॥ घटनाक्रमेणौत्सुक्यमुत्पाद्य तदनु तदुपशान्तिरुपजयते ।
संस्कृतवाङ्मये सर्वैक्यमभिनवोऽयं पथा आह्वय्यादियु नवलकथावत् हिन्द्यादिषूपन्यासवच्च
कानिदपूर्वा छटा विचक्षुरयतीति उपन्यासकाव्यमिदमिति कथनमधिकमुचितं भाति ।
कल्पितत्वेऽपीति तत्र तथान् सुदृष्टं सुसङ्गतञ्च यथा तस्य क्रमिके हृदयोपारोहे
न मनागपि श्रमानुभवः स्यात् । पाठक संकल्पुस्तर्कं हस्ते कृत्वा लालसमानसोऽप्रेऽपि
वृत्तरसमास्वादयस्तत्परिचयाय त्वरमाणश्च समाप्तिं यावत्तत्र जिह्रसति ।

(२) युवकानां युवतीनां चापि शृङ्गाराद्यभिव्यञ्जनावसरेऽपि न क्वचिदुच्छिन्नलता
नम्रता वाऽवलम्बिता, प्रत्युत "अनौचित्यादृते नान्यदसंभ्रमस्य कारणम्" इति नियमा-
नुगोपेनौचित्यरक्षणाद् रसनीयता सर्वत्रैवाव्याहता रञ्जु शक्या । ततश्च कुमारानां
श्रमारीणां युनां वृद्धानाञ्च सर्वेषां हस्ते निर्विचिकित्सं निर्विशङ्कषु दातुमर्हमिदम् ।

(३) काव्यैकप्रणयिनो रसिना यथेह समुचितेन, अलङ्कृतेन, सगुणेन, ललित

ललितेन बन्धसौष्ठवेन रसभर निगोय भोगुदति, तथैव हि वैयाकरण इदम्प्रथमतया निगुम्भितसूत्रसिद्धान्तादीनां काव्यावृत्तामनुभूय प्रवृत्तान्तःकरणं भवन्ति, नैयायिकाः स्वनयेषु मनो नयन्तो नैपशपि तदुद्दिष्टानां निनीयन्ति, साङ्ख्यः सतत्त्वानि सङ्ख्याय सर्वथैतद् विविधतापयिन्ति, वेदान्तिभोऽप्यत्रानिर्वचनीयां शान्तिमनुभवन्तो ■ नोपसौदन्ति, बालकनालिका ललन्तीलारसालसाः स्युः, नैतिद्या नीतिविज्ञा, समाजो-द्धारकाः सुदारणोपयोगीराः, सेवाहेबाकिनस्तत्प्रकारपरिचिताः, सभासमिति ससदाप्रद-रसारव्यवहारनैपुणोपनीतमनसश्च त. १८८ः स्युः, किं बहुना, वाच्यपुराणदर्शनायुर्वे-दयोतिपविज्ञानादिविविधविषयविशेषविषयविज्ञाः सर्व एव स्वस्वपरिचितविषयोचितां सामग्रीमिह सम्प्राप्य सम्प्रदीदियु । अथ एवोक्तं कविना—

वित्तो ध्यानरणेपु काव्यनिपुणः पौराणिकेष्वप्रणी-

गैष्यो दर्शनवेदिनां व्यवहृती सम्प्राप्तसम्पादकः ।

आयुर्ज्योतिरधीतिर्ना मुद्रालो विज्ञानविशो मती

राष्ट्राचारविदां वरो वरमतिः स्युःयादिदं पुस्तकम् ॥ इति ।

इदं नोदनादिगुणे नास्मिन् पुस्तके हस्तमपि दयादिति नैन निपेधे तत्पर्यमा-रुपेयम्, अपि तु किं किमत्र पुस्तके धमेण निगुम्भिकमस्तीति स एव शान्तुं शनन्तुयाद् यो ह्येतावद्योग्यतासम्पन्नः स्यात्, स्पष्टैर्दशैवि ज्ञानसामान्यार्थवाचित्वादिति सर्वं समञ्जसम् ।

(४) स्थलविशेषेण निष्ठप्रणीतप्रयुक्तया भावमाना अपि केचन शब्दा न केवलं तज्ज्ञेन कविना प्रयुक्तास्तज्ज्ञेपु गुणायैव सम्पद्यन्, प्रत्युत विरसति नवनवे ज्ञानविज्ञानप्रचारप्रदारे विरोलति चैककुटुम्बिनामिव देशदेशान्तराणां पारस्परिके विविधे प्यवशरेऽमिनवशब्दरचनायै गोवाणिशायीमुखमेव प्रेक्षन्ते सर्वे इति शब्दशस्ते व्याव-हारिकशब्दमण्डलात्मनि पूरयेयुरेव, एतादृशसंश्लेषार्थं मार्गनपि दशयेयुरेव च ।

(५) इह कविना हृद्यानि पद्यान्यपि तत्र तत्र व्यवस्थन्त प्रागुज्जन्त च, “गद्यं कवीनां निकय इह” इति परीक्षानिकषे तु तदोपानि निरवद्यानि गद्यान्वेव सर्वथा निर्मलामी रेखाभिः समष्टिक्रियानुसूयन्ति काव्यं चमत्कृतिं चेनस्यु । अस्मिन् निपेधे कविये सर्वथा साकल्यमवाप्तवानिति निर्माय निगद्यते । किं च शिशुपाल-

वधकाव्यनिर्मातृमाधवत्, शिवराजविजयादिकाव्यनिर्मातृश्रीमदम्बिकादत्तवत्, नाना-
काव्यादिनिर्मातृहरिद्विजवच्च कविरयं श्रीनिवासश्चास्त्रिप्रवरोऽपि राजस्थानीय । अनेकेषां
पावनचरित्राणां राज्ञां महाराजानामिव, पण्डितप्रह्लाडानां वैज्ञानिकधुरन्धराणामिव च
राजस्थानस्य पुण्यभूमिरेतादृशानां कविपुत्रवानामप्युर्वरा प्रसवित्रीति सदा प्रमदेरन्नेव
गुणैकपञ्चपातिनो निर्मत्सरा मामिका ।

(६) इह हि नानाशास्त्राणां मनोरमसमन्वयवत्, नवप्रभाभास्त्राणां जीवनौ
पयोगिनां समत्तानां यानादिसाधनानाम्, शास्त्रास्त्राणाम्, यन्त्राणाम्, वादानाम्, व्यव-
हाराणांश्चापि तथा नाम चेतोहारी सनिवेशोऽक्रियत, यथा नाम कवेरस्य सर्वत्र बहुसता
बहुदर्शिता च प्रस्फुट प्रतिभासते । बिरला एवैतादृशा कवयो व्युत्पन्ना विद्वांसश्च ।

(७) इह सूर्याचन्द्रमसोरदयारूमया, नक्षत्रदिनस्यावस्थापर्याया, शरद्वसन्त-
हेमन्तादीनामृतूनां प्रवृत्तयः, वनोपवनरम्यहर्म्यनदनदीसरित्समुत्पर्वतदरदादिसनिवेशानां
वर्णनानि च चेतश्चटुलयन्ति तथा सज्जीवानि सर्ति, यथा द्रष्टुं पुरस्ताद्विप्रमिवा-
ञ्जयन्ति । सङ्घट्टिरमृत्यात्मानं मुग्धो विदग्धो जनोऽलौकिके करिर्मन्थनानन्दापार-
पाराकारे चिर निमज्जयेव, यादुन्मज्जति तावत् पर कश्चनानन्दौघं पुर प्रसर्पन्नात्मनि
विलीनयति सद्दयम् । नैमानि कथञ्चिदपि श्रीयते कादम्बर्यादीनां वर्णनेभ्य इति
मुक्कम्प्यं वक्तुं शक्यते ।

तदेतदत्र पर्याप्तं निर्यूढं रसवे रसिकैः सुधुमाध्यमेनामन्दानन्दसन्बोद्धपरम्पराः
परिप्राप्य ।

(१०) सर्वतोऽप्यधिकं यदेतत्काव्यसम्बन्धे नक्तव्यं तदिदम्—“भारतीयस्यादर्श-
भूतस्य समाजस्य स्वरूपं तथात्र विद्यम्, सजीवम्, भूर्तम्, टज्ज्वल्य निबद्धमस्ति
यदितोऽन्यस्मिन् साहित्ये प्रायो दुर्लभमेव । प्राचीनार्वाचीनादर्शयोस्य समन्वयप्रचारोऽ-
भूतः सातिशयमुदाहर । श्रोत्रोनिवासव्यतिरिक्तोऽन्यः कश्चिद् विद्वानिदं कर्तुं भद्राक्षय
वेति सन्देहं तु भविष्यन्नेव कालो निराकरिष्यति । कृतिरियं कविना श्रीशास्त्रिणा
तस्ये वयस्त्वैवाकादि, येयमिदानीं दृशोगोचरतां प्राप्य सुसरस्वतीशेवैकासिकानां
सहस्रानां मनांसि सदैव मोदयिष्यति । कवित्वशक्तिरिमन्मजातेति सूच्यते ।
तानति पारुष्ये मन्ये स्वरा एव मुदिल्लभुषम्बद्धकाव्यनिर्माणे विशिष्टप्रतिमानवन्तः स्युरिति ।

यस्य समाजवादस्यादर्शरूपं चित्रितं कविना, सोऽयं रामलीनेन महात्मना
गान्धिना ‘सर्वोदय’—नाम्ना व्यपदिश्यते स्म । अस्मिन् काव्ये तु तस्य नाम ‘सर्वाभ्युदयः’
इति निर्दिश्यते कविना । सर्वाभ्युदयसन्देहस्तु “सर्वेषु—समाजस्यमनुयेण, सर्वस्मिन्—
काले, सर्वस्मै—मानवस्य, सर्वरमादुपायान्, सर्वस्य प्राणिजातस्य अस्मि—समन्तादुदयः
सर्वाभ्युदयः” इति व्युत्पत्तिं पुरस्कृत्य कविना कृतं इति संस्कृतभाषाया व्युत्पत्तिनिर्वचनादि-
विषयाऽर्थप्रतिपादनेऽद्भुतां कामतुषां शक्तिं सूचयति । कवेऽपि तत्र मर्मज्ञतामा-
निष्करोति । सर्वाभ्युदयवादस्यास्यातीव सजीवं दार्शनिकं पाण्डित्यपूर्णं विवेचनमिह
लप्यन्ते भावुकाः, अनुमतिमन्ति च दार्शनिकीमनुमृतिं स्वैरम् ।

(११) प्राचीनादर्शानां सर्वेषां होनतानुमासके, तत एव च विषमविषमयञ्जाला-
बलोविलीटदुःखौषनिगतदुःखहे निर्महेऽस्मिन्नेहसि कान्दिशीकानामितस्तत्तथ विद्वतां
आगतिदानां जीवनानां भारतीया संस्कृतिरेव समुदायादालं भविष्युः । तस्याः संस्कृतेः
प्रकाशय केवलं सस्मृतविदुषामेव कृतिसाध्यः । परन्तु—

बोद्धारो यत्सरस्रस्ताः प्रभवः स्मददूषिताः ।

अवोघोपहृताध्वान्ये जीर्णगङ्गे गुमापितम् ॥

इति विसृष्टरूपपूर्वमुदोस्तिरेव भर्तुं हरिवचसा, न जाने, कति कति यमुन्धरास्तनभूतास्ता-
दृशा विदांसः सुखैषां रचना ददितान् शास्त्रकाशमनासाय स्वाद्धेध्वेन जीर्णन्ति, न केवलं

ता एव, अपि तु तद्रचनाकर्तारोऽपि स्वाप्नेषु जीर्णा अहरहर्जीर्यन्ति च । परन्तु व्यतीत तद् वैदेशिकपरतन्त्रतापाशपारवश्यं दुस्तिठ्ठं दुर्युगम् । सम्प्रत्यभ्युदितो युगान्तरकारी स्वातन्त्र्यसूय । केन्द्रीयशासने प्रान्तीयेषु शासनेषु चानेके महामहिमशालिनो मन्त्रिणो राज्यपालाश्च, राष्ट्रसर्वस्व राष्ट्रपतिश्च निखिलभुवनैक्यानीं तागेताममभारतीं हृदयेनाभ्युदिता कामयन्ते । सा चेदियमात्मगौरवोचिते सिंहासने भूयोऽपि प्रतिष्ठाप्येत, तर्हि न द्वावीयस्तद् दिनं यत्र शान्तिसुधाधारः सर्वाभ्युदयाय सवनं निधयेन्द्रेन् । मातृभूमिगीरव सरक्षणजागरूकैः समाजनेतृभिर्विषयेऽस्मिन्सौदासीन्य विहाय जागरितव्यम् । पुरस्करणीया राष्ट्राभ्युदयायैव न, अपितु, विश्वाभ्युदयाय जाग्रत सस्कृतविद्वांसः, विशालेन सङ्घटनेन प्रकाशनीया प्राचीना सारभूता ग्रन्थाः । सर्वासां वैज्ञानिकीनां प्रवृत्तीनां चिरजीवनाया भिनवा विरचनीया शास्त्रसन्दर्भाः । भूयोऽप्यत्र चिरविलुप्त सारसत स्रोत प्रतिदिश प्रवहन् पावयेद्विखिला वधुरां वसुधराम् । अभ्युदेतु च सर्वोऽपि लोकः । ये सन्त्यधुनापि कतिपये प्राचीना विद्वांसस्तत्साहाय्यमवश्यमिहोपयोज्यम् ।

कविरपि चायं द्वित्रैः शब्दैश्चाख्यो यद् युगेनानेन परिवर्तितान् प्राचीनादर्शान् प्रतिष्ठापयितुं स्वनिर्माणकौशलेनान्यानपि समुत्साहयेत्, परस्परसहयोगेन च न केवलं भारते वप एव, अपि तु, विश्वस्मिन् भुवने भारतीयसंस्कृतेरादृशान् प्रचारयितुं नेतृत्वमालम्बतामिति । सर्वं समाजोऽप्यत्र सर्वात्मना सहयोगं विदध्यादिति च ।

काव्यमिदं हृदयेन प्रशस्य भूयोऽपीदमाश्लसे—

‘गद्य कवीनां निकषं वदति रेखोज्ज्वला तत्र च याऽद्भुताऽभूत् ।

सा श्रीनिवासस्य कवेः सदा स्यात् सर्वत्र सर्वाभ्युदयैकधात्री ॥ इति ॥

A Review

By Dr Satkari Mookerjee,
Director, Nava Nalanda Mahavihara
Nalanda (Patna)

Chandra Mahipati—a modern novel in Sanskrit by Kavirājī
Śrī Śrinivāsa Sastri, price Rs 6/ only.

Nobody could imagine that in modern times a scholar endowed with an extra ordinary poetic skill and a wonderful mastery of the Sanskrit idiom could write a novel in faultless Sanskrit in the manner of the Classics written by the novelists of Europe and India. It proves that Sanskrit is still a living language and can evolve unwanted modes of expression embodying the charming features of Banabhatta's *Kadambarī* together with the modern realistic approach. It is a *tour de force* of talent and scholarship. A Sanskrit scholar will be really surprised by the novel nuances of expression which while reminiscent of Classical beauty of the romances composed by Subandhu Banabhatta and Dandin are examples of modern realistic pictures of the current state of things. Apart from the plot the author's melodious language is sure to grip the attention of the lovers of poetry. The author has coined new expressions which faithfully and effectively represent modern ideas. Those who are steeped in the terms of the old Sanskrit Classics, whose number, however, is extremely fewer than the modern output, will be thrilled with pleasant surprise to find that the work under review makes a happy departure from the ancient style and manner without forfeiting the attractiveness of Classics. Though on several occasions the difficulties caused by unfamiliar expressions may be felt by modern students accustomed to easier expressions he will be amply recompensed by the labour undergone in mastering a rich vocabulary. In the general course of this story, the style of

the author is simple direct expressive and effective and the reader will not feel the jerks and jolts which are frequent in the celebrated classics. The work is thus remarkable for its combination of the old and the new styles.

As is the case with modern novels it contains dialogues and conversations in a style which will not allow the interest of the reader to flag or flop. Of course it is pre-supposed that the reader is possessed of a modicum of knowledge of Sanskrit in order to be able to appreciate the beauty of this achievement. I am optimistic enough to believe that in India and outside where Sanskrit is cultivated the present adventure will not fail to win the approbation of a large number of connoisseurs. This is in brief my evaluation of the author's language and style which ought to be regarded as setting up a new genre.

The author hails from Rajasthan which is noted for its multitudinous episodes of chivalry and romance. The love and admiration of the chivalry of the mediaeval knight errants has been imbibed by him from the milieu and the tradition of the Brahmanical family devoted to the cultivation of the poetry and scientific discipline of the old in which he has been nurtured. In the present day when men are accustomed to the drab commonplaces of struggle for existence the story of love adventure thrills and narrow escapes may strike a modern reader as unrealistic and romantic. But with a little imagination and sympathy the reader will get to the core of the human interest unfolded in it. It must be acknowledged that the author believes with Bernard Shaw in recent times and Mammata Bhatta of the 12th Century that the poet has a mission and a philosophy of life which he teaches for the edification of his readers. He is not purposely didactic and has skilfully shunned the boring effects which a pedagogue produces on his auditors. The author is not

slavishly chained to the ideas of the old order of kings and knights and has faith in the inherent rights of the average run of men and women to the good things and opportunities of the world. The story he has spun, underlines the transition from aristocracy and plutocracy to real democracy.

The communistic philosophy is now extending its sway over the undeveloped countries of the world. This philosophy is based on the hatred of classes and seeks to root out the inequalities in the distribution of wealth by violence. It ends in Dictatorship which ironically enough thrives on the enslavement of the mass. It seeks to conciliate the mob by providing food and drink and shelter in exchange of hard labour in factories. The author is keenly alive to the misery and degradation of poverty. He pleads for the liquidation of this debasing state of things in which a few men and women fatten on the drudgery of the mass. But his method is entirely different. In this novel, the author demonstrates the way in which this position of affairs can be radically reformed by a philosophy of love. He believes that, if persons who hold position and power are trained in the philosophy of love to develop a cultured and sensitive mentality, they will ungrudgingly share their wealth with their fellow beings. He calls it 'Sarvābhyudaya' which he prefers to 'Sarvodaya'. This philosophy of life has been preached by Mahatma Gandhi and is going to receive a concrete shape under the leadership of Binoba Bhave with his able lieutenants as Sri Jayprakash Narayan and the like.

The author has made his hero Chandra Mahipati, a king who gives up all his wealth to his subjects. The king feels supreme joy and satisfaction in denuding himself of his superfluity of the material possessions. This was the ideal of Rāmachandra and also of Mahatma Gandhi who craved for

the establishment of 'Rama Rajya' in India after the departure of the British rulers. Our present author shows that this is not an unattainable utopia. He develops his plot with consummate skill and makes the transition from monarchy and aristocracy to democracy a natural process and eventuality.

Now the monarchical state of things has come to an end in India. India has adopted the parliamentary system of Government which is in vogue in Great Britain and America. But the high officials from Governors and Ministers down to the humble officers of the state are threatening to form an order of aristocracy which tends to widen the cleavage between the rulers and the ruled. This condition can be remedied and reformed if the love of superfluous wealth is shown to end in self stultification. The horrors of poverty accentuated by foreign rule of nearly one thousand years have produced an unhealthy reaction. Our people are becoming egocentric and individualistic. It is necessary that they should learn the lesson of History that the poverty of the majority and the wealth of the minority can not go uncombated. A new philosophy of life is to be evolved in which nobody should exploit the poverty and greed of the people. If abundance cannot be secured we must all elect of our own free accord to share the privations with our fellow men and women. I trust that the work of Śrinivāsa Āstrī will prepare the ground for this consummation.

The present novel proves the truth of the maxim of Bhāmaha the ancient author of Sanskrit poetics that there is no art or science which does not contribute to the making of a poet's work. Our author is a versatile scholar. He has showed his capacity to utilize his knowledge of Panini, classics and systems of Indian philosophy in the constitution of a work of art. With suitable instructions even a beginner will be

able to appreciate the propriety and beauty of these gems constituting a mosaic of uncommon excellence.

It is encouraging to find that the persons who are placed in high positions are now realizing the necessity of preserving and fostering the cultivation of the Sanskrit language and the age old treasures of wisdom and science for the emergence of a united Indian nation. Sanskrit was the cultural language of entire India. Centuries of foreign rule have not succeeded in putting Sanskrit out of vogue. Sanskrit can still claim to be the universal language of India. It is not more difficult than English. With wise modification in pedagogy and curriculum, it can be made the official and cultural language of India as before. It is almost impossible to hope that a provincial language will become the all India language. Sanskrit can be made easy. It is only imperfection of knowledge which is responsible for imperfection of sympathy. We have had enough of lip-homage rendered to Sanskrit. It is now time to get down to brass tacks. The Sanskrit Commission has recommended the universal culture of Sanskrit in our schools and colleges. Our author has showed that Sanskrit possesses an unlimited power for evolving new words and expressions for representing the modern concepts of science, politics and law etc. No other language in India can approximate to this perfection of Sanskrit. Only if the modern universities can take courage to make Sanskrit the universal language of culture in India and give rightful encouragement and patronage to modern writers like the author of the book under review, the aspiration will attain fruition and fulfilment.

Institute of Asian African Relations
108 Raja Basanta Roy Road, Calcutta-29

Director

Dr KALIDAS NAG, M.A. (Cal), D Litt (Paris)

**Visiting Professor of Asian Civilisation, Hill foundation,
St Paul Minnesota, U.S.A**

President : Indo Middle East Association, Calcutta

Chairman Tagore Centenary Committee Calcutta

**Member : Indian Council for Cultural Relations, Ministry of
Education New Delhi**

Phone 46 4315

Dated 25 January, 1959

Kaviraj Shrinivas Shastri is not only a Vaidya for the human body but aspires to cure the mortal diseases of our Body Politic as depicted by our master Dharmashastrins like Manu and Yajnavalkya. With full faith in the efficacy of Hindu Juristic ideas, Kaviraj Kavi Shrinivasji has composed an original upanyas in Sanskrit where he shows mastery in forceful Prose and charming Poetry. The plot is worked out as in our age of transition from individual monarchical state to socialistic welfare state "Sarvodaya" as outlined by Mahatma Gandhi, the father of Indian freedom.

I offer my deep appreciation to the learned author for his literary and moral ideas which should inspire men and women of free India.

So I recommend the excellent book 'CHANDRA MAHIPATI' to the Schools and Colleges where simple Sanskrit language as the spiritual language of Bharat is being taught and cultivated. I wish the author every success.

Dr Kalidas Nag

Ex Member Raj Sabha,

Life member Viswa Bharati

Santiniketan

सुप्रसिद्धमेव सुरमारत्या कल्यान्तरस्यायि नवयौवनवैशिष्ट्यम् । आसृष्टेर्जगत्या क्रियलो
भाया समुत्पन्ना कालेनाकाले कथलिताश्च । प्राकृतमागधीशालीसाहित्यावलोकनान्निश्चयप्रच
ताया घाम्राज्यमनुपातु शक्यते परम्, “सर्वं यत्न वशादगान् स्मृतिपथ कालाय तस्मै नमः”
इति स्मृत्यैव क्षौर्यं निश्चयन्ति तद्वक्ता । परमिमा चतुर्दशविधाना चतुर्पष्टिवलानाश्च
प्रसविनी प्रतिनियेष नवनवायमानामविहृतामविकृताङ्गीमनुक्षण लोकोपकारि साहित्य
सृजन्तीमाद्या देवभाषामालोक्य कमपि नव मोदनुद्गताम् । सर्वदैवानया यथाशक्य
जगत्सेवायुक्त निरलसया निरुद्धम् । आस्तिसनास्तिकसिद्धाता, दर्शनानि, विविधा वादाश्चास्या
सन्धश्चिबद्धा इति को नाम विपश्चिन्नाङ्गीकृतात् । नान सनीयान् सशयलेशोऽपि
यद्युना सातिशय लोकप्रियतामुपेते सर्वोदये साम्यवादे च नवीनेन कविना भिषग्वर्येण
श्रीनिवासशास्त्रिणा प्रापलक्षस्त्वृतेनोपनिबद्धोऽस्तीवमनोहरश्चन्द्रमहोपतिरुपमास कादम्बरी
दशकुमारवर्तितशैलीमनुकुर्वन्तिशय प्रमोदोत्सवभावहति । कविरत्र विषयवस्तुप्रतिपादने
ऽस्तीव मफल । आधुनिके प्रचारित साम्यवादो निरीधर केवल भौतिकोऽस्तो न भा तीय-
विदुषा प्रमोदावह । पर कविनामुना शेषरो वैदिको भरतीयो मनुष्यासादिसम्मत
साम्यवाद प्रतिष्ठापित । (यत्नद् अभिमत जठर तावत् स्वर हि देहिनाम् । अधिक योऽभि-
मन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥ योऽसद्व्यस्यो धनमादस्य स पुम्भ सम्प्रयच्छति । स कृत्वा
प्लवमात्मान सारयेत्तामुभावधि) किमस्मादप्यधिकमुत्क्रामक वचो विशते माध्वसंवादेऽपि १

भारतीय साम्यवाद ईश्वर धर्म परलोकश्च सम्पद् मवान साम्यमशिरूपति प्राणिनाम् ।
सचन्द्रमहोपतेभाषणे नवमनि धासे सम्यगालोक्यन्तु विषयशुभा । भारतीयविद्यालय-
ध्वस्याप्यापन छात्राणा सरकृतिरैमुरय निरुद्धत् वैदेशिकसाम्यवादादुत्तम साम्यवाद
शिक्षयिष्यतीति मे मति । आशासे नवे कृतिरसम सम्मानमाप्स्यतीति—

प्रकाशक का नम्रनिवेदन

यह काव्य आप के हाथों में देख कर प्रसन्नता है। कलकत्ते में मुद्रण व्यय अधिक है और संस्कृतज्ञ छम्पोजिटों प्रूफरीडों की अल्पता अथवा सयुक्ताक्षरों की न्यूनता भी। मुद्रापण का यह प्रथम प्रयास था और प्रूफ शोधन एक कला है, जिससे जानकारी नहीं, अतः पुस्तक में यत्र-तत्र बहुत अशुद्धियाँ रह गई, कुछ अक्षर छूट गये तथा कुछ उलट पुलट छप गये ये सब अब द्वितीय मुद्रण में ठीक होंगे। फिर भी जिन श्रद्धास्पद मायमित्रों ने अपने व्यपृत जीवन के अमूल्यकणक्षण देकर इस कार्य को बहुत सरल बना दिया, उनके नाम हम बड़ी श्रद्धा के साथ स्मरण करते हैं—

(१) कामेश्वर औपधाल्य, नोहर (राजस्थान) के प्रधानचिकित्सक—

श्रीसत्यनारायण शास्त्री साहित्याचार्य आयुर्वेदाचार्य।

(२) श्रीकृष्णाचार्यजी मिश्र, व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य।

(३) श्रीतिलकधारीजी पाण्डेय, साहित्याचार्य, एम० ए०।

इनके अतिरिक्त श्रीहनुमत्प्रसादजी शास्त्री साहित्यायुर्वेदाचार्य, संस्कृति एवं संस्कृत के प्राण संस्कृत मासिक पत्रिका 'मञ्जूषा' के यशस्वी सम्पादक श्रीक्षितिशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने इसमें स्वतोमुख सहयोग दिया। गुप्तप्रेष के सुयोग्य परिचालक श्रीसमीरकुमार घसु एवं वहाँ के विभागीय कर्मचारियों ने भी बड़ी धीरता एवं लगन के साथ इस कार्यका सम्पादन किया।

पञ्जाब के महामान्य राज्यपाल महोदय ने अपने व्यापृतजीवन में समय निकाल इस पर प्राकटन लिखा, डा० श्रीशतकोटि मुखर्जी, कायरेक्टर, नव नाल-दा महा विहार, नाल-दा ने अग्रणी समालोचना तथा पोस्ट प्रेजुएट ट्रेनिंग से डर इन आयुर्वेद, जामनगर के सीनियर प्रोफसर, साहित्यावतार क० श्रीहनुमत्प्रसादजी शास्त्री ने संस्कृत में समालोचना लिखने की कृपा की। इन सभी महानुभावों ने अपने संस्कृत-भाषाप्रेम के कारण अपना कर्तव्य पालन किया है, धन्यवाद वा आभारप्रदर्शन से इनके कार्य की महत्ता को लघु करना सन्नत नहीं। प्रार्थना है कि सभी संस्कृतज्ञ इसी प्रकार अपना कर्तव्य पालन करें।

श्रीमदाचार्यश्रीनिवासशास्त्रिकविताकान्तविरचितः

चन्द्रमहीपतिः

स्वोपज्ञपार्वतीसमाख्यया विवृत्त्या विवृतः

—*—

कमला

प्रथमो निःश्वासः

समरमृदितदैत्याऽऽदित्यहर्षप्ररूपां

ललितयदनमालाद्विस्रवत्स्वेदयुन्दा ।

विगलदमृतविन्दोर्विभ्रतो कान्तिमिन्दो-

र्जयति विह्वलपिग्ना कापि सा भक्तिनिग्ना ॥१॥

महार्हत्तनाधितरक्ताटोसुपीतमभ्याद्भुतकृप्रकान्तेः ।

जयन्ति कुञ्जलन्नलिनायितानि प्रशान्तनेत्रान्तनिरोक्षितानि ॥२॥

कार्तस्वराभास्वरवस्त्रभासो बुवेन्द्रसम्मानपरम्परस्य ।

प्रियां निवासस्थं विदां धरस्य प्रियप्रियायाः कमलालयाभ्याः ॥३॥

प्रत्यूहपूराद्विदिषारेणवः शिरे ! शिवात्स्वत्पदपद्मारेणवः ।

जयन्ति साष्टाङ्गपत्तनुरन्दराः किरोटभामानुजुषो विक्रस्वराः ॥४॥

यनायनि यद्विभक्तिद्वैः प्राप्नोदद्वलं विनुलार्चनेन ।

दिरयाद्विपद्गमनद्गमद्गो भर्गो विनार्चामनुकूलभूतः ॥५॥

तदन्वये धन्वनि धान्यघन्ये सत्खेतडोरक्षितलाम्बिपल्लयाम् ।

निशोपवेदान्तविशुद्धबोधो हनूतरामो व्रतिना विरामः ॥१७॥

भूपालमौलिमणिशाणितपादपद्मः

सत्पात्रदत्तधनराशिविधूतपापः ।

तापप्रतप्तजगन्तो नवनोरदाभो

लेभे प्रभां विपुलबुद्धिधरो वरेण्याम् ॥१८॥

वाग्देवता मण्डलमण्डनस्थ प्रकाण्डवागद्विचगाहिनोऽस्य ।

स्वयं भवन्ती समुपस्थिताऽरं मातेव कार्यं सकलश्वकारं ॥१९॥

विवेकविद्याजलपूरपूर्णाः सत्तन्त्रमौनाश्वितचेतसोऽमो ।

सत्पूरुषाम्भोवचयैर्निपीता जयन्ति सज्ज्ञानपयोनिधानाः ॥२०॥

इन्द्रो यथा कश्यपतेजसोऽजनि स नारदोऽप्यात्मभुवो यथाऽजनि ।

तथाऽजनि श्रीमदमन्दमोदकः श्रीभानुरामो महसा निभिस्ततः ॥२१॥

१ जयपुरराज्याधीनखेतडोरक्ष्यान्तर्गतलाम्बीवासिनो हनूतरामस्य शिष्यो निकटस्थ-
पंचेरीग्रामाधिपः क्षत्रियो नरहरयापराधे आश्रमकारत्वात् प्राप । तद्वन्धुभिरानम्य हनू-
तरामो निवेदितः । एतैरुक्तं मोक्षते भगवतीप्रसादात् । ततस्तैश्चण्ड्याः पाठ आरब्धः ।
आपत्तह नोत्सुर्न जघ्र्णं योवुः, किमहुना आसनपरिवर्तनमपि न चक्षुः । यस्मिंश्चोर्ण-
तृणोटजे देवीमस्तौतददृष्टमादरित्यं भेजे । तदैव पंचेरीतो एव आगल उपराजमातु
एतास्मिन्नाय । तत्र किञ्चकारविहमुखाब्जातं यदह केनापि महसा जयपुरकारातो
निर्धार्य क्षमामसीम्नि निगडमोचं पातितः, इति । तामिरवन्ताभिरुक्तं याच्यतां
यद्येष्टम् । परन्तैर्न्यायिभिः, केवलं पंचेरीवासिभिर्प्राणां विवाहकस्मोचनाय न्यवेदि ।
तामिथ प्रतिज्ञातम् । श्रूयते तद्दुर्गेऽन्तःपुरे दृढभावात्तेश निष्कृतचिह्नं मितिलग्रं
दृष्ट्वान्तःपुरस्था आदन्नः । मुपासितोऽपि सौधे तत्स्थानमल्लिप्तमेवात्त । अथादशशताब्द्या
नवतितमे वर्षे पृत्तमदः । एवमिष्यः शतशतमहृतयस्तेषां भीयन्ते । पञ्चोत्तरैकोन-
विंशतिशततमेऽन्दे ते देहं तत्पञ्च ।

पार्श्वस्थपौरत्रजपूजितो यो रेजे दधच्चन्दनपुष्पमालाः ।
 माहेश्वरध्यानपरायणस्य यस्यास्त हस्तामलकं त्रिलोकी ॥२२॥
 भवन्ति सत्यामृतवर्षिणो भवे रहोजुपस्तथ्यपुपो विपश्चितः ।
 क तादृशाः संसरणस्वभावके भवन्ति चेत्ते विरला वनौकसः ॥२३॥
 ततोऽभवत् पण्डितमण्डनाग्रथः कुशामनुद्धिः ध्रुतपारदृशवा ।
 सन्तुष्टिदारः श्रितशास्त्रसारो विद्याधनो नान्यकरामसब्धः ॥२४॥
 धैर्यं धरा तेजसि चित्रभानुं क्रोधे यमं वाचि गुरुं सुराणाम् ।
 जित्वाऽमृताग्निप्रतिभाप्रसन्नरत्नैर्ऽर्चयामास सुरान् मुलं यः ॥२५॥
 तस्मात् सुपुत्रो निपुणावभूता मन्दारकल्पाववनौ द्विजानाम् ।
 ज्येष्ठो बुधेन्द्रो नवरङ्गरायः पत्यन्तरोऽन्यो गणरायनामा ॥२६॥
 ज्येष्ठो वरिष्ठैरथ जुष्टनिष्ठैः पट्शास्त्रवार्धैरथगाहवित्तैः ।
 संसेव्यमानः कृतिभिः समास्तेऽसौ पण्डितेन्द्रो नवरङ्गरायः ॥२७॥
 यत्पाठिताश्छात्रमर्चिका अलं प्रकाण्डसत्त्वाः प्रथिता मनीषिषु ।
 अर्घीतविद्याः प्रतिवादिभीषणाश्चरन्ति चर्याचकित्तीकृताचलाः ॥२८॥
 तपःसुपुष्पा शुचिकीर्तिवल्लरी पट्शास्त्रसौगन्ध्यवती क्षमाफला ।
 आशामु येषां विततातिशोभना द्वात्रालिसङ्गीतगुणा क्षरद्वसा ॥२९॥
 अयातयामागमदीप्तकान्तेः शान्तात्मनस्तोषधनस्य यस्य ।
 कात्यायनीकान्तकृपाकटाक्षैर्हर्मयुतेः पञ्च सुताः स्तुताः स्मः ॥३०॥
 ज्येष्ठश्च वादीन्द्रवितीर्णमुद्रात् प्रशस्तशास्त्रौघबृहत्समुद्रात् ।
 अमूद् बुधः केशरनामिकाया विद्वद्विनेयः कर्णात्मिकायाम् ॥३१॥
 वालोऽल्पदर्शी श्रुतविद्युतेभ्यः शब्दागमे प्राप्य मनाक् प्रवेशम् ।
 अहानरुद्धेन्द्रियचापलोऽयं स श्रीनिवासो विदुषा विधेयः ॥३२॥

येनायमद्वा सुकुमारसंविदा मच्चिद्रनानन्दमभीप्सता सुवि ।

अनष्टमोहायिलया विमुग्धया धिया विनोदाय युवां निबध्यते ॥३३॥

— : ० : —

कथारम्भः

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसो जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इष्योऽ-
तिथ्याधी महारथो जायतां दोष्त्रो धेनुर्वैडानह्वानाशुः सतिः पुरन्त्रि-
र्योषा जिष्णू रघेष्ठाः । सभेयो युवास्य यजमानस्य बीरो जायता
निकामेनिकामे नः पर्जन्यो वर्पेतु फलनस्यो न ओपयः पच्यन्तां
योगश्रेमो नः कल्पताम् ॥ सु० य० वे० अ० २२।२२ ।

अपमार्थो राष्ट्रियः सर्वाभ्युत्थभावः । हे ब्रह्मन् । राष्ट्रे ब्राह्मणः=विप्रः (मय्य
अर्थात् वेद वा) ब्रह्मवर्चसो=ज्ञानप्रकाशित आश्रयज्ञम्=सम्यक् प्रकारेण भवतु ।
राजन्यः=क्षत्रियः, शूरः=पराक्रमी, इष्यः=इष्टप्रयोगकुशलः, अनिव्याधी=अतिक्रान्तं
धर्मशत्रून् वा विध्यति सः, महारथः=योद्धा. आश्रयताम् । ब्राह्मणो ज्ञानप्रधानः
क्षत्रियश्च कर्मप्रधानः । तयोः सम्यग्योगाद्देव राष्ट्रस्थोन्नतिः, परिवारस्य दम्प्योरिव ।
वैश्यशूद्रयोः सेवकयोः पूर्वद्वयप्रेतितत्वेन न पृथक्निर्देशः । धेनुर्दौष्टी, अनः=शकटं
वदति सोऽनृशान् बोटा=वहनश्रमः, सतिः=अधः, आशु=शीघ्रगमो जायता-
मिति सर्वत्रान्वयः । सर्वे पदावोऽपि स्वस्वकर्मणि नैपुण्यभाजः स्युः । अत एवैष
सर्वाभ्युदयः । योषा=स्त्री, पुरन्त्रिः=परिवारफलनवृद्धता स्यात् । अयं यजमानस्य=
देशानां युवांदोतां सत्कर्तुः सञ्जिगमिपोर्दमनीत्यस्य च युवा बीरो जिष्णुः=विजयी,
रघेष्ठा=योद्धा, सभेयः=सर्वपटनशीलो जायताम् । नः=अस्माकं राष्ट्रे पर्जन्यः=
मेघः, निकामेनिकामे=आ परितोपवर्षेतु । ओपयः=ओपयः फलपाचयन्ताः, अनेन
संप्रदानभक्षामनि ग्रहणम् । फलवत्य=ग्रहस्तत्फलनुष्णः (प्राप्तस्त्ये भवतु) पच्यन्ताम्=
पराः स्युः, वेहे क्षेत्रे च । नः=अस्माकं योगः=अष्टाष्टमी योगः, सनरक्षणं
क्षेमः, कल्पताम् ।

विकलयति कलाकुशलं हसति शुचिं पण्डितं विडम्बयति ।

अधरयति धीरपुरुषं शणेन मकरध्वजो देव ॥ त्रिविक्रमभट्ट ।

स्वस्वव्यापृतिमग्रमानसतया मत्तो निवृत्ते जने

चञ्चूकोटिविपाटिताररपुटो यास्याम्यह पञ्चरात् ।

एव कीरधरे मनोरथमयं पीयूषमास्थोदय-

त्यन्त सम्प्रविशेश चारणकराकार फणिग्रामणी ॥ पण्डितराजजगन्नाथ ।

“प्रवर्णयौता इव साभा ककुभो व्यपगतरजस कलाजुष प्रासादा प्रसादपत्रप्रभा
पादपा कृष्णोज्ज्वला वरमीक प्रविशिक्षव सपा इव सरग विदूरगामिनो लोकपथा
श्वाद्य मन प्रसादयन्ति देव ।। प्रियदिदक्षाहर्षवियुतविवेका बहो कालादियुक्तेषु सङ्गन्तुमुत्तरा
वक्रगत्या मार्गलाघव रक्षयन्तो, अष्टशैलिं कुर्वती सायन्तन्या सौरीप्रभया रक्ताम्बराङ्गतेषु
नवयौवनोल्लसिता वप्रमिव विधित्सती तुङ्गोर्मिभिः, स्वयमुल्लासवाद्य बादयन्ती सुधा
मधुरैः कलकलैरानन्दमेधयमाना उत्छलत्तरङ्गैरवगुण्ठनमपनीय प्रियप्राप्तिमिव प्रेक्षमाणो
जतप्रीवा मविरेक्षणा परिणतयौवना नदी मानिनीष रूपगविता दुरेऽक्षिपथाल्लताऽन्तर्हिता ।
यत्र जनसाङ्घिष्ये तस्या महर्धय वीक्ष्येव मूढा उमत्ता इवासङ्गता द्विना वरु प्रेक्ष्यते
पादपा ध्यानमग्नेव क्षाता धरित्री च । चलत्तरङ्गभङ्गाया पीतभङ्गाया इव घूर्णमानाया
नद्यालट उत्फुल्लमलामोदऽमलवारिणि हारिणि कृत्रिमेऽवकोकिले सरसि मृदुमृणालिनी
मुकुलशय्याशायिभिः प्रजोपवननिकुञ्जशोभिनी मद्या मुक्ता इदानीं व्यद्या शनैश्शनैः पृथ्यन्ते ।
येषु महाह्वाससामाकर्षिका विकसितरिमिता आकृतय कमलासनस्य कौशल प्रकाशयन्ति ।
केचन वार्त्तामित्रा भग्नप्रेमाण उदधव परस्परावद्धैकैकवाहूनि यौवनममुमधुराणि सेष्य वीक्ष्य
युगलानि विशता विलोक्यते, परे चाभिनवप्रेयसीप्रेमपतिता अवैधप्रम्णा प्रहृष्टमाकृष्टा
प्रचण्डवासनावातोद्धतबुद्धयो वविर वा महम्मोहाद्या । केचन पञ्चशपनपुटकेषु
दध्यम्बवेशवारोपस्कृतान् बटकान् पीताशकररसान् रसगुल्माद्य प्रसादविकसिते प्रेयसीमुख
ददतो भक्षयन्ति परे च पुटपात प्रतीक्षमाणा मनोर्माणवका पतनसमकालमेव ताल्लिहन्ति ।

इतथ नरा अप्यथायिता वदन्ति नारीनरांश्च स्वसमान् । कीदृशो व्यामोहः । कीदृश-
पम्यम् ! यद् दृष्ट्वा मनः स्थिरते ।

केचन विद्यालयमगमये विमुन्य काव्यरसमनास्त्राय वारगीमका दोलालोलां लक्ष्मीं
निबन्धं द्यूतव्याप्तका धनयागतरस्मयान्तराष्ट्रयो रूपयौवनममृदा अविवेकाश्रयचित्र-
गावनिना वित्तभूचित्तमृमत्ता मोदोन्मादिनो चरन्तो मयनट्टीनामनालां पुण्यमालां वक्षसि
अयन्त आनासिकं पापशूढे निमज्जन्तः प्रेक्षन्ते पितृपितामहाजितघवा निरुज्ज्वासविता
पुतसायुताः साधिनसाविता पौवनचिन्तामपि काचनूत्येन विकीणाना निद्रागस्तृष्यपम्य-
प्याद्रिद्रुता वासनायसिनो विनृप्या युवानः इतथैकान्तप्रियाः प्रियविद्या भविष्यजीवन-
वनध्वान्तविदिष्यसिधवा नवनीलनोरदरुबिरेऽरुद्वृत्तिद्वै दृष्टचटये शास्त्राण्यभ्यस्यमाताश्च ।
इतथ कञ्चुकोशाकलनभटवः पञ्चकोटरपट्टपनास्यन्कशिद्यवो गुरवेऽर्पयन्ति यामाबिन
मिक्षामिव चिन्बच्चोरबिकीर्षित्यानि शिष्यमाणाश्च । इतथ पश्चिमाशाभरगघ्नंश
प्रपीतमाणाः प्रवयवो वदनवलीका अपि मसृगारकशितवचूपनेन तिरोहितवलीकाश्चन्दन-
वन्दितवदनधिया यद्मज्जरेन्दुं जिगीषव इव पलितकलितकेदयोऽपि कृणान (निमाव)
कृणकेदयस्त्युनदन्तोऽपि कलितइन्तो व्यपेतविवया लीलदयः कान्ताकारकेशकीर्ण-
शुन्ददुमुमा वलवितत्याले यस्मिन्ने फुल्लशितमुनसत्रः परिमलगन्धवहान्नीरुतकामुका
निर्भूतशोपिन्नोत्थयोः कथामयीः कौल्यो रागम्, चाहयछोरवयलपरयोः प्रभागर-
मुन्दिलशोणयोल्लमदारयोः कञ्चलस्य सूत्रां रेखायायोन्यापकृतनवपुक्तयः सर्वदोस्तुल्ला
क्ता इव प्रसन्नप्रमा यौवनजलविहिता नोरासा अपि स्मररससरसिम्भन्याः कमलमुगल-
सूदकोमली कुचौ लोचनूनां परिप्लयेव सनुयाय मनोभवभूरतेः पटुद्वयो व कञ्चुकिकरा
कुल्लिगकर्क्षती प्रन्वाययन्तोऽविच्छिन्नामृतविन्दूनिव वर्यन्त्यः प्रियेषु, नारीलोकस्य सप्तम्य
दुरदुग्धना इदानीन्तननारीसमावश्य मार्गशिक्षा हिताहितविषादविहितदुदयोऽनार्य-
पुत्र्येशचिरालगताः चिश्तिरतरेऽपि सरणि समीरे तटिल्लेम्भामेनेपद्मव्याधूयमानेनाम्बरं
दिगम्बरा इव साम्बरा अपि, साम्बरीमिश्रप्रिया मायां नन्दामनस्य मायाः पवना-
पर्नतरिमलमुभिन्नमहाकाः निवन्त्य युवकदृष्टाष्टेयचतुरा युवकबिलोकनादुल्लिखेतसो
युवकचिरसारा भ्रूधानुसङ्गुधितङ्गा म्वैर रनयनानाः कमलकलितचित्तमनसतयो
जननां मनांसि नीवि वा विरेकं कमनोवधरेण्यं होतकल्लेलेलेल्लैभेरकन्याः शृंगम्याः

प्रियप्रेमोद्रेकरखलितैर्ललितलीलाविलसितैर्मदमरसिधिलन्यस्तैरखर्वविचारपर्वतेष्विव साभि-
 प्रायं स्खलन्त्यश्चलन्त्यो विषयाम्रवन्निदाहं दह्यमाना इवानुद्देश्या अभ्यनूतवेगं व्रजन्त्य-
 कामिन्यः, चण्डदञ्चितवासोमिरानरुशिरां खजटितैरलङ्कारैश्चालङ्कृतास्तम्यामनभ्र-
 योतमाना विद्युत् इव सम्पन्नमणं वर्धमरुत्प्रादवतीर्यानिधियतचक्षुर्यास्तुर्यामिवावस्थां भजमाना
 धनानन्देन साशङ्कमितस्ततो वीक्ष्य 'एकं घनं द्वितीयं नास्तौ'तीव निश्चित्य दधिमृष्टान् वट्टान्
 श्रीत्वा युगपदेव निजिगलियया व्यात्तमुख्यो नि सगस्त्वक्षेत्रा एकाकिन्यो धनिन्यश्च या
 वीक्ष्य मनरत्नस्यति । इतश्च श्यामदूर्ध्वं कुचमादिनः शिशवः, यान् वीक्ष्य मानसं हृष्यति ।
 इतश्चोद्यानकोणे प्रारब्ध राजनीतिविफलानां वरकार्यविघटनपटूनां कटूनां गर्जितवधिरितदिशां
 परोक्षतिक्रियामात्रेण शिरःशूलिनामभ्यस्ताक्षस्त्वयानामप्यल्पज्ञानोद्भूतप्रतिभाभिमानानां
 परदोषदिव्यदिशिनां पूर्वप्राप्तिदानां लोकप्रियव्रजाणानां वाचालानां वारजालम्, वृत्तवित्तानां
 वृत्तपत्रप्रतिनिधीनां गुप्तचराणां सङ्केतलेखनञ्च । अपरस्मिंश्च भवभयविधाताय क्षिप्तां
 शक्तां सुप्तां क्षुप्तां लुण्ठितां मानवतां पुनः प्रविचारयिपूर्णां विगतायासखलेशानां शास्त्राभ्यासे
 गमितवयसां लोककल्याणैकमनसां पापापनोदनपटीयसां तमश्छन्नं जीवनपथं प्रकाशयसां
 दुःकृतबहिःकृतानां गुणगाराणां काव्योरुमेरुणां पुराणप्रवीणानां नन्दनीमवन्दनीयकर्मणां
 प्रसादमधुराणां वीतसारमपि ससारं ससारं सम्पादयतामिदबोधानां सतां विदुषां प्रवचनम् ।
 यत्र द्वित्रा एषद्विधा बिलोक्यन्ते वार्चयमाः । एते भ्रान्ताः समाजेन सावमानं
 सगलप्रहणमवकरणैर्निक्षिप्ता अपि समाजस्य भूत्यै विशिषिल परिकरं बन्द्यमुद्युज्जाना
 प्रतीयन्त एव निक्षिप्तचेतसो मुग्धाः । यान् वीक्ष्य चक्षुः स्फुर्यते ।

इतश्चाल्पवयसोऽनङ्कुरितकूर्चका उत्पुल्लामलकोमलोत्पलमुखा मुग्धरिमताः शिशवः
 उपानत्परिष्करणे दाक्ष्यम्, केचन स्तूपफलीनामङ्कुरितानां मुद्गमकुष्ठानां प्रशसा समुद्-
 धोपयन्तो लक्षणागल्लिप्तानां मृष्टस्निन्नचणकानां बल्यतामुष्णताद्योपदिशन्तः शार्करजम्बीर-
 चूपिका विक्रीणानां उदरमत्सिता विस्रोद्योगं जीवनस्य श्रेष्ठमिष्टमिष्टि मिष्टि विद्वानुं
 बाधिता भ्रमन्ति, यान् वीक्ष्य मनः क्लाम्यति ।

इतश्च विश्वम्भरस्य विश्वभरणप्रतिष्ठामिवाह्वयमाना बहुशुभाभक्षिता बलिना कलिना कवलित
 धर्मण पुण्यभूमेर्भारतस्यासाधारणमहिमानस्तपोधामानो मुनयः ॥ शुद्धाः प्रगल्भपदवदविकारा
 नीरजसोऽपि रथ्याखोबूसरिता प्रवृत्तिप्रत्ययोपेता अभ्यपदाः पुमांसः, अनन्यधुण्णधीका

अपि धुत्तरीणश्रीकाः पतिपरायणाः पापाणाञ्चान्ता दूर्वा इव पीता महिलाः, धुभ्यस्तोणीश्रयिणः
 धुन्शमाः शया इव शिशवश्च, आयासस्तोत्पादितविपुलश्लेघसम्पदः समस्तमस्तकमप्यु-
 चिता अपि शताब्दीभ्यः समाजानुमतिप्राप्तैश्चोरैरस्तप्रणतकहणैररुणाक्षैः परपरिताम्न-
 व्रुत्तुकिमिष्टकट्कालभूटवृटिलैराजीमनाभ्यस्तपापटलप्रतिष्ठितैः कर्कशीमतीयामप्रमार्चः
 सर्वत्रयिलोमलुष्टितमतिभिः परिपूर्णमोगामोगरिममिर्भोगिभिः सर्पप्रासिभिर्वाधुः पित्रै-
 निष्पयोजनं लुष्टितसर्वस्वाः कृषाकणिकाग्रन्येन मीनमग्नेन समाजेनानिरावृततापविपदः,
 जिजीविषया, उपद्रवद्वान्मृतवोर्मुखाभिवियासया सन्तापशमनैरुमेपजं प्ररान्भयभजनं
 गृन्धुञ्जयमिव नगरं मत्वाऽऽश्रिता लोकपयपार्थानकुल्यन्तौ घर्षयन्तश्च प्रयत्नद्वहन्नेषां
 मृतिमनाप्नुवन्तः स्वेदस्यन्दिनः पिन्नास्तुम्बा दीना दूताः प्रतिनिमेषं विषवद्भ्रमानवुःखा
 षट्प्रज्वलनज्वालोत्प्लाः प्रभागितरुम्पितदृष्टा एकतानकातरदृष्टा वीक्षमाणाः सरुहणामभि-
 ष्यन्ति, अस्तहायां विह्वलतां निष्कपटां भक्षिष्य प्रवाहयाना अवभ्यस्तयाचनवचनैः सहैव
 निःसरप्राणा अल्पप्राणाः प्रेक्षयन्ते ग्रामीणाः, यान् वीक्ष्य मनो ग्राम्यति ।

इत्थायेंपण्या दारण्यं विहाय राजधानीगुपेता वैफल्यविह्वलाः परिभ्रमणभ्रान्ताः
 कर्मज्ञान्ताः कर्तव्ये चान्ता मल्लुलिता भावयन्त्याः धमःप्रमाणोदनाय सरितः स्लक्ष्णशीत-
 शिन्वाणुविद्वान्तो युरानः, यान् वीक्ष्य मानसं श्लिचति । देव । बृहच्छोको लोकः ।”

“नियतिः केन नियन्तुं शक्यते देवि ! कर्मणां विधिविराजो हीदृशः । बलवान्
 विधिरयं स्वेच्छयाऽऽप्लमूलश्रीकास्तुच्छयन् भ्रमस्वर्षण् प्रपूरयन्, विदुषो विदम्ययन्,
 धुमशन् विरिचन्, उन्नयन् पक्षयन् आनुत्तयन् सुखयन् क्रीडति, नाम कश्चन परिवर्तने
 प्रभुः । घावनेन वेद्माम्योदयस्तदाद्यः धा या सर्वाधिकमुदिशात् । परं किं कियच्चाचक्ष्महे
 साम्प्रतिकजीवजगतः । नैतादृशेषु निपत्येषु तवोनितो विचारः । अस्तु, अपि स्यात्स्थ-
 मनुमति भवती व्यपगता चोदरवेदता ?”

“आम्, आर्यपुत्र ! सम्यक् सास्थ्यमनुभवामि ।”

“कस्ते विचारो नवेन्दुना सम्यग्वाय ?”

“मन्ये शाल्ये शयनासनाहारविहायन् क्रीडाक्रीतुकं बन्धुन्वध्यवस्थया भायिविधानम
 मयन् व्यधिन, तदा कल्प्यैव नामीद् यन् सोऽकल्प्यमहत्त्वं राज्यं समधिगमिष्यति । धिन्नु
 धम्प्रति समधिगतमातुलराज्यस्य तस्य यौवनेष्टमलप्रदमिनवप्रभं नवं वयः, प्रजुषलेन

यशसा सहैवासादिता न्यक्कृतामरथोः श्रीः, जनसङ्कुलं कुलम्, अवहृदपरपदक्रमो विक्रमः, अपुण्यजनदुर्लभा लब्धरूपते राज्ञः पुत्री पत्नी, प्रचुरवमुर्वसुन्धरा, लोकोत्तरचमत्कृतिर्मतिः, जितपुण्डरीकाखवेगर्वं जगद्वितानीभवद्भुव्यं यशः—इति महामहिमा महाकर्मा नवेन्दुवर्मा स्वभावपरवशो वृत्तमिदमुपहृत्सास्पदं विमृशेच्चेत् ?”

“अये ! बालविहसितवत् सरलः, मुक्कविगणितवत् सरसः कान्ताकटाक्ष इव मनोहरो हास्याभिमुप्यो गवंबर्धरेणादूषितः शैशवत एवाभिनवविलासोक्तिचमत्कृतः श्रीमतः स्वभावः ।”

“श्रीमते यथा रोचते तद्विधेयम् । धात्रीनिर्विशेषाणां गृहविहारिणीनां रमणीनामत्र कः परामर्शः । सन्ततिसंस्काराणां प्रायशः पितैव प्रभुः ।”

“अस्तु, प्रसवानन्तरं वयमुज्जयिनीं यास्यामः । यत्र भगवत्सा हरसिद्धया अर्चना भविष्यति जातस्य चौरसंस्कारश्च ।”

“देव ! केयमुज्जयिनी ? अपि देवो गतर्षोस्तत्र ?”

“उज्जयिनी मालवदेशस्य राजधानी । रम्योऽसौ प्रदेशः स्वास्थ्यप्रदश्च । भवती तत्र प्रचुरं मनोविनोदं सुदृढञ्च स्वास्थ्यमधिगमिष्यतीति मामकोनो विश्वासः । के नाम न परिचिन्वन्ति तमःस्पृशो जगद्बलयमपजिह्वोर्भगवतो महाकालस्याधिवासभूमिम्, संच्छति-रुपातमःहातन्याया भगवत्या हरसिद्धया विहारवाटिकां, धाराधरेशपरमप्रेमपूजितपादपद्मस्य भामिनीभरत्सनाभस्मितमौख्यस्य विश्वविख्यातवैदुष्यस्य कविप्रवरकालिदासस्याराध्यस्याः कालिकायाः क्रीडास्थलीम्, विश्वविश्रुतविद्यावैभवां धन्यनामधेयामुज्जयिनीम् । के चाप-परिचिता आदित्याङ्गस्य दीनदुःखदहनपटोः सवत्सरप्रवर्त्तयितुर्बोरविक्रमस्य प्रातरारुह्येयन नाम्ना । प्रमाहितव्रतिनं यं प्रातः स्मरन्तो धन्यास्तपस्विनः । यस्मिंश्च राजराजे महीं शासन्ति निरागसामविदग्धमुग्धानां शिशूनां वक्षो रक्षःशयै राजपुरुषैः पर्यं परशुभिर्न मिथते स्म, स्पष्टं प्रवृत्तां वक्त्रं चेन्नैव मज्ज्यते स्म । सत्यस्य धर्मवीतेथ हि सा नासीत् । कुलाजनानां शीलं राजपथेऽधिकारमदर्शनं धिक्क्रियते स्म । कारागाराणि जनसेवकाणां कुलेन नाकुलान्यासन् । मयैः प्रमदामिश्च न्याया न विक्रीयन्ते स्म । प्रतिदिनं वृभुश-राक्षसीभक्षितानां परमहृष्टाणां यूनां शिखलाश्च शवैर्गङ्गास्रोतसि सेतुर्न निर्मीयते स्म ।

मुष्टिमानमकुशाय शुद्धव्याकुलेन कुलीनेन आत्मा निरन्तनिःशेषदोषा तदुभौ भगिनी व्यभि-
चारिणु न विकीर्यते स्म । बुभुज्या कृतां शिशूनां कृष्णकन्दनेन मातृणां वधः शिशुभिः
सममेव न विदीर्यते स्म । योजनदीर्घेषु राजमणेषु शुषारोपितानां शवानां गगनचुम्बिनः
कङ्कालकूटा नैक्ष्यन्ते स्म । अविद्यारणवितानां यानानि क्षुत्पीडितांश्चित्स्थितो बध्
गन्तव्यासमयान् मुखेषु तृणमावाप सट्केतैरेव प्राणभिरां भिरुमाणां म्रियमाणान्
सम्मर्त्य तेषामभ्यिकङ्कालं सन्क्षुष्य शिशूनां द्वित्रान् घोषितपृष्ठांश्च पयि प्रसार्य शुष्कान्नाणि
श्वभ्यो विकीर्य पवित्रभारतरक्षेनानिच्छन्तोमपि भगवतीं मेदिनीं मेदस्त्रिनीं विधाय च न
अमन्ति स्म । देशमक्षानां गलपाशोपितपतयो युवतयो निरवलम्बा नासन् । येन च
विध्वजिता राजपेन सनाथासीन् सरस्वती मही भारतं वर्षेणव१”

“आर्यपुत्र ! विरम्यताम्, नाहमविकं धोतुं समर्था । वैदेशिकशासने परतन्त्राः
परिणोऽपि दुःखिताः, का कथा ज्ञानविज्ञानसम्पन्नानां मानवानाम् ।”

“अहमप्येकदा परममित्रेण नवेन्दुना सादं तत्र समग्रामैतिहासिकसामग्री
मद्राशम् । सोऽयमेव नवेन्दुरस्य धर्मपत्नी ऐपनी भाद्रे शुक्लदशम्यां पुत्राशं
प्रासुत् ।”

एकस्मिन् मृदुलनूले सरलमये स्त्रितोपर्यङ्गे पृष्ठेन स्मृतान्तो गर्भमरसालसाऽऽयालद्वरणा
सुन्दरी, त्रितचामीकरोत्पलसौन्दर्येण केशपाशकारागतेन चन्द्रेणैव मुग्धेन स्मितामृतेः प्रसाद-
यन्ती प्रामादम्, प्रोवश परिमवन्ती ह्लादव्यरत्नकरोद्भूतस्त्रुम्, धनद्वामरणकास्मीरनिलका
निशातनिर्यापिनीलनीरजनिर्विशेषनेत्रा स्मिते क्विबिदुद्रताम्बा कनोलाभ्यां निवासित-
कास्मोरशेषा, अट्टिष्वनुप्रेष्टिसमुत्सारितछाया, हारगुलिकावदातदन्तरधृतयाऽञ्जल-
परस्मिन्ना सौन्दर्यसमुद्रजेनेव विद्रुमावरेण, रिक्तगुल्फाद्विषाग्न्यमानतद्वधरजिनचरणा,
सर्गात्मसूनुपुष्पलतास्तारकरीतां रत्नां शायीं दधाना सुधमेव तन्मुच्छ्रावीरं प्राप्तादाट्टं
प्रकटायन्ती स्थितान्ति विध्वज्युर्गन्त्या कापि धन्या ।

पुण्य वेप्रायन्दीमासीनधन्दनगौरः पुण्डरीकनयन सुन्दरवर्णलवङ्गो विस्तृतभालो
वसना भारद्दिमः सविष्ट इव बभारसो गौरवविभूता गौरशोभिना वृण्णभ्रुवा, हस्ति-
हस्तानपदेन विपुलोपतनोरसा परिधर्षाभ्यां मांसलाभ्यां भुजाम्बुज विरहितमलवदिप्रदो

विमलपुरसृष्टिपरमेष्ठो रामपाल पूर्णलालवक्त्रकेशरमृगमदपरिमलं नागवल्लीदलं दल्यन्
तर्पयँश्च प्रासादमध्य सुग घण्टलै राश्या गर्भभस्वलेशमपनयते वार्तान् देन ।

*

*

*

पौषो मास । शैत्यजडितवर्षवृक्षाणामलक्ष्यविपक्ष पक्षोऽयं शुक्ल । तिथिश्च
तृतीया । सर्वत शीतस्य साम्राज्यम् । प्राणिनो जडेन जडेन साक पापानीभूता ।
शीतभयाद्विभावसुरपि सङ्कोचितज्वालमाल आत्मीयाङ्गानीवाङ्गाराणि भस्मचयनीशारेण
सद्य एवाच्छादयति । परमानोऽपि सत्वरसत्वर व्रजन् विदूरगिरिगुह्यासु विरिरसुरिव
'माऽस्मान् सततप्रणयिनो विहाय प्रवाप्सी' इति सकोलाहल व्याजिहीर्षु शङ्कुनिकुल
भर्त्सयन्निब निवारयन्निब लोललताप्रै वीति । शीतभयभीता विद्रुता दिशोऽपि दूरीभूता ।
आकाशमपि शीतशितशरीरमिव शून्यता बिभर्ति । किमपि कर्म कर्तुं शीतसहते मानसम् ।
इहैवपि प्रावरणपृथग्भूतमग्नं विनश्यदिव । प्रतिमाति ।

अथ लोकघटीप्रतिनिधौ चक्षुष्यौ चक्षुलवृद्धे ताम्रचङ्गे तारमधुर शब्दायमाने
सरोजिनीशरीरसद्वरणस्फुटागसि हेमन्ते तरङ्गहस्तैर्व्यञ्जितक्रोध इव प्रतीयमाने पद्माकटे
साधनासमये हेमन्तेन भक्षितपत्रपुष्पफलेष्विव कण्डशेषेषु पय वृक्षप्रकम्पनप्रेरितेषु परस्पर
शाखासङ्घर्षणन खटखटशब्दैर्देहानिव घट्टयत्सु वृक्षेषूपविश्यास्तपध्वरन्तो योगिन ईधर
साक्षात्कारमिव दिनेध्वरसाक्षात्कार प्रतीक्षन्ते पक्षिण ।

गोजाविक म्लानम् शुद्धीगुहाभस्मचयसुप्तं ध्वा ताडितोऽपि नोत्पन्ति । वराका
खाजानि स्वस्मिन्निद्रोतुमिच्छन्त कच्छपवत् सकुचन्ति । अथ कमठक्रोडकारो
सुकै सुमन सौरभप्रातैर्भृङ्गैर्गीयमानगुणो मृणालिनीविलासोल्लासवाही विरहविधर
कोकवधूव ध्रुवधुदिग्मण्डलीमणिमुकुटमण्डनहीर उत्फुत्पद्यिनीप्रतिबिम्बेनेव लोहितो
हित शीतार्त्तार्त्ता निर्धूमो भास्वशमोकाष्टाङ्ग इवामितसामिरायसीभि कशामिरिवा
रुणाभि सत्वरमिवरीमिमरीविमिविदीर्णदिव्धा तीक्ष्ण, उदयधराधरमूर्धमणिनभि
नन्दनाकाञ्च फलानपेक्ष सेवाव्रती शीतल्लेशितो भीतधिर सुप्त इतीवायामिनीम्
शीतार्त्ता विपन्नपतिका पतिप्रता सुब्बमुब्बायमानामग्रमिरिव तुहिनकणै क्लिन्ता
भ्रातृजायामिव हेमनी यामिनी नियम्य विश्व प्ररयितुं प्राविशत्सेवाङ्गनम् । सूर्यस्य रम्या
किरणवती "सता सुखावहन सौरातपेन स्नाता श्यामा सर्वे सहस्रऽऽप्रकाशिता ॥ पर

शीतस्य स्वकीयेऽस्मिन् समये गगनाद्वीपघाननेन न किमपि कर्तुं शक्ते । दिनमशेष-
शीतेन परिकृत्यमानशीतेर सन्ध्यामेवान्तमाप । सलज्जो दिनपत्रिरप्यस्तगिरिगृहां विविधुरम्य-
रतलाद्वाल्म्यत ।

विमलपुरराजभवनेऽद्यानन्दलहरी प्रवृत्ता । व्ययः पुरस्त्रीवर्य- सन्ध्यासत्वरं प्रजन्
कार्यस्य महत्त्वं शारयति । राजचिह्निकालयस्य विदुषो वैद्या परिचारिकां बोधयति । विमल-
स्तूलराशिरश्रद्धाश्रयन्नाणि च पूयन्ते । उष्णायतेऽन्तर्हसन्तीभिर्भवनम् । गीतं
गायन्तीभिर्गायिकाभिर्वेद्यादिभिर्विप्रैश्च भूपतिभवनं भूष्यते । राजा रामपाल उक्त
उपविशन् प्रनिश्चय मितिपटौ मणिःपञ्चपटौ च पश्यन्त्योः समयसाम्यं वांक्ष्यामि मन्दगतिर्त्वं
सुमुहुर्दुराशाह्वते । अन्तःपुरादागच्छन्त्या वास्या मुक्तात् किमपि शुभपुः समुत्तिष्ठति ।

“देव ! देवस्य गृह भगवती स्वयं सनाययान्वधार” आगत्य प्रगम्य कञ्चुकिभोषे ।

जन्मत एव सरला मुग्धा कमला कैरपि दृढतो न दृष्टा । कदापि विषादलैराया
नास्या सुखकमले स्थानमकारि । बालमुलभमनिमिषदर्शनं स्वच्छन्दो हास्यं स्वामाषिकी
प्रतिमा उत्ताशमृतनधुरा सुखं वहा बालकाकली च सर्वेषां मनास्याकर्षति स्म । सर्व एव ता
न्वाहस्यमथोक्तमन्त । सरयि धात्रीसहस्रं महिषो वा स्वयं कालयति स्म । नरपतिस्ता-
मुत्तमैः कृत्वा निनरां प्राप्नोदत् । द्विहायती कमला मितिदर्शनेषु सङ्क्रान्तमूर्तिरपा-
बालात्वेन उवा मृशं समयमाना तर्जनीवादाप्येन तां विहायापि ॥ दद्विन्यस्तगाद
प्रचलन्तीसन्ध्याः प्रेम्भवेन सममेव पतिना सत्वरमेवोदतिष्ठत् ।

*

*

*

“देव ! एषु दिनेषु बहवोऽनुरक्ता भवा इतिविदिप्रसारमोजपिनी सनायता- ।
श्रीमती मित्र राजनगरप्रज्ञाञ्जनापि ।”

“अपि सत्यम्, मम मित्रं नवेन्दुः ? मामकीर्तं सन्देशमादाय सरदि गच्छ ।”

“मयाहम्यते देवेन ।”

*

*

*

“एतदि, अनुकम्पय, मृतोऽस्मि मृतानां मानमाजनम्, यस्यावास भवारशाधरम-
रेषुमि पश्यन्ति, कच्चिन् पूजिता देवी ?” विदुस्सर्वनीं दृष्ट्वा जनैः शनं यत्नन्ती
सुखं वर्णा बालिका प्रेम्भोत्सह नयता नवेन्दुभोषे ।

“सर्वं कुशलम् । कथं न स्यात् कुशलं यस्य भवाद्दश । पवित्रकीर्तयो राजपयो
नाम्नैवामङ्गलप्रा मङ्गलं कामयन्ते । प्रातरेव पूजिता प्रसादमुमुखो परमेश्वरी कालिका
देवदेवो महाकालश्च । श्व प्रातरेव गतव्यमिति देवदर्शनसुखमनुभवितुं प्रेरितोऽस्मि ।
श्रीमत्त यतो ज्ञातवानस्मि, तत एव विलम्बमसहमानोऽधीस्तामनुभवामि ।”

‘प्रत्यावर्तितरुत्तं मनः शैशवचरितं पुरोभवदिवानुमावयति रामपाल ! नोत्सहते य
धोतुं प्रयाणवातामपि । किन्तु चित्रपटचञ्चला राज्यश्रियं कामिन्य इव नाधिकं
कालक्षेपं सोढुं समर्था । भगवान्छिव ईदृक् सुदिनमप्यदाऽप्युपहरताद् यत्रावये-
मैलनं सम्भवेत् ।’

“अहर्निशं प्रेक्षणीयं राज्यम् । स्वभावदुर्जनो जनपदं, दुर्दमनोयदानवनिकर इव
लुण्ठकान्धनिकर, आपद्रुता विविधकर्तृ पीडिता प्रजा, सर्वेषामेव समये सम्भालनम् ।”

“देव, सज्जमुष्णपेयम्” प्रणम्य न्यवेदि सेवकेन ।

‘एहि मित्र, तत्रैव वार्तासुखमनुभविष्याथ ।’

अथ सूर्यास्तेन विचलितेलोके तमोमग्ने च गगने दिग्द्वन्नावदनचन्दनविदुरिष मयूखले
सोद्द्योतितस्मररेख स्मरप्रदीपाच्छुर कुमुदमुत्कुलकुलविकसी यामिनीसौभाग्यसिन्दूरं
तम कचलयन्, दुग्धतरङ्गधौतविश्वं शनकैरुदभूत्साध्यैर्चर्यचन्द्रालोकः । प्रियकरैरमुखा
तमश्चक्षुर्कौ सलीलमपहाय प्रतिरोमनिर्मदानन्दादृहासा विरहिचरीव निशा प्रियेक्षणहर्षं
वर्षोद्गतद्वामिषेण जगदस्त्रिल हृसपश्चतिसितीकरिष्यतीत्यनयनमानसामदानन्ददायिनीं
विमलमृणाग्लावण्यलतिकामणिश्रणिपयस्पर्धिनीं दत्तप्रभामिव पयोरस्तां सर्वतो दिश
प्रासारयत् । कर्पूरधवधूलिश्रुतिधौतं विश्वं जहास ।

रसेन्द्रचितामणिरिव बभौ विभावरी चन्द्रोदयेन । पीयूषवर्षस्य चन्द्रालोक इव जगति
प्रामाणीचन्द्रस्यालोका । मत्स्यमृगाणीव बभौ विश्वं भागत्या ।

एतस्मिन् वस्तुले स्फटिकोत्तरे काष्ठपीठे केशरमृगमदगन्धि युग्मे पयसि जिह्वां च्योतयति
यथेच्छं गृहीत्वाऽभ्यवहरत्यु, इत्यथ क्रीडतोर्नवपरिचययोश्चन्द्रकमन्दोरचन्द्रामप लम्पनी—

‘देवी ! शैशवत एव प्रगाढप्रेमाणौ समानस्वभावमात्रायुषौ च युवाम् । मामरीना
जरठमर्तर्मनुजे यन् प्रेमाय यां सन्तत्योरप्ययुग्मं स्यात्तदाऽपरिमेषया मुदा प्रपूरितानि
स्य सर्वेषां मानसानि । सुस्थिरस्य स्याद् भवतो सम्मेलः ।’

शङ्खाकृतयो रामणीयकमहोदधेरारामस्य हरिताः कम्बव इव भ्राजन्ते । सान्द्रा नवच्छदव-
पुष्पाः प्रतानिन्यः प्रचण्डांशोस्तापं प्रावृषः प्रतापस्य धर्ययन्ति । कचनान्कान्तजुष्टिह्य
क्रीडाः क्रोडारं कुर्वन्ति, कचन च केचन उत्पन्नोत्पातरेकां केकाम् । कचन शुक्रसप्तोत्तमम्,
कचन कोक्लिष्काकली, कचन सारसारसितम्, कचन हंसविहरितम्, कचन तालतार-
काणामेकानां चलिगतम्, कचन पुष्पबल्लीसमाच्छन्नपादपनिलयेषु पारावतगुह्यारः, कचन
गुञ्जन्मधुलब्धमुदितमधुकरनिकरान्कङ्कारः, कचन खेलच्छकधुह्यारः । चन्द्रिकाचयेनेव पूर्णा
जलजातजलजप्रजा विमलतला नृत्यगाधजला मुदीर्घा दीर्घिका पवनप्रेरिततरङ्गैः
पार्श्वपादपूरं हरितपन्त्याकर्षयन्ति मनांसि । निशासु तारामणप्रतिमूर्या जनितरत्नाक-
भ्रान्ति यस्या नीरं कामिनीक्षिरपरिमलपरिमलितं सौरभसौन्दर्यसरःसार इव पूतपारद
इव रजतद्रव इव प्रतीयते । नागवल्गोदलधनुराकारासु वेदिकासु पुष्पधनैश्शाखिभिः
काव्यभुवीष शोभमानायामुपवनभुवि क्रमानुसारिक्षुपविटपन्यासैर्विलसति क्रीडापुष्पपर्वत,
पादकन्दुकपाणिकन्दुकक्रीडनाय रम्यदूर्ध्वं प्रदेशश्च ।

फलास्वादलोलुपा विदेशीया अपि कलविहारिणः पक्षपुटपूतपादप्रान्ताः पक्षिणो यत्र
प्रचुरं प्रैक्ष्यन्ते, हरिणो हरिणाः, विविधदेशासादिता विलेशयाः, कौशलेन सम्पादितानि
चित्राणि च । मध्ये च नवनीतमसृणधवलशिल गवाक्षाक्षैर्जगति स्वसमत्वमिव समीक्ष-
माण राजोचितसम्भारसम्भृत विशालं बहुशालं हर्म्यम्, यत्र धवलोल्लतपादाणस्तम्भेषूत्कोर्णा
वल्लभ्यः शिल्पिनो निष्णाततां निश्चाययन्ति । कौशेयनीलास्तरणास्तूतमिव मन्त्रकर्तन-
समानदूर्ध्वं सखीजनैः प्रणयप्रक्षिप्तशुभ्रकुसुमं तारकितं वियदिव क्षेत्रम् ।

समस्तशस्त्रशलाकुशलया गानविद्यावित्तया साहित्यार्थशास्त्रनिष्णातया चाध्यापिकया
शिक्ष्यमाणा, धनुषा भुशुण्डिकया लक्ष्यवेधने, करवालफलकमर्यादासु, जलतरणगजाश्वोष्ट्र-
घावने मंसत्तवायुयानादिपरिचालने कुशला कमलाऽत्रैव निवसति । सिद्धसौदामिनीव
कस्तूरिककुङ्कुमाश्रितरज्जोद्गास्वरललटा वदाचन कनकवल्लकीमादाय धरामुपगम्य
कृतौघवसतिमिवोपसमयरोष्ठेन प्रत्याययन्ती सुषोर्मिनिर्यासमधुरमुत्तुङ्गसौधोत्सन्नसङ्गि सङ्गीतं
प्रासारयदानन्दजलदा आच्छादयन्ति स्म सुधासमीरणैस्तृप्तास्तरवोऽपि व्यष्टमन् ।

वरारोहाया नितान्तं नवीनं वयः, विधनेन्दुसमवृत्ति मुखे यौवनाभा, सुपमाशाली

• ५५ प्रकटयति लोचनलोभनीयां छटाम्, तिरस्कृतविकसितोत्पलविलासे विकस-

सिंहासनस्यैकत चित्रितशकुनिकुलेषु और्णोष्वास्तरणेषु, परिमल्लतैलानुसारि चघरीक चचितानां, मौलिमुकुटैश्चक्षूषि चक्षितयता गुणयणाधिगतयौरवाणा राजकुमाराणामेकतथोष्णीपालकृतशिरसा शोभते सितवाससां देशस्तनानामासन्ध ।

अथकुमारध्वजो युवराजपदेऽभिप्रेक्ष्यते, चिरजीवतात् प्रजाप्रणयी युवराजध्वज इत्येव धूयते सर्वतश्चर्चा । द्वारमुमयतो मध्यमुत्तमार्गा सशस्त्रसैनिकपक्षिर्विदूरपयन्त समयाद् स्थितास्ते ।

भास्वता राजतेनानभृतेन मरुत्तरेण प्रणतप्रणामाक्षलीन् प्रतिगृह्णन् मन्त्रिणा चद्रेण च युक्तः सभाभवनं प्रविश्य गृहीतसैनिकप्रणामोऽलम्बकारः सिंहासनं नवेन्दुपालवर्मा ।

स च विष्णुकसेनश्चक्रपाणि विहितसत्याग्रहो माधवजगद्धवो विहसन्, शङ्कर इव विभूतिव्यासवपुः, वामन इव कृतबलिप्रहणः, हिरण्याक्ष इव धृतवसुधरो, गेरणाविति सूत्रमिव जातार्धशुभिः, व्यासिलक्षणमिव प्रभूतनिर्वेशभासमानः, खण्डनखण्डलाद्यमिव खण्डितानेकशासनः, शब्देदुर्गेश्वर इव सिंहातव्याख्याता, रत्नमकुटालकृतः, अवलम्बित श्वेतमुकुटः, हाटकतन्तुरस्यूतलवणेन कौशेयाप्रणवीनेनाच्छद्यतनुः, राजदन्तमुष्टिना हेमकोशेन कौक्षेयकेन विलसितमथ्यो गम्भीराकृतिः कृती रराज राजनगरभूमिं भामिनोभ्रूभङ्गभागी नवेन्दुपालः ।

वामतश्च प्रमथः प्रकृष्टगुणानां पराभवभवनपापानां, अपस्पृष्टो दुष्टैः, सप्लुष्ट शिष्टैः, रजकर्ता पूवजान्, अवधिविद्याभौधेः, निस्तारको लोकदुराचाराणां, निरवधिनिष्णातो निखिसे, दुःसह्यतेजास्तेजस्विनां, दुरधियमगाम्भीर्या, विलीयमान इव लोकहृदये, आधारी वीररसस्य, निकायो निदोषनयस्य, अधिप आपद्रुतानां, अपिधानवाचालानां, अतिमुत्तकोशकलावतां, सुदृष्टप्राणिमात्रस्य, उत्थानमनस्विना, अभिभावको जगत्, प्रतिष्ठितप्रज्ञः, परिभूतभूखिरी, हासप्रिय प्रिय प्रजानां, सुद्वयुपास्यो मञ्जरिव धानशोऽलकृतिः, पद्मनन इव वाम्नी मूकीकृतवचस्विसमाजः, सुन्दरमधुर स्निग्धचूर्णकृतलोगौरः, कपर्दिनससारसर्वस्वः, पिनाकिनसर्वास्त्रनिपुणः, विरूपाक्षपुण्डरीकाक्षः, वामदक्षामदो, विहसन्निव गिरीश सर्वेशोऽनुकुवधिवचतुराननश्चतुराननकमलासनकमलासनप्रजापतिः प्रजापतिः, समाक्षिपन्निव देवकीनन्दन जगदानन्दन, पादसवाहनलनधियः

सर्वाङ्गलक्ष्मीः, होरकलचितेन स्वर्णस्मरणा हेमकोशेन चन्द्रहासेन पूज्यमानशामपार्श्वः,
जातरुपतन्तुरनितमहार्हमहोष्णीपः, पटवासवासितवासोवद्धविग्रहो, हिमशुभ्रधीतवसनः
स्मितेपन्निभृतदशनः, आरक्तदशनवसनः, कर्वालकेलिचक्रीकृतवीरवरो राजकुमारः
स्वर्णासन्द्यां समलभत स्थानं धन्यजननीकधन्त्रः ।

यश्च रसगुणबलिजारितपारदसेवनशीलश्चरः साक्षाच्चन्द्र इवात्तति ।

किमितोऽप्यभिकं रम्यं मारवपुरयमेवस्मर इतिविचर्य कृष्णीकृतमिवकचकलायं भ्रमरैः,
सुगन्धितमिववपुर्वमन्तेन मुकुमारीकृतमिव सुमनोभिः प्रकटितमिवत्वधर्मं मिलितमिव
मारमित्रैः ।

दक्षिणतश्च काशानोकाशकेशातिपद्मा, अन्धीकृत आन्वीक्षिण्यां, अद्वितीयस्वर्णां,
शीण्डोदण्डनीती, वित्तोवात्तांसु, विपथितामपथिमः, विहमसिब एकाक्ष कमनीयाक्षः, रेजे
रजतमय्यां शुभातन्वां मन्त्रिवरोऽशेषविद्यापरोविद्यापरः ।

अथ सजायो समज्यायां समेतेषु माननीयेषु नागरिकेषु, लोकप्रियेषु लोकहित-
प्रतिषु, यथास्थानं स्थितेषु च, प्रयशसिदधूपूपितायाय संसद्भूमौ सरस्वं माण्डलिक-
मण्डलमभ्युत्थय क्रमशो दौवारिकदत्तपरिचयः प्रणनाम ।

अथ समयमानोनरपतिः पीयूषरीतयैव मधुरया, अगाधहृदयान्तर्बसत्यैव गभीराया
वाक्वा वक्षुमारभत ।

धर्मे वा महर्षयः, प्रियाः प्रजाश्च,

महामहिम्नौ विश्वतासिन्तुः परमानुष्मया राज्यञ्जुर्दत्तौ मे चत्वारिंशद् वर्षाणि
व्यतीतानि । यत्प्रमूलहं प्राप्तयौवनोऽस्मि प्रजानां सर्वविधानि कष्टाम्बपनेतुं
सत्तरोऽस्मि । दुष्कालमहामार्गादिसङ्कटकटखिनाशकं अगदनुप्राहकं परमेशानं प्रति
सर्वदेवानतोऽस्मि प्रत्यहं प्रार्थयमानो भवनां योगक्षेमाय ।

मयि राज्ये च या प्रगल्भा भक्तिर्येषात्यागो यच्चानुलं प्रेम भवतिः प्रदर्शिनं
तेन समेषां राज्ञां इति अनुलो हर्षवर्षः सम्भवति । यश्च बहोः कालात् राज-
प्रथोः प्रचलित आसीत् पिन्पुत्रवत्सम्बन्धः, गवौजतशिरा अदमदाणि वक्तुं
शक्नोमि यतोऽद्याप्यपयो मानिससरोजे राजते समानं मुह्यन्मूलः सम्बन्धः ।

भवतां मुखे दुःखं च सदैव सहचरीभवन्नामम् । यदा यदा भगवदनुष्मया

सिंहासनस्यैकत चित्रितशत्रुनिबुद्धेषु और्णव्यास्तरणेषु, परिमल्लतैलानुसारि चयरीक चर्चितानां, मौलिमुकुटैश्चक्षुषि चर्चितयता गुणगणाधिगतगौरवाणां राजकुमारानामेकतथो-
ष्णीपालकृतशिरसा शोभन्ते सितवाससां देशरत्नानामासन्य ।

अश्वकुमारधन्द्रो युवराजपदेऽभिषेक्ष्यते, चिरजीवतात् प्रजाप्रणयी युवराजधन्द्र इत्येव ध्रूयते सर्वतश्चर्चा । द्वारमुभयतो मध्यमुपमार्गा सशस्त्रसैनिकपक्षि विदूरपर्यन्त समयार्धे स्थितास्ते ।

भास्वता राजतेनानावृतेन मरुत्तरेण प्रणतप्रणामाङ्गस्त्रीन् प्रतिगृह्णन् मन्त्रिणा चन्द्रेण च युक्त समामवन प्रविश्य शूरीतसैनिकप्रणामोऽस्त्रधार सिंहासन नवेन्दुपालवर्मा ।

स च विष्वक्सेनशङ्कपाणि विहितसत्याग्रहो माधवजगद्धवो विहसन, शङ्कर इव विभूतिव्याप्तधनु, वामन इव कृतबलिग्रहण, हिरण्याक्ष इव धृतवसुन्धरो, गेरणाविति सूत्रमिव जातार्थगुप्ति, व्यासिलक्षणमिव प्रभूतनिवेशभासमान, खण्डनखण्डखाद्यमिव खण्डितानेकशासन, शब्देन्दुशेखर इव सिद्धान्तव्याख्याता, रत्नमकुटारकृत, अवलम्बित-
श्वेतमुक्तेन, द्वाटकतन्तुस्यूतरूपकेन कौशेयाप्रपदीनेनाच्छन्नतनु, गजदन्तमुष्टिना हेमकोशेन कौक्षेयकेन विलसितमण्यो गम्भीरकृति कृती रराज राजनगरभूमि-
भामिनीभ्रूभङ्गभागी नवेन्दुपाल ।

वामतश्च^१ प्रभव प्रकृष्टगुणानां पराभवभवन पापानां, अपस्पृष्टो दुष्टैः, सञ्जुष्ट शिष्टैः, रजुकर्त्ता पूर्वजान्, अवधिर्विद्याम्भोजे, निस्तारको लोकदुराचाराणां, निरवधिनिष्ठातो निस्त्रिशे, दुःसह्यते जास्तेजस्विनां, दुरधिगमगाम्भीर्यो, विलीयमान इव लोकहृदये, आधारो वीररसस्य, निःक्रायो निदोषेपनयस्य, अधिप आफ्फूतानां, अधिधान वाचालानां, अति-
मुक्तकोश कलावता, मुह्यप्राणिभात्रस्य, उत्थान मनस्विना, अभिभावको जगतः, प्रतिष्ठितप्रज्ञ, परिभूतभूर्खैरी, द्वासप्रिय प्रिय प्रजानां, सुद्वयुपास्यो मन्त्रिरिव धात्रयोऽलाकृति, पडानन इव वाम्पी मूक्रीकृतवचलिसमाज, सुन्दरमधुर स्निग्धचूर्ण उन्तलोगौर, कपर्दिन ससारसर्वस्व, पिनाकिन सर्वास्त्रनिपुण, विरूपाक्ष पुण्डरीकाक्ष, कामद कामदो, विहसन्निव गिरीश सर्वेशोऽनुकुर्यान्निव चतुरानमध्वतुरानन, कमलासन कमलासन, प्रजापति प्रजापति, समाक्षिपन्निव देवकीनन्दन जगदानन्दन, पादसवाहनलग्नधिर्य

सर्वाङ्गलक्षणोः, होरकक्षचितेन स्वर्णलक्षणा हेमकोशेन चन्द्रहासेन पूज्यमानवामनाद्वैतः,
जातशतान्तुरचितमहार्हमहोत्थीफः, पटवासवासितवासोयद्विग्रहो, हिमशुभ्रचौतवसनः
मितेपनिःशृतदशन, वारकदशनवसनः, कर्वाळवेडिचिह्निभृतवीरवरो रावकुमारः
स्वर्णासन्धा समलमत स्थानं घन्यजननीकधन्वः ।

मथ रसगुणवलिज्वारितपरदसेवनशीलशयः साशाषन्द्र इवालति ।

किमिनोऽप्यपिहं रम्यं मारवपुरयनेवलर इतिविचार्य कृष्णीकृतमिवकक्षकलापं भ्रमरैः,
सुगन्धितमिववपुर्घसन्तेन सुकुमारीकृतमिव सुमनोभिः प्रकटिनमित्रत्वधर्मं मिलितमिव
मारमित्रैः ।

वक्षिणतश्च कारालीकाशवेद्याक्षिपस्मा, अन्वीक्षित आन्वीक्षित्या, अद्वितीयकृत्या,
शीङ्गोदण्डनीती, वित्तोवार्त्तांशु, विपथितानपथिमः, बिहयश्चि व एकाक्षं कमनीयाक्षः, रेजे
रश्मिमय्या शुभासन्धा मन्त्रिवरोऽशेषविद्यायोविशायरः ।

अथ सज्जाया समन्याया समेतेषु गाननीयेषु नागरिकेषु, शोकप्रियेषु लोकहित-
त्रतिषु, यथारथानं रिपतेषु च, प्रयत्ननिद्धूपूपितस्यास्य संसद्भूमौ सचलं माण्डलिक-
मण्डलमभ्युत्थाय धूमशो दीवारिकदत्तरविचयः प्रपन्नाम ।

अथ समयमानोनरपतिः पोद्भूतरीतिवैव मपुरया, अगाधदृढयान्दवसत्यैव गभीरया
वावा वफाभारमन ।

अथेया महर्षयः, प्रियाः प्रजाय,

महामहिम्नो विद्वशामितुः परमशुक्लपरा राज्यदुर्जतो मे चत्वारिंशद् वर्षाणि
व्यतीतानि । मत्प्रभुत्वहं प्राप्तवीवतोऽस्मि प्रवानां सर्वविधानि कथान्यपनेतुं
तत्परोऽस्मि । दुष्कालमशानायादिसङ्कटकटविनाशकं जगदनुग्रहं परमेशानं प्रति
सर्वदेवानतोऽस्मि प्रत्यहं प्रार्थयन्नानो भवतां योगशेमाय ।

मयि राज्ये च या प्रगाढा भक्तिर्यद्व्यागो दयानुलं प्रेम भवद्भिः प्रदर्शितं
तेन समेयां रता इति अनुलो हर्षवर्णः सम्भारति । यद्य बहोः कलान् राज-
प्रदयोः प्रयत्नि आसीत् भित्तुप्रवत्तम्बन्धः, गवोक्षतशिरा अहमपाणि पक्षुः,
शलेनि दन्तोऽपाप्यवयो मर्तिससरोजे राज्यते समनं सुदृढमूलः सम्बन्धः ।

भवतां मुने दुस्त च सर्वैव सहचरीभवसासम् । यदा यदा भगवदनुकम्पया

ममानन्दवसरा प्राप्ता दुरावसराथ यथ जगत् स्वाभाविकोद्यमं स्तद्धि भवद्विरपि मे साहाय्यं कृतमास्ते ।

भगवतेऽनन्तकोटिप्रज्ञाण्डसामिने प्रणामोपायनमुपहरामि येन राज्यनिरीक्षणमा, सदसद्विवेचनानाचेतना घराघराधरणसह वपुरपूवापूर्वकार्यचिकीर्षाप्रवण उत्साहो जगद्व लोकोक्तिं सत् स्वास्थ्यं च मे प्रदत्तम् ।

सकलस्य राज्यस्य सेवायै सर्वविधनवीनसाधनसम्पन्ना जलस्थलगायुसेना शत्रुमुख धातनेऽधाम्यमासादयति ।

अह सर्वदैव प्रजाधिकारसुरक्षायै तासामावश्यकतापूर्त्यैचोद्यमानोऽस्मि । राज्यस्य विधिसभासदस्या जनतया निर्वाचिता राज्यसञ्चलनोचित राष्ट्रोन्नतिरन्व विधिविधाय विधानुकरणीया व्यवस्था व्यवस्थापयन्ति । प्रतिग्राम ग्रामीणैर्प्रथिता ग्रामण्य एव पारस्परिक विवादामियोग शमयन्तो वैषम्येष्व्या भस्मयन्तो ग्रामोन्नतिं कुर्वन्ति ।

लघुष्वपि ग्रामेष्वेका स्वल्योयसी रम्या पाठशाला, आरोग्यशाला, व्याख्यानै प्रौढशिक्षणशाला, पत्रालयो, वाचनालय, स्वयंसेवककोडास्पल, वाटिका, स्वयं ग्रामीणै श्वातुर्येण रचिता राजमार्गा, बुरुवा, प्रभूतधान्यानि क्षेत्राणि, च कीक्ष्य कस्य न मन परमानन्दस्यावधि समेति । आभ्यन्तरव्यवस्थायै न राज्ये रक्षकसेवकानामावश्यकता । चौरजाराणीचिर्याचारचर्चं न भ्रूयते, न कश्चनागृह्यमाणोऽपि वराक किमपि बिभृशति । तस्य हृदि स्वयमुपाजितवस्तुन एव उपभोगेच्छावर्तते । न राष्ट्रेऽद्यकुट्टिनी न धारावना, न मद्यालयो, न शूतालय, न धूर्तो, न वधको, नानुशासनो, न निर्धनो, न कुचल ।

नास्त्यत्र सन्देहलवोऽपि यद्राज्यमिदं यौष्माकैरास्माकैश्च पूर्वजैर्महता श्रमेणोन्नते परा कोटि नीतम् । अनया पैतृकसम्पत्त्याऽस्माकं सत्यो गर्व । परन्त्वदमपि न विस्मरणीय यदेषा स्थितिरस्माभिर्महता श्रमेणानीता । अत्रैव प्रतिशतमेकोनर शिक्षितो नहि साक्षर आसीत् । अत्रैव शिक्षिता मृत्यु प्रतिशतमशीतिरासीत् । दुराचारव्यभिचारव्याधिना नरा प्रस्ता आसन् । क्षय सामान्यप्रतिश्याय इव सर्वत्र प्रसृत आसीत् । दुर्मिश्रेण प्रजा प्रतिवर्षमेकस्थानादपरस्थानं यात्य २। सर्वदैव चौरजाराणां भय सर्वान् बाधते स्म । परत्वधुना सर्व एवैते

कथावशेषाः संवृताः । सर्वमेतद् राज्यस्य मन्त्रस्य श्रमस्य श्रान्त्यंशफलम् ।
भवन्तो राज्यस्य धन्यवादाश्चर्यदम् । परन्त्वपुनाम्नाहं केवलमिदमेव कृत्य
नास्ति यदिद वर्तमानमेवम्प निमृश्याम्, किन्तु लोकोत्तरसमुन्नतेः शिगरमारण्य
निपतद्दं सानन्दं निवसन्त्यः प्रजा बान्धविह्वलानन्दसुरमुज्जीरयन्ति ।

सोऽहमपुनारुद्धोभूतः । बार्दन्त्यमावागन्ववनेषु कायेषु मोक्षहते चेतः ।
प्रमदित्वापि वपुरनश्यत्कर्तव्येषु शैथिल्य मञ्जते । न मतिर्मननीयमस्ति मनुते
मठम् । करणजातं कार्यकरणश्रान्तनिव मन्ये । कुमारध्वजः सुशिखितः सुविनी-
तोयुवा लभोऽपुना धुरमिमां बोद्धुमवो योज्योऽयमस्मिन् कर्मणि—इति विज्ञापयितुमेव
भवन्तः सादरमामन्त्रिताः ।

पदप्रदानात् पूर्वं कुमारावापि विज्ञाप्यमस्ति—यन्मा वाम राज्यधीमदमतः प्रजाया
योगशेर्म विरमापीः । महाप्रभावो लक्ष्मीमदो मधुनयनमस्मिहपति । लम्बमणि-
होरक सुश्रुत कण्टकाशेर्णं जर्माहि । कौशेयतुलिकं स्वर्णसिंहासनं शिला—
शकलाकल्पिनं कल्पम् । छत्रं सशरीरं वितानमिवापदां विद्धि । वामरसुरमं
घोषकं सदावलाभाकर्षकं सुख्यसनालां मन्यस्व । नहि विलासालया राजानो राज्यस्य
प्राज्यसुरकारं कर्तुं क्षमाः । प्रजाना स्वतन्त्र्यजीवनं स्थापयितुं सर्वैव उद्यमो भवेः ।
दण्डनदमने सततं करवालच्छरो भूयाः । विदुर्वां सत्कृताव्यव्यलम्प मा गाः ।
प्रियाः प्रजाः ।

युवराजविभाभूषितमुखश्चन्द्रो जनसमूहस्य करतलवादेनेन सह समुत्थाय स्मितेन स्मित-
यन्त्रितसमभाषत —

पूज्यपादपद्मा महर्षयो, मान्या राजपय सहयोगिन सभ्याश्च ।

योऽयं कार्यभार श्रीमद्भिरस्मत्स्कन्ध आरोपित श्रीमता सहयोगादशमोऽप्यहं
समर्थो भविष्यामीत्याशसे । अद्यतन राजपद न विलाससूचक, अपितु प्रधानसेवकतासूचक
प्रधानप्रहरित्वमेव घोषयति । उपहरप्रशनादिना य सम्मान श्रीमन्तो मयि प्रदर्शितवन्त
स नमम, अपितु राष्ट्रसेवकस्य—राष्ट्रस्य जागरूकप्रहरिण सम्मान । नाहमेतस्य
सत्यो योय उपभोक्ता । अत एता सामग्री बालविकासपरिपद उपहरामि, बाला हि
भाविनो भारवाहा राष्ट्रस्य ।

मान्या ,

बहुविधतेऽस्माकं करणीयम् । अध्ययनयुगे विज्ञानस्य महत्वावश्यकतावर्त्तते ।
वयमधुनापर्यन्तमत्यन्तावश्यकपदार्थोत्पादनाय सलगा आस्म, परमद्य तेन भयेन वयं
सुका स्म । परन्तु कदापि परेषा द्वापानाणि यया न भवेमतयाऽस्माभिर्यतितथ्य-
मस्ति । अद्यसायंकालिकसभायामस्मिन् विषये विचारयिष्याम ।

*

*

*

“देव व्यत्येति भोजनवेला । आगन्तुका मान्या अतिथयोऽपि श्रीचरणौ प्रतीक्षन्ते ।
आखेटार्थं गतो युवराजधिरयति”—मन्त्रिणोपेत्याबोधि ।

“न जाने कथं विह्वलता भजते चेत् । किमप्यज्ञातमयमिव भावयति भावना ।
आखेटार्थं गतश्चन्द्रो नाधुनापि प्रतिनिवर्त्तते । अद्यतनोत्सव राजभोजनं विदक्षपि स
कथं चिरयतीति महदुत्कण्ठितं चेत् । अभितोऽशुभच्छायागमिवपश्यामि, क्रन्दनमिव
चिह्नीर्येति मामकीर्ण मन । न जाने किं भावि ।”

“देव । सर्वं सर्वं श विधास्यति, देवस्य व्रत्सत्यमेव एव चिन्तयति । (सम्मुख
पश्यन्) ‘कथय देवव्रत कथं चिरयति युवराज ।’

देवव्रत —(प्रणम्य उच्छ्वसन्) देव, कुमारमित्रेण विश्वशेखरेणाद्य श्रीमत एको
विलक्षणप्रेक्षणीयोऽद्य उपहृत आसीत् । कौतुककीर्तमिव भवति युवकहृदयम् ।
परिणाममपरिचिन्वती च मति, विगतसाध्वस्य साहसम् । अपेतसमस्त्यश्च तारत्यम् ।

युवराजश्चन्द्रलमास्त्रास्माभिः शनैश्शनैरनुगतोऽस्मादेकधाद् विट्प्रवृत्तान्तिष्ठान्त-
मुपदंष्ट्रं पयाननं वीक्ष्य हन्तुमवास्तदनु प्रस्थितः, अस्मागिरपघट्टनमनुगतः
कानननैदान्धकारे पयविच्युनैर्वीक्षितश्चतुर्योर्गोचर एव संवृतः ।

विद्वद्वरेण्यनगरद्वतनूजनुर्यः

सालोचनं विपुललालितकान्यमालः ।

सश्रीनिवास चररोक्तनन्दरोतिः

शं न्यश्चसद्वरसुधोवरणीयमाद्यम ॥

श्रीमन्नवपुत्रायशास्त्रिगुण्णुदा श्रीनिवासशास्त्रिनाहने

चन्द्रमहीपतौ

प्रथमो निश्वासः



द्वितीयो निश्वासः

भिन्ना महागिरिशिला करजाग्रजाग्र—

दुहामशौर्यनिकरै करदिभ्रमेण ।

दैवे पराचि करिणामरिणा तथापि

कुत्रापि नापि खलु हा । पिशितस्य लेखा ।

—पण्डितराज जगन्नाथस्य

उत्कूजन्तु बटे बटे यत बका काका घराका अपि

क्राडुवन्तु सदा निनादपटवस्ते पिप्पले पिप्पले

सोज्य कोऽपि रसालपट्टवल्यप्रासोद्धसत्पाटव—

प्रीडत्कोकिलकण्ठकूजनकलालीलाविलासक्रम ।

सुभाषितरत्नभाण्डागारम्

अथ जातोदये पीथूपमरीचिमालिनि सकलशस्यपितृके जैवातृके, स्वर्णाद्रिगुहास्त्रा
मल्लकीय रसायनमास्त्रादव सारसरवरमम्बरमवतरति रतिवितारके तारकेश्वरे
उयोत्सया रिलयामिलाया प्रकाशमाने वस्तुविसरे, राजतपत्राच्छादिते कर्पूरपराग
मिश्र वर्धति नभसि प्रदर^१ माश्रितु पुष्यानुगमिवसेवमानाया^२, मनुपेयाभिर्दुग्धधाराभि
रिव उयोत्सनाभि सिन्दमानाया वसुमत्वा, प्रफुल्लकैरवेपु, सरसु, सत्रपकमलिनीषु
दीपिकासु रसरमानान् ॥ य पुमुदिनीषु समाधिमिवालय्य निद्रादेवीमाराधय^३ सु जनेषु
दिश्रा पुरुषा पर्वतात्त प्रदेशे स्थिता सन्ति ।

महानय प्रदेश । अभितो लघुलघव पर्वता पादपप्राचुर्येव तो ये समागतृनेत्र
निपातात्तान् वक्ष्यन्ति^४ ।

^१ प्रदरोरोग पुष्यानुग ^२ चूचैर्न शान्यते । पक्षे प्रवृष्टो दरोभय, पुष्यइति नक्षत्रो
पञ्चक्षण तान्यनुगानि यस्त्यतेन चन्द्रेण नान्यते । नक्षत्रोदये भय नान्यतीतिभाव ।
वचाते हैं इति भाषा^३ ।

मध्ये विविधपातविभासी, हरिणरोगमृदुलोर्म्यस्त्रापहारी, शीतलः प्रवेशः । गण्डशैलान्
कर्तयन्ती मयजला सरिदेका बहुत्येकतः । या पावतमप्यमस्ताशादृशा भवति ।
पूर्वतः पुरपैरुद्धतैरुपुरुगम्या दुर्गमा दरत् १ । मध्ये नितरां सान्द्रा पादपावली । यत्र
तत्र कुटन्मटे २ ऽशोटे ३ मधुमक्षिकाः मनमनावन्ते । इतस्ततोभ्रमन्तो दुष्टात्मानोऽत्रैवात्मानं
सुखिनं मन्वते । पुष्टदुष्टं स्थानमेतं लुप्टाकानां लीलानिलयं, चौराणामावाचत्वरं,
स्त्रियानां पत्तनं, रक्षसानासनं, दशार्गां भक्षणमवनं, दत्पतनामुत्पत्तिं, वराकपधिकानां
क्लिन्नप्रदृष्टपन्नगमाचक्षते । विरभृतस्रगिरिपिच्छन सञ्जन इतो नाटीकते ४ ।

अद्यापि त्रयः पुरया अत्रापलोस्यन्ते । निश्चप्रचन्ते दुष्टात्मान—इति तु स्थानमेवाख्याति,
फन्तु तदालापश्रुषा चेन् “वाटकाः पाठिका”थ निमृतमागन्तुन्तु मा नाम
नूपुराचिह्नित तान् मुचेतयेन्—शृगमः किं नैर्विचार्यते ।

यदचेतेषु गिलासोठमपितिष्टन् नायक इव प्रतीयते वयसा पञ्चविंशतिवर्षौ विपुलांसः
मौक्षकुलजात इव सम्मवेशो नातिमुन्दरो बलवान् पटङ्गदेन खेदयिन्तून् प्रोत्तन्नास्ते ।

अन्यौ द्वौच सुपटितसारीरौ सैनिकवपुनौ बद्धकटितटौ, स्फुण्वावलम्बमानरुन्धौ, कृष्णाहि-
कोशकौक्षेयकरी मिन्दपालपूङ्गिकाध्वौ सुपावौ सम्मुखीनशिलतले समुपविष्टौ स्तः ।

अधुनैवैको निरुद्धनिखुयान्निधकाम दिनालीमुभयकटितटोऽसितपटो वीरभटः ।

“एहि रे प्रवल ! विरभ्रप्रतीक्षसे”—“देव, समय एव समागतोऽभ्याज्ञाप्यताम्” ।

“प्रिया ! यूयं सदैव मत्कार्यसाधनाय सक्षणाः स्तु । प्राणान् संतापयित्सरमारोप्य
मत्कार्यसाधने तरपराधां नानृष्यमासादयितुमलमस्मि । प्रबलेन यथोपकृतोऽस्मि, मन्ये
पितामैव न पालयेन्, माताप्येवं नमाजयेन्, भ्राताप्येवं नविभ्रियान् ।

प्रवल—देव । भयपादयोः सम्यगपचितिः कदापि न भूता । कुपैव ऐशो राजिकां
र्षेतपति । कृतिमुञ्जो वयं यदि देवनारापयामोऽपि तत्र किं निःस्वार्थम् । वेतनं
मुञ्जना अपि देवं यदि न सेवमहे, तदानीं पानेऽप्यितानां न पाने कतिजनिपतः
त्यन्निभये । मृतः प्रमृति महासाजो नन्दनपुरेश्वरो पलोत्तंखनाधिनवस्तुन एव प्रतिशर्णं
शोचाम्यनुतिष्ठामि, प्रार्थयामि च परमेशानं यन् प्रमो कदाहमेताभ्यां लोचनाभ्यां
धीमन्निप्रवृत्तारान् धीरर्थकान्तिविहाय नन्दनपुरराज्यसिंहासनेऽर्मान्निष्ठतो द्रष्टव्यम् ।

कान्ति०—प्रयत्न ! विरमास्माद् वाष्पमयात् । नाहं राज्यं कामये । भ्रात्रे भजतां साम्राज्यम् । नास्माकं प्रयोजनं राज्यवार्त्तायापि । यासां योगश्रेम रक्षन्नहं राज्यकामुह्म आसं, ताः प्रजा एवास्माकं विरोधिवचो ब्रूयुस्वदास्माकमेव तेन किम् ? राज्यग्रहणे किं मम कश्चन नैजः स्वार्थ आसीत् ?

प्रयत्न०—सर्वं जाने देव ! परन्त्वन्येन कर्णे फूटकृतो जनः स्वार्थमपि नाशयति । अस्तु, आदिश्यतां कश्चादेव । निष्कर्मणान्तु दिनान्येव नातिशयन्ति ।

कान्ति०—कमलया सह परिणयप्रतिज्ञां कृतवानस्मि—इति तु भवतां विदितमेव । मम प्रतिज्ञायाम्, तव प्रावत्ये, वीरवरस्यचातुर्ये, सूर्यसिंहस्य साहसे च द्वयोर्द्वयोश्चतुर्भावद्वये विधासः । अपि सत्यं रोचते वीरवर ?

वीर०—अदिष ! एरुदाय स कमलं भवन्तमन शैलशिलातले समुरविष्टं प्रणस्यामः ।

कान्ति०—परन्तु भवद्भ्यो विज्ञातमेवास्ते यद् श्रविणमन्तरा न किमपि कर्तुं पार्यते । सर्वप्रथमस्यावश्यकता विशेषतश्च विवाहे पुनश्च राजकुमारसह । वासोभूषणरत्नानामुन्यूनतोन्यूनं पक्षलग्नमुद्राणामावश्यकता । अपि ! वीरवर ? कश्चनैतदर्थेऽपि स्थिरीकृतं वपायः ।

वीर०—आं देव ! [किञ्चित्स्मृत्वेव] विद्वरमितोऽस्ति राजनगरनाम्नि नगरे मम मातुलेयो भ्राता शिल्पाजितकधुधनदत्तो बाल्यतएवममापराद्धा विश्वरोपरो नाम युवकमान्यः । परार्यपि स मातुलान्याः समक्षमेव मां दुर्वचोवाणैर्मर्मण्यविष्यत् । तत एवाहति देवो श्रविणमनेनुम् । प्रतिशोधविधावधीरोऽहमपि कार्येऽस्मिन् देवस्य विस्मरणीय साहाय्यं विधास्ये ।

कान्ति०—क्षिप्रदूरगमितस्तत्स्थानम् ?

वीर०—देव ! आस्माकोनक्ष उपनर्मदनीलराजनस्योपरुष्ये श्रीमन्नन्दनपुरनरेन्द्रावासाय सुभगशिलोच्चये रचिताया गुहायाः सज्जिष्ठमेव । राजनगरप्राप्त्यै च तत् आधीनोऽहम् ।

कान्ति०—आं जाने ! परन्तु सुदूर तत्स्थानम् ।

वीर०—(विहस्य) महाराज ! कः साहसिकानां सुदूरविद्वरमाव । सुराज्जेनवयं सुभगशैलगुहामु गमिष्याम एव । अहह ! एषु दिवसेषु तन्नाम्नाणां समुद्रद्वयं समुद्योतये ।

प्रमल०—(मये एव) देव । बालोऽयमबहुदक्षि चास्य हृदयम् । विचारधाराभिरव
धीरितयैयं सद्यएवोत्पयामते । कस्तेन श्रीमद्भि शिक्षितो भविष्यति योग्य ।
क्षम्योऽधुना ।

सूर्य—(शनैःशनैः) कोमर्पयिष्यतीति तु समयेन ज्ञास्यते ।

‘उत्तिष्ठ ज्ञानमाधेहि । भवेतनावस्था गतस्य तव दिनत्रयमत्रव्यतीतम् । अयं
तवाज्ञानं सचेतनान्युत्पन्नानि च प्रतीयन्ते । भगवान्निष्ठो मदीया सेवा सफलयितु
मिच्छति । निद्रां जहि हि, पश्य सूर्योदयो जात । पक्षिणस्तवेदशीं दशा विलोमय
सद्योकादिव दृश्यन्ते । तएव मम परिजनास्तव कुशलमिव धृच्छन्त आतुरास्तिष्ठन्ति ।
तव सर्वाङ्ग स्वर्णेन मुख्यन् मातेव मातरिधा व्यग्रो मूक परिश्रमन् न स्वयैयं लभते ।
उत्तिष्ठ ममाप्येपाह्वनवेला । गौरपि कत्सपयितुं हुङ्करोति । सापि दिनत्रयात्तवेदशीं
स्थितिं विलोक्य लज्जतुणाऽवर्तत, अथ शण्डो-मुखा प्रतीयते । शुभमिदं लक्षणम् ।
मन्ये तव चेतना शीघ्रं प्रत्यैष्यति । विषादं जहि हि । सर्वाण्येतानि तव भङ्गल सूचयन्ति,
उत्तिष्ठ जागृहि । कालः कदाचन मोचयिष्यसि मातरं पवित्रा भारतीं भुवम् । मारमान् नृश
दुष्टितान् कार्पी । मा मातरं दुःशासनावमानितां विधा, मा स्वातन्त्र्यसप्राप्तमहायज्ञे
प्रदत्तपतिपुत्रगृहधनाहुतीविधवा अधिकं खेदी । माशासनापहतसर्वस्वान् यून् कृदाय—
मन्ये एषोऽपि वीरशतान्करुण केनापि दुर्दान्तशासकेन नया क्षिप्तहमा दशामाप” —

‘हाहमस्मि ललिते, श्यामे, देवव्रत, कोऽयं जटिल प्रतीहार,” उद्विग्नचेतसा
विस्फारितनेत्रेणामुनौचे ।

“शान्तिं भज ते सर्वे एवाविलम्ब्य समागमिष्यन्ति, उद्विष्यस्व, स्थानमिदमेकस्य
विरक्षस्यास्ते । यत्रश्रीमान् काष्ठफलकाश्रितो नद्योल्लिखमानः प्रातः स्नानार्थं गतेन मया नि सार्थं
जीवनीयशक्तिमगृतां विज्ञाय कुटीरं समानीत । दिनत्रयं व्यतीतमथ श्रीमान्
चेतनां भजते”—इत्यश्रुदितं मामकं मनः । इदमुष्णं पयो गृह्णाण, शिथिलानि तेऽज्ञान्यनेन
सामर्थ्यं प्राप्स्यन्ति,” आश्रयत्वेन पयो मुखे दत्ता महात्मनोच ।

युवा च मुखं व्यादाय शनैः पयो जग्राह । स महात्मदत्ताश्रयः शनैः शनैरुपविष्टः ।
तस्य चक्षुषोरग्रे नवमेव दृश्यमासीत् । महात्मना तैलं सज्जीकृतमासीत् । स शनैः

शनैर्मर्दयितुन्नारेभे । यूतः शब्दाक्षेपु चेतना प्रासापीत् । मनोरमोऽयं प्रदेशः । सर्वतोऽनन्तरत्वं स्थितानां निम्बानां मित्तिरिव भाति । मध्ये च चतुस्तो पासविभासी प्रदेशः । एकत एकं स्वच्छा रम्या कुटी । धवलपापाणस्तण्डनद्वयं वृष्टिमम् । सम्पुरे ॥ कुटीद्वयम् । एकस्यां हिमधवला मांसला वदसत्यपूणधनुः सम्पुलमीक्षणा स्थितास्ति । पार्श्व एव पयः पात्रं वामे पाणौ, आस्रपत्रवय दक्षिणे दधत् उपपठिव्याः विमलधौःप्रदीप्तप्रभः कौपीनवासाः स्थितोऽस्ति । युवचेतसि शनैः शनैः श्वेतना प्रवृत्ता—रमृतिरायस्तुमारोभे, तं स पुनरप्यं पयः पाययित्वा साययित्वा च कायैलनः ।

“अधुनाहं स्वस्योऽस्मि, कथं वैश्वान्देरामार् प्रदर्शयामि—नजाने । पुभुक्षा बाधते, शौचान्नित्यं पुभुक्षामि” ।

“नागरिकजनवदाभारप्रदर्शनं नावश्यकं, पार्श्वेव शौचान्नित्यं कथोप्यजलेन स्नात्वाऽऽगरुष्ठं, सिद्धं पायसं तवोत्सापायात्मम् ।

*

*

*

“एतत् समेषु छेदयोष्यवेवादिषु महार्हपात्रेषु नेदगानन्दोऽधिगतो योऽयं वदलीदले प्रसर्पतोऽविरलस्य पावसस्य भोजने”—शीरं प्रवृत्त्या लिङ्गता यूतोचे ।

“एकान्ते भगवन्तं भजता मयाप्येष आनन्दोऽखीय मनसि मूर्धनीकृतः” अस्तु, अधुना त्वं स्वस्योऽसि, जिज्ञासा च गाम्भीर्येणैवमुरारयति, कस्त्वम् ! कथमिति आगमनं कथं चेददी दद्या तव ।

“देव ! अपरं खन्य प्रदानुर्भवतः सम्मुखं नाहं मिथ्या वदिष्यामि यद्येतादृशी जिज्ञासा वृत्तते चेच्छूक्याम्—

“अहं राजनगरपतेः धीनवेन्दुवर्मणः पुत्रधन्दोऽस्मि यदि धीमतः कदापि कर्ण-मरुष्टाम् । मम युवराजमहोत्सवदिने मम मित्रं भग्नमेकमद्वं प्रादात् । तमथमाह्वय-तेऽयं मित्रैः सार्द्धं गतवानात्मम् । सौभाग्येनानायाममेव सिद्ध एकोऽभ्युपेतः । अद्य शुभराजमहोत्सवे—इति निवार्य तमन्यपायम् । परन्तु स यन्मप्युः समस्तां राशिं यापयित्वा कापि विलीनः । समस्तरात्रिप्रधावनेनाध्वोऽहं च निवरां भ्रान्तोऽभूवम् । अथस्य स्वेदकातं वपुः प्रकम्पते स्म । मामग्निं सनिय-दुग्धधवपुसाऽभेदभावं भजदिव प्रतीयते स्म । परन्तु कथं ह्यमप्यथादयतोय-

शनैः शनैः पदातिथलनमभ्यस्य क्रिमपि स्थानं प्राप्नुमैच्छत् । पादव एवैकं शिवालयं
मपश्यत् । शिवालयो वृषव्यूहं निलीन आसीत् । प्रवपणनं तस्यरागं कष्णीभूतं
आसीत् । शिरसाग्रतोऽद्भुतमनो लोहदण्डो यस्मिन् कदापि ध्वजं समुच्छितो भवे
चट्टयता विभर्तिस्म । कवाटमेकमेवासीत्तदपि भग्नं दग्धम् । अन्तं वृष्ण
द्वर्षीष्ठं शिवमूर्तिरासीत् । शिवमूर्तिर्दिव्या धीविभवविभाव्या भव्याऽऽसीत् ।
केनापि शिष्यभस्तेन महामनाऽन रहसि ब्रित्त्वव्यूहेऽकनिकरे निम्यकदम्बे धनुरूपरेऽभङ्गभङ्ग
राज्ञेशस्य शास्यप्रदास्ये स्थले स्थापना कृता भवेत् परन्त्वद्य मन्दिरं भक्त
स्याभावभावयति स्म । केवलं जलसिक्तमङ्गणं, शरावे धूपमस्म दीपशलाका
मलिनं तूलं भग्नो दीपः अन्ता दूर्वापुष्पाणि च कमपि पूजकं सूचयन्ति स्म ।
कोऽपि इतः कुतोऽप्यागत्य कदाप्यचर्ति—इति प्रतीयते स्म । चन्दनाय निम्ब
काष्ठखण्डमेकस्या भग्नकुण्डिकाया पतितमासीत् पूजनाय भग्नं तुम्बी च ।
अमाजनात्सवमवकरकूटं शैत्यान्महतीं दुर्गाधितां प्रसारयति स्म । भित्तिषु, अधना
पिसुदबासु पत्योनि शङ्कुमयन्त्य आसन् । मन्दिरस्य पार्श्वेऽपराप्येका निद्रारारिणीत्
परं तु कुट्टिमहीना पाथानां जुग्रीधूमेन कृष्णीकृता दीनावस्था वन्यपशुमूनिता
नितरा भ्रष्टाऽऽसीत् ।

नितरा ध्रान्तो विभ्रममनिच्छन्नपि वन्यपशुभयङ्करे वने गमनाशक्तशरीरं
कथङ्कथमपि स्थानं विभूय सुप्तवान् ।

परन्तु निद्रा इतः ऽऽसीत् चिरावेपणनापि सा नापि किन्त्वन्ततोऽज्ञानि
शैथिल्यमभङ्गत् । शरीरञ्च निद्राङ्के सवस्वं समप्य सुप्ताप । अक्स्माद्देवाध्वस्य
प्रबलया हृपया मम निद्रा भङ्गा । सहस्ररश्मिं प्रकाशते स्म । मया दृष्टं यदेकं
पञ्चाननो ममाध्वस्य पृष्ठं विदारयति । यावद्दहं सद्येव कृपाणं निष्कोशं विधाय
सज्जोऽभवः स रक्षान्तर्निलित्ये । घोरं वनं शिथिलं शरीरं चतनाहीनानीवाङ्गानि,
अध्व-य मृतं किमधुना करणीयमिति विचारयति मयि पुनः स दृष्टिपथमागतः ।
अहमधुना रक्षणाय भागमवेष्टुकामः शनैश्शनैः निष्कोपकृपाणकरोऽचलम् । अहं क्षणैरेव
पादव एव सवेगं प्रवहन्त्या नयास्त्रीर आगतः । पूष्णीयूस्पानीयां नदीं परितो हरिता
पादपा सुरभिधनिकोपवनपवनं सेवमानं इवेतस्ततः सध्वचारः । अदृष्टं कणेहत्य पीत्वा

मुपामधुमधरीकृतमाक्षिनेशुशीर नीरं प्रष्टप्रचुरद्वे पादपतले क्षीतलमुभिसमीरणेन
भ्रममपनेतुं समुपविष्टः ।

सुशलरुत्तमिवपृच्छति क्षुनिकुले, स्वेदविप्रुयो विदूरयति म्मातरीव मातरिधनि,
दाक्षीण्य इव पादयोः पतति धूर्वाविसरे, भ्रष्टृष्विव सगलत्रन्वं मिलत्सु द्वमशात्वासु
पितरीषु छायांकुरवा क्षायाग्रैः शिरः स्पृशतिपादपे, धियायामिव परिजनसङ्कोचाद-
मिलन्त्यां तरङ्गभङ्गैरुत्थायोत्थाय लीयमानायामिव नद्यां मया दृष्टं यत् स एष
सिंहः प्रलम्बया जिह्वया करालैर्दंष्ट्राभ्रगर्जनेन च भीषयमाणो ममामिमुपं सत्वर
सत्वरमागच्छति । तस्य मुखमुद्रया ॥ दृष्टनिधयः प्रतीयते स्म । परिस्थितिर्जटिला
ऽऽसीत् दशहस्तान्तर एव सिंह आसीत् । अहं निमिषेणैव बद्धपरिकरो युयुत्सुः सज्जातः ।
सिंहः सत्वरमागत्य मुखं व्यादाय भ्रमरादाभ्यामादन्नुमना यथा प्रचलति, तथाह
पुद्गिमः क्रीष्णेऽस्पृहो निष्कोशं करवालं तन्मुखे प्रावेशयम् । आहतोऽपि च यत्र तत्र
नखापातेन रक्तमस्रावयत् । पन्त्वन्ततः ऋषदङ्गो निपपात । अहश्च क्षोणित
पुपतः प्रक्षालनाय नदीतीरं गत्वा यावज्जलमाहरामि तावदेवावयो शुद्धेनजर्जरीभूतं
जन्तुर्हृतमृदं नदीतीरं मयासदैव नद्यापपात । अहश्च वितर्कश्रान्त आसम् । परन्तु
मृत्युमीत्या त्रियमाणेष्वप्यङ्गेषु चेतना म्याता, सम्मुखेच काष्ठकलङ्गेकं नद्योद्धमान-
दैर्चेतनापस्यायामधिगतवान् । पश्चात् किं पातमित्यहं न जाने । अधुना देवः स्पष्टयन्,
यत्कोऽयं प्रदेशः । क्रियद्दुर्घतो राजनगरम् ।” ।

“पुत्र चन्द्र षट्पति कष्टानि विपश्च जीवितेशस्य द्वारमिवाप्य प्रतिनिवृत्तांऽसि ।
दशह्व नदीप्रवाहे काष्ठपट्टे व्यतीत्य अद्यत्वा भीवन्तं दृष्ट्वा परमानन्दमनुभवामि ।
पार्श्वे एव विमलपुरं विद्यते यत्र भूमहेन्द्रो जगत्पालो रामपालो निवसति । एतान्पुत्रद्वयं
दशनीयान्पुत्रद्वयान्यपि राजकीयान्देव । स्वाम्यनामाय च अन्तमिमं निरीक्ष्य क्षीप्रं
प्रतिनिवर्त्तस्व । त्वदीयौ पितरौ न जाने कां दशमनुभवतः ।”

“विमलपुरं रामपालमद्वारात्रान विमलपुरमिति साधर्म्यं सांगुलीन्यासं चोत्कण्ठं
गमति चन्द्रे “आ” “आ” इति गदन् संन्यासी स्वकाये सन्नः ।

*

*

*

“देवि । कत्वं सौन्दर्यतामयया कदाहनाया, नखवरशोभिना सन्धी नरमालिनेष्व

सजीवा, सविभ्रममितस्ततः पश्यन्ती दृष्टिमिव पुर्वन्ती अभिरामताविभ्रुपां द्वारदेशेस्थिता ।
कस्य चेदमुद्यानम् । किमत्र स्थानं प्राप्तुं शक्यते ।”

“श्रीमन्, मनोहरमुपवनमिदं जितारेस्तारेभ्यश्चकान्तिकीर्त्तं राज्ञो रामपालस्य
प्रियपुत्र्याः कमलायाः । यत्र प्रान्ते भ्रमन्तः पुंस्पर्शिनोऽप्युपहृष्यन्ते, तत्र भवादृशा
दृशा विशिष्टकामिन्यः सशरीरा इव कामा वामाभिरामाः कथं समेताः । यदि नाम
शुभादृक्षाणां भ्रमणं श्रूयेतोपोद्यानं तदा नियता वसतिः कारागारम् । अतोऽस्मात्प्रदेशा
जम्कटिति तथा यातव्यं यथा कोऽपि दृष्टिमपि न क्षिपेत्, मक्षिकाऽपिनेक्षेत ।”
क्षन्तव्या चेयमनपराधिनी परवती क्रीतदासो,

“देवि, त्वदीयां भाषणमङ्गीमाकर्ण्य पुनः पुनर्मवति चेत्स्त्वद्वचः श्रवणाधीरम् । परन्तु
न वयं कस्यापि निर्दोषपस्यापकाराय ।”

“देव, क्षम्यतामपराधः, देव आकृत्योच्चुलो देवदुर्विपाकेन दुरवस्थः प्रनीयते
आशुप्यतां का च न सेवा ।”

“अहमन नवीनोऽस्मि न कमपि जाने । कश्चित् कालमत्र अवस्थापयितुमिच्छामि,
त्वं यदि मत्कृते स्थानमेकं व्यवस्थापयेः, आजीवनं स्मरिष्यामि ।”

“भगवन्, निकट एवैकस्य धनिनः प्रोचं गगनचुम्बि रम्यं भवनं विद्यते ।
कमलोपवनसन्निध्यादधुनैतन्नव्यवहर्तुं शक्यते । केचनैतद्भूतावासमपि मन्वते । परं
भवनं सुभगमोर्ध्वं योग्यमस्ति । अभितो रम्या वाटिका । दक्षिणत आदर्शनिर्मल
वापी पीयूषपूर्णा । वामतश्च निपुणनिर्मितो लीलाशैलः । मध्ये च रक्तपापाणचितो
राजोचितः प्रासादः । श्रीमद्भूयो यदि रोचते विभ्रम्यतामत्र कश्चित्कालम् ।”

शब्दशास्त्राब्धिमग्नानां जलविष्टुतचेतसाम् ।

कृते द्वितीयो निश्वासः सोऽयं चन्द्रमहोपतेः ॥

श्रीनिवासशास्त्रिणा कृते चन्द्रमहोपतौ द्वितीयो निश्वासः ।

तृतीयो निःश्वासः

एताः स्रग्वल्लयसंहतिमेस्रलोत्थ-

मङ्गारनूपुरपराजितराजहंस्यः ।

कुर्वन्ति कस्य न मनो विचरां तरुण्यो

विप्रत्तमुग्धहरिणोसहरौः कटाक्षैः ॥

भर्तृहरिः

मध्ये त्रिवलीत्रिपद्यं, पीवरकुचचत्वरे च चपलदृशाम् ।

छलयति मदनपिराचः पुरुषं हि मनागपि स्खलितम् ॥

निविक्रम भट्टः

दृष्टे गमहायर्त्ते, पातयति पयोधरोन्नमनकाले ।

सरिदिव तदमनुयर्षं विवर्द्धमाना मुता पितरम् ॥

बाणः

अपहस्तितान्तरायानयानुररीकृतान् प्रसाधयतः ।

विधिरपि विभेति तस्मान्निरविद्यमं साहसं यस्य ॥

निविक्रम भट्टः

भक्तेभ्युन्मविदलनकृतभ्रमं सुप्रमन्तकप्रतिमम् ।

यमलोकदर्शनेच्छुः सिंहं बोधयति को नाम ॥

“मया धृतं यद् रावनगरं प्रति मुद्रा प्रेषिता, जपि सत्यं मनोरमे ।”

मतो—ललिते । धृतं तु मयापि चन्द्रकटाशुभात् ।

चन्द्रकटा—मामासि तिलोत्तमाऽऽह ।

ललित्वा—का तिरोत्तमा ?

चन्द्रकटा—गैव मन्त्रिणः प्रसूया दाम्नी ।

“दिमाह ?” ललित्वाया सौत्तम्यं दृष्टम् ।

चन्द्रकला—एवमाह यद् राजनगराधीशपुत्रेण सह प्रतिज्ञातचर कमलाविवाह ।
विवाहयोग्याद्य ॥ वीक्ष्य कमलापाणिपल्लव योजयितुं तिलकं प्रेषित ।

ललिता—श्रूयते यत् सौन्दर्यं स साक्षात्काम । केचन नाशिताशेषोपद्रवप्रजाभक्त
मसक्त व्यसनेषु विक्रमिण पृतावतारमर्जुन मन्यन्ते । परे च मुखमुद्रया जगदानन्दयन्त
भगवन्त चन्द्रमसमाचक्षते । इतरे चाप्रतिहतशक्तिया जगदमङ्गलविनाशनिरत भरत
व्याचक्षते । यस्य पिता प्रबलप्रमापरिभूतभूतगण कथं न स्यात् तस्य पुत्रोऽपि प्रतापपयी
परिप्लुष्टरिपुर्ः, यस्य पिता द्विधारधारासमाकृष्टशत्रुसीमतिनीसौभाग्य कथं न स्यात्
तस्य पुत्रोऽपि विजयवामभ्रूदक्षिणभुजलताभूषितकन्धर ।

मनोरमा—तदस्माकं कमला किं रते यूना ? अलङ्घ्यामरश्चरीर मार मर्त्येऽन्वेष्टुमिवा
गता, वासन्तपुष्पविकासनीकाशहासा, श्रियं, माधुर्यं, वात्सल्यं प्रेम वयोविभ्रममुद्रमती,
प्रसिद्धा हसगत्या, परागभूता प्रमदाना, अपचितिक्षेतोभवस्य, ससरण हावानां अनुजेव
मोहिन्या, अवतसभूता सौन्दर्यसरसीनाम्, निश्शेषकलालया, निरतिशयसौकुमार्या, दुर्दृश्या
दुरदृष्टै, दुर्दम्योत्साहा, विहसितहसितविधुबिम्बा, आपूर्णा प्रेममकरन्देन, निर्धने
मन्मथमहेन्द्रस्य, अधीश्वरी सुरभिनिश्वासाना विलाससदनस्य च, अपिधान वैराग्यभावाना,
अतिष्ठातशिरीषकुसुमामार्दवे, सुवर्णवर्णा, उज्ज्वला ललन्तिक्या, अभिरुपा मुखमण्डलेन,
प्रतिपन्नपदार्थतरवा, परिखेवानन्दाम्भोजे, अनुपाधिसुन्दरी कमला कथमिव प्रेक्ष्यते ।

पश्य । अलककरागरकचरणतया, स्वभावरक्तवालभास्करायितौष्ठतयाच, अचिर
मृदितरक्तबीजरकानुरक्तचरणा तत्पानरक्षौष्टी दुर्गेव, जनकप्रिया रामाभिरामा सतीव,
केशकलापाकलितललितकुसुमपरिमला, तत्त्वबोधिनी प्रशस्तपङ्क्तिज्ञा सद्भातुगणा विपुल
समासा कौमुदीव जगदमिरामा, द्विफालप्रसाधितशिरोरुहा सरणिमिवस्मरस्य प्रदर्शयन्ती,
बिन्दुभूषितभ्रूमध्या, रक्तापाङ्गस्पर्शिप्रफुल्लपुण्डरीकनयना, पद्मरागजटितस्वर्णकर्णपूरा,
उज्जतस्निग्धस्मरशराणुतीक्ष्णधोणा, रक्तोन्नतकपोला, कलङ्कमुक्तेन्दुकलाबिमलहीरक-
शकलसौन्दर्यरदनवदना, शुभ्रहारहारिवक्षस्थला, दाढिमीफलकठोरकुचा, प्रेमपूर्णनाभि
पल्लवावतापय त्रिवलीस्रोपानरम्या, प्रेमपयोधौ नौदण्डायितेनेव करयुगलेन सत्तरत्येपा
निधित निर्विवाद ललाम ललनम् ।

एनामुत्पाद्य सजातो विधातुः सौन्दर्यरचनासम्भारनिधेः कलामलापस्य च क्षयः ।
किं श्यामे ?

श्यामा—रतेः किं साम्यं कमला । साऽनङ्गस्य वनिता कोकिलवली मनोमन्दिरा ।
एषा च विद्वद्विदितवीरवरस्य यरा वनिता मनोस्मासखी ।

कदासौ शुभगाः समयः समेष्यति, चेत् मानन्दस्य चरमसीमानमाप्स्यति, यदा प्रियासखी
रक्तकुण्डलनिषद्धमणिगन्धाऽलककण्डहस्ततला परिमिताभरणा सविभ्रम भ्रमन्ती ।

कमला—तिष्ठत, न गुप्ताभिः सहाक्रीडमेप्यामि । प्रगल्भभाषिण्यो विरता एव न
भवय । यात ।

मनोरमा—चन्द्ररुले । यतः प्रभृति तं युवानमेपाऽपश्यद् विमनस्का न क्वारि शान्ति
लभते । विलक्षणधारीवीध्वप्रेरितः स युवा । मामकीर्णं मनोऽपि तस्मै ससृहम् ।
कदा स्कूर्त्वा सोऽरमाकं ज्वनिसमकालमेव समागस्य करालदृष्टं यजनैरुपवनं भाययन्तं
पथाननं पश्यत्वमगमयत्, साधारणशाश्वतिशुमिव तमकीर्यद् वस्तुतः प्रसंसनीयो विद्यते ।

चन्द्रकला—युवा तु स स्पृहणीयकर्माऽऽसीत् । सरलया निर्मयया गत्या सिंहं करवालेन
विदार्य “अस्तु यामी” ल्युक्त्वाऽनाद्यक्षितप्रशसो यथायतं प्रतिनिवृत्तः । यदि ॥ वक्ष्युल्ल-
दातु कमलास्पृहा नानुपयुक्ता वक्तुं शक्यते, इतरैर् गुणेस्तु स योभ्यतमः प्रनीयते ।

मनोरमा—परन्तु कमलाया वाग्दानं शैशव एव सञ्जातम्, नार्यकन्या जसकृत्
प्रदीयन्ते ।

अपार्तमर्त्यभीत्यपनयनमतिनि, अरुणपुरस्सरे सम्राजिगमिपति भगवति गमस्तिमात्तिनि,
रुपेता गमनवेला गन्तव्यमुदरदरीदर्पदलनायेति विचार्यैव किमिदुदधचन्तुषु पतस्त्रिप्,
असफलच्छात्रैविव शुक्लमन्तर्दधत्सुद्रुषु, प्रवण्डचण्डद्विरणमयेन प्राक्तः संघ्ना विधातुं वा
पश्चिमतट मियासति मन्दरिवि चन्द्रमसि, सरोजराजविक्रमोत्थानप्रबोधक भ्रमदुःखतपद्-
पदवन्दिनि, सूर्यचक्रवर्ति-स्त्रागतविहीर्षतसूर्यमुखपुष्पसामन्तसमुद्रसितमार्गप्राग्ते, प्राभातिक-
पायुलोलदल्ललाललिते चोपवनेऽष्टाङ्गिणमार्जनीमिर्माज्यशगत्तमांस्युदगाद् मवाचि-
तरणिसरणिः ।

रागाय रणक्षीशेयकितानितमिवामूद्रियम् । राजकमिव महाराजागमनेन सकल-
मेकपदे विचक्रास भ्रमदुःखमरं कमलजुग्म् । इतरेक्षणेन सापप्रपा इव युसुदिन्यो

मुकुलिता । श्यामले दूर्वास्थले प्रसृतास्तुहिनमणींश्चेतुमिव बालभास्करस्याभिनवा
किरावली स्वर्णरेख विशदनीलाम्बरतो हसन्ती विवसन्ती नीचैरवतरति स्म ।

निकुञ्जेषु वनेषु वसतां पक्षिणां दिनेशागमनजयशब्देनैव विरावेण मुररित
बभौ विधम् । चलुश्च ते प्रणमन्त इव विहायसम् । बिकासभाज उपवममुमनसो
विटपाश्वान्तानदमुधापानाय प्रतीक्षमाणा इवासन् । विविधसुसुमाना मादकेनामादेन
कोण कोण मुदितम् ।

मनोरमा कदम्बकुसुमस्तम्ब ललिताया सीमते यस्यती तस्या कर्णे कूचकार ।
सा च ता पुष्पस्रजा तताड । श्यामा च न्यायाधीशता सम्पद्य पश्यविपक्ष शुश्राव ।
चन्द्रकला च प्राडिवाकीभूय बभौ विचित्रयुक्तिमिरयुक्तमपि युक्तयितुमचेष्टत । शिरीष
कुसुमकरा कमला मञ्जिकावल्लीवितानेध्वलिकेलिलीला पश्यती मञ्जुमञ्जरीमण्डित
महीरुहमण्डपेप पुँस्कोक्त्रिणान् प्रक्षमाणा करकनिष्ठकानिष्ठयोर्मिकया दीप्ता कुसुममाला
तज्ज्या लोलयत्येकाकिनी भ्रमतिस्म । शीतत्रमुरभिसमीरविल्ललिता तस्याः श्यामश्यामा
कुक्षितकुक्षिता मसृगमसृणा स्नेहवर्दिताऽल्लकावली सर्पिणीव नितम्बेऽवरोहत्यापाद
मसृताऽऽसीत् । सुवर्णप्रसूनाऽल्लभ्यतनुसयोगा नवनीतनिर्मितेव मृदुला तस्या शाटी
बायुलोल काठिन्येन सन्निवृत्ते स्म । क्षणमव्यक्त कण्ठेन कूजन्ती सा स्फट जगौ —

कुडमला दधति च्छवि मातरिध्वविचालिता । (स्थायी)

(१)

ध्वनिनामुना सर्वा सरय सद्गीभूता क्रमशो जगु —

मनोरमा० । योमिहृदय कामिनीनां लिम्पते योगात्स्वरम् ।
पुष्पपक्ष भोगतो मस्तो हि भूता शङ्किता ।

(२)

चन्द्रकला० । चम्पको बकुलो रसालो मालतीगणिकागण
चन्दोवरनीरुतश्च तसां हारीमत ।

(३)

ललिता० । वायुश्रीना पुष्पपक्षि भिन्नवर्णमनोहरा
पद्ममध्ये राजते कातेव कातविमर्दिता ।

(४)

दयामा० । पूर्वसंयोगे यथा ललनामुत्तं परिवर्तते
मधुरोपपत्तन्मु तद्वद् विचलिता उषवनलताः ।

(५)

कमला० । अर्द्धफुल्ले पद्महृन्दे नीरजं शतपत्रपृन्
धोनिवासो देवहृन्दे शोभते बाष्पीस्थितः ।

*

*

*

एकाकिनी, अनीकिनी च कामस्य कमला, एकस्यां निम्बाप्रोदुम्बरकदम्बजम्बू-
जम्बीरसोमितायां, शल्लिलवकुलकुलसंजुलायां, कर्णचूचूकम्बुपुरायां लोलशाललितायां,
मधुराश्वेतशिलायां कमलकुड्मलेऽन् सानन्दमुपविष्टा कमलेव राजते ।

अकरमावेको मधुरोऽश्वपावनप्यनिः कमलाकर्णं स्पृष्ट्वा नेत्रे चञ्चलीयकार । सा
क्षणेनैव स्थिरोभूय प्वनिः कस्याः दिशः समेतीति निश्चित्वापश्यद् यदेका रक्षवेशा
चलमूर्ध्वभाऽधमाह्लाऽगुह्रिणमर्त्तं धावयति ।

कमलाऽऽलेटनिपुणाऽऽमोन् । सा तस्मिन् सान्धे सुमयममये मनोविनोदाय
प्रहृष्टैकगुहा सन्याजेष्टवेदामागोज्य स्वीयमधमादय्य तामन्वेव प्रस्थिता । सा
ऽपरपथेन हरिणमतुत्राय पूर्वमेव हन्तुमना द्रुतगत्याऽधन्वालयाम्ब । मनोरमापि
तामेकाकिनीं गच्छन्तीं दृष्ट्वाऽपराधमादय्यानुमस्र । कमलैच्छद् यत् परपथेन पूर्वं
गम्या हरिणं निहत्येतां लज्जयिष्यामि, परन्तु मार्गान्तरमस्मिन् समधोव्यतीतः ।
हरिणं प्राप्य साऽपश्यद् यत् स जीवन्नेशान् शम्भवे । कमला शरं शरामन
आयोज्य सारथेव दिष्टुं कक्षीकृत्य विप्रवर्ज । परन्तु कस्यं चलमासोन् । बाणो
हरिणागदत् रत्नदमादृत्य पतितः । कमलाऽपश्यद् यद् यं सा त्रिन्ममन्दत स पुरुषोऽस्ति ।
उत्तेपच्छिन्नं बाहुं करप्रोष्ठनेनाग्रप्य कमलां दृष्ट्वा जत्वा प्रतिशोधमनिन्दयपि तस्या
वीणाभिमानं नमयन्मधुरे तर्पयामं बाणं प्राधिपन् । अश्वधानुताऽऽधातेन
तथोच्छलितोयथा कमला पद्मार्थं भूमिमालिङ्गयामन् । सच मत्सरं कमला-
मुपायैकरिम् न शिलफल्लटे विधनयितुमनीय विवशति तावदेव लज्जतेतनो-
दायः—

“आ ! त्वमसि वीर ! अस्माकं सिंहात्ताताऽनाशसितपुरस्कार अस्मान् वशयितुं स्त्रीवेशमिवाधायऽन भ्रमसि”

“नात्रवधना, आज्ञापय तव काम-चर्चनावचराम । पिपासिताचेज्जलमानयाम, बुभुक्षिता चेत् फलान्याहराम । क्लेशिता चेत् क्लेशमपनयाम । मन्ये कापि देवी त्वं भुवि भ्रमणायान्वतीर्णा ।”

“कस्त्व पौनःपुन्येनैषु दिनेष्वितोऽवलोक्यते ?”

‘देवि ! नाहमस्म्येतद्देशीय । द्वित्रैः समाहै शुणाश्वरन्यायेनेतं समागतोऽस्मि, निवसामि च पाश्चैः श्रीसिद्धेश्वरदेवस्याश्रमे । मनोविनोदाय कदाचन विमलपुरं गामि । वात्मल्यपूर्णेन देवेन सहयोगी हरिणशिष्टुरयं मह्यं प्रदत्त । मार्ग एव श्रीमत्या भवनं विद्यतेऽतः श्रीमत्या दर्शनं द्वित्रिर्जातम् । यदि कापि नुत्तिश्चेत् क्षन्तव्योऽहं नवीनः । अधुना देवस्य सन्ध्यावेला विद्यते, अपलोऽयं हरिणशिष्टुरितस्ततो ब्रजति, अतएनमप्यश्व उपवेश्य शीघ्रं यास्यामोतिबुद्धयाऽहमेनं ग्रहीतुकाम आस परं श्रीमत्या बाणेन व्यापातं कृतं । अधुनाहं श्रीमतीं प्रसायानुचिताचरणाय गामि”

स च हरिणशिष्टुना सहैवाश्वमारुह्योत्तरमप्रतीक्षमाणो यथा प्रचलितस्तथैव मनो रमोपेता । कमला चान्वधवारं पश्यन्ती स्तब्धैव तस्थौ ।

“कमले, स्पष्टं कथय युवयोर्यवहारेण किमपि ज्ञातुमनुमातुं च शक्यते” मनोरमयो चे । कोय मनुष्यमात्रनिपिदमङ्गनोपवनप्रान्तं निःशङ्कमप्यास्ते । अनङ्ग ? विचित्रोऽसि, अङ्गीव बैलक्षण्यमापादयसि, त्वं यदि देही स्यास्त्वत्कर्म कोऽनुमातुं शक्नुयात् । प्रातर्विवाहवार्त्तयैवार्त्तां सखी समवारुहत् सैव कमला धैर्यधरमरेण स्मरेण लक्ष्मीकृता ? स्मर ? स्मर्तव्यं कृतोऽपि पुरमिदाऽशेषे जागर्षि जगति ।

हर्षेऽपि विषं भवति सौन्दर्येऽपि गरलम् । तव दर्शनसमकालमेव यूनोऽस्य प्रवचन-चातुरी भग्ना, कठोरं मनः सुन्दरीदर्शनेन द्रुतम् । तोमस्तोमसहस्रपि वपुर्वैपते स्म ! करिकरकठोरोऽपि करोऽकम्पतः कदलीदलमिव । य उत्कूर्दमानः केशरिक्किशोरमपि भूमिशायिनं व्यधितः ॥ त्वां प्रेक्ष्य स्वलज्जान्न सञ्जातः । येन कदापि गजेन्द्रकुम्भविदारिणो हरेः पृष्ठमप्रणाशय न मुक्तः स एवायं स्वेदप्रातस्तस्त्वापराधमविगणय्य त्वामेव क्षमामभिक्षतः ।

जाने विलङ्घ्योऽयं स्मरस्तस्य लीला च । अस्त्वेन कृपया मोहिता दलः सुरां विहस्य
मयं पपुः, मगवान् निष्पुरुषि तुल्यप्रेमपिपासुश्छर्तं रचयामास, कृष्णोऽपि राधा-
पादाराधनाश्विरं विदधे, मोहिनीमत्तश्चिबोऽपि निष्पुबिरस्त्रिवेद, परस्त्वहृततुल्यस्वभावे
नवीनेऽस्मिन् यूनि त्वदीयो भावोऽनुचिन्ताचारतां प्रकटयति । कमले । ॐ लीला सि ॥”
सा चानुत्तरन्त्यश्रमादगोह ।

*

*

*

“अमात्य । कमलाऽवानन्दिताचित्ता, शून्यमानसेव सालस्रगमना, द्योतितहृदयेन
प्रक्षिप्तेनरा, कोणे पश्यन्तीवाल्लसन्निद्रैवान्धमनस्त्वेव वर्तते । केयं दद्या पुन्याः ।
परिणयस्यावस्थोपस्थिता । यश्चैतस्य स्थिरीकृतो वरः सोऽपि न लब्धः । मत्तमीवं
नाधिकं तिष्ठति, प्राप्तकालिकं वन्दनं विधाय भर्तेवापसर्पति । ह्यस्तु कमलाऽऽमलैव
नहि, ध्रुवं तस्याः शिरोस्तिविद्यते । किं करणीयम् । खिन्नोऽस्मि” उच्छ्वसना राशौचे ।

अमात्य०—“नहि देव, चान्तं पापम् । जने विनयशालिनीं तपस्विनीं मुग्धां
कमलाम् । वपःस्वभावोऽयम् । यदि कथनं व्याधि, सम्बन्धेऽस्मिन् सर्वं विमृश्य
सुचयिष्यामि” ।

*

*

*

अथ विमलपुरसंस्करणं पुनः पताकाभिरवीज्यत । पुनः सैनिकावलज्जनींश्चकितयामास ।
पुनर्गारीनेप्राणि यत्तायनेभ्यो बहिर्निपेनुः । पुनरुपवकोलहलो दिगन्तन्मुलपमास ।
पुनर्बहुलगन्धो अनुरागप्रमयत् । पुनर्बाधानां तडतडता चण्टो रीरवतां वमज ।

अपराधकालः । राजोरामपालस्य समाय अवसमुद्येन व्याप्ता यत्तवे । राखुमारं प
इन्द्रमुदे सिहो हतः, बालोत्साहवर्द्धन लसकः । अग्निन्नेबोत्सवे धानुकाणां परीक्षायां
यिवत्तिक एओदीपः प्रज्वलमिष्यते । यः कोऽपि धनुष्को मण्यमां वसिष्ठमगदरिष्यति,
यनिवापपम्नुने स समिद्धेवं पुरस्करिष्यते ।

अयोध्याः स्वर्णसिंहासनासीने राक्षि, दक्षिणतथ पांटीरिष्यते राखुमारो, राखुमायां
कमलयां, पतिवध यथा स्थानं स्थितेषु मण्डेषु सनुरिष्यतेषु च बहुषु धानुष्केषु, द्वास्त्यः
प्रविश्य विद्वयं व्याहृत्य “कथितस्य धनुष्कर्ता स्यादयन् द्वारेदेने तिष्ठति, अग्रे देवः
प्रमज” मिदाह ।

‘प्रवेशय — दत्ताज्ञे महीपतौ प्राविशदेको युवा ।

युवासौ महाजनकीर्तिपुचोद्भूताखिलाङ्ग इव तेजस्वी गुरभिचिह्नैः कुञ्चितकृष्णैः
लोलविलम्बिभिः कर्चैर्निचितशिरस्क कटिलम्बमानद्विधार सिंह इव निर्भीक परम
रमणीयोऽस्ति । यस्य प्रलम्बखणपट्टाष्टमीचन्द्रशकलानुकारी, ललाटपट्टः, पर्यस्तालक
मेघच्छन्नमुदवाधवधधुर मुख, ईषदुमिपच्छमधुरुत्तरोष्ठ, विस्तृते कर्णे मासलो
नता ग्रीवा नासाच, विद्रुमारकोऽधरो मासलौस्कधौ परिणादि पीनमुर, कृशमुदर
करिकराघातसह सक्थियुगल महत्ता सूचयन्ति । समासाद्भिः शृङ्गारवीरसविनिर्मितावयव-
स सप्रेम प्रैक्षि । राज्ञोऽपि परमरम्येऽस्मिन् यूनि स्पृहामती निपपात दृष्टिः । अभूच्च
तयोरालाप —

महाराज — बीरवर ! कुत समागमनम् ?

युवा — देव सुदूरमरमनगर राजपुरम् । शुणाक्षरयायेनेत समागतोऽस्मि ।
अद्य धानुष्काणां परीक्षायोजनस्य प्रत्यक्षानन्दानुभूत्यै समागतोऽस्मि ।

महा० — किन्ते नाम ।

युवा — देव ! शशधर ।

महा० — समासादित पाटव कस्मिन्नपि कार्ये ?

युवा — आ महाराज ।

महा० — केय केय ?

शश० — प्रायशः सर्वेषु

महा० — का जातिरप्यक्रियते सर्वज्ञः ।

शश० — (किञ्चित्प्रज्वलित इव) देव क्षत्रियोऽस्मि ।

महा० — (आसनं निर्दिशन्) उपविश ।

समये धानुष्काणां परीक्षा प्रारब्धा । पञ्चाशद्वस्तानन्तरं दीप एक प्रज्वलित
आसीत्, यस्मिंस्त्रिस्तो वृत्तिका अङ्ग यनन्तरं प्रज्वलन्त्य आसन् । मोक्षार उल्लिखिता ।
केचन याजवगेन वृत्तित्रयमेव निर्वापयामासु । एकस्तु दीपमेव पर्यवर्त्तयत् ।
पुनरपरो दीप आयोजितः । पुनरेको यज्ञोऽर्थी शरमसाधयत्, परंतु वृत्तित्रयमेव स
नीतवान् निरवापयच्च सर्वा ।

महाराज इक्षितेन शशधरमासृजयन् । धानुष्कैः सेष्यं सानृतं बोधित एष लघीयसा हस्तेन
शरासनमावृष्य शरं व्यसृजन्निस्वापयच्च मध्यमां वर्त्तिकाम् ।

महा०—धन्यो धन्यः । नितरां प्रसीदामि । युवासौ विवक्षणो विचक्षणः । शशधर !
नियुक्तस्त्वमद्य सत्यः । समाभवने तत्रोपस्थितिः प्रतिदिनमवश्यम्भवेत् । कोशाध्यक्ष
प्रतिदिनमस्मै शतं मुद्राः प्रदेयाः, अद्य पुरस्कारभूताः स्वर्णस्य सहस्रमुद्राश्च ।

“देवस्याऽऽजयाऽऽहमपि किञ्चिद् विवक्षामि तुप्यस्तु देवः”—इत्याय राजकुमार्यौचैः ।

महाराजः—आम् वाम् ।

कमला०—धीमते पूर्वमेव निवेदितमस्मि यदहमेकदा प्रातरैवोपवनं गता पशानन-
प्रेक्षिता प्राणाय साहस्यमयायिषि, तदाऽयमेव युवा पुत्रोऽप्यागलं मामरक्षयत्, अदत्त-
परिचयः पुरस्कारानमिलापः साधुवादमप्यगृहीत्वाऽऽमृतः । स एवायमद्य धानुष्क-
परीक्षायां प्रथममायातः सविशेषमस्मामिर्मन्तव्यः । श्रीमतामाश्रयाऽहमस्मै प्राप्त-
पञ्चक पुरस्करोमि, प्रार्थये च यद्यमेव वीरो मद्भवनस्य प्रधानव्यवस्थापको भवेत् ।

महा०—अहं मनुनोदयामि । भवनस्य द्वारशाला शशधरस्यावासः स्यात् ।

*

*

*

“कमले, केय दशा, कापि क्षान्ति न लभसे । सर्वं दिन सर्वां विमादरीञ्च विचार
एव व्यतियापयसि । सावधान ॥ दृष्टोपि, वत्कण्ठितेव दरोदृश्यसे । आचारैः कम-
प्यालागि हसति, सपालमगद्वह । प्राक्तः सखीभिः क्वच क्वचमप्युत्साहिता ताभ्यः संवृत-
रुत्तेव “कोलाहलं श्रोतुं नोत्सहेते श्रोत्रे एकाकिन्धेव वास्याम्युपरममिति” व्याजेनेवो
पवनमुपैषि । प्रतिक्षणं विचारपयोनिधी निमग्नेव प्रेत्यसे । कौशिकीन स्र्वातपाद्
विभेषि चन्द्रिकाचयान् । सुखमये मृश दृश्यसे । सानुन्यं विविक्षापि विना स्वपिपि,
स्वप्ने हससि, अस्पृष्टशरं किमपि वसि भित्तिचित्रैः क्षिप्तप्यालरसि । रात्री भ्रमन्ती
तमगणपन्तो किमपि प्रलयसि । सत्तज्जेव दृश्यते कनोलशली, दुष्को निम्बापरो
मदननालशेष तनुल्लाऽङ्गेषु गौरवम् । रश्यं निहप्य केय स्थितिः” ।

कमला—नहि नहि । भ्रमाभिभूतासि मनोरमे, ह्युपरिवर्तनवन्देयमस्त्वस्यता,
नान्यः को विरोधः ।

मनो०—जाने, अहं योमत्याः सदृचयस्मि । यैशवन एव भवत्याः मनोदशां

मनोव्यथाम् सम्यग् बुध्ये । नेदृष्टुपस्वित्तनं कदाप्यनुभूतम्, विशब्धं सूचय यथाशक्यं यतिष्ये । अहमप्यभिन्नप्राणा एव । सूचय किमस्मिन् यूनि तव विशिष्टा स्पृहा ?

कम०—जाने नहि का स्पृहा नाम । किन्त्वेका मधुराऽनभिव्यक्ता श्रद्धेव तस्मिन् मम वर्तते । यतदिनेऽहमुपवन गता दीर्घिकायास्तटे शिलातलमुपविष्टा किमपि विचारयन्त्यासम् । पार्श्व एव मदीयं प्रियं सहचरो हरिणशिशुरप्यासीत् । अहं शिशुना मनो विनोदयन्ती जगज्जालेन विभुर्ध्वं मानसं सान्त्वयन्ती कदाचन तं हस्तेन परामृशन्ती, रोमराजिं निपुणमीक्षमाणा, दाक्षिमीबीजाभा तस्य दन्तपंक्तिं गणयन्त्यासम् । मन्द मन्द मास्तोऽप्यतेरम् । सान्ध्यगगनस्य लोहित्यं दीर्घिकायां सिन्दूर-द्रवस्य भ्रमसुरपादयति स्म, पवनप्रेरितेषु तरङ्गेषु शिशोः प्रतिमूर्तिरनुपनेयां कान्तिं प्रकटयतिस्म । नितरां चञ्चल आसीद्वरिणशिशुः विचित्रा च ममावस्था । अहं दीर्घिकाजलेन प्रसृतिमापूर्य हरिणशिशवे पाययितुं प्ररुता । अकरमादेव मम दृष्टिः सम्मुखीनसान्ध्यशङ्कुनिकलप्रव प्रति प्ररुता, एवमास्मात् प्रसृतिरपि विदूरीभूता । शिशुधाय केवल प्रसृतिदृष्टिर्यावदग्रे प्रासरत्, तावदेव स्खलितचरणौ गृहीतोदीर्घिकया । शिशोस्तरणशक्तिदुर्बलाऽऽसीद् वापोभित्तिश्च बहिरयने बाधिका, स क्षणेन खिलोऽभवत् । अहं प्रियमाण तं नावलोकयितुमशकम् । जलतरण-शिक्षाधिगतसाहसा, प्राणिप्राणनेच्छया बाष्पां निपत्य शिक्षासम्पादितपाटवा विविधैः प्रकारैर्जलमवापाक्षि । एषुदिनेषु मम स्वास्थ्यमुत्साहो मनस्वित्तिश्च न शोभना, वस्त्राणि च विशृङ्खलान्यासन् । परं तथाप्यहं शिशुमग्रहीय किन्तु चञ्चलोमीतं सन्नस्तः ■ सपद्येव ममहस्तामिसृतः । एतेषु दिवसेष्वहं जले विहरन्ती नासम् । स्वपेनैव समयेन थान्ता । आर्द्राशाटी मां पाशवदमान्सीत् । एका ईदृगवस्था कथमस्यां सुदीर्घायां दीर्घिकायां पारमाप्यामीति विचार्य मम मनो धैर्यमजहात् । मम जीवनाशा महता बलेन “आत, त्त ॥ निमज्जामि, निमज्जामि” इत्यवोचत् ।

अषटनीयषटनापटीयसः पाटव 'खाटपाटस्य को जानीते । विद्वेश्वरो यमवति तस्य कृपापूर्णां दृष्टिर्यं दयते तस्य नास्ति ह्यपि भीतिलेशोऽपि । तदायमेव युवा

भगवत्प्रेरित इव मष्टित्यामल्य मां हरिणश्च कूळमानीय, तार्णपार्णस्याग्नेः प्रवन्धं
विधाय मामुद्योषितवान् । राङ्गनास्तृते इव मृदुले दूर्वातले मूलच्छिन्ना कट्लीवाहं
प्रमृताऽऽसम् । मृगशिशुरपि लब्धयोगोऽन्तेवासीव पार्श्वे आसीत् ।

वह्निना व्यञ्जनेन द्विजकलरैषधोन्मीलितनयनाहं भ्रमस्वेदबिन्दुमातविषण्णमुत्त,
मलङ्काकुलमूर्धानं प्रेक्ष्यासुं युवानमुत्थातुमनाः “भगवति, अस्वस्थानि तेऽङ्गानि
किमत्कालमाश्वासोत्प्रापसि”—इत्युक्त्वा किमत्कलं विभ्रम्यावाप्तं प्रतिनिवृत्ता । सोऽयं
सखि, महानुभावो मधुरसपुरमास्त्रयन्, दयनरातैः समये दयमान आभारिणीं कृतवानस्ति ।
भातीया संस्कृतिर्जीवनदात्रे जीवनदानेनाप्यावृण्यमासादयितुं मां प्रेरयति । अहं त्वां
निषौजयामि यदस्य पूर्णः पश्चिमः प्राप्तव्यः ।

*

*

*

“तपस्विनी तरुणी कामकेलिवलन्यवैदग्ध्या मुग्धा, मृषालविशदप्रभा सजीवेव मणि
मुद्रिका भ्रमूषितननुल्लाभ, वामकरतलविन्यस्तकरीलपाळीक्य अनधिगतनिश्चातन्द्रा रहस्तप-
माधिरय किमपि विचारयन्ती मध्ये मध्ये छत्राप्य गवाशतो द्वास्तो नभस्तः कमपि
गवेपयन्ती वर्तते कमला । अहह केयं दत्ता राजकुमार्याः”—उद्यानपालिकया
चिन्तितम् ।

“हन्त, अहमेवस्या दशम्या करणे मुख्यास्मि । कमलया विगीती वचनीयता-
याद्याहमेन प्रधानं निदानमस्मि । हन्त ! मृतास्मि । पापपिडारय सन्निवृत्तमवसानम् ।”

“इतश्च पश्यामि दशधरस्य दशमपि । स च सर्वाण्यहानि यामिनीश्च नेत्रयो-
र्मध्यतएव व्यतिगमयति ; तस्य सङ्गम्युत्तमिव चेतः क्षापि स्थापि नास्ति । सर्वं
दिनमभ्युपानमेव दानयति । निरुज्ज्वल वासः, अनिमिषदर्शनं, अनारतं निचारः अपरे तर्जनी,
मनस्यशाभवानानि, तारासंख्यानमिन्येतस्या इव तस्यापि दिनक्या रात्रिक्या चालि ।”

*

*

*

गन्धपुञ्जगतोऽस्तम् । क्षणेन क्षणदा क्षोधात्पराः क्षमेव समाजगम । क्षपा-
प्रदुर्भावात्तामिव विदुः फलनाशकुन्ताः शकुन्ताः । क्षितिः क्षण सान्ध्य विधि
क्षिपानुं मौनमिव दधौ । प्रदोष पूर्वरात्रौ मण्याग्र्यो निर्दोषः प्रदरिण ह्य स्वं स
कार्यमश्रुत्यमनुवं । विशदेध्याः साम्राज्यमेधायके । मञ्जिष्ठापशब्दनिमाकप्योप्येकणा,

ध्रमद्भ्रमरगुञ्जनमपि विभाव्य विशिस्तवयना वृत्तिमुजः प्रहस्तिोऽपि तन्द्राभिभूतकाया मध्येमन्दनिद्रं श्लिष्टभित्तयः पतन्तो जागरणं लभन्ते ।

परितो रम्यपुष्पाटिकं विशालमदो भवनम् । द्विपदश्चननिर्मितत्रिचित्रचित्रकवाटानि शोभन्त आवासभवनानि । अग्निभित्ति स्वर्णपग्विरणानि, भित्तिप्रतिष्ठितद्विपदन्तपीठ-प्रतिष्ठितानिः महान्त उत्तेजसो भूयांसो मुकुराः, उपर्यसितस्येतशोणितहरितानि काचभाण्डानि बह्व्यो विटपाः शोभा संबर्द्धयन्तोऽवलम्बन्ते । येष्वगुरुघनसारपृत्तयो दीपाः सौरभेन सह प्रकाशन्ते । अग्नितो भवनं देवानां, अनुकरणीयचरितानां प्रतापप्रभृतीनां राज्ञां सज्जीवानीव चेतोहराणि चित्राणि । मणिमयमुष्टिकाप्वलमारीपु विस्मृताच्छादनानि सुगन्धिद्रव्याणि घ्राणतर्पयन्ति । नागदन्तेषु शुक्रपिकसारसार्गा सौवर्णानि गृह्णाणि निपतत्सुधामयूखमयूखै राक्षतानीव प्रेक्षन्ते ।

अथ पथनपथपार्थप्रसुप्तां, उन्मुखमयूखजितचन्द्रेणेव द्विरददशनेन निर्मितचतुष्पादे गगनापगापयःकेनपटलायितप्रशस्तनूले, चित्रितकौशेयोत्तरच्छदे सौषवर्हे, पद्मामिव पुण्डरीक-पटले, वरटामिव हंसपल्लवौ पल्लवद्वये शयानां ददर्श कमलाम् । कमलामुखचन्द्र तन्मुत्तमुपमां निपीय कृत्यन्ती चन्द्रिकाऽपूर्वां छवि चित्रयते स्म । मुकुरेषु कमलाप्रतिष्ठतिः प्रकृति विकुरुते स्म । रक्षा कौशेयी शट्टी तस्या अङ्गमादिलब्ध सुप्ताऽऽसीत् । सूक्ष्मेण पादध्वनिनोज्झिता न्यक्कृतामरकामिनी कमलोत्थाय सण-सणायमानभूषणं स्पृष्ट्वा करेण श्रियसखीं प्रियोदन्तप्रातिप्रहर्षरुद्धकण्ठा वक्तुमसमर्था सुधाविनिन्दकेन स्मितेन पूजयन्ती, मृणालझोमलाभ्यांरुम्यामापृष्ट्याऽऽसन्दी तत्रोपवेशयन्ती भित्तिमञ्जूपातः सौवर्णी पेडिकामेका नि-सार्य तत्र पृतानां पूगानां शङ्कुलया शकलानि विधाय एलागुरुपत्रजसुधा-शातपुष्पकेशरमुगमप्रसहित विरचय्य नागवल्लीदलं वीटिकां स्वहस्तेन ददती “कथय मनोरमे ! क उदन्तः” धीरतां विहायावोचत् ।

“धैर्यमाधरस्व सर्वं सूचयामि”—

इतः समायाते शशधरेऽहमेकदा तस्य वासस्थानं भूतावासमगच्छम् । मया द्वित्रैदिन-निर्णीतं दच्छशधरः कदाचन सिद्धेश्वराश्रमे बहुशब्द भूतावासे स्वपिति । स्थान-न्तिवदं रमणीयं परं वासाम्भावाद् विरुपतां प्राप्तमासीत् । घूलिप्राचुर्यात् पदपङ्क्तिः स्पष्टमव-लोन्मयतेस्म । अहं सोपानेन द्वितीयभूमौ गत्वा एकमावास्योद्घाट्याद्राक्षम् । एकस्मिन्

लोहमय द्वित्राणि पुस्तकानि दैनन्दिनी, समानारपत्रं मघीपात्रं लेखनी चासीदेक-
स्मिन् कोणे च शयनस्य व्यवस्था । अहं क्षणेनैव सर्वं बोध्य दैनन्दिनीमाश्रयापठम् ।
सैषा दैनन्दिनी मासचतुष्टयेनारब्धाऽऽसीत् । एषः प्रतीवतेस्म गत्लेखकेन मासद्वयस्य-
वृत्तमेकस्मिन् दिनएव लिखितम् । इतरमासद्वयस्य च वृत्तं प्रतिदिनं विस्तरशोलिखित-
मासीत्तस्य सारोऽस्ति यदसौ राजनगरस्य राज्ञोन्वेन्दोः पुत्रश्चन्द्रोऽस्ति, रोऽस्ति
यौवराज्याभिषेकदिन आयेत्यर्थं सिंहपृष्ठानुगामिनः सहस्रपत्रस्यास्य नद्यां पातोजातः ।
दिनत्रयानन्तरं चायं नयोत्थमानः सिद्धेश्वरेण निष्कासित उपगरितश्च । अत्र लेखकेन
सर्वातिशायिनी श्रद्धा सिद्धेश्वरे प्रकटिता । उत्स्रापेन विमलसुरेक्षणाय समागतानुता
घिदात्तव रक्षा कृता । अत्र लेखकेन त्वयि शब्दसौष्टवं प्रयुक्तम् । धानुष्करीशायी
समुत्तीर्णतानन्तरं प्रतिदिनमनेन दैनान्दिनी लिखितेति “अयं” “अद्य” शब्दैः प्रतीयते ।
एकं प्रतिज्ञापत्रमपि महाराजहस्ताक्षरैर्दत्तं तत्रैवासीद् यस्मिंदचन्द्रेण सह तव
विवाहस्य पण आसीत् । एषु पत्रेषु लेखकेन स्वस्या विपत्तेर्विषयं सजीवं विवाण-
मलेरि येन मम लोचनयोर्वेपत्तुं शक्तिभूत् । अनुकूलप्राप्तिं तव हृदयं विचार्य मम मन
आनन्देन पूर्णम् । उत्कण्ठास्पानं धैर्येण धृतम् । आश्रया स्वर्गमुकान्यनुभूतानि
कम्पता करेण मया तत्रैव पुस्तकं न्यधायि । सोऽयं, यस्य त्वं दर्शनात् प्रागेव भूरिभूरि
प्रशंसामाकर्णितवती, यस्य च भीरतां व्यपवन्न बहुधाः प्रेक्षितवती, देवेन तव पाणिर्धस्य
कमलकमनीये करिकरकठोरे करे दातुं स्थिरीकृतोऽस्ति, यस्य च चरणयोराजजीवन-
सर्वस्वं निधाय तत्पेदस्वेदविन्दुगुन्दविदलनस्पृहा तच्छरणेभूजिपृक्षा च त्वां क्षपलयति स्म,
यसुहृत्स्याशातप्रवेशोऽयं स्मरोऽसूर्यम्पद्यां त्वां विरुहोति, ॥ शुद्धमानसपरिचितस्वो
भाषी भर्ता चन्द्र एव शशकरोस्ति” इति ।

प्रेमाभ्रूणि क्षावयन्ती बाष्पानरुद्धकण्ठा कमला च तां उप्रेम आलिलिङ्ग ।

*

*

*

शत्रुरयं वसन्तः होलिकोत्सवश्च । सप्तद्वन्द्वीन्मम्बरम् । नातिशोतोष्णो वातस्तनुं
सुखयति । उदयो महता प्रयासेन घगत्तमोऽपहन्तुं प्रयन्ते । राजेवावृतकार्यान् विज्ञाय
सैनिकान् पृथक्कामोखर्गवेत्तोऽन्नेयन्तमोऽपहन्तुमुपस्थितश्चन्द्रः । राजतैर्वागिरिव क्षिणैर्हेत्यु-
नाशितन्तमः । विचरन्त तेन मनोमोक्षता विजयेन धन्यवादमिन् ।

सर्वत्रगत् । विजयपटहृद्यामिव चक्रुर्नवोद्धा बल्यनुपुरमणिमञ्जीरशिशितम् । निशान्तेषु प्रसुप्तकान्तावसनध्वजच्छलेन भुवने विस्तारयामासेव विजय वायु ।

अद्यतनेषु दिनेषु सर्वत्र भङ्गाभवान्या सप्रेम पूजनम् । साहि परुषकवेल्लजवाताद द्राक्षाखाखसबीजपद्मबकुलदलमिथा मिश्रेयदुग्धसितस्रसज्जिनी, अङ्गिनां साङ्गमामोद विनोद नोदयति । सम्प्रत्यहिफेन आदिष्यते आसव आसूयते, निकुञ्जेय गङ्गाया अनिमृता सेवा । गुलालस्य कथैवका, याया बोधिस्वलोक्यते गुलालरचितेवामाति । आरुणवासहया स्त्रीनिविशेय पुरया विदूरतो वीक्ष्यते । बहुविधरागपूर्णं निर्मरैर्जना जगदेव रञ्जयन्ति । वराकाला गदभानामयत्वे गरीयसो दुःखस्य समय उपस्थित । एते यत्र कापि भ्रष्ट कूपनिपाने निपतितगृहकोणे इमशानगृहे वाऽऽत्मान तिरोभावयन्ति तत्रैवैते नागरिका दुर्गला एतेषा वराकाणा पृष्ठ न शूय कुर्वन्ते । ताञ्चमाना धान्यमाना रैक्षारशब्देनान्यान् सहयोगिन सूचयन्त इव व्यथा प्रकटयन्त इवाभित प्रक्ष्यन्ते । अदलीलशब्दैरनुकमल मानन्दसाम्राज्यमनुभूयते ।

एकतो मनुष्या महता चर्मनद्धेन उवकेन सहोद्दोकार कायन्ति, इतरतश्च कामिय सब्रह्मसणत्कार तार गायन्ति । एकतो युवानो मध्यमृतमुखा वत्सूलन्यासेन स्थिता दण्डखण्डेन दण्डखण्डे वादयन्तो गा दहदहयन्ते । अन्यतश्च बधून्त्रो यौवनच्छटा वचसा वाससा, निरीक्षणै, भूषणध्वलेन, गमनेन, हावै, हांसिनोद्गमनस्य खेलायन्ति । कचन काश्मीरागुरुपूणा मुष्टिरामृश्यते कचन भस्मगोमयगोमूत्राणि निषिच्यन्ते । प्रतीयते सवरसरसविता पाशवप्रशक्ति पुमानशेषेण प्रमादुर्द्व सज्जते ।

विविधकृपा सविमाना साधवा सभस्मचूर्णा चरकसहितेव बभी होलिका । सुश्रुता बामभटेन वेनाप्यनुसारेण नावतस्थे ।

भन्दनविनन्दनेन, पादपातितचैत्ररथपरिमलेन सकलससारयुगचसारसृतेनेव कान्य शुन्जोद्भवेन त्रितेन्द्रियाणामपि प्राणमाकुर्यता, सुरमिलोत्पुमिलि दृष्टविहितविधानेन निर्हारिणा इवेण पूरिता होलिकोत्सवाय परिक्रमलामवन स्थापिता शुभ्रमणिखचिता नील रथभिर्मिता तारकितमिवनभोऽनुसृत्य स्नानजलकुण्डिका विशेषतो भवन भासयति । समयेऽरिमन्त्रविगणप्य कमलिनीसङ्कोचशोक शैलम्यकदम्बेनारब्धा मङ्कतिरनुगुण्य

द्रवम् । आमोदिना तेन दिशः प्रसेदुः । जन्ममूर्खि सौरमस्य प्रभवमिव पद्मिन्याः कमला-
मवनमवर्तत ।

अथ क्षिपतमोदतायां सलतकूर्दतायां दृक्षितदृष्टतायां क्रमशः शान्तायां सर्वदिन-
म्यम्रेषु शय्यापातं सुतेषु निखिलेष्वेका नीलता पतितः प्रासाद्यते ।

मनोरमा हर्म्यस्य कोणं कोणं सायद्धं पश्यन्ती गतोपक्रम्यम् । सा च सत्वर-
कुर्यात् कुचमरमन्वराऽऽक्रम्यमाणेन विपुलेन वपनस्थलेन मन्दोदरी पत्यर्थं पाणिं सस्मितं
कुवल्यासणेन वराप्रेष ।

एकस्यां मितिमन्मूषायां काचमुटयो निर्मल आसन् । मनोरमयाऽऽहृष्य जलेनापूरि ।
इतः कमल्यापि । उभयतो जलशरा निरगच्छन् । दास्योऽपि चलचरणसंगत्कारं ध्रुवे-
तस्ततो निश्चल्य तस्मिन् महोत्सवे शतगुणितोत्साहेन संयुक्ताः । चिरं केलिं र्धभूष । तेनामुना
सगरिमलजलश्रेफेन जगदेव परिमलितं प्रतीयते स्म ।

शायतः कार्यं समाम्य कमलामवनन्तो विस्मृताखेव विचारममोऽधोनेत्रः सत्वरं
सत्वरं गच्छतासीत् । प्रासादस्य ममृणस्कटिकुट्टिमस्य मक्षणां द्विगुणयत् सुगन्धिजलं
प्रचदमासीत् यस्मिन् स्खलन् कृच्छ्रेण स्थितिं निवारितवान्, किन्तु सखीनामट्टहासेन
तस्य निधारतरंगिरित्ता । एका सखी सन्यतमाह—“लील्यैव सिंहहन्तारोऽद्य
मलमलेनैव विस्मृततां यान्ति” अपरा च “दूरस्योऽयं वराकोऽवश्यमद्य होलोत्सवे
स्मृत्प्रिय उन्मनायते मङ्गलदायनाय श्रमिष्येयौऽयं”मिति कथयन्तो जलनिर्गमं प्यारिचत् ।
समचाल्यैव शतशोघारात्मभ्यदिग्न् । क्षणेनैव कलेदो द्विगुणितः । इतस्त्रिविक्रममट्ट
इव श्लेषमट्टचन्द्रोऽपि नितरां द्रिष्टव्य एवासीत् । शयं सम्पुत्र मडिति निःसर्तु कानः
सर्वा वीक्ष्य समयमानः सत्वरसत्वरं प्रचलिताः ।

किन्तु मनोरमा तं पश्यत् । क्षणानन्तरं कमलापि विशदिव मासमाना सुगन्धेन
विशं विमोहयन्ती तस्य पथ्युरग्निता ।

“धीमतां कारांविभित्सु चतुर्वादनस्यन्तमेवस्ति, कथमद्य विलम्बः ।”

“शोऽहं दास्यामीति महाराजेन सकंवातायां भविष्यत्कार्यमन्यवन्थापनेचविलम्बोऽवश्यः”

“धीमान् दास्यति, मद्भवनस्य अवस्थापको मानसुर्विन्वा पियासति, मद्-
दास्यम्”—चिन्तान्तोषारत्नयनया कमलयोगे ।

‘देवस्य यथा देव्या अप्यय मानकृत् । देवेनोक्तं यदहं कमला सूचयिष्यामि आवस्ये
कार्ये विलम्बं मा कृथा ।’

‘हुँ, अहमपि शुश्रूषे इदमावश्यकं कार्यम्, नो चेद्दानि ।’

‘किन्तु’—इतस्ततो वीक्ष्य च द्रेषोचे ।

कमला—(परितः प्रेक्ष्य) एकान्तम् ।

शशधर —(सर्वासु गतासु) अथ चरेण समदेशि यद् राजेन्द्रपालो विमलपुरविरुद्धं
मेकं महत् पडयन्न महतीं सेनां सज्जयति । प्रबलं पराक्रमशालिसेनश्चायराज्ञा ।
स यथाकं स्पति, निश्चितं सुन्दरतमस्य कलालयस्य विमलपुरस्य विनाशः, सम्भाव्यते
पराजयश्च । तत्र देवस्येच्छा वर्तते दत्कोऽपि वीरवरस्तत्र गत्वा रहस्यमुद्घेदं तत्रैव
कार्यं विपद्येत् । सम्भाव्येत घतनैव युज्येत च । कार्यायामुष्मे अद्यैका समाऽभूत् ।
प्रस्तावे प्रस्तुते न कोऽप्यप्रेसरो बभूव । महाराजो मयि चतुः प्राक्षिपत् । अहं समुत्थाय
समाप्रियमाणः सर्वान् प्रतिज्ञातवान् यत् श्रीमतामाशिष्या कार्यं साधयित्वा प्रतिनिवर्त्स्ये ।’

कमला—(साधनयनेन) नहि नहि, राजेन्द्रो मायावी दुष्टश्च । तत्र गमनेन
मामकीनं मनो विलङ्घ्यतां भजते तत्र गन्तुं नाहमनुमोदयिष्यामि । इतः समायातेन
पितरौ सवथा विस्मृता, अधुनाऽवश्यन्तौ ह्रियन्तौ स्तः । मुधैव समयं व्यतिपापयसि ।
यदि इदमे स्वलीयस्यपि पितृभक्तिस्त्वस्य पूर्वमिदमेव कर्त्तव्यम् ।

शशधर —दुष्कृत्यनाशकृतसङ्कल्प क्षत्रिय इवापि क्षत्रता न भजते ।

कमला—किं वक्ष्यामि, अतः प्रवक्त्रपातेन विमूढास्मि, चेत् शिष्टाचारावधिं व्यस्य
यितुमिव यतनम् ।

शशधर —कथमयं वैलक्षण्यं वाचि ।

कमला—श्रीमन् ! अहं ज्ञातवत्यस्मि यत् श्रीमान् राजनगरस्य सुवराजः । किं
महाराजोऽपि रहस्यमेतद्वेत्ति ।

शशधर —कथं भवती वक्ति ।

कमला—श्रीमतां देनदिन्या

शशधर —आ कष्टम् । नहि, नास्ति चाधुनाऽवश्यता ।

कमला—कतिदिन्यानां कार्यम्

नारायण — वरुण, मासेन, पश्येण, सप्तहेन, युगेनार्पति तु को ज्ञानीते ।

कमला — आपनने त्वरानुष्ठेया नो चेन्माधवीत्येव तिममहसा, विद्येगेन दमरा

एषा भ्रमनस्ता कर्मवन्तरी कथावशेषा

शरा० — यतिष्ये ।

कमला — माधीरता मां मुदति । जगदीश्वर एव रक्षकोऽधुना । देवो देवाय
ः वा दिशतु ।

*

*

*

मामादृयाद् “यद्गूनि वार्तास्यधुना प्रक्षाल्य देयानि ।” राज्ञोभवने न सर्वदा भुज्यते महता
 यौमाग्येनैतत् स्वर्णदिनं दृष्टमिति विचार्य अर्हत्तममेतद्वासो विदित्वा रजकस्वभावः परिधाया-
 गतोऽस्मि । सोऽहं देव । अज्ञानेऽपराद्धा सकृत् क्षम्यः ।

राज विस्मयमानो वदाम्युक्तार्थं “नहि नहि मा भैषी” रित्युक्त इतरवस्त्रयुगलेन
 गतदृश्य भोजयितुं नीतः ।

*

*

*

“प्रभो, न माने...कोऽपि विदस्यामुपधाकृतिरदत्तपरिचयो मा स्थास्रीः स्त्रीजनोचितो-
 दानस्य समीप” मिति बहुशो वार्यमाणो विभी मां भाययन् भूतावासं प्रतिवसति ।
 ॥ कुत्र प्रजतिं क्षेतेऽस्ति, भ्रमतीति किमप्युक्तं न जाने । अज्ञातजनपदस्य साहाय्यं
 मानवधर्म इति कृत्वा तस्य वस्त्रप्रक्षालने साहाय्यं कृतवत्यस्मि । क्षान्तव्या नागस्कारिणी
 भवधारणसेविनी” इति ।

“क्षमस्व देव, नरेण पादोऽपि विचार्य क्रमणीयः । अविचारो हासंस्तृप्तपारद-
भक्षणम्, अनग्निपातं दहनम् । अलक्ष्याश्च निषानम् । विचारो हि भूमिर्यज्ञसः
श्रिया जीवनस्य मर्यादायाश्चः । युधिष्ठिरप्रभृतयः प्रभृतयः पुरा किल विचारेणैवाध्यासया-
मासुराज्यम्, अविमृश्यकारिणां कृते सतोषं जोषं विदधः । महाराज, यस्य
पाण्डमोपक्रमं, सौन्दर्यसम्पत्तिं बुद्धिदैभवच्च थाव थावं हृष्यन्नास, येन सह स्थिरीकृतः
कमलाविवाहः यस्मै तिलकोऽपि प्रेषितः, यस्मै महोमहेन्द्रेण न्यगृह्यपरयारिवर्गेण,
प्रणे स्मरणीयनाम्ना, हिरण्यनाचारेण सप्यते दिवानिश महाराजनवेन्दुना, धूयते
शोकश्लोष्मावहन्ती यस्य जननी नितरां क्षीणा, सोऽहमुल्लिख्योर्मिकेव न लक्षितो न-
विदितः, पादाग्रजाल - इव न कार्यं कृतः । स एव वीरवारवर्णनीयवीर्यस्य राज्ञो
नवेन्दुवर्मणः पुनो - विवादिशारदसर्वोपसुखयन्त्रः दशपत्वेन राजपुरवासित्वेन
प्रकाशितमप्यर्थं वधनरत्नया तिरोद्वद् राज्यकार्यं प्रसाधयितुं राजेन्द्रपालपुरं गतः ।
पश्यन्निदं धीमन्निस्सितं प्रतिज्ञापन गीतिश्च दशधरनिबद्धा ।

हरसिद्धिदाना

तज्जयिनी निवेशः

जगद्धितनयशोराशोर्नैवेन्दुपुत्रस्य मृदुनीयमहिम्नो रामपालस्य आचननः प्रस्तावः
परमप्रमोदाखरद सम्पद्यते । धीमतोः सन्तानोद्यन्त्रकर्मत्प्रोद्यन्त्रस्यैवावन् परां
प्रीतिं प्रकाशयन्तु गुणोत्कर्षः । समये विवाहसूत्रसूत्रितं गुणलभेतन् स्वर्गोऽपि न
वियुज्यताम् ; सुयुक्तस्यामुषा विद्या, कलम, श्रिया, सम्पदा यशसा । पूरयन्तु च मां
प्रतिशां परमराजनः परमेशानः ।

विपन्नमुप्रमाणीकरोति—
राम गतः ।
विमलपुरम्
नियमनं स्वीकृते नवेन्दुपालः
राजनगरम्

रघुनन्दनः—

शुद्धपुरोहितः

अश्वत्थामा

१९८०

मामाहूयाह “यदमूनि वार्त्तास्यधुना प्रशस्त्य देयानि ।” राज्ञोभवने न सर्वदा भुज्यते महता सौभाग्येनैतत् स्वर्णदिन दृष्टमिति विचार्य अर्हत्तममेतद्व्यसो निदित्वा रजकस्वभाव परिधाया गतोऽस्मि । सोऽह देव । अज्ञानेऽपराद्धा सकृत् क्षम्य ।

सच विकम्पमग्नो वस्त्राप्युत्तार्य “नहि नहि मा भैषी” रित्युक्त इतरवस्त्रयुगलेन सत्कृत्य भोजयितु नीत ।

*

*

*

“प्रभो, न माने . कोऽपि विदस्या मुग्धाकृतिरदत्तपरिचयो मा स्थासी स्त्रीजनोचितो दानस्य समीप” मिति बहुशो वार्यमाणो विभी मां भाययन् भूतावास प्रतिवसति । स ह्यन मज्जति शेतेऽस्ति, भ्रमतीति किमप्यह न जाने । अज्ञातजनपदस्य साहाय्य मानवधर्म इति कृत्वा तस्य वस्त्रप्रक्षारणे साहाय्य कृशयत्यस्मि । क्षन्तव्या नागस्कारिणी भवचारणसेविनी ’ इति ।

अथ लोलकवीनिवासुद्यानमालिनी कोट्टपालहस्ते समर्प्य सशस्त्रसैनिकानाज्ञापयामास सुप्त भ्रमन्त भक्षयन्त वा तमानेतुमिति ।

‘देव, आश्रया वयं भूतावास गत्वा गिरिगुहासुप्त केशरिकिशोरमिव सान्द्रनिद्र नरव्याघ्र प्रेक्ष्य तत्प्रभावपरिभूता मूका एवाकृतपादध्वनय प्रत्यावर्तिता । देव, सोऽयं राजेन्द्रपालविजये कृतप्रतिज्ञ क्षशधर एवासीत् । देव, कोनाम यमेन रमेत्, भुवनभयङ्कर कालाहि करेण कलयेत्, कोमूढ उल्लोलसहस्रं हिंस्रसङ्कुल पारावार प्रविशेत्, मत्तगजेनाजि रक्षयेत् बुभुक्षित सुप्त पद्माननमुन्निद्रयेत्, अतोऽविदितस्वभावमघाता स्मो विगतनिद्र कर्तुं’ मिति, सैनिकैर्म्यवेदि ।

“आ गेहेश्वरा भीरव औदरिका अपसरत ज्वात्मा” इति क्रुद्धो गुप्तचरविभागा ध्यक्षोऽभिकोट्टपाल चक्षरक्षिपत् । सच मनोभाव ज्ञत्वा, गत्वा च तत्र विशदरम्य सूर्यातपतप्तमपि सुरभिपुष्पवनवीजितमासाद्य भूतावास शून्य पर्यङ्क पत्रेषु लिखितं गीतिं, दैनन्दिनीं चमपेटिकायापत् । स च सर्वा सामग्रोमादायाध्यक्षाय न्यवेदयत् ।

अप्यक्षय्य सर्वा सामग्री सूक्ष्मेक्षिक्या प्रेक्ष्य शक्तिविवरणेन सह मन्त्रिण समीप प्रेषयत् । मन्त्री चापरेषु महाराजनुपगम्यान्नुत्—

“क्षमस्त देव, नरेण पादोऽपि विचार्य क्रमणीयः । अविचारो ह्यसत्कृतपारद-
मत्तमम्, अनाश्रितात् दहनम् । अलक्ष्याश्च निधानम् । विचारो हि भूमिर्यशसः
धिया जीवनस्य मर्यादायाश्च । सुविष्टिप्रसूतयः प्रमत्तयः पुरा किल विचारेणैवाप्यातया-
माम्नाज्यम्, अविमृदयकारिणां कृते सतोषं जोष विदध्मः । महाराज, यस्य
पराक्रमोपक्रमं, सौन्दर्यसम्पत्तिं बुद्धिवैभवश्च थाव थाव हृष्यचास, येन सह स्थिरीकृतः
कमलाविवाहः यस्मै तिलकोऽपि प्रेषितः, यस्मै महीमहेन्द्रेण न्यवृत्तपट्टारिवर्गोण,
प्रगे स्मरणीयनाम्ना, हिरण्यनाचारेण सप्यते दिवानिश महाराजनवेन्दुना, ध्रुवते
शोकलोभमावहन्ती यस्य जननी नितरां क्षीणा, सोऽङ्गुलिनिक्षोभेन न लक्षितो न-
विदित, पादाग्रजलज्ज ह्य न कामं कृतः । स एव वीरवारवर्णनीयवीर्यस्य राज्ञो
नवेन्दुवर्मणः पुनो, विहातिशारदशर्वरीध्वस्तसुखचन्द्रः शशधरत्वेन राजपुरवासित्वेन
प्रकाशितमप्यर्थं वचनवचनया तिरोदभद् राज्यसार्यं प्रसाधयितुं राजेन्द्रपल्लपुरं गतः ।
पश्यन्निहं श्रीमन्निर्गन्तं प्रतिज्ञाप्य गीतिश्च शशधरनिबद्धा ।

हरविदियारा

उज्जयिनी निवेशः

जगद्विस्तारपक्षोराशेनवेन्दुगालस्य महनीयमहिम्नो रामपालस्य चाद्यतनः प्रस्तावः
परमप्रमोदाख्यं सम्पद्यते । भीमतो सन्तत्योऽध्वन्द्रकमल्योऽध्वन्द्रमूर्धौ यावन् परां
प्रीतिं प्रसादायन्तु गुणोत्कर्षं । समये विवाहसूत्रसूत्रित युगलमेतन् स्वर्गोऽपि न
विपुल्यताम् ; युज्यतश्चायुषा विशया, कल्या, श्रिया, सम्पदा वनासा । पूयन्तु च मां
प्रतिज्ञां परमवचनं परमेष्ठानः ।

विश्वमनु प्रमाणीकरोमि—

रामपालः ।

विमलपुरम्

निवमन सीतुष्टे नवेन्दुगल

राजनयाम्

रघुनन्दन —

दुर्यपुरोहित

अशमजुतीया

१९८०

पुष्पाप्यमन्दमधुरं मकरन्दमूक
 निष्कासयद्भिरभितो विकचैः पयोजैः ।
 पद्माकरेश, नलिनी बलमोपणाभ्यां
 भोग्या न मानिभिरियं भ्रमरैर्जलेभ्यः ॥
 सम्मान्य मान्यमहिमाग्विलवारिणोऽस्मान्
 दद्याच्च शिष्टिमुपभोक्तुमनाप्तकामान् ।
 गुञ्जन्त ईश गुणिषु प्रगुणान् महात्मन्
 गायन्त आजिषु भटानिव गाञ्चरामः ॥१॥

आवासः

चन्द्रः (शशधरः)

विमलपुरम्

राजनगरम्

“अये, किं शशधर एव चन्द्रः” सोत्ताप्तं राज्ञोऽपि “हन्त हर्षो हर्षो हर्षः ।”
 सम्भावितमप्येतदेवासीद् यदवश्यमयं कस्यापि राज्ञः पुत्रः, परन्तु वृत्तान्तप्रस्तावसर
 एव नाधिगतः । किन्तु अमारय, कष्टसाध्यमिदं कार्यं, परमौ मायावी च राजेन्द्र,
 सुकुमारो नवीनश्चायं कुमारः किन्तु करणीयम् ।

मन्त्री० — नात्र विचाराणां सर्वं सुसिद्धं बीरवराणाम् । अणुरप्यग्निः कान्तारमन्तयति ।
 साहाय्यायान्ये प्रेषयिष्यन्ते ।

आनन्दोदधी हर्षोत्ताप्ता उत्तस्थुः । निमिषमात्रेणैवान्ना वृष्टिर्बभूव । वःत्तास्त्रिकाश-
 पातालयोरन्तरमभूत् । राजापि कमलाप्रियसखीं मनोरमामाहूय वृत्तमदो व्यशदयत् ।

*

*

*

प्रान्तरे^१ निखिक्कः^२ ग्रहिः^३ । *अन्धुरधुनात्मनो जीर्णभावं निवेदयति । तस्य
 *निपानानि, येषु ददुर्गं दर दूरयन्तो यन्तो ख्वन्तिस्म, येभ्यः सदृशशो धेनवो मृगा-
 शशशत्यकशृगालास्तृषां शान्तयन्ति स्म, धूलिपूर्णान्युद्गतविटपान्यासन् । *वीनाहो
 विहीनः पादाणाः प्रसृता दूरत एव स्वल्पस्वलैः समीरसमीरितैराहव*भवैः शुपञ्चजैरे-

१ प्रान्तर=दूर शून्योऽर्था (विद्यावान् उजाड) २ त्रिका=भूषण (चक्रः) ३ ग्रहिः—
 अन्धुः=कूपः । ४ खेलकोठा । ५ वीनाहं मुखबन्धनं (दाणा आदि) ।

तत्पर्यमाणमिवास्ति यद् यात यात्रिकाः^१ दूरत एव यात, एतस्माद्भूवर्द्धनेन
पृथिवीसमात्कूरकृतदन्यथाऽन्धकारानधीकृतान् वोऽयं कृष्णदशोऽस्त्यति । पार्थ एवैकः
पादो विषदप्रस्तेन कूपेन सहनुभूति प्रकटयन्निव म्याणुभूतः स्वशरीरमापि
चिन्ताचितायां चिन्ताय । तस्य महता प्रकाण्डेन सूच्यते यद्यं दस्मिन्नपि काले
शास्त्रशास्त्राभिर्विशालो भवेत् । तस्यैका क्षिप्र कृष्णकृष्णं विद्यार्य निर्गता तेनात्यन्तिकं
प्रेम प्रकटयति । कूपो मूलवत्तेन जलेनैव, पादपः स्वसन्ध्याया चैन—एवमेतौ च हापि
पारपरं मुहुरसम्यग्वाचासां परन्तु सम्प्रति द्वयोरेव दशाऽतिसारकिणः क्षयिण
श्च चिन्त्या । अन्तर्धर्मचटकाधरचरायन्तेस्म । 'बगटानां तन बहु बलमायीत्,
अन्तर्मितिषु तेषां छत्राणि महत्या संरययाऽऽप्यायन्तेन्म । ते दंशेन कालभाशेन
यमदता इव विधुविभ्रुता आसन् । केऽपि तेषां निर्गमनसमये तस्य पार्श्वतो न टीकतेरम् ।
एतेषां सातत्यवासात् पविर्बैरयं प्रवेश एवापहत आसीत् । 'पतत्रिका धराभ्योऽपि
तेषां मध्ये दत्तु जिह्वेव यथाकथमिनिर्दन्ति स्म । आं पारवतपुत्रवा नितरां प्रसन्ना
आसन् । कृष्णज्जुल्लुल्लसन्ना तेषामनवरतगुह्यारः सर्वा काननस्थलीं मादयति स्म ।

विस्मलानि शिलाशकलानि सम्प्रत्यपि पान्यविश्रमस्य विस्तृताग्यासन् ।

एकः पथिकः सङ्कतिपिता इव यमपि कोणेऽन्वेपयधिवेतस्ततो वीक्ष्य वस्त्र-
पटकारेण शिलामैकां प्रशोष्य कूपवेदिकायामुपविष्टः । सुगमत्पतता स्वेदनजेन
प्रवेगं प्रचलता द्वासेन चाय नितरां श्रान्तः प्रतीयते स्म । तमुपविश्य स्वन्धावलम्बिनो
कन्यामैकतः संस्थाप्य पुनरितस्ततः प्रेक्ष्य शनैश्शनैस्फुटं^२ नदितुमारभे—

बहुभिर्नर्परेतस्य कार्त्तिकसिंहहतनस्व तादाप्यमान्वरामि, परमयं दुष्टः केवलं
प्रचलमेव मानयति, तस्यैव गाथां गायति । तस्मा एव गूढरहस्यमाप्याति ।
तन्निव मन्त्रयति । अहह ॥ दुष्टेनमुना कमलया विनाहयतिश्रुतः । अहो ?
धर्ममैवं दुष्टं रद्वं मुखीनाऽजुलीनं राजकुमारी व्यसक्तं कृणीतम् । हन्त ?
येनानेन निर्दयं स्रग्निनापि पारलोम्पयं प्रापिनो विप्रेष । स्वस्वामिपुत्री सरोजिनी
भगिनीनिविशोपाऽपि हुनैर्नवीक्षिता । समस्मिन् राज्ये चापूर्वं^३ यशः प्रचारितम् ।

१ चमचेड । २ शट्टिया (पीतध्रमः) ३ तितली । ४ (यह बदने लगा—)

५ अः पूर्वमय तत्=अयस इतिभावः ।

प्रजापि निष्कण्डलुङ्गिता बहुश । सतीना सतीत्वऽप्यसदाचरितम् । सोऽयं हन्त
क्षत्रियहन्तक कस्य वस्य सुखे भद्रं विधास्यति । धानन्दोत्सङ्गमुत्तान् काँस्कानुनिद्रयिष्यति
आशाभव्यभवनेषूपविशन् काँस्कान्निद्रयिष्यति । प्रेमपयोधौ सन्तरत काँस्कान्निद्रयिष्यति ।
परत्वद्वमप्येतस्य कान्तिसिंहहन्तस्य पितृव्योऽस्मि । समुखं तमपि ।
निद्रयिष्यामि । तस्य शय्या, यां पुष्पमुकुमारा मनुते, कण्टकाकीर्णा विधास्यामि
तस्य मनोरथं व्यर्थयिष्यामि । अधुनाऽहमपि प्रतिजाने । कमला काँतेरङ्गभूषण
न भविष्यति न भविष्यति । किं कान्तिसिंह एव सौन्दर्यसम्पत्तिमभिलषति
वयमपि बाञ्छाम, नहि वयमेव बाञ्छाम । अद्यैवास्वादमास्वादयतु दुष्ट कान्तिसिंह
एतस्य लालसाद्रुमस्य । प्राणानविगणय्य, अपयशं प्रसार्य, दुस्तीतिमग्निसात्कृत्य मर्यादां
सम्मर्द्य व्यसक्ततां व्यसनोक्त्य यस्य कार्यं साधयाम, स केवलं स्वमुख एव सक्तोऽस्मात्
पश्यति, तदास्माकमपि कर्तव्यं यद्वयमप्युचितं विधास्याम (सम्मुखमवलोक्य) अस्तु
अधुना वीरवरप्रबलौ समागच्छत सावहित्थं तिष्ठामि । (तयोरभिमुख) मया ।
विचारितं बहुसमयो भूत, अद्य नागमनं सम्भाव्यते ।

वीर०—साधु । किमस्माकमपि कार्यक्रमं परिवर्तते । अपि सूर्यसिंह ! देव
समायात ?

सूर्य०—नहि । अधुनायत्नतः तेषां सूचनैव न समागता ।

प्रबल०—तेऽपि समायाता एव । उपविशतु क्षणं भ्रममपनुदाम ।

एते यथा कथामुत्तमयोपविशन्ति, तथा कान्तिसिंहोऽपि समायात ।

इतश्च कण्टपदना पाटव प्रक्षिप्तुकाम इवातद्रथद्रोऽयाकाशं विभासयामास ।

प्रबलपरिशोधिते कूप्रशिलातले स्थितिमता कान्तिसिंहन तेषां बभूवुशलापा —

प्रबल०—तद्दिने ॥ देव । अस्माकं कार्यमल्पेनैवायासेन सिद्धम् । वीरवरश्च तुष्टः ।

सम्प्रगवसरस्तत्रैव लब्धो यत्तत्रत्यो राजकुमारोऽसूचयित्वैव कम्पीत आसीत् । सर्वे
प्रहरिणश्चेतस्ततो व्यग्रा समासन् । प्रचुरो रा प्रातः ।

कान्ति०—परतश्च यदाह्मन्त तत्कृतवानसि स्मि ।

प्रबल०—आ देव । कानिचिद् भूषणानि तु वीरवरस्य भग्नलेखानुरानीतवन्त

१ अवहित्था—आकारगोपनम् । २ प्रोग्राम । ३ यैला ।

एव । अपराणि च वस्त्रभूषणानि सज्जानि । देव । आनन्दस्य भवद्दिवाददर्शने महती-जाऽऽसीत् । परन्तु स वराको विश्वेश्वरप्रहारमवधयन् मृत एव ।

कान्ति०—(तन्मना इव) ओं भवीन एवासीत्सः । आपातश्च तस्य मार्गिक आसीत् । परन्त्वस्माकं सद्दे तन्मृत्युना काचन हर्षनिर्नाभूत् । वीर ! त्वमपि कृत्यं शृण्वानसि ।

वीर०—तमये ऽहं गतः परन्तु यस्मै कार्याय प्रेरितस्तत्तथा न कृतवानस्मि । दिवासमयः, सतर्का, सास्त्रशस्त्रोभयतः सज्जा गरीयसो सेना । यद्यनीयस्यपि समदिहा दृष्टिनिपततेत्तद्वदस्यं प्रणानामेव सशयः, अतः केवल मदस्यैव ...

सूर्य०—देव । कमलाया शौराव एव स्थिरीभूतो विवाहधन्द्रेणेति ॥ पिशतमेव । तदेव । किमपि कस्यापि युयं भज्यते । सुयैव परलोकमनालोकापते । एतल्लोकं कलहापते, परदशता योयितः सौन्दर्यदयो भवचारणरेणुं क्षिपुश्रन्ति ; व्यर्थमेव कमलाकाकलीमाकर्णयितुमातुलीभूताः स्य ।

कान्ति०—सूर्य बहु विमृशामि । सर्वतः प्रथमं मनोरमया सह मरुतराख्या भूषणां कुर्वती कमला मया दृष्टा । कीदृक् कौशलं कीदृशी क्षिप्रकारिताऽऽसीत् । तस्याध्विनु कपोलपाली, कोमललोमनान्यां कराभ्यां मुगुण्डिकाकलमनचापि ममाश्रितोः पुरतः स्फुरतीव । स एव विमुग्धकमलादर्शनेन मुधामवधीरयता मुक्तेनाहमन्य एव संवृत्तोऽस्मि । चिरतनाप तत्रैव मृगयन्वन तपितवानस्मि, परन्तु हन्त, पुनः सा दृष्टिरपमेव नोपेता । अहं व्यचारय यन्मम दशा सर्वदैवेदृशी ॥ भविष्यति, समयेन समासादिप्रसादो भविष्यामि, परमाज्देनाभिज्वलेव एषते । विषारयामि चन्द्रेण सह तस्या विवाहः स्थिरीभूतो, योग्योऽयं राजकुमारो वीरध । माम् कस्यापि सुरास्यान्तरावो भूरिति मानसं मां मुहुर्मन्त्रयति । परं किं पुनर्या तस्याः प्रतिमूर्तिः प्रतिशृण्वितश्रुत्या सन्नेऽपि सामुमुखं न मुगति

प्रसन्न०—(मथ्यएव) न मोक्षयति च । देव । प्रतिज्ञानं वीरा न परित्यजन्ति । अपि प्रागनयन्ति ।

वीर०—देवोऽद्यारण्येवोदसीन्दनालम्ब्यते । मया तु करधीयं-सन्दग् विवरितम् ।

कान्ति०—इमिह.... ..

वीर०—मयाय श्रुतं यच्चतुर्थ्या रामपालस्य जन्मदिनम् । अस्मिन्नवसरेच विरहितं भोज्यं मद्यरानादिकञ्च ।

कान्ति०—सत्यं, (हर्षेण प्रोच्छलच्छरीरं) अस्माकं प्रयोजनं सुसिद्धम् । क्षत्रियशुते एतादृशवसरे सर्वे एव मदमत्ता भवन्ति विशेषतो दासीदासम् ।

वीर०—आ, तदपि सर्वं विचारितम् । हर्म्यस्योत्तरहरिति विविक्ते इमं गवांसं स्तनपत्रद्वारात्सोदृष्ट्वा गोधापाशमायोज्य सुखमुपरि शक्यं गन्तुमिति न कश्चन दासी दासयोर्भयोद्वेगः । केवलमत्र चन्द्रिका मां शिबिलयति ।

कान्ति०—किं भयम् । अनुनिश्चीय गन्तव्यम् । एषोऽवसरः पुनर्न लप्स्यते । सूर्य ! तत्रापि कथनं कस्मा अप्यवसरायोचितं नाम, परम्वरे ! यस्यां यौवनमपेक्षमाणो हृष्यन्नासं घटितानेवमनोरथो विस्मृतमनसस्त्यक्तापरकार्यं केवलं तत्प्रदर्शनायमेवासं सखं कमला दुग्धमक्षिकामिव मां दूरं प्रक्षिप्य चन्द्रेण रत्नमना सुखमनुभूयति । किं तत्सुखमहं सोढुमर्हामि नहि नहि ।

सूर्य०—तद्युक्तिं विधास्याम । पापाण्यैव पापाण्यप्रतिशोधं विधास्याम । यथाज्ञाप्यते तथैवाचरिष्याम । वीर ! कं कार्यकर्मस्त्वया निरधारिः ।

वीर०—सप्रमत्तोऽहं तत्र गमिष्यामि । सूर्यश्च ग्रामाद् बहिः समरुतरो मिलतु सूर्य ! वायुः पक्षोऽप्यानेयः ।

*

*

*

प्रातः पौरा पवमानसेवनाय पुराद् बहिः प्रयान्ति । नगरसीमन्नि विराटमधुरजलो विकासिकुमुदिनीविद्योभी इदो हृदयति जनानां मनः । विमलतग्नशीकरशीत समीरणं, मधुरमधुरं श्वन्तं पक्षिणं, चलद्गला द्रुमाश्च निरोजं स्वपि विनोदप्रमोदस्य भावमापादयति ।

अथ राज्ञो रामपालस्य जन्मदिनम् । वर्षाश्रमीया इतरे च राज्ञः प्रासादे भोक्ष्यते न कस्यापि गृहेऽग्निप्रज्वालः । राजभोज्यसज्जायै सर्वे सज्जन्ते । केचन भद्रा पिवन्ति ।

१ चौरा लुण्ठाकाश्च भवनारोहणाय गोघायुक्ता रज्जुं मुस्त्रिष्य तस्या भित्तिदिल्लया तदावद्भरज्ज्वाभवेनैवारोहन्ति ।

२ वायुः पक्षो जले प्लवनतरणसाधनं “लाइफ्बोट” इत्याख्यः ।

मन्तधीयते । क्वचन पुरोगेन पौरोगवेन^१ जननीयमान यशो भोजनप्रशसा श्रूयते ।
 पटोलशाक^२, कूष्माण्डशाक^३, वास्तुकशाक^४, कर्कटीशाक^५, मूलकशाक^६ भण्डाशाक^७,
 वृन्ताक^८, गोजिह्वाशाक^९, महाकोशातकीशाक^{१०}, कालिद्रशाक^{११}, कारवेल्लशाक^{१२},
 आलूकशाक^{१३}, नपुपशाक^{१४} दीयता देहि, आनय, अल, गृहाणेत्येव श्रूयते सर्वतो घनि ।
 घृतपत्रा गवाक्षफलिनी^{१५}, करीरफल^{१६}, पर्पटकथ^{१७} परिवेपित — भोजनयज्ञस्य
 पूर्णाहुतिर्जाता । पचतमृज्जता^{१८}, स्वादुपिचता, आहरमुष्ण्वा, हसतमोदता क्रमश उपरता ।
 लब्धावसरा क्षणदा दिनपतिमस्य विज्ञाय स्वाभिपत्य सेने । निशानायोऽप्येकाकिनीं
 प्रयतमानां प्रिया प्रेष्य सद्य एवोदयगिरिमारुह । सच्छासकप्रसन्नो जगतीव कलनाय
 विभासिनि नभसि दैनिककर्मश्रान्ता मृत्याश्चन्द्रिकयाऽऽस्थापमाना, सद्यो निद्राऽहं भेषु ।

*

*

*

प्रहरी हृम्यमभित शिथिलमयाद सालस गतागत कुर्वे^१ चन्द्रप्रकाशे दत्त
 एवायान्तौ द्वौ नरौ दृष्ट्वाऽऽह—“कौ स्थ दूर एव तिष्ठतम् किं न जानीय इह
 महाराजशयनगृहम् ।”

“प्रहरिन् । विदूरप्रचलनेन नितरा श्रान्तौ स्म । किमिदं महाराजशयनगृहम् ।
 सत्यं न जानीव ।”

“कुनृत्यौ युगम्, वेशभूषादिभिरनृत्यादिव प्रतीयेथे ।”

“प्रहरिन् । अत्यैव देशस्य प्रिवौ पुनावास्व परन्तु हन्तः दारिद्र्यदुर्गतौ परदेश
 एव वदितौ शिक्षितौ च । आत प्रहरिन् । बहुकालेनापीत वर्णते तमाल सम्प्रति
 नितरा श्रान्तौ , काप्यमिल्लेभ्यु क्षम्यते ।

मूर्त्ये प्रहरी अनभिज्ञश्च चतुरस्रसारस्यैतयोर्वत्तया सकलणो जात । एकेन धूमपात्रे^१
 तमालं न्यधायि, प्रहरी च हसन्त्या^२ वद्धिमान्नीतवान् । पूर्वं धूमपात्रं प्रहरिण
 एवोपहतम् । स द्वित्रिस्तद् बलेनाकृत्य मूर्च्छित । एकेन विहस्योक्त, “प्रबल । मूढ

१ महानसाध्यश, २ पत्तल, ३ कौहला, ४ वयुवा, ५ ककड़ी, ६ मूली, ७ भिण्डी,
 ८ बंगन, ९ गोभी, १० धीया, ११ मतीरा (तख्बुज), १२ करेला, १३ आलू,
 १४ खीरा, १५ गुवारफली, १६ कैरिया (टीट), १७ पापड़, १८ सर्वत्र मयूरव्यं
 १९ चिलम, २० सिगड़ी ।

‘कथं जिहामनर्परायदधुना वेतस्य पुत्रोऽपि नोत्थास्यति । निद्रितसर्वजनं दृश्यते भवनं, त्वत्स्य । अहमत्रैव त्वां प्रतिपालयामि । त्वमुपसिञ्छ’—इति ।

*

*

*

सहस्रदशवर्गवर्गं लुम्पतो ऽर्धतः कौतुकाद्वामपाणिना, कनिकाशणत्कारेण बलामाकृष्या-
वतीर्य, दूतोत्सैः शिष्टविशिष्टैरधिष्ठितं कौशेयविताव, अणुद्वन्द्वशक्तिवासुरभितं न्यवृत्तामर-
राजकुल, प्रविश्य राजकुलं, साभ्युत्थानं साधलि साशोनिर्देशं सत्कृत उपरार्ज स्वर्णासन-
मल्लधार चन्द्रः ।

“मान्वाः, जनस्योत्सुकतामालोक्याभ्यर्षितो महाराजकुमारश्चन्द्रोऽद्य स्वयानावृत्तान्त-
मस्मान् धावयिष्यति । भवन्तस्तेन क्लामान्विता भविष्यन्तीत्यहमाशासे । इमारो दृष्टं
निशब्दयतु—”शरधाय मन्त्रिणोक्तम् ।

स्मितजितजयोत्सन्नचन्द्रः परितः प्रेक्ष्य प्रवचुमारमतः—

अहः सायः समीपमासीत् । गोपालगुप्ता गणो वनान्तराद् रोमन्यायमानाः
फतायमाना याम प्रत्यावर्तन्ते । काश्चन वृषस्यन्त्य उत्पुच्छन्त्यन्ते स्म, काश्चनोदन्यन्त्यः
शरीरगौरवेण गुर्व्योऽपि मन्दां गतिं विहाय चाश्रयं ध्रुपन्ते स्म । इतरा क्षीरस्यतां
शिखरां प्रबलप्रेम्णा खवद् ग्वा विरावारम्भं रेमन्ते स्म । तासां खुरोद्भूता धूलिकाशे
स्यामघटेव प्रतीयते स्म । क्षेत्रसीम्नि स्थिताः वृषकाः सार्धनेत्रैस्ताः पश्यन्ति स्म ।
गोपा अपि तासां पक्षितद्वन्द्वान्ते सयन्नाः प्रेक्षन्ते स्म । तेषां स्वस्वीयसाऽप्यनवधानेन
ताः वृषदण्डानां कटुवचसां गोपैः सहैव सङ्ग्रीभवन्ति स्म ।

गोपल्लेः पश्चात् कालिम्ना कादतिकरमपि तिरस्कुर्वन् निशितसुरापैर् भुवं विनियन्
गम्भीरतरङ्गयोष्णवासश्चसनेनाधीरधैर्यमपवयन् विशालविषाणमारेणेव गतशिराः प्रलम्ब-
पुच्छतुच्छीकृतदण्डः प्रतिपक्षिण्यो वनमक्षिकः प्रक्षिपन् वदनविगलितफैर्नैर्धरां तारकितामिव
कुर्वन् सालसं मन्द मन्द चलन् महिषीसमजोऽपि गवां व्यूहं व्यषोदति स्म ।

स्यूलमसृणमहिषपृष्ठे दस्तमाधाय नियामर्याटिकां कक्षे कलयन्तो वेपुं रणयन्तो
गोपा अपि मधुरमधुरमक्षितपाटवं गायन्ति स्म । केचनाऽऽदत्तभिन्दिपालाः गोफण
करे कलयन्तः, वृषीकलवाताः, कष्टकाकीर्णजीर्णदीर्घकाससः प्रापाणक्षेपणविभीषिक्या
पक्षिणस्त्रासयन्ति स्म । केचन शिरोभूतपासविसराः सत्वरं सत्वरं गृहप्राप्त्यै प्रयतन्ते स्म ।

चतुष्पथे स्थिता ज्यायास आयतीमव प्रतीक्षते स्म । क्षणेनैव ग्रामटिका व्याता धैनुकेन । गवा पृष्ठपरामर्शिणा हस्तेन ध्वनिमत्यभूत पल्ली । आसीच्च तिष्ठद्गु सुतलेहोपस्तुता पयस्त्रियो धारासारेण ससार सतर्पयामासु ।

अहमपि तेनैव सायँन तच्चरणरेणुरूपितपवित्रपात्रो वाज्जिनमारुहस्तस्यामेव ग्रामीण ग्रामण्यो गृह गतो भुक्त्वा सर्वा विभावरी यापयित्वा, निकट एव तपस्यत कस्यापि महाप्रभासस्य साधोर्दृष्ट ग्रामीणेभ्यो विदित्वा तद्दर्शनोत्सुकोऽथ ग्रामण्यो गृहे यस्य पदातिरेव गहन कानन प्राविशम् ।

खट्वसहायो विच्युतपथो निविडतरे हिंस्रविहारभूमौ बनेऽस्मिन् सव दिनमतिवाद्य निद्रेऽर्धरात्रौ पादपमेकमारुह्य विभावरीमत्यबाह्वयम् । प्रातरानन्देनैव तिग्ममह साऽऽच्छादितानु दिक्षु उत्तन्नशिखरमारुह्य द्रुवीक्षणेन गम्युतिपक्षके उपगण्डशैले तपस्त कबन साधु दृष्ट्वा देवाभनस्येव नमस्यन्, कण्टकाकीर्णसर्वाङ्गो विशिथिलसन्धि सायंकालतोऽवनिव तत्रागमम् । महात्मान परितोऽन्तेवासिन इव व्याघ्रसिंहशार्ङ्गला मृगवच्छादलमध्यास्य स्थिता मां वीक्ष्य सङ्क्रुत्यापितकर्णा पुनरवनतशिरसो मा प्रणमत इवासन् । अह तेपा मण्डलमतिक्रम्य मध्ये परिष्कृतभूम्युपविशम् । रम्य स्थानम् । शा त वातावरणम् । सम्मुखमेवैका खलीयसी कुटी गण्डशैल कर्तयित्वा कृता शुद्धा, स्वच्छो निर्मल सम्मुखश्च मुने स्थितिभू । पशव आदेश शुभ्रश्च इव मौना अभिमुनि स्थिता अ सन् ।

महात्मन शरीरमस्थिमात्रमपि तेजोवितानमिवासीत् । लम्बम ने हिमधवले पद्मणी प्राशु शरीर प्राचीनकालस्य स्मृतिवस्तुधत्वरे चित्रगते स्म । विशाल भाल उदग्रा घोषा प्रलम्बो कर्णौ शशिश्वेता जटा साभ मुखमण्डल पश्यं स्तेन जातिदेशकुशलनामानन्तर कार्याय पृष्ठ सर्व सत्य सत्य यवेदयम् ।

महात्मा—वत्स, दु साध्यमिदं कायम् । त्वधातिसुनुमार ।

अह सत्य देव, तदपि राष्ट्रस्य रक्षा स्वस्य जीवनदमेनाप्यवश्य करणीयैव ।

महारमा—विषयेऽस्मिन्नाहं विलिप्य वेद्मि । श्रूयते राज्ञो राजेन्द्रस्य परमा सुद्री विदुषी वीरवरा कथा, सा कर्मण्यस्मिन् विशेष साहाय्य कर्तुं समर्था ।

—श्रोचरणीं प्राप्यापि विप्रत्रो भविष्यामि किं देव ।

महात्मा—ऽहं, राजेन्द्रपत्न्य राजधान्या पार्श्वे एक निविष्टं वनं विद्यते, तत्रस्थान् सिंहान् हन्तुमना सा प्रत्यहमस्ति । कार्यमदस्त्वं तत्र तथा साधय यथा सा प्रसीदेत् सा प्रसन्ना पितरं प्रमादयिष्यतीति ।

दोषाहो निदाय । सूर्यास्ते घटिवायस्र्गवशिष्टो दिष्टः । विराज धासेनेत्र धसनेनोत्थापितं रक्तं पयोऽञ्जतीकरोति स्म । नासानलिकासु कपोलपिल्लेपु, धोत्रगतैषु, निपतद्रजो म्लेच्छानपि हस्तेच्छान् करोति । पार्श्वेऽस्त्वपि स्पष्टेण परिधीयते । परमं कस्मान्निदायमजितधरापृष्ठं आपाटस्य प्रथमपत्नो न्यपतत् । अहमेकं विशालं महाशालं नगरं दृष्ट्वा हृष्टवान् । पूर्वद्वारे पृष्ठमुगुण्डीकौ द्वाभ्यां समयाहं स्थितावास्ताम् । क्षणमहं तौ सजीवावेवाचिन्तय, परमचलनेत्रपद्मभ्यां धासानिर्गमनेन निपतद्रजोऽनपायेन च निनीकौ निश्चित्य शिल्पिनश्चातुर्यं विस्मितं पुरो व्यचलम् । नगरे सर्वत्र खादतं विवरो विपणिषु भ्रष्टविश्रयं कुर्वन्तौ वैश्यब्राह्मणान् त्रिषु पुरुषान् पक्षिणश्च पापानमयानपश्यम् । राज्ञोद्याने च महीरुहं सपनपुष्पफलान् दूर्वा लता पद्मणमप्यो, कप्या तादृशधरि जलस्थं हृष्यन्ममपश्यम् । रात्रिजाता, सर्वस्मिन्मनरे नैकत्र वार्ता न प्रकाशो न शब्दः ।

नगराद्गृहि प्रोक्ष्य सैरते मुक्त्वा प्रातस्तथायं पुरप्रेक्षणीत्सुको दुर्गे प्रहरिणो हरिप्रणहरिणं क्रीणश्च पश्यन् विशालं राजभवनम् अभिश्य, पतितां क्षिरदाक्ष्नेषु सुगन्धिषु पत्रेषु कलितविशिष्टरूपां भूषां, कृपां नीरसस्य शस्यसम्पन्नायां भुक्ते भस्तरं समाजिरे रमसीनां सनापनयो मन्त्रिणश्च, मध्ये भस्करतसोपानायां वेदिकायां सिंहाग्ने रमयन्तं नृपय वीक्ष्य हर्म्यं प्रविश्य तत्र च मय्यचक्षरे करहृतां केशप्रन्तां प्रमाथनरुद्धां केशान् प्रसाधयन्तीं सम्मुखमुत्तुख्यतीक्ष्णताराम्रवा कचनिचयं प्रेशमागां, सुबाधेगलदम्बरं स्वर्णरत्नयुक्तं पेशमाणामनयसि यनिर्मितां त्रिमुक्ता सुन्दरीं रानुस्मातीमपश्यम् ।

पुनः कमलिनीमालिन्यं तेने निरोहितं करणदण्डं प्रचण्ठो मार्तण्डः । तत्र पृष्ठो दश दिशोऽवसरं प्रप्य व्यातेषु प्रभवम् । पूर्वेषु विराजयिषि, किन्तु समग्रदिनव्यप्रधियोऽ- शतमियो मन निद्रासि भीतिर नाभ्यर्त्तामप्यौ ।

अथ निशीथे कथेरप्यालयेन वासमपत्न्यस्यम् ।

प्रथमा वाक०—पश्य केय दशा पुरस्यामुप्य । परिवर्त्तनशील जगद् विनश्वरा उच्छ्राया ।

द्वितीया वाक०—नगरस्य समृद्धि विद्यावैभव यदा स्मरामि, विकम्पते चेत् । राज्ञोऽस्य न्यायप्रियता, प्रियता प्रयता^१ प्रजाया, जायाद्वीकृत^२ रते^३, रते पत्यु परिभावकस्य कस्यापि^४ विबुधवर्यतां नियामयतो, मयतोऽधिनिदो वास्तौ, प्रजापालन व्यवहारे लोकोत्तर एवासीत् । परन्तु हन्त, सा सिद्धि कययापि नावशिष्टा । प्रिय, किं विस्मर्यते राज्ञ उपवनम् ।

प्र० वाक०—तदपि किं विस्मर्त्त शन्यते, स्वर्ग्य फलपूर, पूरक पतत्तिजठरपिठराणा विविधा लताश्च परिमलेन मलिमानपि मोहयन्त्य आसन् पर वर्त्तमानेन राज्ञा सर्वं चरित्र मानीकृतम् । सोऽय प्रतिक्षण युद्धवार्ताप्रिय स्वकीय पुरमपरिमन् मार्गे निमयेद पुर जगतौ भ्रमाय पाषाणेन प्रकल्प्य सततं युद्धाभ्यासनिरसो जगत ईश्वरतामभीप्सति । श्रूयते एतस्य कन्येनमस्मिन् कर्मणि नियोजयति शास्ति च । यदि कश्चन चतुरस्ता राजकुमारीं सत्पथे समानीय युद्धमार्गात् प्रतिनिवर्त्य लोककल्याणे योजयेत्तदोन्नति हस्तामलकवत् सुलभा । राज्यायत प्रतिशत नवतिमुद्रा सैन्यप्रसाधने ध्येति । यदि स धनराशि जंगत सेवार्थे शिक्षार्थे समुन्नत्यै वीयाच्चेद् वर्षपञ्चकेनैव स्याद् गरीमसी सद्ब्यवस्था—इति रुडोऽय वाचा प्रसार ।

अह मासद्वयेन नगरस्य, राज्ञो राजकुमार्या प्रदेशस्य च रहस्यं विशायैकदा मुनि वचनानुसार पार्श्ववन प्रविश्य सुस्मेशिकया तत्र पञ्चाननस्थिति निश्चित्यैकस्मिन् प्रोक्षे तरौ सज्जशस्त्राज्ज उपविष्ट । अपराह्णवेलायामालेटवेशा कृष्णाश्वाश्चतुष्कयुताप्येकाकिनी अनिन्द्यसी^१ दर्या सुन्दरी वन प्रविश । ध्यान सकेतैराखेट समीपमेव घोपयामासु । सा सनद्धाऽसि करे कल्य^२ती सतर्काऽभवत् । अहमपि शरासेने शरमायोज्य प्रतीक्षायामासम् । अकरमादनल्पकोपो निशितदृष्ट सिहो नित्यवैरिण्या वधाय कृतसङ्कल्प इव गर्जन् सत्वरमेकस्माद् शुल्मान्निघृत । स्रक्किणीं लिहन्ती तस्य जिह्वा सत्वरमेव मानुपरकास्तादोल्लुगाऽवर्त्तत । सोऽभिमुखं द्रि प्रस्थित । सिंहदर्शनसमकालमेव

१ प्रयता=प्रतिज्ञा, २ जायाया अद्वीकृता, पुनीत्वेन रतियेन स तस्य, ३ कस्यापि -

मित्रा मुन्दरो तस्या अश्वधाप्रपादावुत्थाय एज्यमितुमना इवोद्धमः संवृतः । सिंहोऽभ्यधमा-
चमाम् । अश्वश्च वेगेनारोहिणीमुत्थिष्यैकतः प्रवधौ । अखेटवित्ता मुन्दरी च भूमी-
प्रमृता । सिद्धधाप्रपादावुत्थाप्य मुन्दर्याऽऽर्त्तनेनैः सकल्यं वीक्षितो यावदग्रे प्राचलस्तव-
देव मद्राणविदः करुणं क्रन्दन् चरामवासीन् । एतत्सर्वमेकस्मिन्नेव क्षणे जातम् ।

“देवि, कात्वमस्मिन् वीरमयद्वारे बने एकाकिनी मृदुलतनुत्वाऽऽत्मानं सन्नेहस्मिधौ
निपात्य प्रमत्ति, नैतत्त्वानुरूपम् । निवेद्य क्व त्वां प्रेषयामि, क्व तव गिरौ कथं पयो
प्रयसि” —युद्धादरतीर्य तस्याः संशयमपहरता विनीतेन मया न्यवेदि ।

“अहमत्र पार्श्ववर्त्तिनो यशो राजेन्द्रपालस्य पुन्यरिम, युद्धामिरुषिहं सर्वदेवासेढार्य-
मागच्छामि । बहवः सिद्धा हेत्यैव मया निपासिता, परन्तु हन्त, अधानेन नवीमाश्वेन
मुपितारिम । समये यदि मवान्नागमिष्यदहमवदयमभरिष्यम् । अधुना धीवतदनुत्वेना-
हेतानंदेव आख्यात्वमिज्ञानम्” —वज्रस्रग्देन हवेर्धूलिबाह्ययन्त्या मुन्दर्योवे ।

“आ एवम्, त्वं वात्सल्यमावर्त्तुं महिलासमाजे जन्म लभ्वाप्यदः किरातकोलमिरु-
सेवितं गृहीतं कर्माङ्गीकृतवत्यसि तत्र किमु बलव्यम् । नहं शान्तिः सुधाप्लुता मे वानं
भवत्या घटालापेनोत्तं जल्पयामि, शम्यो याम्यहमधुना, धीमती चेत् समिलाया गन्तुं
स्वर्गभूतोऽयमथ आरुपागच्छतु”, अश्वमिसुखं प्रचलता मयोवे । साच नितरां
विनीताऽऽमार्गं हृदयेन प्रदर्शयन्ती परिक्रम्य सुदुर्मुहुराजमह । अद्यावौचम् ।

देवि, समरातिघातिनी ते प्रवृत्तिः । पश्य त्वमि मुदकर्मणि प्रवृत्तायां का दशा तव
वेद्यस्य । सर्व एव विभगाः नाममात्रमासते । एकदाहं युतजितासया तव नगरफरवेत्तनाय
प्रवृत्तः । नगरपालिकाया आयमार्गः सन्त्यनोऽस्ति, किन्तुकोचास्तावाः कर्मकरा
चतुर्थमगमेव संगृह्णन्ति । नगरस्य रम्या राजमार्गाः भग्ना न कोऽपि पर्यवेक्षते ।
केवलं प्रायदमार्ग एव सुमगः सरलः स्वच्छश्चलति । रम्यामुपगतान्यामन् यत्र पार्श्व-
शृङ्गा मलयमृजलमागत्य रम्यानिवासिनां स्वारस्यं दूषन् दुर्गन्धितां प्रसारयति । रम्या
नितरां विस्माः । नवगृहाणि प्राचीनगृहतो ह्यं ह्यार्द्धमग्रे निरुष्टानि सन्ति ।
मन्ये पौष्टतिष्ठनधिकारिषु इत्थेवं गृहीत्वा गृहपतेरिच्छानुसारमनुजानन्ति । येन
रम्यतां सौन्दर्यं सुगमता च प्रगच्छति । राशौ न प्रदृश्यन् प्रवन्धः । केवलं पौर-
प्रतिष्ठनगृहस्थानामधिकारिषाश्च गृहानि पौरप्रतिष्ठनेन प्रदृश्यन्ते । इतरे विश्वसन्ति

यद्यनेतेषामेवाधिकारः । प्रधानमार्गेष्ववसरस्य कृत्वा प्रेक्ष्यन्ते । न कोऽपि भद्रपुत्रं प्राणायामाभ्यासं विना तेषु मार्गेषु गन्तुं शक्नोति । वराकास्तु मार्गस्थायिनो विविधचर्म रोगपीडिता गतचतुषोऽहर्निश कण्डूयनपरा मशकमक्षिकानिवारणमारणपराथ स्वस्यैव दौर्भाग्यं दुष्कर्मताञ्च स्वीकुर्वन्ति । नगरे वराकालानां पोषणाय गोशालैका पौर्प्रतिष्ठान स्यात् । रात्रिं द्विशती तत्र दुह्यते परन्तु सदस्यानां शिशवं स्त्रियो भृत्या गोशाला कर्मकराश्च पयं पीत्वा शेषस्य पयसो दधि विधाय नवनीतञ्च प्रधानसदस्यगृहेषु प्रेष्य केवलं सुदधित् परिचितशिशुभ्यः प्रदीयते येषां मातरः सदस्यगृहेषु निश्चुत्क कर्म कुर्वन्तो विशेषज्ञा लभन्ते । एव तेषां नाम विलिख्यागृहञ्च गृहीत्वा तत् श्वेत जलं दध्यम्लमिधं संभ्यं प्रदीयते । नगरस्वास्थ्यव्यस्तं प्रधानो नगरवैद्यः प्रतिदिनं प्रस्थानय नवनीतं दशप्रस्थं पयश्चादाय पौरप्रतिष्ठानानुसारि स्वास्थ्यविवरणं ददाति । तेनैवादेशि यत् प्रातःकालिकं पयः प्रवाहिकां करोति, अतः शिशुभ्यः उदरिर्वहेयम् । आदेशो चारिर्मैस्तस्य स्वार्थं सदस्यानाञ्च हितं सन्निविष्टमस्ति । दयनीयेषु दशा देशस्य । पाठशालानां नैव साध्वी व्यवस्था । अध्यापका अपसमये समायान्ति । आगत्यापि केचन विधाम्यन्ति, अपरे वासासि प्रक्षालयन्ति, केचन पत्रं लिखन्ति परे छान्नेन गृहादानीतं भोज्यं भुङ्क्ते, इतरे मित्रैः सहालपन्ति । केचन कृपिसरक्षणाय छानान् प्रेषयन्ति, अन्ये गृहकार्यसम्पादनाय, मध्ये मध्ये 'कोऽपि वदामि विघ्नरूपं कोलाहलं कुर्वन्' इच्छान्नेभ्यो दण्डचपेटादिकं दत्त्वा पुनः स्वकार्ये लगति । अधिकांशोऽपि शिक्षकश्रेष्ठो गण्यते । योग्याः शिशवस्तत्र स्वबुद्धिं व्यर्थं यन्ति । अदृढं आत्मदत्तवेयम् । लोकस्य भाषि यः आशाः एवं दुर्व्यवहियन्ते । स्थाने न वायो, न प्रकाशस्य, न स्वच्छतायाः प्रबन्धोऽस्ति । यत्र तत्र मलानां सिंघानां, शिक्षकानां निष्ठीवनस्य प्रसक्तं वर्तते । भग्नाः पट्टिकाः, खण्डितानि मपीपानाणि आभुषणानि पुस्तकानि साट्टहासमध्यापकानां सङ्गमेशिकां प्रसारयन्ति । श्रुतं, राज्यस्य शिक्षा-विभागीयनिरीक्षकं प्रतिवर्षं समेति । केवलं तस्मिन् दिने वणिगाभारतो मार्जनीं समानीयते, पुनः सा मुख्याध्यापकस्य गृहं नीयते । तद्दिने प्रतिबालं सुदैका शुक्लं गृह्यते तेन स निरीक्षको मधुरभोजनेन पुरस्कारेण च प्रसाद्यते । एव गृहीतबलिं सोऽहंशिशुभिः अध्यापकानुमोदितं निश्चलप्रवक्ष्यामि करोति । योग्या वराकाला

बाणानां विपाकगोलकानां वमलाश्वावस्यकता । जगन्अन्तिमनिलयति । जगतो जीवनेच्छा प्रबला, एतादृशे जगति न भवाद्वया आवस्यकता ।

“क्षुण विधम्यापराधिन्या अपराध मर्षत्वार्यः । सागराधोऽपि परितप्यमानः सातुभिरस्यं मर्षणाय एव ।”

“क्षुणिके परितापे को विद्वान् विश्वसिति । अथ मृत्युं-सम्मुखमुपलभ्य स्मशान-वैशम्यमिव परितप्य पुनर्विस्मृत्य एव पन्थास्तदेव चक्रम् ।”

“देव, सज्जनय पर्यन्तमहं युद्धाभिरुचिरासम्, कन्याप्यहं पितुः पुत्रस्थानोया विश्वं विजिगीषुरास, किन्त्वद्य भवद्विनारमाकर्ष्य युद्धं त्यक्तुं ठठसह्यतास्मि । मम पितुः राज्ञो राजेन्द्रपालस्याहमेव युद्धपरमर्षदात्री, अहमेव बहून् राज्ञो विजित्याधुना रामपालेन योद्धुमुद्युक्तवती । परमद्य विचारः परिवर्तितः ।”

“क्षिप्रमहस्ता वीरवरेण रामपालेन सह सवत्या युद्धं सर्वयाऽसमीचीनमासीत् । एतत्त्व न वेत्ति । अहं युद्धभयङ्करं रामपालं शस्त्रास्त्रविचक्षणा तस्य चमूबं सम्पन्नां वैशि । तेन युद्धे निदिधित भवत्याः पराजयो हस्त्यामलक्ष्यत् प्रत्यक्षम् । अहमेहि कीं सर्वां शक्तिं विज्ञातवानस्मि यत् कीदृशं सार श्रीमती बहति ।”

“शान्तं पापम्, अहं भगवन्तं सूर्यम्, पक्षिः स्थितान् पादपान् वनदेवतां जीवनदातारं भवन्तस्य साक्षित्वे न्यस्तं क्षत्रियसर्वस्वं धनुश्च स्पृष्ट्वा प्रतिजाने मद् विष्वसनात्मकं कार्यं विहाय राष्ट्रोन्नतौ सर्वात्मना लग्नप्यामि । दुष्पत्यधुना देवः ।”

“नितरा प्रसीदामि । अस्तु, अहनेकस्मै महते कार्याय कृतसङ्कल्पोऽदिलम्बं यामि, देवो द्रष्टव्यं तावकोन यत्नम् ।” अप्राप्तोत्तरोऽहं श्रीमद्विधिं प्राचलनिति ।

“जनानन्दिने चन्द्राव साधुवाद वितरत्यु परिजनेषु “चिरञ्जीव, तावकं बुद्धिबलं विमृश्य नितरा प्रसीदामि” इष्याम्यपि मुमुक्ता राज्ञा प्रत्यपादि । “परन्तु पुनः, इतोऽप्यधिकं गरीयः कार्यं समापत्तिं येनाहं विषोदन् वक्तुं पुरः स्थानुष्य न शक्नेमि । नैतस्मिन् कार्ये त्वत्तोऽधिकं कमपि समर्थं प्रदे । परयो राज्ञी मनोरमया सह चन्द्रद्वे मुक्ता कमला प्रावर्तनं लब्धा

परिश्रमन्त प्रहरिणश्चौराणां मुयोगाय सूचनायै च चरन्ति । कस्यापि विपदि ममस्य विपदिवशमापि नोद्विष्यते विनोत्कोचम् । सतीनां सतीत्व, धार्मिकाणां धर्मः, धनिनां धनं, सुजनानां सौजन्यं भयाभिभूतम् । किं भावीति विचारे सर्वेऽस्थिर युद्धयो नोन्नतिं कर्तुं समर्थाः । किमेतस्योत्तरदायित्वं त्वयि नास्ति । ■ केवलं युद्धकर्ममतिप्रवृत्ता समृद्ध सम्पन्नं देशं व्यकार्षीम् । यदि कश्चन निष्पक्षो न्यायालयो भवेत्स्वा देशद्रोहापराधे आजन्म कारावासं प्राप्नोत् । परन्तु मा नाम भूदन्नं तव कारावासः, भगवान् जगदीश्वरोऽणुकणसन्निविष्टस्त्वामवश्यं दण्डमिष्यति । शृणु नाधुना जगति कोऽपि युद्धममिलयति । सर्वे शान्तिमुधा विपासवः शान्तिं वात्तमिव झुधूयन्ते । निरवधिनिरवच्छिन्नशान्तिप्रिये पवित्रे भारते पुनारक्तकणान् प्रसारयितुमीदृशे ! नाधुनाऽणुवमानामात्मन्यकता । जीव, लोकजीवने च सहाया भवेत्येव प्राणिवर्गस्यामिलाषः । परन्त्वमधुना लोकसंहारकृतसङ्कल्पेन शास्त्रास्त्राणि निर्मापयसि ! कस्य कृते ! साम्यवादस्य प्रबलधारया समाप्नुतेऽस्मिन् जगति तव साम्राज्यवादस्याहैतुकं आश्चर्यकरं कदमिलाषं हास्यास्पदम् । जज्जर्जरीभूतं साम्राज्यवादं सहैव स्वैरनुयायिभिरर्थवादादिभिर्लंघीयासमाघातमेव प्राप्य विनाशाय सज्ज इव स्थितः । किं भवती कस्यापि विवेकवतो हृदये साम्राज्यवादसामन्त वादार्थवादान् प्रति भ्रष्टा प्रेक्षते ॥

“परन्तु देव, एषा प्रवाहपतिता नीरिवाधुना महता वेगेन प्रवहति विचारधाराः, किन्तु क्षुद्रोऽस्य कार्यकालः । एषा धारा न विरम्य स्थातुं समर्था । अपां शीतत्वमग्निनाऽवश्यं दूरं क्रियते सकृत्, किन्तु स्थायिनी स्वाभाविकी शीतता न सर्वथाऽपहर्तुं शक्यते । एवमेव निर्धनधनिनोऽसुरोग्नीरोगयोः दुर्बलसुबलयोः विवेकाविवेकवतो साम्यं न कदापि स्थिरयितुं शक्यते । एकदैवैव नौ पर्वतादाघातं सम्प्राप्य प्राप्तविवेकां प्रत्यावर्त्तयति । तदा पुनरेव भवतां साम्यवादः पुस्तकालयानां ग्रन्थसंख्या वर्द्धमिष्यति ।”

“अनुमोदयाम्यहमपि तावकीनं विचारम् । मा नाम चलीत् साम्यवादः आलस्यं, एष नवनवे समुत्प्लुक्तस्य जगतः स्वाभाविको धर्मः किन्त्वेकदैव समस्मिन् विश्वस्मिन् प्रचलिष्यति, प्राचीनगर्वादाथ विनाशयिष्यतीति भ्रूयस्त्वम् । एतदपि सत्यं यन्न तव

मायानां विपाकगोलकानां वमानावावश्यकता । जगच्छान्तिमभिलषति । जगतो जीवनेच्छा प्रबला, एतादृशे जगति न भवाद्याया आवश्यकता ।

“क्षणं विभ्रम्यापराधिण्या अपराधं मर्पित्वार्यः । सापराधोऽपि परितप्यमानः साधुभिरवश्य मर्पणोय एव ।”

“क्षणिके परितापे को विद्वान् विधत्ति । अथ सत्यं-सम्मुखमुपलभ्य स्मशान-वैशम्यमिव परितप्य पुनर्निर्मूल्य ॥ एव फन्यास्तदेव चन्द्रम् ।”

“देव, सद्यस्तु पर्यन्तमह युद्धाभिरुचिरासम्, कन्याप्यहं पितुः पुनस्थानीया विश्वं विजिगीषुरास, किन्त्वद्य भवद्विचारमाकर्ष्य युद्धं त्यक्तुं कृतसङ्कल्पास्मि । मम पितुः राज्ञो राजेन्द्रपालस्याहमेव युद्धपरामर्शदात्री, अहमेव बहून् राज्ञो विजित्वाधुना रामपालेन योद्धुमुद्युक्तवती । परमद्य विचारः परिवर्तितः ।”

“तिममहसा नीरवरेण रामपालेन सह भवत्या युद्धं सर्वथाऽसमीचीनमासीत् । एतत्त्व न वेत्ति । अहं युद्धभयङ्करं रामपालं शस्त्रास्त्रविचक्षणा तस्य चमूद्य सम्यग् वेधि । तेन युद्धे निश्चितं भवत्याः पराजयो ह्यस्मात्सकृत् प्रत्यक्षम् । अहमैहिर्को सर्वां शक्तिं विज्ञातवानस्मि यत् कोदरा सार श्रीमती वहति ।”

“शान्तं पापम्, अहं भगवन्तं सूर्यम्, परितः स्थितान् पादपान् वनदेवतां जीमनशतारं भवन्तस्य साक्षित्वे न्यस्य क्षत्रियसर्वस्वं धनुश्च स्पृष्ट्वा प्रतिजाने यद् विश्वसनात्मकं कार्यं विहाय राष्ट्रोन्नत्यै सर्वात्मना लगिष्यामि । तुष्यत्वधुना देवः ।”

“नितरां प्रसीदामि । अस्तु, अहमेकस्मै महते कर्ष्यामि कृतसङ्कल्पोऽबिलम्ब्य यामि, देवो द्रष्टव्यु तावकीनं यत्नम् ।” अप्राप्तोत्तरोऽहं श्रीमद्दिशि प्राचलमिति ।

जनानन्दिने चन्द्राय साधुवादं वितरत्यु परिचनेषु “चिरजीव, तावकं बुद्धिवल्लं विमृश्य नितरां प्रसीदामि” हर्षाश्रुचि मुखता राज्ञा प्रत्यपादि ।

“पान्तु पुनः, इतोऽप्यधिकं गरीयः कार्यं समापतितं येनाहं विषोदन् वक्तुं पुरः स्थातुश्च न शक्नोमि । नैतस्मिन् कार्ये त्वत्तोऽधिकं कमपि समर्थं प्रप्रे । परयो राज्ञो मनोरमया सह चन्द्रगृहे मुक्ता कमला शतवर्णं लब्धा

येषा ऽङ्गारमुख्या अहमहमिकया तालमृन्ते नियुक्ता
 वैदभ्याद्याश्च येषा पदतलदलनप्राप्तसौभाग्यहृष्टा ।
 श्लेष श्लिष्टोऽङ्गमर्दे रसिकजनमुदे शास्त्रिणा श्रीनिवासा-
 नामेत् कान्ये तृतीय परिमलललित कान्तनिश्वास एष ।

इति धी—

मान्यमधन्य—निद्रत्पारायणिक श्रीमन्नवगङ्गरायात्मजेन
 काव्यालङ्कारेण श्रीनिवासशास्त्रिणा रचिते
 काम्यकोविदकुमुदकुमुदिनीनायके चन्द्रमहीपती
 तृतीयो निश्वास

चतुर्थो निःश्वासः

सायं शशाङ्ककिरणाहतचन्द्रकान्त-
निःप्यन्दनोरनिकरेण कृताभिपेक्षाः ।
अर्कोपलोद्भसितवह्निभिरहि तप्ता-
स्तीनं महान्तमिवात्र चरन्ति वप्राः ॥

मुद्रापित रत्नभाण्डागार

जीवन्नरो भद्रशतानि पश्येत्
कचिद् भूमौ शय्या कचिदपि च पर्यङ्कशयनः
कचिच्छाकाहारी कचिदपि च शाल्योदनरुचिः ।
कचित्कन्धाधारो कचिदपि च दिव्याम्बरधरो
मनस्यो कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम् ॥
भर्तृहरिः

स्यति चन्द्रः । क गतश्चन्द्रः ११ कमपि पृष्ट्वा गतश्चन्द्रः १ कदापि केनापि कुत्रापि गमनाय अतश्चन्द्रमुखादितिप्रश्नपारम्पर्ये विचारचातुर्यमातुर्यश्च सम्भावने ।

भविष्यद्दिवा ज्योतिर्दिवा पण्डितानाञ्च प्रासादे सम्मेलो दरीदृश्यते । आदरसम्भारेण ते पूज्यन्ते सत्क्रियन्ते वीशयोत्तरच्छदामु सौवर्णीवासन्दोषु साभ्युत्थानसमुपवेश्यन्ते ।

केचन महोष्णीपस्तिलकाङ्कितमस्तका आग्रपदीन दधतो राजतीं यष्टि कलयन्त इमंशुशालिन प्रगाढभाषणैर्महीपतिं मोहयन्तो धनलिप्सयाऽऽडम्बरताण्डव विरचयन्ति ।

अपरे च जटिला आत्मानं देशं भगवतीभक्त विद्यापयन्त आरक्तकौशेयवसना भाषणभूषणा भूपतिं तोषयन्ति । इतरे च दुग्धव्रतिनोऽखिला सिद्धिं कर एष कलयन्त शोषितकाया भवन् प्रभासयन्ति ।

पर कोऽपि सत्य “श्च परधो मासतो वर्षतो नवाऽऽयास्यति चन्द्र” इति कथयति । पुनःप्रणयिनी जननी उपजस्र वयं समाधिता ‘हा चन्द्र ! मन्मदं कैरवविकासकः ? चन्द्रः ? क गतोसि अप्रसूय प्रियां मातरम्’—इति विलपन्ती तस्य शयनागारं, प्रसाधनसामग्रीं वाजिनश्च प्रतिक्षणं प्रेक्षमाणा, स्मार स्मारमहनिशमभ्रपूर्णलोचनसरोरुदा स्वारथ्यमेव गमयाश्चकार ।

महाराजो रुग्ण प्रजागरुकृशो निमीलजं नयुगलो गतसत्त्व इवोपबर्हमाश्रयन् स्थितः । विदूरे चैको भूत्य प्रलम्बदाम्ना न्यञ्जनमाकर्षति । न कोऽपि शक्तो मौनप्रभौ प्रभुत्वमपहन्तुम् ।

‘विद्याधरः ? हरिः—सुभद्रा महत्या प्रतिज्ञया गतौ अपि प्रतिनिवृत्तौ ? तद्वा साम्राज्यं मर्दयन्महाराज आह ।

मन्त्री—आम् देव ! परिभ्रमणकृशकृष्णविग्रहौ म्लानमुखौ प्रातरेव प्रतिनिवृत्तौ । परन्तु

महा०—(मध्य एव) अकृतकार्यौ । किमेतदेव ।

मन्त्री—आम् देव ?

महा०—एतदेव सम्भावितमासीत् । शतवपमिव वर्षचतुष्टयं बीतम्, नास्ति कोऽपि जीवति नवेति प्रतिदिनं पटवः प्रतिदिशं प्रेर्यन्ते, परं वेतनभुजः पटवः प्रेक्षयन्तः

चतुरधिरोगिणोऽनां समवायः समीक्ष्यते, परं क्त्वापि मुखमण्डलं कृतकृत्यत्वेन
सामं नावलोक्यते । प्रतिदिनमेतदेव ध्रूयते, मद्भ्याम्यत एतद्भिमताऽऽश्रयवलिरेव हृता ।
(विविधिन्यस्य) मन्त्रिन् ? दक्षिणोऽस्ति, अस्माद् दक्षिणोऽप्ये निःसर्त्तुं मर्त्तुं कामोऽस्ति ।
बहु सोऽयम्, इतोऽधिकं सोऽयं नाहमस्मि ।

मन्त्री—नैतच्छोभते धैर्यचारिण्यन्वरे भवति भगवन् । पुरा किल नट्यामनुधि-
ष्टिरादयो विपत्तिनानावृत्तेन बहसा सहन्तः कालेनानुलां सम्पदं प्राप्य प्रचुरं यथास्तेषु ।
शक्तिरोग्यात्मनाऽस्ति कथं छनोऽस्ति . . . ।

महा०—(नम्र एव)—अपि अप्यास्यदितः क्वचन समाचारः शक्तिपरस्य ?
मन्त्री—देव, अद्यैव तेनागमन सूचितम् । मन्ये कृतधैर्यः स निवर्त्त्यति ।
सोऽपि समदुःखमुखः ।

महा०—(विमनायमान इव) अम् लक्ष्यते ।
अधुनैव वेनहस्तो दौवारिकः प्रविश्य निर्जयं व्याहृत्य “देव ? श्रीनन्मन्त्रिदुमारोऽपरेण
केनचिदज्ञतनामधेयदेशजातिना साद्वं श्रीनन्मन्त्रिं प्रणिनंसति, श्रीचरपी प्रमाणमित्युच्ये” ।
महा०—[उत्थापितनयनो दौवारिक निपुणं निरीक्ष्य] आन् प्रेयन् । दौवारिक,
कावक्ष्यता शकौ व्यवहारस्यानुष्य, अस्तु, शोभं प्रेयन् ।

प्रणम्य प्रगते प्रहरिणि समायातः ससहचरः शक्तिपरः । महाराजं मन्त्रिण्य
प्रणम्य, राज्ञा—“पुन । शक्तिपर । चिरञ्जीव” —इत्युच्यमावत्तन्निर्दिष्टकाष्ठनीटिकाया-
मुपविष्टः पार्श्वे च सहचरः ।

शक्तिरोग्यौ वर्णेन शोणितप्रभः, भाट्ट्या मुपनाथरो मन्त्रुलो वनसा पद्मविद्यतिवर्ष-
देवीयो, जनपदजैर्भायमानमेध्व-“वीप्र”-विद्युद्ध-“सुरद” सेनुरो-“गुणः, कोमलकलेवर
एत्साहस्रः प्रभावितसंमत्तसमोऽस्ति ।

सहचरश्चास्य विवर्णः प्रहृष्टमधुर्जटिलो वितततनुवष्टिर्भनीतः, प्रस्वेदविन्दुपूर्ण-
कपोलयवतः पीतदशनोऽसितवासा युतापि वृद्ध इव प्रतोज्यते ।

अथ महाराजो नेत्रसङ्केतेन सूचयन्नुवाच—
अपि युवातं पून ? त्वनपि नितरा कृपामृतः, कोऽयं समानीतस्त्वया ।

१ पवित्रम् । २ विनयम् । ३ विद्यालम् । ४ विपुलम् । ५ युद्धिः ।

शक्ति०—धीचरणकृपया कुशलम् । महाराज ! किं विस्मयतेऽसौ चन्द्रमित्रं विश्व-
शेखरः । यो हि युवराजमहोत्सवे तस्मा उच्चकुलप्रसूतमधमदात् ।

महा०—(विस्मृतं पूर्वोदन्तं स्मास्ति इव, पूर्वानुभूतां युवराजसमयच्छट्टामनुभावित
इव विस्फारितनयनः) आः (क्षणं निश्वास्य) यथास्त्व चन्द्रोऽस्मान् दुःखितार्थकार

शक्ति०—(कथयतो महाराजस्य मध्य एव) देव । प्रातिसाधनमप्येव एव ।

पीयूषपरिप्लुतामिव मधुरां श्रोत्रस्रोतसा मानसमानन्दयन्तीं वाचमिमामाकर्ष्य धीतुम-
धीरो महाराज ऊचे, अप्यासादितः कथन समाचारः स्वमित्रस्यापि पुत्र ? कश्चित्स्य
कापि गमनपदवी लब्धा ? अपि कुशली ज्ञास्ते चन्द्रः ?—विशदलय्य कथ्यतां स्वकीय-
यात्रा-वृत्तान्तः ।

शक्ति०—देव, अस्मान्नगशान्तिर्गतोऽहं विचित्रविचित्राणि, शोभनशोभनानि वनानि
स्थानानि नगराणि कन्दराश्चापश्यम् । परतश्च नर्मदाकूलशैलशिलागुहासु जातशङ्कधिरं तत्र
वासनकलयम् । नर्मदायाः सुरम्योऽयं प्रदेशः । उभयतस्तटं हरिणमुख-यन्द्रकर्षिता दूर्वा
कूलशान्तिं कुर्वन्वासीत् । विदूरं यावन्तिरामकुटिला नर्मदा श्वेतसूत्रमिव प्रत्येत ।
कूले श्लक्ष्णाः ज्ञानशिक्षा अतीतकाले पुरुषसत्ताम सूचयन् । एकतः कूले नितरां निविष्टं
वनमासीद्, द्वितीयतश्च निरल्पादकः समः प्रदेशः । एकतः शार्दूल हरि-वराह-भालूक-
खड्गिनां प्राज्य राज्यं, द्वितीयतश्च मृग-चमर-शश-गवय प्रसृतीनाम् । एकतो निश्चितनख-
विदारितकरिणां हरीणां श्वेदा^१, परतश्चाक्रान्तकदम्बकाण्डानां केकिनां केकाः । एकतः
समूलपादपोन्मूलनं वृंहित^२, परतश्च फलास्त्रादहारि रतम्^३ । परस्परविरोधि प्रदेशद्वयं
विभजन्ती नर्मदा प्रवहन्त्यासीत् ।

अहं नर्मदारोधसि स्थितासु शिलासूपविश्रोऽनन्तानन्दमुधां पिबन् कदाचन हरिण-
शावकानां स्वाभाविकीं तरलतां, कदाचन वन्यशशकानां सैकतप्रदेशे निदशङ्कं क्रीडन्
कदाचनोपनर्मदकर्दमेषु "लुलायल्लुण्ठनं, कदाचन पादपेषु कपिपुङ्गवप्लवनं कदाचन
"भूरिमादसमुदायमः" पश्यन्वत्तिमि ।

नर्मदायास्तीरे सुनिशिरयुषितचर एक आश्रम आसीत् । अतीतकाले केनापि

१ श्वेत्त—सिहनादः । २ वृंहित—करिगर्जितम् । ३ तिरश्चां वाशितं—रतम् ।

४ लुलायो महिषः । ५ भूरिमायः शृगालः ।

विरुद्धेन तपस्विना ■ स्थापितो भवेत् । शतशतानामसङ्ख्यमात्रस्मिन्वसन्, इविर्गन्धि-
विभाषमुद्युतः पार्श्वप्रान्तमपुनात्, परमद्य 'ध्वंसावनेपनाप्रमासीत् । बिल्वरूपाणां
सान्द्रच्छायाषु निमिताः परिधयोऽद्यापि यज्ञवेदी व्यासस्थलुशिवकेषु^१ धेनुदामनीधर्षण-
गतांश्च सौरभेयीणां प्रचुरां सम्पदनसूचयन् ।

उद्यानं यस्मिन् तापसाः सविभ्रनं व्यवहर्षुः काननीभूतमासीन्, केवलं कचन कचन
स्थिता बन्धकादिना जीवपूरय्य तस्य प्राचीनपरिचयमसूचयन् । कोणेष्वद्यापि
देवमन्दिराभ्यासन्, मन्त्रानि नितरां जीर्णानि । तेषां भित्तोर्विदग्धा बहवः धृपा
निर्गता आसन् । अग्निवेदिकानां—यामु वेदव्रतिनो वेदनध्यापयामासुः—लोथानि
प्रकीर्णान्यासन् । तत्र 'वामद्वरपूराणां विरीलिकापूर्णाणां प्रातुरम् ।

एकं विशालं भग्नावशेषं विनाऽत्र किमपि नासीत् । परमद्यापि—सम्प्राप्तदशमीकः^२
सोऽतिथिसेवां न व्यस्मरत् । विद्वर्यात्रिणोऽद्यापि तस्य चटानामु विभ्राम्यन्तो
प्रोम्भनीयस्य प्रचण्डचण्डकरत्रिणबाभानपातैः । विस्मृतमार्गां 'अध्वनीना
भ्यापि प्रादुपेभ्यान् मन्मथावातानसहन्त । लघुलघुभिरपि खल्यस्वन्मैरपि फल
वर्षदेवमतेष्वप्यन् । यूयमुच्छन् मृगानद्यापि स स्रवेरीनानन्तः द्य शाययित्वा
निविश्रं रात्रि व्यतिषापयितुं सहादिष्ट । अर्जुनशस्त्रासु निपण्याः पश्चिमं आश्रम-
स्वातीतगयानपाप्यागन्तुकमश्रावयन् । नगराणां नदयस्तनान्वेषु प्रासादेषु, विलास-
शालिभूतनेवानन्दस्य शततमोऽप्यंशो नास्ति यत्प्राश्रमस्य भग्नावशेषेष्वप्यसीत् । तस्य
मूर्ध्वरेण करुणणे, अर्जुनीदासीन्ये भूतगाथाग्राह्ये विलम्बमादकृताऽऽसीत् ।
मातुसंपूर्णं प्रहृष्टेर्दशमासीत् ।

सोऽप्यनाश्रम एव ममायुना वास आसीत् । अहमितल्लतः सन्देहस्थानेषु परिभ्रम्य
तत्रैव तिष्ठन् । तस्य भवनानि सम्प्रति वासयोग्यानि नासन् । आश्रमस्य मध्य एकः
स्मिन्लत्तासीव स्थित आसीत्, को जर्णीवे कतिभिर्नरैस्तस्मिन्, जीवने कीदृशीः
धनुसैर्दशानलैश्च व्यग्रितो भवेत्, परन्तार्साद्विस्तृतो निश्चलो निष्कम्पश्च । अपुना
तस्य तत्रा वार्दस्य व्यासीत् । शाखाषु बाल्ययुवत्वञ्च वीतमासीत् । तस्य शाखाषु

सहस्रं पक्षिण कुलकमेण न्यवसन् । शेष इव सोऽपि तान् स्वशिरसाऽधापीत् ।
ते तत्रैव न्यग्रीवजमूत्रयजहदन्नतृत्यन्नकूर्दन्तास्वैश्च, परन्तु ख एवं सह आसीत् ।

मया तेषा समीपे पिप्पलस्यैकतमे उच्चैः प्रकाण्डे काण्डे एको मबो
व्यरचिः । महता श्रमेण तालकाण्डैर्बद्धदण्डैरेकाकी तमकार्पमेव । सुन्दरसुन्दरै
कोमलकोमले पुष्पपत्रैराच्छादिता सा कौशेयास्तरणमप्यत्यशेत । वक्षानागेका छिद्रमयी
भित्तिरपि मया परितो निरमायि । अह बिदूरादकार्यं कृत्वा समायन् सस्नेह सगर्व
तां मनोरमा कुटो पश्यन्तासम् । मञ्जेन तस्या वियोग न सहमाने आस्ताम् । सापि मा
नेत्रैरिव सहस्रशशिद्वैधनिमिपनयना पियन्तीवासीत् । अह तस्या कोणे बहुविधानि
फळानि रक्षन्तासम् । तान्येव मम जीवनस्य साधनान्यवर्तन्त । कदाचन तृपितौ
रात्रौ हिस्रभयङ्कर नद्यास्तटमगच्छन् वन्यशङ्खिमीफळानां रसमेवापिबम् ।

एकदाह सर्न दिन कार्ये सुष्यम आसम् । क पर्यमासीद् यत् कति गज्यूतदो
मयाधावजगाहिरै, परन्तु मम शरीर नितरामशक्तमभूत् । धान्तस्य मे
सोऽपूर्वो दिवस आसीत्, मच्छरीर श्वेदरूपेण बहिर्निरेत् । अह नर्मदापवित्ररोधसि
शिलाफलकमेकमपिचायान कदाचिद्विद्वान्, कदाचन भयङ्कर कान्त, कदाचन
स्वस्याबहुवृद्धितामकृतकृत्यताश्च कदाचन वन्यपशून्, कदाचन चन्द्र, कदाचन भवन्त,
विमृशन् धर्मनपतुदशासम् ।

दिनपति पतनासीत् । दिनमपि तच्छोके सुषेवक इव म्लानमभूत् । अकस्माद्
भीषणभीषणैर्धूलिमिश्रितैर्बायुपुङ्क्तैः पर्यपूर्यत पश्चिमाशा । सुदृशसेनानीसशालितै
पूर्णसाहसैः सैनिकैरिवाकाशखेत्र व्याप्त परमप्रेरितैर्धूलिधराधरैः ।

मदीयाङ्गेषु मृतश्रापेष्विव शिविलेष्वभिन्नव भय सञ्चरितम् । जीवनधारणस्य
मन्तकं विक्रमण साहसमकरोत्, धान्तेष्वङ्गेषु नवीना शक्ति स्फूर्तिः
समागच्छत् । अह सत्वरसत्वर पिप्पलाभिमुखोऽचलम् । मन्दवायोरेकसञ्चारेणैव
विश्वं पीतमासीत् । एव प्रत्येद् यद् विराजो भगवत स्वलित पीतमन्त्र
जगति प्रवृत्तम् । अकस्मात् पीततां रक्ता समपिबत् । परन्तु रक्तापि मुचिरं
स्थिता, क्षणैव तद्रूप कालिग्निं परिवर्तितम् । हस्ततो हस्तो नावालोपयत् ।
‘धमेगोतटाटिताभ्यां चक्षुभ्यां पुर स्थितमपि वस्तु नालक्षयत् । प्रवृत्-

शक्तिभिः प्रकाशदीपैरपि क्षिमिरदुर्गं नाशितुमशक्यमासीत् । महेश्वरीया मायेव भुवनं व्यामोहयत् । परन्त्वहं मत्पुट्यां प्रविष्ट आसम् । मया दुर्गं प्राप्त मितोवाहं व्यधसम् । काननं वन्यपशुपक्षिणां रोमाघकारिणा कोलाहलेनोद्विगमासीत् । सर्वे स्थायप्रवणा आसन् । सौभाग्येन मुहूर्तात्प्राप्तस्त्वनैश्चनेवियदिशददशमाप्त् । निश्चला वडवो विपद्प्रस्ताकाशेन सहानुभूतिमिव प्रकटयन्त्य आप्रकाशन्त ।

यथाकथञ्चिन्नीरवता विस्तृता । वनभूमिः स्रपुष्टान् लालयन्तीव गाढनिद्रिताधिकार । अहमपि फलानि प्राप्य मुक्तः परन्तु स्रष्टुं सचेष्टश्च । शिरोचेष्टनं शिरस्येवासीत्, कृपाणः कटितटे सम आसीदेव, वस्त्राणि सर्वाणि परिहृतान्येवासन् । केवलं मुरानद्युगलमुन्मोच्यैकस्मिन्कोणे निहितम् । कुटीरस्यै एकद्वस्ततोऽपि न्यूने द्वार एवाह वयान आसम् ।

अकस्मान्नम निश्र भाग । मम धैर्यधारि हृदयमधीरतामभूत् । तस्य गतिः शततोऽप्यधिष्ठाऽऽसीत् । आकस्मिकेन भयेनोद्विग्नः सहसा पार्श्वनिकुञ्जाद् गर्जन्मधौपम् । उपविष्टश्चुषी विस्फार्यादाशं यदथो निकुञ्जे जिह्वया चक्षिणीं लिङ्गं सिंहो भ्रमति । तत्पाप्माप्रतिने अक्षिणी नैश्चिकमन्धद्धारं कर्त्तयन्ती द्योतेवे । पुच्छमुत्थाप्य स गभीरगभीरं सत्वरसत्वरं मुमुक्षित इव पादान्वस्त्वक्षितस्ततोऽभ्रमत् । तस्य भयङ्करा दंष्ट्राः सन्तमसेऽपि प्रत्यक्षमैक्षन्त । तत्सोत्पाटितं मुखं सुपटो- एचेडिनः पाटवोत्पाटने प्टासीत् ।

तत्स्यका लघीयसी दृष्टिर्भस्कुटीरे न्यपतत्, एकेनैवोत्कूर्दनेन स मत्पुट्योपगमासीत् । हृदयभावधनुरोत्प्लुतः समायातः । स निदग्धं गर्जनं कुटीरच्छत्रे भ्रमन्नासीत् । तस्य मुखादाननांसगन्धो मन्मानसमुदविजीत् । मर्मरतर्जः कुटीं स्वस्वाः शोचनीयां दशां गह्वं स्रष्टुं न्यवेदयत् । परन्तु सम्प्रति जीवनसंशीतो चिन्ताचक्रमसनीय दस्तश्रुतनिस्त्रिशोऽभीरिवाभूवम् । परं मन कुटीं सन्नस्यैवासीत् । तस्य निश्चिता नखा वंशशचोरस्य पार्श्वतोऽन्तः प्रविष्टा आसन् । सिहवन्नितेन पर्णकुटीं सर्वाङ्गैरकम्पत् । सिणलयासा मर्मतयन्तोऽ- श्रूयन् । कुटीप्रवेशान केवलमेकमेवासीद् द्वारम् । यस्मिन्नहं स्थित एवाहम् । मयाऽनुल्लाहसेनाक्षिणी उपरि कृते स नृपं गजितः । श्रवणारौ मम नितरां समीपे

ज्वलन्तावास्ताम् । तस्य सङ्कोधः श्वासः कुटीमपूरयत् । सिद्धो भीषणं सङ्घर्षं
उच्छ्रय्य द्वारस्य सम्मुखीनकाण्डे समैत् । मयापि खड्गोऽङ्घ्रिणी निमील्य
ग्रहत एव । परन्तु सिंहः प्रहारं वधयन्नुच्छ्रय्य पुनर्महता वेगेन कुटीरे
पतितः । अधुना कुटी विशृङ्खला जाता । तस्या अङ्गानि शिथिलान्भवत् ।
सा कड कड शब्देन स्वशरीरं सिद्धान्ताप्रावहौपीत् । अनेनाकस्मिन्नेव
व्यतिकरेण सन्प्रसक्तः सिंहोऽपि सङ्घर्ष्य एकतः संकूर्य कुञ्जलीनोऽभूत् । मया च
तस्मै नमोऽकारि । कुटीदशा विचित्राऽऽसीत्, भूकम्पोत्तरं नगरस्य सप्राम-
सम्भगगात्रस्य बीरस्येव ।

प्राची प्राकाशत । सूर्यदीपमादाय मुवननीराजनामिवाचरन्ती सा नितरामराजत् ।
अहं प्रातराश निधाम गन्तुं प्वचारयम् । तस्मात्स्थानान्मम मनस्तृप्तमासीत् ।
क्षणं भद्रगानां कुटी, क्षणमाभ्रमं क्षणं पिप्पल, क्षणं मत्प्रतिवेशिनः पक्षिणः
सत्नेह वीक्ष्य पार्श्वपर्वतकन्दराभिमुखमगच्छम् ।
उपवनमेवासीत् पर्वतः । वनपर्वतयोर्मध्ये एकं विस्तृतं सुरम्यं चक्षुःसवस्व क्षेत्रं
पार्वतनिर्भरणां विमलजलेन सिषमुपवनतां दधदासीत् । एकतः शिल्पिनिर्मितेव सरला
प्रोष्वा वशभित्तिरभ्राजत । अन्यतश्च शिखरैराकाशं स्पृशन् विविधद्रुमलतागुल्मगहनः
शैलोऽवनितलम्याक्रम्य विपत्सुधामापिबद्भिः करीरपनसतिनिशपारिभद्राजुं नादिभि
निर्भ्राणामनवस्तसणत्कारेण च व्याप्त आसीत् ।

अहमेकस्य सद्ययमहीदृहस्य शीतले तले उपविष्टः पार्वतीः घनवना नृशावलीः
प्रेक्षमाण आसम् । अकस्मान्मया दृष्टं यत् सान्द्रद्वयनिलये आलपन्तौ द्वौ
पुरुषौ पर्वतपापापविकर्तननिर्मितायां गुहायां प्रविशतः । कस्तस्या निर्माणकाल
आसीत्, कियता धमेण कतिभिश्च नपैः सा सम्पादिता भवेत्, परमद्यापि
सुदृढा । गुहाभवनान्निर्गतो “हे प्रभो ! हे नारायण ! हे दीनबन्धो ! मा
मां जीवये”ति विरलविरलोऽस्फुटाश्रितो ध्वनिमेतत्कर्षी स्तर्कावकरोत् ।

अखनपदन्यासोऽहमपश्य यत्लोहदण्डद्वारायां कसरायां निस्वशेस्तरः प्रवृद्धस्रभ्रुः कृशः

कृष्णो दीनो म्लानोऽपरिचीयमानोऽस्ति । तन्मुखादेव तानि पदानि निसरन्ति । तादृगवर्य दृष्ट्वा हृदयमसाधारणया करुणया पूर्णम् । लघुरेव 'विष्कम्भरु आसीत्तदग्रे, पापापपातेनैव त सद्योऽस्मिदम् । ततद्दैव यथाऽऽनीतवानस्मि, तथा श्रीमतामग्रे स्थित एव । अनेन कथित चन्द्रगमनवृत्तमिति ।

ततश्च सभासदा सायुवादेव सहैव विरते श्रीमति शक्तिधरे प्रवर्द्धमानायाश्च महाराज-स्याधीरताया मौख्य भजस्तु च तस्येव शक्तिधरास्त्वसद्वैतः स व्यजिज्ञपत् ।

देव ! केवल देहमानभिन्ने परमसुहृदि श्रीमति चन्द्रकुमारे गते द्विनेपु दिनेषु व्यतीतेष्वह मन निवेतनस्य क्षोमे^१ सुप्त आसम् । ममाकस्मात्प्रि-भग्नः । निशीथः । सर्वतः प्रसृता च भोषणा निस्तन्वता । मूरतामन्तर्भूत^२ तमखिनी च नितरा तिमिरिणी । मिष्टीकरुणमङ्कारमन्तरा कोऽपि शब्दः श्रुतिपथ नावावरात् । समस्त जगद्गपादमस्तक भयमग्रमिवासीत् । क्षिप्रधाविणा ध्वणे-नानुभूतो नवनस्याधोभागे कक्षनापूर्वो ध्वनिः । उद्विग्नो भीतथाहमसामयिकेन ध्वनेन, भित्तिमज्ज्वातः पद्मगुटिक 'भिन्दिपालमेक नि सार्य कुटि 'गुटिकाया सस्थाप्य, नागदन्तेषु लम्बमानाना चन्द्रहासानामेकतम लघीमास हस्ते कृत्वाऽश्चन्दितचरण-सोपानैरवतीर्या-ऽर्घ्यं वन्द्यम दात्ता ललचैतना एकरिर्मन्त्रिद्वारे साज्ञान खेखे । तान् विहाय-ध्वान विचित्ररसता मया कवाटसूक्ष्मच्छिद्वर्गमनलघु दृष्टं ज्योतिः । कपाटे पादापातेन निरर्चय यत्कपाटयुगलमन्तरतो 'मुद्रितमस्ति । श्वनुभूतिः प्रत्यक्षता मधृत । कतिचन पुरयाः शनैरालपन्तदिष्टितभिरया मम कोशजातं सत्वरसत्वरं बहिनिरक्षिपन् । 'निगर्प्रकाशिकाप्रकाशधाखिल वस्तुजातं प्राकाशत । नैवे शरमुन्मुद्रयिष्यन्तीति पर्यालोच्य बहिरागत्य खवान् यत् तय पुरया मम-कोशजातं प्रमोष्य षोट्टलिकास्वावध्य वाजिध्वज्योय गन्तु सज्जाः । तयः पुरया-शरीरेण, पादसेन, बुद्ध्या, शक्त्या, शस्त्रेण, छत्रेण, क्रोधेन च गरिष्ठाः,—एकधाहमिति विचार्यापि नाभवमह शक्त्योर्यमाण कोशजातं द्रष्टुम् ।

१ ताळा—इतिभाषा । २ उपरकोमल्लिमें । ३ पिस्वील । ४ पेटके पास की जेब ।

५ मुँदा हुआ—इति भाषा । ६ टॉर्च लाइट ।

‘तिष्ठ रे । चौर्यकलङ्कपङ्किला । बुष्टप्रथा—इति सगर्जनमाभाष्य सदधमेक माहलो निष्कोशकृपाकृपणकृपाणपाणिरहमन्वधावम् । किञ्चिद् गतो व्यचारयम्, यदेते निर्दया साहसिका—एकान्त्रि मा हन्त्युस्तदा ॥ खदमिम सवाद क श्रावयिष्यति स्वजनसम्बन्धिन । सर्वे मित्रबान्धवैरविज्ञात एव मरिष्यामि । मम हृदयगति पदे पदे व्याकुलता चावदंत । उद्धता वीरभाषा एकपद एव विलीना । मुखमण्डल खिन्नम् । करोऽकम्पत । शरीर शिथिलतामभावीत् ।

अकस्मादध—‘हिँ हिँ शब्देन स्तब्धतामभनक् । तद्वाचि उरसाह आसीत्, स्वाभिभक्तिरात्मविश्वासश्च । अकस्मात्स्थिरमभूद् हृदयम् । भीतिर्वीता । अहमस्य दायोस्मीति भावना नष्टा । पशुरयमस्माक किमुपकरिष्यतीति विदन्मपि तस्य हृदया—नवीनेनोत्साहेनाह प्रतिबोधितोऽवभुतधैर्येण पूर्ण ।

सम्प्रति मदीयो बाहो बातेन समलम्बत् । तेषां वाजिनोऽपि वेगेन मार्गमतिशयन्त आसन् । परन्तु ममाप्यधस्तेभ्यो विदूरो नासीत् । को जानीते कति क्रोश मध्वानमह व्यापार्य, परन्तु नक्षत्रक्षणेन रात्रि स्वल्पैवावशिष्टा प्रत्येत । तेऽकस्मा दशवेभ्योऽवतीर्णा । अहमप्यवतीर्य बल्या करीर द्वाकाध्यामोऽय मर्यादया स्थितो भिन्दिपाल नि सार्य प्राहरम् । चतुर्दशी चन्द्र उदैत् । व्यग्रस्य ममाक्षिणी सम्यङ् नापश्यताम् । तथापि द्वौ पुरुषावाहतौ, एकश्च परेत राजस्याध्वनीव मकारवम् ।

घना पृक्षाति । चन्द्रप्रकाशानाश्च तम । जनसम्पर्करहितस्थाय प्रदेश । यदाह सामकीन धनराशि जिष्ठपुरप्रपदे प्राचलं, तदैव “वीर । वीर । पश्यसि । पश्यसि”—इति समभूयत कर्णकुहरविस्फोटन करालो घोर आवाह । भ्रुत्वा चैतच्छुष्यदूलनलै कुण्ठित रसने विधूतभावकषाजौ प्रोच्छलद्गृहदये कम्पमानकरकरवाले भीत्या निपतित भिन्दिपाल उदितरोमनिनुरग्ने स्वेदर्दस्तब्धशरीरे मयि निकटदृष्टमज्जामण्डल निनृत कज्जलकलकलितेनेव, कालकम्बलेनेव मपोपूपरीतेनेव अशेषशेषादिसरोरुप समूहनिमित्तनेव, अगिष्ठेलाकलङ्कपङ्कनिनुरम्परिरम्भितेनेव, कासरचर्मणेव काककोकिल-उत्तेनेव, पटपटसहस्तेव महेश्वरीयभावेनेव, हत्वाट्टन्देनेव नैदयहृदयेनैवाप्रपदीनेव

कृष्णपटेन समानृतशरीरो नीलवस्त्रावगुण्डिताननो भयङ्कराकारः साम्भर इव कालो दृढशरीरो मत्त इव हस्तवृत्तमङ्गः कश्चन ना ।

साक्षान्मृत्युमिव पुरःस्थितं त वीक्ष्य शोचन्नहमात्मानं चिक्कृतमक्रार्पम् । नश्वरवृत्ते वित्तस्य गरीयसा लोभेन प्राणानपि स्वहस्तेन संश्रीतिमारोपयता मया स्वस्याविमृदयकारित्वं मय्ययम् । तद्वचनला चञ्चला जीवनपारावारे समप्येति नश्यति च बहुशः, परन्तु तनुरन्नमिदं न पीनगुन्येनाप्यते, इन्त ! कथं निःसर्तप्यनस्त्रान्मृत्युमुखात् । कथमस्य विपत्-पारावारस्य परं पारमाश्रयेमिति चिन्ताकुलो मरणमवश्य सम्भाष्यमानः सत्वरमेवा-सिना प्राहरम् ।

परन्तु बलिष्ठेन प्रकोष्ठे गृहीतोमुना कालेन केवलं स्या निःश्वसन् अन्तःस्थित क्रोध-मशिन्यां यमन्तासम् । तावदेव बायुच्चनिना' सकेतितः कथिदायस्य शिरसि विपनय-प्रचुरपरिमलमूर्च्छांशयकौषधपरीतं वज्रं प्राक्षिप्येन प्राणाप्रवृत्तिनैवाहं नष्टसङ्गः सरसः । नष्टमूर्च्छांश्चात्मानं लोहदण्डनिमित्तद्वारे कारागारे प्रापम् । यस्मिंश्च कम्बलद्वयं प्रावरणविस्तरार्थं, पयःपूर्णपटं भ्रमन्तुम्बीपात्रं विना नान्यत् किमप्यासीत् । कश्चिन्मूढो दासो द्विप्रैरहोभिर्मह्यमन्नं प्रयच्छन्नासीत् । तेनैवाहमियन्तं कालं दुःखमा-कलयामि जीवामि ।

अन्यदा प्रभाते स्वप्ननवभवं मयन्दः करेणुकामाच्छ्रो महति समारोहे समाद्रिय-भाणोऽदृष्टवरे नगरे राज्ञो हर्म्याभिमुखं प्रयाति । समन्वहमपि शविममाच्छ्रो यामि । विलम्बो वाद्यध्वनिर्ब्रह्माण्डं मुखरयति । अकस्मादेको महोत्सोभ'ध्वजितः । तेन-महाशब्देन व्यग्रोऽहं निद्रामज्जहाम् । क्षणं स्वप्नं क्षणं सकीर्णं वर्त्तमानां दशां विमृशन्तहं निद्रां व्यगमयम् ।

वनूत सुप्रभातम् । अद्य दिनं मम जीवनस्य विशिष्टं दिनमासीत् । स्वर्णसूर्य उदगात् । चिरणावली प्रभोदं प्रावर्षत । फरिणो स्तेन मानिसन्देशनिवासस्वप्न । गुहावासिनो मृगा अपि सहाजुमूर्ति प्रकटयन्त इव नदीमद्वारदण्डे कण्टकमनैवान् । विचारव्यग्रे मयि अविदित इव मध्याह्नतौल्यापराहोऽभूत् । पादध्वनिरिवाभ्रावि । मयानु-मित मूढदासो भोजननानयति । अहं जीवने निराशक्त्यसमेव । सद्यो जीवनक्षपणाय

परमेश प्रार्थयमानेन कारावासदुर्बलाभ्या नेत्राभ्या प्रैक्षि यच्छ्रीमामत्रिकुमार
परमशक्तिधरशक्तिधरो द्वारस्य पुरो वेदिकामध्यास्ते । क्षण मया चन्द्रश्चन इवैवोऽपि
स्त्रप्र एव मत । पर तु क्षणेनैव आहितमाद्ये मनसि विवेकरेखा रामचरत् । भमे
तालके सर्वाङ्गबलेनाद्मुदतिष्ठम् । सस्नेह, सकृष्ण, सत्वर मज्जीवनशरणयोश्चरण
सरोरुद्वयोः पतिनोऽध्रुस्रोतसा वनभ्रमणधूलिमक्षालयम् ।

आभारी ऋणी कृतज्ञधारिम यद्य अपेक्षितसूयभ्राजा सम्राजा नितरामसम्भाषित
दर्शनसुखमनुभवामीति कथयित्वा विरिसतीव तदृष्टि, 'चन्द्र कश्चिदा —मिति
साधीर भाषमाणे च राज्ञि पुन प्रारभत वक्तु सोढप्रचुरकष्टस्तथा ।

देव, चन्द्र क किमर्थं वा गत —इत्यहमेव जानन्न सम् । यत स मया सहैवाम अ
गत । शक्तिधरस्तु नासीत् ।

महा०—आम्, अस्माभिरप्येतदेवान्यमपि यद् विधिशेखरोऽपि तननुगत ।

विश्व०—एतदेव विचारितमासीत्, पर मध्य एव यस्मिन् विपत्त्ययोधौ न्यमज तत्तृती
मता पुरो निवेदितमेव ।

महा०—(किञ्चिदर्थैरेण) आम्, आम् तत ।

विश्व०—देव, कि न स्मर्यते भगवद्भारसिद्धियात्रा, विमलपुरेश्वरपुण्या च चन्द्रस्य
परिणयप्रतिज्ञा ।

महा०—(सोत्कण्ठेन मनसा स्मृतपूर्वोदन्त इव) आम् कथ न, चन्द्रे गते सताहै
न्यसीते ततस्त्रिलोक समायात ।

विश्व०—एकदा साधिवेल विधि समाप्य प्रादोपमशनमुपभुज्य भवनमुखोपवने
पवनानन्दमनुभवति मयि द्वास्थथन्नागमन न्यवेदयत् । रिमतेन रानिमुख राजयति
मौनमुपनिष्ठे तस्मिन् नहमयोचम् —

वातलेऽपि स्विन्ना कपोठपाली गरीयासमाधि प्रकटयति म्लान मुख कातर्यमिव
व्यनक्ति स्फुरदधरो धैर्यमिवावधीरयति, स्खलती चरणौ महतीमुत्सुकता सूचयत,
किमिद किञ्चास्य कारणम् ॥

चन्द्र—सत्यमुपलक्षित मित्र ! वस्तुतो नितरां खिन्नाऽस्मि ।

अह—कुमार, कोऽयमभिनव खेदावसर ।

चन्द्र.—आम्, अभिनव, यदर्थमामन्त्रणायागतोऽस्मि ।

अह—अयमह श्रीमता जन्मनोऽवगिब दासः ।

चन्द्रः—सखे, सखेदोऽस्मि । पश्य पितुरग्रन्दोनाद्वाससो वस्राथक्षेणलब्धमिदं पत्रम् ।

विद्य०—देव, तदेवेदं पत्रमासीद्, गदुज्विन्या निमलपुरेश्वरेण लिखितम् ।

तदिदं पठित्वा ॥ मृद्यमुदतापीत् । व्यञ्जितक्रोधोऽवोचच्च ।

“जगज्जुषितमनार्यनरणीयमयशस्यमान्वरितमिदं पत्रं विस्मरता तातेन, महत्तवाग्दाना चेद् परिणीता, यतो न पूर्णं वयः प्राप्य तिष्ठन्त्यविवाहिताः कुलीनाः कन्यास्तदा महद्-
न्याय्यम् ।”

“कुमार, शान्तं पापम् । अमरस्पर्दिनी ते सन्पत्तिः, नेत्रशतविलोम्ब्या काममोहिनी ते मूर्तिः भूपालवक्त्रकोत्तितकीर्त्तः धोलध्रुमद्वाराजनवेन्दुरालस्यैकाकी प्रियः पुनः, समस्तसर्वस्वः पलः, पूर्णं वयसि वसमानोप्येतत्सम्बन्धजिपटिष्याऽदत्तवाग्दानस्यन्मन्ये सापि भवच्चरणसरोरुहदास्यमपे उठ एव । विलुपुणाऽयं भगवान् विधिः ।”

“सम्भाष्यते, परं दोषोभामिगजतिरुक्त्वावन्तमनं स्थित्वा परत एतदर्थं
यास्यामि ।” इति ।

तदेव, चन्द्रो विमलपुरं गतः सर्वं क्षेममेव विधास्यति देवः प्रमथनायः । स्तुत्यमेव धोष्यते देवेन चन्द्रस्य । अहमेतत्सर्वं विदधामि श्रीमते निवेदनाशालभाषसरं भवम् ।

“परं विलम्बे कोऽवलम्बः”—त्युक्त्वा मूर्च्छितो महाराजः ।

■

*

*

प्रतःकालः, दमलवनोद्घाटनपुस्तारं विचक्रास मुपभातम् । कार्यकरणप्रेरणामिदं कार-
यन्ता भास्वरकिरणायली जगत्तः कोणे कोणं प्रसृता । शक्तिधरो जिपमिषुः प्रणिनंसया
उद्यानकुञ्जे दर्शनान्यतुरीलयन्तं स्वपितृसुप्रागमत् । स ॥ हास्येनाभिनन्दस्तमाह—

“पूर्वं नदानिम्बस्तरसायितं कटुकाङ्गायायितं परिणाममुप कर्म कुर्वन् नरो बहोयो
यशस्तनोति, अतो राजकुमारान्वेषणाय प्रजतादः सन्दर्पापेयमयस्वमेव न्यवदत्तं भ्यम् ।

“मनोभाषो नवस्येन धेवान् । परिचयवता किन्तु सतर्कैरानुच्छिद्येन च नवितव्यम् ।
मित्राणि उह तत्तया व्यवहरयथा त्वं धदास्व भवं, किन्तु मा नाम अविज्ञाताचारविचारेभ्यः
प्रमरुः । विनादं परिहरुः किन्त्वप्रतिहार्यं तस्मिन् रडो नवे, यथा न स पुनस्तदेव ।

‘‘यु, मा वद । सर्वेषां विचारं श्रुत्वापि निर्णये स्वतन्त्रः स्याः । निधिं निरीक्ष्य व्यकेः ।
वस्त्राभूषणे सभ्यतां मर्यादोक्त्य ब्रजे । धने नादाता नच दाता भूया । सत्यमालेखि-
भव्यभावनः सर्वदैव सक्षणो भवेः । प्रतिज्ञातपरो भूया इति ।’’

*

*

*

उपसमुद्र इत्यलम्, स्वर्णकणा इव मुद्गराग्निभा धूलिकणाद्यण्डकिरणसम्पर्काद् भ्राजन्ते ।
कस्मिन्नपि दिग्भागे द्युनिकुलाकुलिता नैक्ष्यन्ते सान्द्रपादपाः । ध्रुवचक्रं ध्रुव-
खर्जूराणां नारिकेलानाञ्च विरलविस्फाऽऽवलिः ।

शक्तिधरो यानस्य प्रतीकाभवने दण विधम्य राज्ञे पित्रे च सन्दिश्य सहयोगिनोऽग्नि-
नन्दाद्युशुक्षणितरणि प्राविशत् । तरणिध्वयेकाऽल्पीयसी नगद्वेवासीत् । पृथक् पृथक्
ध्रेषिविभागः वाचनालयः, भोजनालयः भ्रमणार्थं क्रीडार्थं च वेदिका निवासायावासाः ।
तेषुप शयन-विभ्रम शौच स्नानादिधर्मणां कृते चितरां शौकर्यम् । शक्तिधरोऽपि प्रा-
प्ययस्य पितृमावासं प्रविश्य कार्यक्रमं निरमासीत् ।

समुद्रोऽयं उच्छद्मलमनुप्यैरनवरतं विधीयमाना घर्षणमितोऽधिकं सोढुं न शक्यतां
प्रत्येत । स्वभावगम्भीरं तस्य हृदयं मानवानां स्वाद्यपरतायां विरोधीव रणाङ्गणे गर्जतो
देत्यादपि प्रचण्डं, प्रलयकारिं चासीत् । उद्गोलैस्ताडिततरे, मुखलभारं पततां नारासारेण
इतोत्साहस्य प्रधानकैवर्त्तकस्य मनो विह्वलतां प्राप्तादि पदे पदे । निमीलितेक्षणयन
स कदाचन दूरवीक्षणं परा नाव, कदाचन जलप्रावलयं, कदाचन मन्त्रवातस्य गतिं,
तस्या प्रशमनकालस्य परामृशत् ।

जलमानसानि भगवन्नामजपे मग्नान्यासन् । किन्तु शक्तिधरश्च शक्तिधर एव ।
तस्य सुषुप्तिं शरीरं निर्भीको यौवनपुलक आत्मविद्यासस्तेन सार्द्धमासीत् । भयङ्करेऽपि
समये सरिता पत्युस्ताण्डव पश्यन्, गमयन्नास्त ।

अकस्मात् कद्रोस्त्रहत्या नृशमाहता तरिस्त्रिर्यम्भूता, जनतायां सकृदगं कालाहल-
स्मत्स्रोमे लीनः ।

दिशि दिशि तत्तत्प्राये विद्वद्भिरानवरज्जतो
विततमहसः शाब्दे शाब्देऽवतीर्णगृहस्पते
व्यधितं कृतधी के० के० शास्त्री मनोह्रकचिप्रिय-
नहुलमधु तुर्यो निश्वासः स चन्द्रमहीपते ।

इति श्रीटीकमानीवेदवेदाङ्गविद्यालयमुख्याध्यापकानां
पण्डितश्रवणायितच्छात्रपूजितपादारविन्दानां
श्रीलश्रीनवरङ्गरायशास्त्रिणां
तनयेन

काव्यालङ्कारेण

श्रीनिवासशास्त्रिणा रचिते चन्द्रमहीपतौ चतुर्थो निश्वासः ।

पञ्चमो निःश्वासः

अपि दलन्मुकुले वकुले यया
पदमधायि कदापि न हेलया ।
अहह । सा सहसा विधुरे त्रिधौ
मधुकरी चदरोमनुसेवते ॥

सुभाषितम्

अङ्गनवेदी वसुधा, कुल्या जलधि, स्थली च पातालम् ।
वल्मीकश्च सुमेरु कृतप्रतिज्ञस्य वीरस्य ॥

बाण

इतो विद्युद्बलीविलसितमित केतकरज
स्फुरद्गन्ध प्रोद्यज्जलदनिनदस्फूर्जितमद ।
इत केकिक्कीढाकलकलभर पक्ष्मलहशां
कथ यास्यन्त्येते विरहदिवसा सम्भ्रमरसा ॥

सुभाषितम्

देव

प्रत्यूष प्रकाशत । शुकरोज्ज्वला मुष्णावर्तला उडुजिघृक्षन्निव वियक्षेत्र
धावन् दिदृक्षमाण इव वा सासारिकमाधय भगवान् भाखानासरोहोदयगिरिम् । आतपोष्णा
जगत उद्धमविधमया च मम निद्रा भया । मम छिप्रपरीभिणा घ्रणनानुभूतो भवने
विलक्षणो ऽथ । नितरां शिथिलानि गतरफूतीनि ममाङ्गा यपि मूर्च्छामिवासूचयन् । मम
व्यायामि वपुश्च पर्यङ्कपरित्यागेऽनीहम् । पार्श्वे कमलापयङ्क निष्कमल प्रेक्ष्य मम
साशङ्कमभूत् । ऋटित्युत्थायतस्ततो वीक्ष्य बहिरेत्य सहचरीरपृच्छम् । ता प्रत्यूष

‘मनोरमे, किं भणसि बहिस्तु ॥ समेता स्वामिनी जागरणसमयमपेक्षमाणा चिरं प्रतीक्षमाणा भवती मुनिद्रव्यितुकामा इत आगत्यः स्मः’ ।

‘किन्तु भवने नास्ति राजकुमारी’ साशङ्क्यं प्रावोचम् ।

एकः प्रवाहः प्रसृतः, क्षणेन भवनस्य कोणं कोणमवगाढम् । महाराजो निवेदितः । सकोटपाठाः नगरनियामका मन्त्रिणा सहैवागत्य व्यक्तस्थिरे, परं कमला नाधिगता । देव, धीमति माते प्रत्यहं सुष्यन्ती नेममापात सोढुं नश्यति, देवस्त्वरयतु”

“राज्ञ आरक्षानियुक्तैरन्ततः किं निनिर्णीतम्” । “देव, अन्ततो मन्त्रिणा नैशः प्रासादरक्षकौ देवलः समाहूतः, शययुग्मबन्धो रज्जुबद्धः शिथिलाङ्गो निष्प्रभमुखो घर्परवता खरेण स्रवं नैशोदन्त प्रावोक्ष्यत् । अग्रे च राज्ञी प्रेषितानां चराणां मुक्ता द्वेयः शृणोतु :—

‘देव, परस्यो राज्ञी पथया जना मरुतरुह्याथरैः साध्यं वीक्षिता’, किन्तु देवस्योत्सवे समागमाशङ्कया न विशेषत आसङ्किताः । एको मरुतरो राजानुपहर्ष्यं वीक्षितः, स एव च राज्ञी नदीमार्गमाहूतोऽवलोकितः । नद्यास्रष्टे नाविकनायकेन सूचितं यदपररात्रे कतिचन पाटञ्जराः शब्देन सादं जीवननौकास्सारुहा ननं विविष्टा” इति ।

चन्द्रधराणां योम्यतामफला विभाव्य तान् किमपि निर्दिश्य स्वयमेवाम्रेसरोऽभूत् ।

*

*

*

“पिपासा पाथते शुद्धं जलं लब्धुं शक्यते ।” नवागन्तुकेन वृद्धः प्रावोचि ।

“भवदयम्, उपनदि बाहुल्यमस्य, क्षणं विद्याम्य, धूलियुसरणमनवरतभ्रमण, दीर्घो- निश्वासस्तुभ्यन्ती पाहू च त्वां श्रान्तं घोषयति । त्वाहृष्टानां कोमलमृदेवराणामेन निश्यसहायं भ्रमणं मनो भ्रमयति ; अहमय भवन्तं दुर्घटनाप्रत्यभिवालुभवामि ।” —गोविन्द, सद्यो जलनानय—मुखं व्याहृत्य केवर्नकं आह ।

“नाविक, त्वमदः कार्यं कुर्वन्नेव वृद्धो मृतः, मन्वे बह्व्यो घञ्जास्त्यया दृष्टाः”

“महाशय, नदीतटं दुर्घटनानां स्थानम् । यदा पशन् मरुमहावेगेन प्रवर्षणेन च प्रावर्द्धत नदी, शृङ्गाणि शृङ्गिष्यः पुनादच स्विष्टा, अनपेक्ष्यसनिनश्च ग्राह्याणां फवलोभूताः ।”

“दस्यवोऽपि नद्या लाभान्विता भवन्ति” ?

‘अथ किम्’ ।

“एषु दिनेषु त्वया किमप्यस्थाने दृष्टम्”

‘परह्यो निशोधात्परतो निरशब्दगमनलघुतरमरुतरारुढास्त्रय पुष्ट्या समेतो पाथ एव तमालनीला सान्द्राद्या स्थल्यस्ति, निशोथे तत आगमनमाथर्धकरमासीत् भद्र जागरित एयात् दृढभावाग्निद्रा सम्यक् नैति, यतश्च कनीयान् मृतोऽस्ति सा न जां व व द्रीलीना, सर्वा ... ”

‘स्थाने,’ ततस्तत, औत्सुक्याद्बलवति नोदयतोऽकम् ।

‘ते मां मुद्रापञ्चकमातरः’ दित्सवोऽतिवेलमाग्रहीषु, किन्तु कदनिप्रादांस्तानमुमा साहाय्य नाकृषि’ तमालभूममाकृष्य पुन प्रोवाच नाविक—इत पारमस्मिन् व विचित्रभवनानि नरान् बध्मन्ति, जगत्स्यत्तानां लुष्टाकानामेवाय निलय । ये गतस्ते न प्रतिनिवृत्ता ।”

“आम्, ते क्व गता ”

“क्व गता ” इति तु शातुमशक्यम् । ते मरुतरादेक शवमिव, वायुपूर्णा मरण स्तरणसाधना जीवननावधोत्तार्य नद्यां निपत्याभिबर्तनं यान्तश्चक्षुषोरगोचरे सती मरुतरश्च गतो यथागतम् ।”

“शवो नामां आसीन्नरस्य वा”

वक्षान्तरित आसीच्छव (किञ्चिद्विचार्य) शिञ्जितमिव धूयते स्म । मां स्त्रीशय आसीत् ।”

‘त्व मा पार प्रापयिष्यसि ।’

‘नहि देव, नैतत्स्थान धात्रा सज्जनाना कृते व्यरचि ।’

“दुर्जेना सज्जनान् पीडयन्ति, तदिद मे गमनमार्त्तनाणाय ।”

“यदेव तर्ह्यवश्यमेव सहेष्यामि । कि नाम भवत ?”

“चन्द्र ” ।

*

*

*

उपापगमेवासीत्पवनेनापि कुम्भवेद्य, विवस्त्रभस्त्रिभिरपि दुरवगाह्यदृश्य, कलाना

कल्याणस्युत्पत्तल, विशालशाखशाखिसहस्रसङ्कुल, कुञ्जमवनंकीर्त्यकानां गृहं गण्डकानां
निलय सुलायानां, सप्त सिंहानां वेष्टन व्याघ्रानां निघेष्टनं कर्पूनां कान्ताम् ।

अतिशयशीतलद्राणां वनावनावमिनशानि पदच्छिन्नि पश्यश्चितः शुभ्रन्तीं
गलनलिङ्गनोष्ठनोः प्रवृत्तां पश्यन्तीं प्रसन्ननन चेत्तत्र नाज्जहजरेनाधास्य
धृतवानदो वचः ।

"आः दुष्टा, सर्वं जीवनं दुष्कर्तुं ममद्वरो विगमय्य इत्यनुपहृतीऽस्मि । मया
घटघो निरपारा निर्दयं हन्त हताः, आः बलम्, हन्त गतोऽवश्यते । सत्यः
पातिताः.. महात्मानोऽवमानिताः, तत्फलं मया लब्धम् । किं ब्रूयै ..(धर्मरत्ना स्वरेण)
हन्त, वपुर्ही कमला ।"

तनैकरिमन् पादये कौशेयदामनिबद्धायां दोलाया समानवयोवर्णवातोभूषणास्त्रि-
सुन्दर्यं रसापाकृतपीयूष सरससरस मधुरमधुर तास्तार गायन्ति —

रुम् म्रुम् रुम् म्रुम् सलिलद । वर्षसि । स्थायी ।
श्रावणमासो ह्रासो भूमे सान्द्रो वातो जगदभिरामम्
मारामृतमिव वर्षसि । (१)

विद्युदिय खर्णारुणवर्णा विस्फूर्जितबध्नीरिक्तकर्णा
आहत्याक्कुशमक्षयति (२)

अभितश्छन्ना नीरदमाला कालिम्ना कलुषीकृतशाला
मम मानसमसितयति । (३)

विमलेयं छाटी मम तन्वाऽऽस्त्रिष्टाऽऽर्शं तादात्म्यमुपेतं
अभितो मा सखि हसति । (४)

पिक्ववाणी श्रवणान्तर्विष्टा विमथितमानसवर्द्धितकष्टा
रुष्टा द्रष्टुमिवेच्छति । (५)

मण्डुलवज्जुलसान्द्रनिवृजो केकाविरुत सारसरसित
मन्मथमदिरा वर्षति । (६)

गानेनामुना विस्फृतान्यम्यापार उन्मुखौ नृगणयो मन्त्रमुग्ध इव पीतमव इव
वशीकृत इव रज्ज्वाऽऽबध्याकृष्यमाण इव विवशस्तत्र व्यष्टोभिष्ट । साक्षर्यं सावधानं
चन्द्रस्ता वीक्ष्य यावदभ्रे प्रचलितस्तावत्ता दोलादाम्नैव सान्द्रपादपेज्वाहता सर्वात्मना
लीना ।

चन्द्रो व्यचारयत् — नैव मानुषीषु कदापीदृक रूपं प्रैक्षि । अद्य कल्पना रूपसरसा
मन्त्रसा साक्षा वृत्त्या प्रत्यक्षीकृता । किमाभिरपहता भवेत्कमला ? किन्त्वासां रूपमीदृ-
कं नःख्याति । किं कुशेशयविसृज्य करपत्र यते ॥ प्रकृतिस्थ पालीधमपि प्रज्वलयति ।
सुपमा . वाङ्माधुर्यम् विचित्रम् । अवश्यमेता एतत्प्रदेशस्याभिज्ञान्य । एतासां
सादाप्येन कमलावश्यं लब्धुं शक्यते । — निचारचयभक्त शिञ्जितमाकर्ण्यानुशिञ्जित
लब्धादोऽन्वसरत् ।

अदृष्टचाखटवीध्वनुमितमागौ विभीर्ध्रमन् शारदमेघनिबहमिव सित भालनिव

भुवनस्य सान्द्रमुधानिर्बुध्दवेतमसृणमिति, यूपमिव प्राचीनयशोधनानां स्तूपमिव धर्मस्य वीक्ष्य प्रासादं तासामावाप्तं मन्यमान- प्रविबिधुः प्रदक्षिणं कृत्वाच्यैष्ट यजितरां वतुं लमदो भवन् यत्र नास्ति द्वारस्य पञ्चद्वारस्य वा चिह्नमपि ।

इदयाहितमगल निष्णुमिव सौष परिक्रमतश्चन्द्रस्याशासन्तान् तम-स्तोमे विलायं त्विपापतिरदृश्यतामधात् । स्वभावतस्तमस्विन्यां क्लमभूमौ सूर्यस्यास्तमयनेन विश्वभ्याप्तं तमः । कृशप्राचुर्यात्तमसोऽपि प्राचुर्ये धवलभवनधावल्यमप्यासीदकिञ्चित्काम् ।

शर्व्यां पादपे सुतोऽलब्धनिद्रानन्दं प्रत्यूप एवोत्थाय भवनभावनार्यां लमः । अरुस्माद् गोधामेकामारोहणसाधनामुपलभ्य कौपीनं दधत् शिरोवस्त्रेण धीतवस्त्रमाधोज्य गोधाय सयोज्योदक्षिपत् ।

मयास्तिष्ठभित्तौ तस्याश्चन्द्रोऽप्यनायासायेनोपर्याजगाम । किन्तु दैवे प्रतिकूले सर्वं प्रति-कूलम्, यतो बहुभारयासिता बालगोधा प्राणानुदसृष्ट ।

भवनस्य नीलशिखारचितः क्रीडाक्षमिव कालिकायाः महिषगोष्ठमिव यमस्य विजास-वेस्मेव मृत्योः विशाल उपरितनो भागः । एकतो भित्तौ मुखं लोहनिर्मितं द्वारम् । निपुण-निरीक्षणेन निरचायि यत्सोऽव द्वारे काष्ठभागो द्विद्वारपरिमितो नीलरगेण रक्तो दुर्लभ-योगो लोहफलके प्रतिष्ठित आसीत् ।

क्षणं विचार्य दिव्यलानि वासांसि सम्यगावध्य कस्वाल्भ्येतस्ततो निरीक्ष्य कृपाणाप्रभागेन चपाटसन्धिं विस्पष्ट्य काष्ठफलजमनुनटत् ।

नीचैरवतरणाय सोपानानि प्रक्ष्यन्ते स्म । निष्कोशकृपाणपाणिः साशङ्क, धर्मधरा-क्षितधनिनाऽऽसन्नबनुस्त्रिस्तानि सोपानान्यवतीर्य मुदितप्रदेशाखिब-कस्यापि धनिन औदार्यं चित्तिनधातुर्यस्य साधर्यं विमृशन्नशङ्कीत् —

अन्तः श्वेत वतुं ल दृढद् भवनमदः । अभितौ लग्नपितृत्वविष्कम्भका भित्तिमज्जुपा ऐत्यलिप्ता भित्तिरूपाः प्रतिभास्त्र सन्ति ।

उर्मिम केनापि धातुपत्रेणाच्छादित, कट्टिलिप्तमिव शोधनाभावाच्छतां पादयो-लिम्पति । एतत् पाषाणाभ्यन्तरस्यात्, प्रकम्बो लघीयान् मुरझस्त एवालीदसो तेजोरेखा प्रतीयतेऽस्ति ।

रमत्प्रतीतिवीतभीतिर्यं तमसः प्राज्यराज्ये मुखे स्तवरस्तवर प्रविश्य तमोवसान्

क्लिन्ने पूतिगन्धौ पथि पतित स्त प्रियमाणमिवामन्यत । दुरत्ययो दुर्दैवदुर्विपाकः ।
कामाग्निहवन्नुपडे सर्वस्व जुहुति युवान ।

निर्वपतो जीवनदीपस्य खल्वीयसी प्रभा तदक्षणोरग्रतोऽनर्त्तीत् । जीवनमरणसंधौ स
सकृत् स्वकीय मुखसमुदयमस्मरत् ।

“पाटच्चराणां विनाशाय कृतया प्रतिज्ञया सहैव कमलापि नष्टा, कोदशोऽहं दुरदृष्टः ।
हन्त, पालयित्री हर्त्री सर्वापदा मा-न्या जननी, वासस्तवविगलश्चुस्नपितश्मधू पूज्य स्त्रि
क च राजधर । यानसूचयित्वा समायातोऽस्मि कृतज्ञ । कागत्य मृतोऽस्मि ।
मत्प्रतिश्रयानाहितविश्वासो रामपालो व्यर्थ, स्वर्थमेव च प्रियप्रधानामपेक्षणम् ।
व्यर्थाभ्येवाशाभवनानि निरप्य प्रजा प्रलोभितवानस्मि । हन्त द्विये
मन्दभावय ।’

*

*

*

प्रातःकाल । एमुदीयमानश्रीर्भगवान् विभाकर । पर्वतशिखरे लालित्य वर्तते ।
पर्वताश्रित प्राकृतिकेऽथ प्रदेश उपवनानि परिभावयति । तस्वारपूर्णं परमरम्येऽस्मि प्रदेशे
फलपादपा फलभरेण मनुज-मनामनागमन सूचयन्ति, यन् परिदिषन्त्येका तन्वो
सरित् प्रवहति । अभितोऽमारोह्या पार्वती भित्ति, तत सेदुष्यस्य घना भित्ति ।
प्रदेष्टमप्य इतिमनिवास्ते, परमधुनाऽपरिष्कृतम् । पथिप कुण्डिकासु बन्धविटपा उडूता,
स्थले स्थले पतितपर्गना कूट, वेदिकासु बीजानि पक्षिपुरीपसङ्करावलोकयते । जल-
प्रणाल्यो धूविपूर्णा अविदिता इवासन् । मसृणपापाणा उद्यानविधामवेदिका
असम्पूर्णाका काठोय भजन्ते । इतिमनिर्भरकुण्डिकासु मरकततुनिका अन्नभङ्गता पार्ते
अटताखोपगता ।

उद्यानस्यैक एक पुराणभवन वृत्त्या दावेन वन्यै पत्रुभि पक्षिभिर्विवृत भ्र शितदश
मासीत् । जयिद् भग्न छत्र कवचिदग्रे कवाटे, खण्डिता भग्ना भित्तिर्द्विचक्रसर्पपूर्णा । चन्द्र
प्रकृतिदेव्या पुष्पाभरणे पक्षिघट्टीतै कीचकवन-क्षीभिर्निर्मराणामथा-तनादेन सरससमीर-
समीरणेन कविकल्पनाऽकल्पनीयमान-द विभावयन् हरितहरितेषु सा-द्रसान्द्रेषु पादपकुञ्जेषु
प्रसारमान-शाना मरुमधुर कूजता तर्जयतामिव प्रतिपक्षिणां पक्षिणां विरावं शृण्वन्
शृण्वद्दश शृण्वानि कुञ्जेषु विविक्कणेषु कमपि गवेयन् नद्यास्तटेऽनोरु-

हाना छायायां शिलायां विधम्न नासांस्ववतार्यं प्रहास्य शास्त्रिशास्त्रासु शौपणार्थमायोज्य
धृतकौपीनो नद्यां चिरं स्नात्वा धौतवासः परिधाय छायाशीतले शिलापट्टे कृतसन्ध्य उपस्थाय
कृतार्थिवशिवार्चनस्तारद्विहृदयो नदीतटान्त्रेऽमाणः मधुगणि सरसानि मृशमास्त्राय-
फळानि मनोहृदयहृदये लङ्घ्यसास्थ्यः पङ्क्तिर्णां प्रियाभिः समं चञ्चुटो फलस्त्रग्भक्ष
महोत्सव पदयज्ञवर्त्तत । रम्यस्थाननिरीक्षणेन तस्य रक्षिकचरं चेतः पाठप्रत्यावर्त्तनेनेय-
स्सुविं शान्तिधानम् परमज्ञातमार्गेण बाणी तस्य शान्तिममनकः—

“मया बहुधाः प्रेम्णा साम्नाऽऽगृहीता परं साऽस्मन्निन्दनादन्यत्र किमपि नूते,
अस्ति च । कथयति दुष्टसृष्टं न भक्षयिष्यामि अपि नान्निष्यामि ।”

मित्रतां क्षुद्रभाषिणी सा का हानिः ।”

मैतद् मूढि, महत् कष्टं विपन्नत्मानं चन्देहसिन्धौ निपात्य यामानीतवांस्तस्यै नैतादृग्-
वचः । तथाऽऽवरं यथा सास्त्रमासु प्रसीदेत् । हठिनी किं कथयति गलभूषणातिरिचम् ।
फलानि प्रिये ।”—

“अस्तु तथा कथ्ये ।”

चन्द्रो न्यमोऽभूत्, दन्ता अवरमकाम्बन्, बाहू अस्फुटाताम् । अत्रुदिरशरासनायत ।
सामयै लोचने प्रातृपेय्यजलद्विवाचताम् । स कोषमदिरां निषोय विवेकविकलो-
भ्रान्तो प्रजितहृदयः ऋदोरग इव ध्वस्तनुचायास्तुमाय यत्पार्वतमित्तरेरपस्तादनुनदी-
प्रवाह बाणी समैति, अनिदितान्यमायौ लिङ्गाटमावध्य सधमप्यानेन नद्यां पतितौ लीनयान्तः ।

* * *

विद्यालोऽयं प्रदेशः । ऊर्वायां दुर्गायां प्राज्यत्वेन । नीलकण्ठकण्ठशशिभक्षीशेय-
शस्त्राऽऽच्छादिउष भूविभाति । कश्चित्कश्चित्प्रसूता मालतीमौलिभोगिणीकावकुलादयः
प्रतिष्ठां वर्द्धयन्तः पुण्ड्रविट्ताः महान्तो महोरुहाश्च राजन्ते । प्रिया प्रपन्नपरिप्लुतधन्वो
बासासि सशोष्य विद्योपितृव्यं विमृश्य सहमया हनरा स्वागतोक्तिरनाज इव दृष्ट्या
उत्तमोऽमानो विदूरे द्योतनशृङ्गेण भयमेकं प्राप्य मध्यद्वारे सितशिलासकलेऽ-
सिताशरैः, “न प्रवेष्टव्यमन्तः”—इतिनिश्चितमैशिश्ट । बहुषु द्वारेषु भवनस्यास्या-
न्तारावेष्वेव द्वारं बहिः श्रद्धालया बद्धमासीत् ।

चन्द्रासु लेखनप्यान्, तदन्तः प्रविश्य ददर्शः—सर्वाणि द्वाराणि नीलकौशेय

जवनिकया समारच्छयानि सन्ति । अनल्पा भित्तिमञ्जूया वस्तुभृता भित्तिषु लग्नास्सन्ति ।
अभित शोभना महार्हा आसन्न्य^१, मध्ये च वस्तुलभतुल महदेक स्काटिक
पीठमास्ते^२ । यत्र पुस्तकानि रमणीयै काचखण्डै नैमाक्रान्तानि पत्रादीनि च राजन्ते ।
एकवर्मनद्ध पत्रपुस्तकमपि तत्रैवास्ते यस्मिन्प्रेषितान्यागतानि च पत्राणि सन्ति ।
तेषामेकतम पत्र दृष्टिपथमागत नि साय पशठ —

विजयतां श्रीमान् दीप्यप्रतापसिद्ध कान्तिसिद्ध,

श्रीमन् भवदाशी सर्वद्विततनुगहमाज्ञाकारी बाल कमलाकान्त कमलाभवन गत्वा
भूपतनौ मूच्छ्रौषधि निक्षिप्य मूच्छ्रौ निक्षिप्यानीय च प्रच्छन्नद्वारस्य मामाभवनस्य
द्वादशसङ्ख्ये कारागारे स्थापितवानस्मि । सा चाधुना नष्टमूच्छ्रौस्ति । अस्मद्वलेऽपि
कोऽपि सन्देहो भासतेऽत ध्व प्रातरेव भवद्वि समेतव्यम् । शेष कुशलम् ।

श्रैमत्क —

प्रबल ।

पत्र प्रान्ते तिर्यगक्षरै लिखितमासीत्—

प्रिय प्रबल, लब्धव्यकाशश्चेत् श्वोऽवश्यमायास्यामि—

कान्तिसिद्ध ।

इति पठन एवास्व क्रोधानलप्रवर्तितामग्निं रक्षन्नात इवाभवद्विप्रहो रवा ।
परन्तु पुन पर्यालोच्यार्थमवश्य पत्रान्तरमपठत्—
महोदय,

मम पत्रान्तरमपि देवदर्शन न भूतम्, महत् खेदस्यावसर । किं नास्त्येतत्कृत्यम् ।
अथ सूर्यसिद्धो न जाने क्व गत कस्मिंश्च कार्ये लग्न । विचार्य स्वत्वेप विषय ।
सम्प्रति सपथेवागतम्यम् ।

श्रैमत्क —

प्रबल

अपरपार्श्वे लिखितमासीत्—

सम्यमवश्यमागमिष्यामि, पार्श्वकानने मिल त्वम् । कान्तिसिद्ध ।

तृतीयं पत्र सुप्रामुदित प्रतिसापत्रमासीत्

श्रीः

प्रतिज्ञापत्रम्

स्यै साक्षित्वे निधाय विश्वेश्वरं भगवन्तश्च प्रणम्य प्रतिजानीवहे—

आयां सदैव श्रोक्रान्तिसिद्धास्वात्सुतां पालयिष्यामः श्रीमत्प्रतिकूलांश्च समूल-
मुन्मूलयिष्यामः । श्रीमत्प्रतिकूलः कमलानिःसारणविहितप्रयत्नः केवलमासीत्सूर्यसिंहः ।
॥ चेतः पलायितोऽपि पार्श्वकाननेऽकरमालम्ब्यो हतः । उचित एवैष न्यायो
विद्वांसघातिनाम् । अन्योऽपि यद्येवं व्यवहरिष्यदवश्यमीदृशो गति प्राप्स्यत् ।

वीरवर—प्रनलसिद्धौ
त्रिपयमसुं प्रमाणीकुस्तः ।

श्रीप्रवरचतुरधारणः
क्रान्तिसिंहः श्वेतकन्दरा

अधुना स कमलां प्राप्तुं महोरकोऽभूत् । विचारधारा इव चेतसि समकाम्यन्
एका विलक्षणाकारा तालिका तप्रासीत् । तया भित्तिमज्जूपाभेकमुद्पाट्य दृष्टं यच्छतशः
कीलकेषु लिखिताक्षरास्तालिका विविधाकारा राजन्ते । तासामेकमादाय निर्दिष्टभवन-
मुद्पाट्यादासीद् यत् कोद्योऽयम् । अयोमज्जूपा^१ लमृहतालकाः स्वस्यां कनकराशि
ख्यापयन्ति । क्वचित्कनकसूत्रमथितानि पर्यङ्केषु राजन्ते राजाहाणि वस्त्राणि ।
कचन काचमज्जूपासु पट्टराशीसमुचितानि मणिमाणिक्यसूचितानि प्रभाभाजि
महाहाणि नवानीबालप्रमलानि विभूषणानि च । नागदन्तेषु सीःदर्पसारा हाताः
जाम्बूनदमयं गलत्त्वमवलम्बते । अयोमज्जूपायां धृतेऽब्जगुरीयके चन्द्रचधुरपतत् ।
चन्द्रः सद्य एव तत् पर्येक्षितोत् “एतद्गुरीयकं तु मित्राय विश्वसेखराय दत्तवान् । तदत्र
कथम् ? किं विश्वसेखरोऽपि ममानुपदं समामात एषां दुष्टानां हस्त गतः ।

संमेतत्तद्गुणस्थं विहाय द्वादशसंख्याकां तालिकायादय परं द्वात्रमुद्पाट्य
पापत्रविवधति, तत्रैव परंपूर्वत चास्य नासा महता पूतिगन्धिना । परमयं नासाप्रे-
वरनमायोज्यान्तः प्रविश्य विज्ञातवान् यत्कारागारमदः । यत्र क्वचित् पाणिपाद-
पतितायः^२ द्युला जखला अपि सद्यश्च आर्ततच्छेनराः अस्थिनानावशिष्टाः
प्रतीयन्ते कथामाप्तावशिष्टाः । इतरनेपथ्यकाः खड्गदसपूरितच्छटाहा, बलभीषु बद्धाः,

भाषयन्ते नरकद्वाला । एकस्यां शिलावेदिकाया लोहकीलकपरिस्तायभेक सद्यो
 मृत पञ्चजन प्रतीयते, सूक्ष्मया दृष्ट्या निरणायि यत्सोऽयं शबो य पार्श्वकान्ते
 दृष्ट । कचन जोषे भर्म्मरास्थि कङ्कालस्य प्राचीनत्व प्रथयति । कचनाधोनिम्न,
 कचिद्भ्रम कपालास्थि दण्डाभातेन मृत्यु एवयति । कचिद्वर्त्तलमिन्न शङ्खास्थि
 भिन्दिपालगुलिकया मृत्यु प्रमापयति । कचन विशद्वलम्बेरुक् कङ्काल पाशमृत्युतां
 विख्यापयति । इतरे वक्षोऽस्थिन् प्रविष्टच्छुरिका दाढ्यादनपगतच्छुरिका सद्यो
 भारिता इवावगम्यन्ते । आयुर्वेदीयशब्दच्छेदविभाग इवास्मिन्नाश्चर्यचरित शोकाशङ्को
 भयविस्फारिताश्च कमपि गवेपयन्नयमधुना मधुनाऽप्यहार्ये दुगन्धनिधानेऽनाचार
 प्रधाने, सद्भित्तिरोधने प्रकाण्डहत्याकाण्डभाण्डे प्रचण्डे भयनखण्डे विभीषमन्
 पार्श्वभित्तिवातायनाशकर्णितवान् ‘हा १ प्रियः १ प्रिये, “हा त्व न वेत्ति
 कथमहमस्मि’ इति । करुणाकूपारपूरपरिप्लुतेऽस्मिन् वचसि काप्यदुतेव शक्तिरासी
 द्यतध्वन्द्वस्तयस्तान्यविषयो द्वागानभिज्ञ उपकुञ्च पाषाणानायोऽप्योत्थापितपाप्मि प्रैक्षिष्ट
 यत्—कूबनिम्ने कारागारे एकस्मिन् कृष्णकम्बले, रसालकपोलशालिनी कमला
 मलाचितवसना, शुष्कगण्डमण्डला, म्लानमुखचन्द्रा, मृतकरपेव शिथिला, हतप्रभेव-
 वीपदोसि, शुष्यज्वलेव भदानदी, नष्टमेव वाटिका, मृतनृपेव पुरी भयङ्करा, शिखेव
 वृषीदयोनेर्भूमाचिता, आम्बुव सम्राजो धूर्तरवमानिता, शीतमुषमाऽसमा वामानां,
 मानाभ्माधेर्वेला लोहद्वारे कारागारे भित्तिमाधित्योपविष्टास्ति । अधुनापि
 तस्या सुप्त—निष्प्रभमपि सुन्दरमासीत्, तस्य “इत्थं पङ्के न लुप्यते” । तस्या
 सम्मुख चैक प्रचण्डचण्ड पिचिण्डिलो गृहीतासिधेनुक स्थितोऽस्ति । कमला
 क्रीडायां सरोप वक्क मारभत—

अह पाप ! किं यौन पुन्येन क्षुरिकां दत्तयसि । अरे न वेत्ति, यस्य
 भारतस्य परमपूतानामधेया सीतादमयन्तीदौष्य पुत्र्य आसन्,—तस्य भारतस्य—
 यस्मिन्नङ्गना जीवन्य एव स्वामिनाकितासु भस्मीभूता भगवतो भूतभावनस्याङ्गरागतां
 सम्पद्यते,—तस्याहमप्येका पुत्र्यस्मि । ज्ञासा चरित्र, साहस, कर्म, तदेव भारतीय
 रुविर मदीयशिराजालेषु प्रसृज्यमास्ते । अमूक्यपातिमत्यधर्मे कर्म मादशीनां प्राणार्पणम् ।
 सुपैव सुहृद्गुरोसि दीपयसि, धारां निघातयसि, यदि युवासि, वीरोऽसि

तर्हि सनयेव प्राणानाहर । परं दुष्ट ॥ निष्ठुष्ट ! त्वत्सन्मुखे प्राणास्त्वकु नास्मि
सञ्जा । मद्यं देहि इमां छुत्किं मया स्वाभीष्टं साधयामि । आः विवशस्मि,
नहि तु नहि तु त्वां किं कार्यानीति विचारैः परम्—

इति कथयन्ती किञ्चित्प्रधिला जाता, परन्तु पुनः प्रोवाच—

कामोन्मत्त ! पापान्ध ! पश्य ! अक्षिपा उन्मुद्रय, विचारय ! क्षमिष्यन्ति
बालसातृष्यै कोदश महान्तमपराधं शिरसा बोधुं मिच्छसि ।

कुलाहार ! न चेत्सि भारतामणीनाम्नेतः लग्नुन्दरं, सज्जनवच इव नृत्तल, प्रजा-
पालयश्च ह्योज्ज्वलं, तपोधनविचारवत् पवित्रं शिशुस्तभाववत् सरलं, कृतिहृत्पना
तोऽपि प्रबलं भवति । यत्र लोभलोभाया, भयभावनाया, विहासवासनाया, छल
च्छायाया अप्यपि नास्ति ।

नरपिशाच !

मानसमुपाभक्षणपट्टहा इती किमवकरं किरति ! क्व निलोक्यति, मेघमत्तमयूरेः पट्ट
नृत्तन्तो मयूरी किं गर्हणीयं श्मशानशृङ्गं स्वप्नेऽपि गर्धते । मूर्ख ! मुखैव कुन्नेरायसे, साती
पतिता विप्रदेव चातकृतृष्यै अल, सा महान्त रत्नाग्रमपि कुटिलेन कण्ठेन नृणा नेशते ।

इतोऽधिकं चन्द्रः श्रोतुं नाशकत् । धर्मशिला, विपत्तेरगाधे पयोनिधी विभज्य-
नमा । प्रत्यङ्करिणा कम्पवतेन धैर्यद्वनो ब्धनासि । स कटक्टादितदशनः प्रत्युत्त
प्रतोयः “प्रिये, मा नैषोः, आ. मुमुमद्योनेते । सुप्रतं रण्डितमधिगते ? अस्मात्प्रतम् ।
विष्टं रे दुष्ट ! क्व ते स्थानं मदस्तिद्वन्द्वतोः । प्रिये । आगतस्ते प्रियः—इति
व्याहृत्य भित्तेः पततो नविप्यति द्वारमित्वाढोच्योऽकूर्त । कमला रुद्रमैव
वाचमिमां भूत्वोत्कर्णाऽभूत्, परं निष्पद्यम्, इतो भित्तिारोहणसमकालनेव, उपरि
मृगालोद्दग्धपातान्मुच्छितयन्दः । आसन्नाः परिपूर्णा तरङ्ग-शैलशिलत अपत्य
चूणिताश्च तलं पश्यन्ते ।

*

*

*

विचल्येऽप्य प्रसादः । परितो लम्बेषु हस्तेषु अन्नपात्रं मनोहरं रथान्म् । ईदृहं
नृत्तनां रथानां कारित्रनावासाय स्थानानि प्रेष्यन्ते । परितो हरितो हरितमन्, लम्बि

१ हरितो रथाः ।

परिमलेन प्रान्त ग्रीणत्, फुल्लद्विविक्सुम, लग्नविपुलफल्मवकोकिल, वापीविप्रद्वान-
पोवरपवनपरिलसितमुपवन राजते । यत्र मधुरमधुमय्या मालतीलताया मकरन्द
मत्ता मधुरा मारयन्ति । यत्रोपवनचतुष्पथेषु स्फटिककुण्डिकासु मारकत पाषाणिकसु
लघुलघून् बिन्दून् निपातयन् नितराम्भाभाति कृत्रिमनिर्गल । यथोचितमिष्टकामिविरचिता
सरणिर्मासाकारस्य कृतित्व, स्वामिनो विलासित्वा रूपाप्यति । प्रासादो हि रत्नपाषाण
विहित सुषुप्तद्विभूतो रमणोयथास्ते । मसृणश्चेतश्शिलाभीरचितानि, आसन्नविशानि
सोपानानि, करटिरदनशकलशबलित्वा द्वारशाखा, दृढ राजतपत्रच्छन्न कवाटयुगल, यत्र
पत्रचित्रा वल्लयो विटपाथ शिल्पिन शिल्पकर्मणि नैपुण्य द्योतयन्ति ।

सभामवने वास्तव श्रूयते । पक्षसु द्वारेषु केवल मध्यद्वारमेवानाहतम् ।
भित्तिमञ्जूपा, कुण्डमुदुरा, छत्रलम्बा 'काचवल्लयो भाण्डानि' च परं
छविमेधयन्ते भवनस्यामुष्य ।

भवनेऽस्मिंस्तिन्न स्त्रिय आसन्नविशतिवयस, गौरवर्णा, सद्गुणभूषणा
पीरुयात्रय आलपन्ति । तासां या महासुन्दरी, गुणमासनिर्जनि सौन्दर्यस्य,
नायिकेवाभाति, या वय नामज्ञान यावत् 'सुन्दरी' पदेन बोधयिष्याम, नये
समुपविष्टास्ति ।

किमिव निरूपयामोऽस्या सौन्दर्यम् । अभिनवलावण्यलतिका, स्वर्गीयसौकुमार्या
चन्दनगौरा, राजायेव सुपमा, प्रफुल्लस्तेव ललिता, विमलसरलतरलकमलशोचना,
सुदुरोत्पला, मञ्जुभाषिणी, कामकान्ता, पृथ्वीभूतेव उद्योत्सना, प्रेमप्रतिमा, सौन्दर्यशिला,
पाटशतदिनी प्रताप्रभापत्तन, यस्या मानससर कमलकलिकाकमनीययो नन्दनज्ञान-
पारिजातपुष्पस्तपस्वयोऽव्योन्नतयो स्तनयो पद्मरागमल्ल, द्रवता कौशेयी शाटी कटितटै,
कम्पुमवाया नासायां धोत्रे च हीरक केलि रचयति, सौवर्णे भोजनभाजने भोजनं
परिवेपयन्ती शहीदवी आह —

'धरते ! दवात्त्व समये समेता, सोऽन्यथा क्षणेनामरिष्य ।

पत्र — अम् । मूर्च्छितस्त्वसदेव । अहमेकाप्रचित्तेन पुण्याप्ययचित्यसम् ।
अधस्तामया चन्द धृत्वा दृष्ट यन् कथन भित्तिमादृश मूर्च्छित । तव क्षीप्रमेव मालिनो
१ विच्छेदिया । २ ह्रीदिया ।

माहूय तत्पादमाकृत्योद्यानस्य मध्यभवने पर्यङ्कं शययित्वा बहुलपट्टिकामायोज्य
सन्मप्रेक्षणेन तं परिचोय सान्द्रदुग्धमासाद्य तच्चेष्टं अग्रदत्तम् ।

सुन्दरी०—धौतनखनं कदा निहितम् ?

चपला०—तस्मिन् वाप्यां ग्रविष्टे एकस्यां शिलावेदिकायामज्ञाच्छः दाटी च
पूते । तां विस्मितनेत्र आबध्य स्मयमानः सन्ध्यां विदधाति । मन्मुखं किमीधसे ?
शोभं परिवेषय । तदागमनात्पूर्वमेवाम त्रमेतद् भवने स्थापयितुमिच्छामि । धामरस
परिवेषय, दाधिरसं सदाशब्ध परिवेषय । अहं स्वर्णभाजनान्यानयामि (भानीय) एषु
पृथक् पृथक् शाकानि परिवेषय ।

सुन्दरी०—किं परिवेषयामि, विवस्ताऽस्मि ।

चपला०—आः मुखे । बहुशः शिक्षितापि न ज्ञातरत्यसि ।

सुन्दरी०—स्वं मुखेव क्षत्रियाणामेकरत्नोत्प्लाविकाऽऽम्बरं रचयसि, परमद्य न रामसदृशा
राजन्याः । अद्य क्षत्रियाणामुपदेशं विवाहाः सम्पद्यन्ते । त्वं व्यर्थमेवारण्ये रोदिति,
अहं कथयामि यन् पार्श्वकानने दर्शनानन्तरम् नीशारिम् मनसः ।

चपला०—आम्, कामिनि ! (सञ्चरन्) देहि पात्रं यामि ।

चपला सद्य एव निर्भाजना समेता ।

पु०—कस्तीत् ।

चप०—नाम न गृह्णाति किम् ? (विदश्य) वाप्या आयन्नासीत् ।

सु०—अलु, ...

चपला—अये ! कुमुदिनि ? कथं न वदसि ? अयि । नौबीभूता छिम् ?

कुमुदिनी—हः श्लोति मद्रास्यम् । किं स्वविचारं पयि पयिकेन्यौ
विवरामि ।

परिमलेन प्रान्तं शीषत्, फुल्लद्विविधमुमं, लग्नविपुलश्रुतवकोदितं, वापीविभ्रुत-
पोवरपनपरिलक्षितमुपवनं राजते । यत्र मधुरमधुमध्यां मातृलीलतर्पा मच्चन्द्र-
मत्ता मधुरा मारयन्ति । यत्रोपवनचतुष्पथेषु रक्तद्विजुष्टिकामु मातृवत्-पद्मद्विजुष्ट-
लघुलघून् विन्दन् निपतयन् नितरामाभाति वृद्धिमनिर्भरः । यत्रोचितमिटकमिविद्विक्ता
सरणिमांताकारस्य कृतित्वं, स्वामिनो विलसितं कथापयति । प्रासादो हि रक्षाश्व
विदितं सुषुप्तितृतो रमणोयथास्ते । मसृणश्चेतसिताभीरचितानि, आसन्नविद्यावि
सोपानानि, करटिरदनशकलशरलिता द्वाशतश्चा, दृष्टं राजतपत्रच्छन्नं कवाटपुगलं, यत्र
पत्रवित्रा बल्लयो विटपाथ सिल्विनः सिल्वकर्मणि नैपुण्यं द्योतयन्ति ।

सभाभवने वार्षं धृतं । पशु द्वारेषु केवलं मध्यद्वारमेवानावृतम् ।
भित्तिमञ्जुषा, कुञ्जमुज्जरा, छत्रलगाः 'काचवल्क्यो भरणानि' च परं
उविमेधयन्ते भवनस्यामुष्य ।

भवनेऽस्मिंस्तिष्ठः स्त्रियः आसन्नविशतिवयसः, गौरवणां, सद्गुणभूयसा
पीछायाश्च आलपन्ति । तासां या महासुन्दरी, सुषमासुनिर्जनिः सौन्दर्यस्य
नायिकेवाभाति, यां वयं नामज्ञानं यावत् 'सुन्दरी' पदेन बोधयिष्यामः, मये
समुपविष्टास्ति ।

किमिव निरूपयामोऽस्याः सौन्दर्यम् । अभिनवलावण्यलक्षिता, स्वर्गीयसौकुन्या
चन्दनगौरा, सजीवेन सुषमा, प्रफुल्लश्रुतेव ललिता, विमलसरलस्तरलकमलशेखरा,
मुद्ररोज्यला, मञ्जुभाषिणी, कामकान्ता, पूजोभूतेव ज्योत्स्ना, प्रेमप्रतिमा, सौन्दर्यशिला,
पाटवतटिनी प्रज्ञाप्रभापतन, यस्याः मानससरकमलकलिकाकमनीययोः नन्दनकानन-
पारिजातपुष्पस्तवकयोस्त्रिवोन्नतयोः स्तनयोः पद्मरागमाला, श्वेता कौशेयी शाटी कटितट्टे,
कञ्जुमीबायां नासाया धोने च हीरक केलिं रचयति, सौवर्णे भोजनभाजने भोजनं
परिवेपयन्ती गृहीद्वी आह—

“चपले ! देवात्वं समये रामेता, सोऽन्यथा क्षणेनामरिष्यत् ।

चपला—आम् । भूर्च्छितस्त्वासदीव । अहमेकाग्रचित्तेन सुष्पाण्यवचिन्वत्यासम् ।
अहस्तान्मथा शब्दं ध्रुत्वा दृष्टं यत् कथनं भित्तिमारुह्य भूर्च्छित । ततः शीघ्रमेव मालिनी
१ विलोसिया । २ हॉलिया ।

गृह्यत तत्सादमाकृत्योद्यानस्य मध्यभरने पर्यङ्कं स्नानयित्वा बहुलाट्टिकामायोज्य
रश्मिप्रेङ्गेन तं परिचोय सान्द्रद्रुमनासाद्य तत्रैव अस्ननम् ।

सुन्दरी०—धीतवसनं कदा निहितम् ?

चपला०—तस्मिन् वाप्या प्रविष्टे एकस्यां शिलावेदिकायामङ्गाच्छः शाटी च
पृष्ठे । तां विस्मृतनेत्र आरुष्य स्मयमानः सन्ध्यां विदधाति । मनुष्यं क्रिमीक्षते ।
शात्रं परिवेषय । तदागमनात्पूर्वमेवान्नमैतद् भवने स्थापयितुमिच्छामि । आग्रस्त
गर्वितः, दाधिर्यं सङ्गावह परिवेषय । अहं स्वर्णभाजनान्यानयामि (आनीय) एषु
दृष्यद्दृष्यद्दृष्याकानि परिवेषय ।

सुन्दरी०—किं परिवेषयामि, विवशाऽस्मि ।

चपला०—आः सुखे ! बहुशः शिक्षितापि न ज्ञातवत्यसि ।

सुन्दरी०—त्वं सुखे क्षत्रियाणामेकतनोरऽस्याऽऽम्बरं रचयसि, परमय न रामसरसा
पञ्चन्याः । अद्य क्षत्रियाणामुपदेश विवाहाः सम्पद्यन्ते । त्वं मय्यमेवार्ज्ये रोदिति,
अहं कथयामि यन् पार्श्वकान्ते दशानानन्तरं नीशान्तिम मनसः ।

चपला०—आम्, कामिनि ! (सम्पन्नपम्) देहि पात्र यानि ।

चपला उच्य एव निर्भाजना समेता ।

सु०—कासीत् !

चप०—नाम न गृह्णासि किम् ? (विहरय) वाप्या आयन्नासोत् ।

सु०—अस्तु, ...

चपला—अये ! कुतुहलि ? कथं न वदसि ? अग्नि ! मौनीभूता किम् !

कुतुहली—कः शनोति सदास्वम् । किं स्वविचारं पयि पथिकेभ्यो
विशरामि ।

चपला—(सन्तोषेन) विभ्रमं विचारयसि, किमपि कथयिष्यसि वा ? शरोजिनि,
अस्मिन् कुतुहलीकौतुकम् ?

कुतुहली—अस्तु, शनोति कथयामि, परमेतन्न कथयिष्यामि यत्कथं ज्ञातव्यमस्मि ।
त्वन्मन्त्रिपुत्रेण कन्तिहिदेन विवाहार्थं मानांताऽस्ति मानवोना भगिनी चन्द्रपत्नी कमल्य ।
तन्मन्त्रिपुत्रेण राजकुमारो नाटमिथ्यो राजोपहृष्टिपतिरुच्यन्तेऽर्चय समेतः । यद्य

पर्वकानन दोगास्यामपि त्वामवशयत् । चन्द्रनयनचन्द्रिका च प्रच्छन्नद्वारात् मन्द-
भवनस्य द्वादशसख्याकृपाशया निगडिता

सरो०—(साध्य सहर्षम्) कदा । कदा कुमुदिनि ?

कुमुदिनी—अनीतयास्तु पक्षो व्यतीतः भवत् (विविक्षित्वा) सरोजिनि । त-
वमर्गं कारातो निवार्य कट्टस्य तस्या पुरं प्रेम्णा वशवशायामहं प्रस्ता-
मन्ये कारामोचनप्रसन्ना, ऋणमपत्तिर्नपती स्वपतिना विवाहमनुमोदयेत्, परन्तु न
नम कालिसिंहो वृत्तमदो विजानीयाददया सोऽस्माकपि प्रवृत्त निवृत्तो वैराग्यव्यते ।

सरोजि०—कुमुदः प्रिये । कथं ज्ञातव्यसि ? सत्यं कथयः

कुमुदिनी—(विहस्य) योगिन्यस्मि, योगप्रभावाज्ज्ञातवती ।

चपला—नैव कथयसि यद्वियोगिन्यस्मि प्रवञ्चस्य । (उभे हसत)

*

*

*

भगिनि ! कमले । एतोक दाडिमिरक्षं पिब, पक्षो व्यतीतः, नाधुना तवाहं
दाक्ष्यम् । पीता कपोलपत्नी गर्तगते गणजले निप्रभे नेत्रे मम सेवां कथयन्ति ।
कथय कापि पुटिरक्षेला यदस्ति सपदपमयामि कमपि मुचिकित्सकमाह्वयामि । त्वमेवैतस्य
पृथ्व्य स्नामिनी, वयमाश्रयाहिन्य आश्रयः ।

कमला—सरोजिनि, किं वक्षिः । अहं स्वस्था सन्नुष्टा चास्मि । त्वत्तं कदापि न
भविष्याम्यनृणा ।

कुमु०—(शनैः) भविष्यसि ।

कमला—भगिनि । नहि नहि मातः । देवि ! (सरोजिनी हस्ताभ्यां कमलाया
मुखमाच्छादयति)

सरोजिनी—प्रिये । कमले । वशाहं भगिनीनिर्निशप दासीनिर्विशेष सम्बोधा
बोधा च ।

कमला—यद् भवत्यै रोचते, परमृणभारमसमर्थस्मि वोढुम् ।

चपला—यदि कोऽपि भवतीमनृणा कर्त्तुं पारयेत्तस्मै किमपि देयं नाम ?

कमला—देवम् ? शिरोधरासुताय पादयो पातयिष्यामि जीवनवनमेव तच्छृते
समुत्तेतु शक्नोमि ।

चमला—अपि सत्यम् ?

कमला—सत्यम्, किं क्षत्रिवकुलप्रसूताया रसना द्विभाषते । सत्यम्, नितरां सत्यम् ।

चमला—परमप्रियवस्तुवितरणे वदान्धोऽपि सद्बोधमवाप्ति, अतः सम्यक् पृच्छ्यसे ।

कमला—तर्हि विसादवचोभिर्नैदं कथमानृष्यमासाद्वितुं शक्नोमि ।

चमला—सरोजिनि, त्वमबुवा विधाम्य, अहं श्रीमत्या मनो विनोदयामि । (टने-
गच्छतः) श्रूयताम्—

नत्स्यन् सन्देहल्लोऽपि वननन्दनपुरेश्वरो नन्दनसिंहः प्रतिभावान् सहस्रयो
नगराजमधिपतिरासीत् । राजसभाङ्गनं जनसमुदयेन प्रपूर्तिं प्रीक्ष्यते स्म । शतशो
गामकाः, कलाकाराः, चित्रकारा भवनमभ्राजयन्त । वयस्कान् साम्बन्धं व्यष्टभन् । शतश
आश्चर्यभवनान्यद्यापि तस्य प्रतिभां परिचाययन्तो राजन्ते, येषु निलीनः पुमान् प्राणानिव
कष्टेन ब्रह्मति । येष्वसंख्यतं धनं निहितमास्ते । यद्यपि सर्वाः कला भवत्वे
कालक्षालितास्तथापि तद्वदिशं एव विस्मयायात्मम् । वर्षद्वयं व्यतीतं स बुद्धिमत्प्रियेण
निर्दोषोऽऽहूतः स्वर्गं सनाययामास । तत्पत्न्योऽपि अप्सरोरूपेण सेवितां तमनुसृतः ।
नन्दनसिंहो निष्पुन एकासीत् । केवलमेवा, एषाशी सरोजिनी एकाकिन्येव तस्य पुन्यस्ति ।
अस्या यौतुस्माधर्ष भवनेषु शुश्रूक्षन्ति । आश्चर्यभवनस्य, तन्मागार्गा निधेः, सरोजिन्येव
पूर्णानिता । राज्ञो मन्त्र्यापि एकः प्रजापक्षो रक्षो राजकुले कुलीन आश्चर्यभवन-
विद्येष्ट असीत् । महाराजे सम्मरेते स एवैनां राज्यस्य पत्न्यधार्सीत्, परन्तु प्रियपुत्रेण
शान्तिं गृहेन मन्त्रिपदप्राप्त्यै दत्तविषः स्वामिवमनुसहार ।

अस्या वाणी भगवद्भक्तिरक्षा कवितेव सरसा, याज्ञप्रवाहवत् स्वच्छा, शिशुहासवत्सरल
पतञ्जलिभणितिरिव भावपूर्णा सुबोधा च विद्यते ।

एतस्या वनितावत्सल्या सौन्दर्यवितानस्य सान्द्रशीतलच्छायायां विरिरसया बहो
वीरा मानस तोषयितुमेच्छन् । सैषाऽधुनाऽबोधवालिका नास्ति, अस्या कमनीय
कायकानने वसन्तेन वस्त्रो विदित, सौन्दर्यस्यनि प्रेमाङ्कुरो निगत ।
हृदयसरोजरे स्मरसरोज विकसितम् । प्रतप्तप्रतिमे पितरि परेते स्वस्या स्वयं
स्वामिनी । स्वभावचमलद्येत एकदा यशोनिजितचन्द्रे चन्द्रे चन्द्रेक्षणन व्यासप्तम् ।
तच्चार्थकुलप्रसूताया निम्ननीत कीरमिव न प्रत्यावर्त्तयितुं शक्यते । कथं नाम
न भवेत्तणामियोगे ज्वलनम् । भवत्येव योयिता सदोत्सुक मनो नृप, पुनश्च वनेते
वरे नरे, मानसमुन्मथयति मन्मथे विलासशालिनि, केवल सखीसहाये रहोनिवसने
प्रचुरचातुयतुच्छीकृतायविचार्ये च मनोविचारे कथं स्यादक्षुण्ण प्रहर्षस्य । अभुवैवा
अखण्डममृतचयव्रतपारणा विधातुं चष्टते । अहमप्यभिलषामि यद् हादमिदयुवयोवयौऽन्त
यावत् स्थिर भवत्विति ।

कमला—हातनिखिलतरवास्मि, धन्यास्मि, यस्या मन्दभाग्याया साम्मुख्यं राजकुमारी
मारीविहसिनी, सिनीवालीकेशा, केशाभोदसमाकृष्टपटपदा पदारविन्दवित्तिन्दिका
दकाच्छततुलता, कृता गुणायुतफलानामभिलषति । शृशमुद्योक्षामि । परन्तु हन्त !
वियुक्तया मया तेषां वागेवैकदा श्रुता हा ? हन्त, हतास्मि ।

एव कथयन्ती कमला मूर्च्छिता । चपलाहृता सरोजिनी कथङ्कमपि बहुलजलेन
हिमपट्टिकया, ओषधीप्रदानेन, ध्वजनवातेन तां स्वस्थापकार ।

*

*

*

अभूवोपकाल । गत स्वराज्य विभावरीमहाराज्या भा च भव्यहृत्स्य । भ्रमर
कुलमधुना, मधुनासमेधितसम्पदां पदाङ्कविशतन्त्रिसख्यानां विचरन्मधुरिन्नामिभानामिव
स्वमधूना यूनां मनो हरति रतिप्रणयिनामुपरि पतन् सरज सरोजानाम् । सरसाज्ञानं
सारसाज्ञानं ना त्वमुपदविन्यासेन विभाति विभात काव्यमिव ।

परमसरसं प्रेममधुरा कान्ता शांतेय प्राकृत । यद्यपि नाथ तास्ता घनावत्यो पता-
घनध्वाना, न च सौदामिनीसुदारचमत्कृत्य उत्पन्नदारादरा, न च सपटापटशब्द क्षोभित

क्षोणीक्षोणीधराः पुष्करधरा, न च नाशिताक्षेष्पादपा मन्मथावाता, तथापि शस्य-
सम्पत्तिसम्पादितापिष्ठेत्त्रानन्द, पूरितसर्वजलाशय, रोमन्यायमानगम्भीरगमनपशुसमजोऽ-
मन्दानन्दनिमीलितनयनकृष्णकजनलालित कनुरय ससारे समुद्रसत्ति, वर्द्धयति च तेषामेतः ।

अथ जगदनवदसौन्दर्यसर सरोजिनी सरोजिनी विचार्य कर्म, वर्म परिधाय मसृण-
कन्धार्या निहितभोजना, जनान् जयन्ती साहसेन, लघु सुन्दरं दृढमेकधन्वद्वास कवितडे
आनय्य, कृष्ण गुल्फलम्ब्य शिथिलमङ्गरक्षक परिधाय, स्वभवनान्नि ससार । इतस्ततः
प्रक्षिप्तप्रेक्षणा, समुच्छ्रान्तान्ना कश्चिदप्यनवलोक्य दृष्टा, कलदसगमना, मनागप्यत्रस्ता,
भीषणाप्यतिरोहितरतिसौन्दर्यसौन्दर्या, लप-लपयित-चक्र-भकायितद्विधाराधारकरा, पुनः
पुनस्तमेवानितः पश्यन्ती आनन्दितसमस्तकृत्वाऽस्तकगाम्भीर्या गत्याऽयासीत् ।

पूर्वदिशि पार्वतपाथ-पूरपूर्णोऽविज्ञातस्तल आयतः स्वच्छशीतघम्बरः शुभसृण-
सितद्वयसीपानो हृदो ल्हमते । यस्याभ्यर्णं मूलजलादानसर्वाङ्गविकसिता मूलहाः
दृढज्ञतामिव प्रकटयन्तः सन्तत राघुनिरुल्लवैर्धन्यतामिवावदन् ।

सरोजिनी समेषु कोणभवनेषु निपुर्ण निरीक्ष्य धान्ता हतोत्साहोलम्बचन्द्रा
विभावरीव म्लाना, पादपतलमेकमासाद्य, क्षण निरम्य, विधम्य विभाव्य वस्त्राणि सम्य-
गाप्य हृदसमीपं गता सद्ददात्मान सद्दुद्यानं सद्दत्तसरो वीक्ष्य, अविज्ञातमर्मणि वारिणि
पातयामास आत्मानम् । पतनसमस्तलमेव भीक्षिकानीव, तारका इव, सप्तर्षय इव
स्नात्वा य वियासव, वनधनिन्दव उच्छलिताः । वदम्बकाण्डोपवेशिनः केकिलश्च
भीकरपा केक्या भुव विराज्यन्तो मृश नेदुः ।

साहित्वसारस्वतचातुरीतुरी-

धुरीणशःस्त्राधेशिरोमणेः कने ।

अस्वस्वचित्तस्य कृतो महोपतो

ततो सतां मूर्त्ययतो न पञ्चमः ॥

काव्यरत्नामलश्रीनिधिशोतांशुना धीनिवासतास्त्रिणा श्रु

चन्द्रमहीपतो पयनो निःश्वासः ।

षष्ठो निःश्वासः

यो दिव्याम्बुजलोलमत्तमधुपप्रोद्वीतरम्यं सर-
स्त्यक्त्वा मानसमल्पचारिणि रतिं बध्नाति कैदारिके ।
तस्यालीकसुखाशया परिभवक्रोडीकृतस्याधुना
हंसस्योपरि टिट्ठिभो यदि पदं घत्तेऽत्र को विस्मयः ॥

सुभाषितरत्नम्

हृदयतृणकुटीरे दीप्यमाने स्मराग्ना-
वुचितमनुचितं वा वेत्ति कः पण्डितोऽपि ॥

त्रिविक्रम भट्ट

गरलसहोदरजाता (लक्ष्मीः)

यत्र मारयति तदपि वरम् ॥

स्फुटकम् ।

यामिन्याः प्रथमो यामः । वायुर्न वाति । बकुलकुलशय्याशायिनां गणिका-
गणद्वारद्वारिवक्षसां सुगन्धशीतान्मज्जनेन वीज्यमानानामपि निर्लज्जेव वनिता
नाञ्च सुखयुष्मता । उष्णता उष्णता, तालशोपस्तालुशोषः, हिम हिम, बकुलपट्टिका
बकुलपट्टिका, कर्पूरलेपः कर्पूरलेपश्चन्दन चन्दनं, जल जलम् अद्भो स्वेदः, वण्डः कण्डूः,
मशकाः मशकाः, वायुर्वायुरित्येव भ्रूयते सर्वतः श्रुतौ । कचन प्रलम्बगुणात्कृष्यमाण-
व्यजनस्वन, कचन श्रुतनिद्रसुन्दरीनूपुरभङ्गार, कचित् करघृतव्यजनिकाभिर्जननीभि
विधीयमानः स्वेदजालप्रशमनः शिशिरां रोदनप्रशमनः संलापः ।

प्रत्यट्टालिक प्रतिगवाक्ष समीरमिव मृगयमाणानां मृगीदृशां वेवेष्टि वल्लयध्वजितम् ।
नवनवेष्वपि बाधोनेष्टिवेष्वपि घटेषु प्रतप्तमेव पानीयम् । उशीरनीरसिच्यमाना
पञ्चद्वारपट्टिका उष्णतामेव पुष्पाति ।

हार एव भारोऽद्भमेवाद्भम् । ललन्तिकैवान्तिका, रञ्जनैवाचना, वस्त्रमेवास्त्रं,
तुलिकैव शिल्पिका, उपधानमेवापात् ।

किं बहुना वायुपि वायुं वाग्धति, सखानपि सखिहृद्भृङ्गा, पिरायाक्षामदेहा
नद्योऽप्ययं सद्यः समुद्रमनुधावन्ति । मोनोऽपि दीनः । तुहिनमपि हीनम् । कमल-
मपि सपलम् । प्रतिप्रतोति “हे भगवन् ! हे नारायण ! दीनवन्तो ! कथं जगदिदं
जीवयिष्यसि” इति श्रूयते प्रादुः प्रमुदरुदघोषः ।

सोमलोकलोक लोको लोको बिय-मध्यमन्यास्ते चन्द्रः ।

सुसीतलजलशीतलतले शयनागारस्यप्रकृष्टिमे मग्धे उरधालमाधयन् महाराजो-
रामपालो विनोतविशदवेपथुर्त्यैर्महद्भ्यां सालगृन्ताभ्यां वीज्यमानो मन्त्रिणाऽऽलयति ।
एमीपे च न नितरां राजते राजते दोषाधानेऽप्यरिपृक्तो दीपः ।

अथ रामपालमन्दिरे मालिन्दसम्राजः शासनं समवसोक्तते । धावत्य विदू-
प्रसूतेषु वद्यसु, चापत्य लनास्त्रेणेष्वस्त्रिषु, १ अगा गीतयः प्रपुनः संसारे, बालन
व्यवनानां, फुल्लता पुष्पाणां, त्रिकासो जुष्टिमतास्ये, सम्मेरोऽक्षिपमनु । विह्व विह्व
कुर्वती घटी लोल २ लोलकेनापैर्यं व्यनक्ति ।

“मन्त्रिन् ! दोष बहु व्यतीता एभिः” ।

मन्त्री०—आम् देव । शयिष्ये । भूपेन्द्रं प्रतीक्षे, सत एव... ..

महा०—(मध्ये एव) किं सम्भावयसि मन्त्रिन् । यत् कमलां पुनर्दक्ष्यामि !...
हन्त ! महारामनो नवेन्दुवर्मणोऽस्म्यहमेव, दुःखकारणम् । जीवन्नेह मृतोऽस्मि ।

मन्त्री०—नहि, देव । नैव वाद्यम् । महाएजानां चरणी शपे, यतो भूपेन्द्रो-
गतोऽस्ति वराजेल जगद्वगाढम् । नासी सालशो यत्कार्यमनु प्रमादेन जघ्नात् ।
सत्पनमपि समायातम् (कतिगुटिकाया नि सत्यं) ।

महा०—किं लिखति स—

मन्त्री०—(दीनवर्तिर्न किंचिदुदीष्य) देव । स मां सम्बोध्य लिखति—

कति योजनानि प्रत्यहमहो ? मयाऽऽगच्छन्ते । पठिष्यतिऽहमेकं काळे सत्रेऽपि

शान्तिं न लभे । विविचरुप्रपरिवर्त्तनेन प्रतिक्षणमात्मानं सन्देहसिन्धौ निमज्ज्यत्तनुनापि
 साक्षा । क्षमस्वेद् गुरौ भवता मिलिनुमिच्छामि, मद्रचनात्सप्रणाम सान्त्वनीयो
 महाराज । जीवनेन कार्यं विधास्ये । शेषं पुस्तकम् ।

टिपाक्षर }

आज्ञापालको-
 भूपेन्द्र

महा०—भय

मन्त्री०—आम् देव ? अद्य गुरुदिनम् । मन्येऽधुना स आगत्यास्मान् हर्षयिष्यति ।

महा०—दृश्यताम्, किं भावि, मन्त्रिन् । निश्कोऽस्मि ।

मन्त्री०—देव ! आपद् प्राणिष्वेव पदं दधति । पुराणि पृथुप्रतिष्ठा पार्थिव
 आपत्तीराप्यापि धैर्यं न तत्पुत्र । धैर्यधार्तिधुरन्धरा भवादृशा अपि धैर्यं हास्यति, चेत् तदा
 हन्त ? क नामाश्रयिष्यत्यनाधया धीरता । गगनमेव गतिं शक्नोति सूर्यमण्डलस्य ।

■ स्यो भूपेन्द्रागमनमसूचयत् । आगतश्चैकं सभ्यवेशं प्रभावितमुखोऽरुक्षाकृतिं
 उपनिशवया, दीपाकारो व्यायामिविप्रहोऽदृष्टजन्मजं पुरय ।

मन्त्री०—भूपेन्द्र, अपि पुस्तकम् ? कचिद्व्यो वृत्तान्तः ? भूप, तदैव चर्चा
 भवति यामेष्वष्टसु ।

भूपेन्द्र—कमिव कथयामि देव, अनवस्तं रतो भवत्सपर्यायां पर्यायेण प्रचुरनगराण्य
 वगाहमानं स्वारथ्यं गमयित्वापि पूर्णोदन्तं न ज्ञातवानस्मि । धीर्माश्वद्वौ मरुत्तरुदो
 गतवान्, तदा चालनेन विमपि प्रत्यागृत्य न निवेदितम् ?

मन्त्री—विपत्ती विपद् एव पदं पुत्रो । को जानीवे तत् किं सूचितमार्येण,
 परन्तु स वराकं समायत् पथ्येव पेटापि हताः । मरुत्तरश्च नीतः । सोऽयं ह्येव
 भगवाय आनीतोऽन्वेषकैः । तत्पदपथि यथा गृष्टा मदत्या मुखलधारया वृष्ट्या ।

भूपेन्द्र—(निःश्वस्य) तर्हि देव ! येव ? एतान्तिभुमेवागतोऽस्मि । कदाचित्पत्रं
 ग्रहीतुवानि, तत्कायं श्रीमद्भिः सस्वरमेव रिपेभ्यः ।

*

*

*

‘चपटे’ अकारणनापवे, बहुभिर्दिवसेररमायं सेवयति । स्वकीयममूल्यं समयं
 ‘सर्धयति’ । पुस्तकयामनेनप्रमाणं सद्यसे आरोपयति । यादृ, तदाभिलक्षितं

ददामि, ते स्वामिन्या अभिलषितं पूरयिष्यति परमेष्ठिनः । परन्तु चपले ! सरोजिनी विवाहमहोत्सवे वयं न विस्मर्त्तव्याः ।”

‘आम्, अपरं शृणु, कोऽपि पटुर्बोरः प्रबलसिंहस्तत्स्वामिनीप्रेयांसं चन्द्रं दृष्ट्वाति, अपि जानासि तम् ?

चपला—आ देव ! तपसाधिगतसिद्धेर्भवतः किं तिरोदधामि । ॥ एव मम सद्वचसां कुमुदिन्याः प्रणयपानं वर्त्तते । तस्याः सूचनादेव कमला मोचिता । सर्वं वृत्तयावगतम् । परन्तु सोऽस्मत्कृत्यमप्यपि न जानाति । न च कुमुदिनी तस्मै सूचयति । अलु, तर्हि तदर्थं किमपि करणीयं किम् !

महात्मा—नहि, किं करणीयम् न करणीयम् । कुमुदिन्यपि न सूचनीया । अन्यथा सत्यवीरः प्रबलः क्रान्तिसिंहदुष्टस्य सूचयिष्यति । कीदृशो वीरो दुष्टस्य हस्ते समापन्नितः ।

चपला—देव ! एते सर्वे राशो नन्दनसिंहस्य नृतिभुज आसन्, परन्तु देवादेवे-
दिवं गते दुष्टस्यैतस्य हस्ते पतिताः । परन्तु प्रबलः सम्प्रत्यपि सरोजिनीं मानयति ।

महात्मा—अलु, त्वमधुना गच्छ ।

सोऽयं महात्मा कस्मात्कालात्पस्यति—इति सर्व एव इतस्तत्तस्या जानन्ति । विर-
क्त्यास्य एतद्वान्तीयाः सर्व एव परिचिताः विशेषतश्चौस्थृताः । कायसिद्धयै त एनं
लुप्तान्ति, आश्रियन्ते । एषा चपलाप्येष्टरा महात्मकीर्तिमुखरितया सरोजिन्या काय-
साकन्याय प्रेषिता । महात्मना—“देवि ! महात्मनां सेवैवानन्दतन्त्रं पश्यीकरणम्,
सैव कर्तव्यता सिद्धिः । ते बान्धविक्रमपीच्छन्ति”—इत्युक्ता प्रतिदिनं सेवितुं
विनीतवेत्ता प्रत्येति । महात्मन्युत्कृष्ट्या सरोजिनीक्रियमाणं चपल्या विनियमाणं
कर्म पालेन श्रजोति । महात्मन्ययं विशिष्टो गुणो यद् येन सट्टदालनति तना-
जीवन वरायति । दुक्त्युक्तिर्मोहयति । सर्वैः सह मृदु भाषते विदस्य वक्ति,
परन्तु कर्मचयन यदा कदा कृष्यति, तदपि कर्मणे । अत एव एनं सर्वे आश्रियन्ते ।
प्रबलसिंहस्योऽप्येतस्य नितरां परिचिताः यत्पुनरिति चिकीर्षन्ति च महात्मने
सूचयन्ति ।

सोऽय महात्मा एतत्प्रदेशजानां कर्मणामभिज्ञाता, परं स्थान्नाम किमनेन महात्मनः ।
स तु एकेन कणेन शृण्वन्नापि अपरेण निष्कासयन्, स्वयजनयाजन एव स्त आस्ते ।

*

*

*

कृष्णः पक्षः । निरसीयः समयः । सधूलिर्वायुः सकम्पाः पादशः । निद्रितः श्लेश-
जन जगत् ।

निशयाऽऽश्मीन्दुं विजित्स्व स्वसाम्राज्यं विस्तारितम् । तस्याः पैशाचिणी बन्-
धराचरे प्रभावमाच्छादयत् । सद्वृत्तयश्चन्द्ररश्मय इव न्यलीयन्त । बन्धहिंस्रान्तरोऽ-
सद्वृत्तय इव विस्त्रब्धसुप्तानां बराकजन्तूनां विचित्रासयाऽभ्रमन् ।

स्वच्छसलिलं सरः । सरस्वते अतिविचित्रमायावासभवानि । आल्लाळेपु रिप-
निम्ब न्यप्रोधा यथास्थानमराजन्त । भूपेन्द्रः शिशयिपुः, सहचरैः सम्मन्त्र्यैकस्मिन् भवने
व्यरमन् । श्रान्त आसीदेव पतन्नेव गालभाक्रान्तो निद्रया ।

“सहयोगिनः । अधुनैवाह स्वप्नमन्वभवम्”—भूपेन्द्रेणोत्थायोकम् ।

यदह शून्यनगराद् बहिरध्वाकूटो यामि । अहस्तादधो गहनं वन परिष्टः । पार्श्वतो
वृकध्याघ्रशार्दूलाः शन्दायन्ते । मम हस्ते चैकं वेत्रमास्ते । परं यथाव्यभि-
न्मनो दृश्यन् यनाधिरूतः । अग्रे एका नदी प्रवहति । तस्यां जानुमिति जलम् ।
तस्यामध्वाकूट एवाह पारं प्राप्नुमिच्छुर्गामि । अहस्ताधशीजलमल प्रहृदम् ।
जलप्रवाहो बाहोद्वेगकातो क्रोरोषु विस्तीर्णः । जले प्रोचवा जलस्रंताः प्रादुर्भवन्
समीरयोरुत्पातितसलिलेभाक्रान्तोऽहं साधो निमज्जन् केनापि तरङ्गिनाऽहस्तादागतेव
निष्प्रवितः पारं गतः पशतिर्भूतः । अहस्तादने हाशानलस्य प्रवण्डो वेग उत्थितः ।
अहश्च भीतो यथा पलाये, तथा पथि विस्तीर्णे जाले पतिनो बद्धश्च । तेन भयेन स्वने
यथाऽरोदिप तथा मम निद्रा भग्ना” इति ।

सत्त्वानदिशधुना रात्रिर्मन्तव्यमस्याभिरिति सम्मन्त्र्य चकितः स परस्मिन्
जलवेदर्शं दृष्ट्वा, तमेव लक्ष्मीकृत्याचलत् । चतुरस्रो भूभागः । एकतो लपोयसी
नवोना कुटो । अमभुवि च कम्बल विलूतम् । अग्निः प्रज्वलति, यस्मिन् कमण्डलुमिता
अत्राग आगयन्ते । अनतिदूर एवैकः शान्तो निष्प्राण इवाचलः, निमीलितनयनः,
शान्तप्रत्यहस्युगङ्ग, प्रउद्यतीर इव धर्मः कलिकालकालनमयेन विजयवयसनतिरोदितः,

हितः प्राणिमात्रस्येव सत्यः, अहेतुकषानुकप्रकृष्टनिष्ठुरदुःसन्प्राप्तनस्तयाऽलब्ध-
शरण्यया दयया पूरिताङ्ग इव पीवरः वासदशकलवेष्टित-कटिभागो, नाग इव निर्भीको
निर्वितप्राणः, स्याच्छान्तरसः, करुणाप्रवाहप्रवर्तकः, जगत्तपःशरावात्पारीणधुरीणः,
भयितसितकेशपद्ममध्रुव्यायतललाटो महात्मा कुशावने स्थितः । सर्वपे चैका
तुम्बी नारिकेलस्य सर्परपात्रं चिम्मटं दण्डः इति ।

अथासौ प्रचुरं विचार्य महात्मनोऽजतिदूर उपविष्टः समाधिभङ्गमपेक्षमाणस्तन्मुख-
हृत्वेक्षण आस्त । पट्टिकानयेण महात्मा सात्रमर्दं सज्जम्भमुत्थायाऽपि प्रदक्षिणी-
कृत्याचन्य हस्तयुगलमायोज्य श्लोकमिनमपठत्—

अपार-संसार-समुद्र-तारिन् ।

स्वभक्त-भूताखिल-दुःख हारिन् ।

निशाचर-स्त्रोम-विनाश-कारिन् ।

त्रायस मामुत्पलमालभारिन् ।

“श्रीमतां चरणसरोरुहयोः प्रणमामि” महात्मना सावधान वीक्षितः प्रातूत भूयेन्द्र ।

महात्मा०—(तूणीम्भूतः किमपि विचारयति)

भूयेन्द्रः—भगवन्, देवोप्यमानप्रबलसाम्राज्यस्य कठेः केलिकाले, पाईः प्रमथ्यमान-
तरीयनगोधननिद्राम्ये महात्मना तपोऽभिभृद्विरवक्ष्यमानन्दावहा । सत्तारे भगवन्नजन-
मेव धेवः । तदन्तरा पुंसः परस्मिंस्लोके नैका काकिम्यपि प्रादुर्भवति । विपदमुखं
'माहेय 'माहेयमिव हेयम् । देव । भवदृष्टा एव जगदर्पवर्जकशराः, सन्ति ।
भवाद्यानां योगयत्नेनैव स्थितास्ते भूः ।

भगवन् । दुःखहरिन्, शराकोऽस्मि, भवतां लघीयतापि हस्तेन अस्यावतंपतिता नौ
रुद्विरप्यसि । महात्मन् । दयनीयोऽहम् । भवन्ति क्लिप्त नादशाः साधूनामनुकम्प्याः ।

महात्मा०—(अस्य वचनमङ्गीमाकर्ष्य क्रुद्ध इव सिन्दूररन्ध्रान्यानिव, पुः
स्थितहृदिदोनिप्रतिबिम्बिताभ्यां, त्रितोदिततरोरागान्यां निशालान्यां नेनान्यां
दहमिव, उदरसात्कुर्वाधिव, जिपृञ्जधिर, चेतनीकृतसमस्तकाननया, गम्भीरया प्रतिध्वनि
चतुर्गुणया वाचाऽजमयोऽपि सामर्थ्येन ह्य सम्भर्त्सयन् ग्राह) क. नाम विस्तृतदुःखा-

१ मर्मा भवं माहेयम् । २ अहौ भवमाहेयं—निम्न ।

रूपाङ्गमर्पप्रतिज्ञानाम्, ज्ञानाम्भोधिपानायस्त्यानाम्, सततसन्ततितत्किञ्चिद्विलम्ब-
 तारगतचेतसाम्, अयधीनगरणाय अकार्यकरणापेयपानस्वाद्यखादनापञ्चपठनास्म-
 दर्शनरुडिपितैर्न पूरितनिन्दानिधिमेधानाम्, असदभिनिवेशप्रदुष्टस्वान्तानाम्, कुल्ल-
 सम्पादितयशसां, 'अनभ्यासमित्यानां पशुपत्तिपराणां नराणां नात्ताया आवश्यकता।
 पूर्वं भगवद्भजनमादात्म्यं कथयित्वा सम्प्रति नावमावर्त्तयति। शोचति। मम
 कौपीनप्रन्थो निबद्धास्ते नौ, उन्मोचय मम कञ्चो विलीनास्ते निष्कासय। धूर्त्त।
 मा नाम गार्हस्थ्यवार्त्तया दूषित विचेहि मनः। अपेक्षीतः। नाह तव भ्रमे
 पतिष्यामि धूर्त्त। कुलाङ्गार। कपटप्रिय। पथिकवचक। हँ हँ हँ हँ (हसति)
 विचित्रमदो हास्यमासीत्। भूपेन्द्रो गतप्राण इव सम्भूत—तस्य चेतसि

साशयिका विचाराश्चेह स शोचन्मासीद् यद्य कीदृशेवाज्ञातस्वभावेनावसर-
 समापतित। ईधर एव क्षेममाचरिष्यति। परन्तु हासेन जात किञ्चिदाशाब्धन-
 प्राणेषु। क्षण पशुद्वयत एव नीरवताऽऽच्छन्वा। पुन प्रशान्तया वाण्या मधुरशब्दैराह
 महात्मा—

पान्थ। किमिच्छसि। कथं तव मौरावर्त्तं पतिता। वयं साधवो गतस्पृहाः।
 न कमपि प्रेक्षामहे। अखिल विश्व। प्रेमपान्तर्याम्ने कथयामोऽपि। कथय किन्ते
 प्रयोजनम्।

भूपेन्द्र—महाराज। विभेमि। यद्यभय भवेत्तदा किमपि निवेदयेयम्।

महात्मा०—अभयन्तेऽस्तु, कथय।

भूपेन्द्र०—महाराज। राज्ञो रामपालस्य पुत्री कमला राज्ञी मुक्ता प्राप्तं लब्धा।
 ताश्चान्वेषयन्मात्रं राज्ञो भावी जामाता नाम्ना चन्द्र—राजवगसराजकुमारोऽपि गत।
 यदि धीमता मतिमदा शान्तात्मना महात्मना दया भवेत्तेषां स्थिति सूचये-
 त्सदाहमपि लब्धमहोपहारदा जीन्यास सरदः शतम्।

महात्मा०—चन्द्र कमलां त्वद्योपहारं लप्स्यसे, किमनेनास्माकम्।

भूपेन्द्र०—नहि नहि देव। कल्याणमुजो भविष्यन्ति भवन्तः। साधवो
 भगतां कल्याणकृतारो यतः

० दूरतः परिहर्त्तव्यम्।

महात्मा०—भवत एताः कः सिञ्चयति हुम्, अस्तु तर्हि सत्यं कथयामि किम् !

भूपेन्द्र०—आं महाराज ।

महात्मा०—चन्द्रोऽबुवा “नन्दन पुरे” आस्ते । तत्रैव च त्वत्स्वामिमुता धनदा । परमशक्तस्त्वं तौ लब्धुं ; यतः कस्याश्चन प्रेम्णि यदः सः ।

भूपेन्द्र०—नैवं प्रवक्तव्यम् । अहं पातालादपि शक्तोऽस्मि निस्सारितुम्, का कथा नन्दनपुरप्रमदिकायाः ।

महात्मा०—आ, एवम् । नञ् साधय, कुरु कार्यम् ।

कारा, काराबन्धनं तस्य शोचन्ती, तदुद्योग तत्त्वज्ञं क्षणेनैव ज्ञातवती । विरं चिन्तयामास हन्त । महानयमनर्थो जातः । अस्तु यज्जातं तज्जातम् ।

*

*

*

पाथोनिकेतने स्वैत्यन्दकृत्ततूल कूटमासाद्य परं परमधनललितलोहितलननप्र-
लङ्गाम्भ-कणैः सरोजिनीव नभौ सरोजिनी । सा चोत्पन्नमहाऽपहायोदस्वन्ति वसति
मखणमञ्जुदया शुक्लवस्त्राणि पृत्वा भीरुभामिनीभूषणं रूपं साहसिकानामपहान
शोकलोकं बाहोऽभूमावागत्याभिनवां रथलेखामविदूर एवापश्यत् । आश्चर्य-
मना एकस्मिन् प्रोचत् गण्डशैलमारुह्याऽमितः पश्यन्ती गव्यस्यन्तरालं लढातिन्वा
भुवि शनैश्शनैर्यन्तं रथमेकमैक्षिष्ट । रथसम्मुखपादपेभ्योऽकस्मान्निःसृतया तया
सारथेरेवमभूवन्नालापाः ।

सरोजिनी—क यासि रे । पाटवर, तिष्ठ, पश्यामि । रथे किमस्ति ।

सारथिः—मन्ये पृतर्जनेषाः कोऽपि धूर्तोऽसि, परं नाहं वेशेन दमिष्ये । शिष्टां
चर्परमिष्यसि चेद्वन्नचपेटो धरां धास्यसि । व्रज, अपेहि, न तेऽवस्था (कदावाऽशौ
ताडयति) ।

सरोजिनी—मूढः महाशामवश्यं क पलायितुमिच्छसि, पश्य सज्जो भव ।

सरोजिनी एकतो भूत्वा रथस्य शिरोधरां कृपाणमोपकेन सद्य एव हारयावकार ।
गतम्रीवे चावति, अतिरोपकपात्रे च सारथेस्तुण्डे ओषोणमतरलनेत्रायां सरोजिन्यां
समजनि जन्यम् । पादादयः कृष्णोरगा इव प्रादुर्भूतमदः करीव भीकरकायः
रोषोच्छलद्गान, स सरोजिन्या वराक्या उपरि कटकटायितदशनः कृपाणपाणिः पतितः ।
परन्तु सरोजिनी सौन्दर्य एव केवल नाशयिष्या, किन्तु कलाकलापातापिनामपि, यत
स्तत्प्रहारं व्यर्थाकृत्य लघीयया हस्तेन तच्छिरः फलमिव पक्वं विल्वस्य निपातया-
वकार । मृते सारथौ रथ्ये पररथ्ये च गन्तुमसमर्थेभ्यो सफ्रन्ता सा सद्य एव
रथान्मुच्छिष्टं वस्त्रवैष्टत पुरुषमेकमुत्तार्यापश्यत् फेनगृत्सुखचन्द्रं स्वमनःकुमुदचन्द्रं,
रिपुपूतमधन्द्रचन्द्रम् ।

तमेव चिन्त्यां दशमनुभवन्तं वीक्ष्य नालभन्ताभ्यां स्थानमन्तः । तानि
सत्त्वामन्तर्गतदुःखताडितानि धावमानानि नेत्रद्वाराभ्यां बहिराग्रास्य तद्दुःखदुःखिता

मुवमि सिपिनुः । “क्यमेकाक्षिनी शत्रुसङ्कुले सोपदवे विजने बने विलयानि । कोऽत्र सत्यां निपतौ साहाय्यमाचरिष्यती”ति चेत्तसा सतर्कध्विमाणा निपुणं नाटी परावृत्त मूर्च्छां विज्ञाय तदपनयनीयवीं तस्मा आघ्राप्य, कौश्विद्रिन्दूतपि तन्मुक्ते नेत्रयोश्च निपात प्रतीक्षमाणादिष्ट । पट्टिकापट्टाद्येन ॥ नेत्रे उन्मील्येतत्त्वतो य्मेक, तत्रदेव प्रबलमवमत् । मुखं प्रोन्वय यत्तदुत्तिष्ठसति प्रमदामेकां चन्द्रहाससारल्येन चक्षुष्यक्षिण्यन्ती वीक्ष्य “नहि शस्त्रास्यन्तामावशादिनि पुसि थेंयान् पक्षपात” इत्याह ।

सरोजिनी त्वेच्छतः पतितं सारथेः खड्गं लक्ष्योक्त्य “शृङ्गाणामुं खड्गमहमपि वीर कर्म दिष्टे” श्रुतीर्य मोक्षमसञ्जत । पट्टिकां यावदभूद् बहुउत्तिष्ठानं चन्दनम् ।

“कस्तम, अप्रहान् सुप्यसे ।”

“महाराज । एते दुष्टाः श्रीमन्तमावधानैरुपरितृप्तमहं ज्ञात्वा मनाक् सेवितवती । मूर्च्छन्तिषिष्ठिज्ञस्य भवतो मनोविनोदस्य आलस्यापनवनाय च क्रीडिता, न स्या, सैवं शृङ्गा साधुशोलैः धम्या । सम्प्रति अनुकामीनः, मोक्षमिव पीन स्यावशिष्टमध्वमास्य यथानिलपितं प्रवेष्टं प्रयातु देव, अहमपि यामि । “किन्नाम देवस्य ।”

“चन्द्रः” “युत्र भगती निषसति । किञ्च नाम भवत्याः ।”

“पार्श्वे एव नन्दनपुर तत्रैव मम वसतिः आद्या च सरोजिनी स्मर्तव्येयं कार्ये” इति कथयित्वा स्वीयं गुच्छलम्बि, अत्रारक्षक सहृदयहाय फट्टारैष धूर्तिगानपसार्य पुनरावोज्योत्तरमनपेक्षमाणा, प्रस्थिता । चन्द्रश्च व्यतिकरेणामुना विचर्तव्ये व्यमुहत् ।

॥२॥ विरोचनो रोचोपि सनद्योचन् । निदूश्मत्तहिमवतितादनसङ्कुचितास्त्रि काटमु प्रावस्य बभूव तमसः । सर्वनादाद्ये तन स्रोमो व्यापथे । दुर्दिनानीव दीनान् तमाधि मुवं व्यापुल्लयामुः ।

देवदत्तकेन दृष्टः शशिलयेऽपि शिवभवनेऽपि मुखा न तिष्ठति । तस्यान्तमपि विनायते, मुक्तप्रापन दुःखायते, प्रसूयान्पि प्रहासयन्ते, मानन्दिरमपि यमनन्दिशयते । अहेनुद्या आनन्द स्फुरीतवन्ति ।

भुवमपि सिपिवुः । “कथमेकाकिनी क्षत्रसङ्ख्येते सोपदेवे विजने वने विलपामि ।
कोऽत्र सत्यां निपत्ती साहाय्यमाचरिष्यती”ति चेतसा सतर्कक्रियमाणा निपुणं
नाडी परामृश्य मूर्च्छां विज्ञाय तदपनयनौषधीं तस्मा आघ्राप्य, कांश्चिद्विन्दूनपि
तन्मुखे नेत्रयोश्च निपात्य प्रतीक्षमाणा तिष्ठत् । घटिकापष्टांशेन च नेत्रे उन्मील्येतत्कालो
व्येक्षत्, तावदेव प्रबलमवमत् । मुखं प्रोज्झ्य यावदुत्तिष्ठसति प्रमदामेकां
चन्द्रासतारव्येन चक्षुश्चकित्यन्तीं वीक्ष्य “नहि द्यस्त्रात्यन्ताभावशालिनि पुंस्ति
श्रेयान् द्यस्त्रपात” इत्याह ।

सरोजिनी त्वेकतः पतितं सारथेः खड्गं लक्ष्योक्त्य “गृहाणामुं खड्गमहमपि वीर
कर्म दिदृक्षे” इत्युत्तीर्य योद्धुमसज्जत । घटिकां यावदभूद् बहुलविधानं जन्मम् ।

“कस्त्वम्, अपहरन् युष्यसे ।”

“महाराज ! एते बुध्याः श्रीमन्तमानप्यानैः पुरित्वित्तमहं क्षात्वा मनान् सेवितयती ।
मूर्धनसिपिलात्रस्य भवतो मनोविनोदस्य आलस्यापनयनाय च क्रोडिता, न रुपा, सैव
पृथ्वा साधुशीलैः धर्म्या । सम्प्रति अनुगामीवं,^१ मीनमिव पीब स्यावशिष्टमधमारुह्य
यथाभिलषितं प्रवेशं प्रयातु देव, अहमपि यामि । “किं नाम देवस्य ।”

“चन्द्रः” “कुत्र भगती निवसति । किञ्च नाम भवत्याः ।”

“पार्श्वे एष नन्दनपुर तत्रैव मम वसतिः आख्या च सरोजिनी स्मर्तव्यैर्य
कायै” इति कथयित्वा स्वीयं गुल्फलम्बि, अत्ररक्षकं सहृदपहाय फट्कारेण
भूलिङ्गमानपसार्य पुनरायोज्योत्तरमनपेक्षमाणा, प्रस्थिता । चन्द्रश्च व्यतिकरेणामुना
द्विर्दत्तव्ये व्यगुहत् ।

अथ विरोचनो रोचोपि समकोचत् । विद्वत्प्रभृतहिमततिताडनसङ्चितान्स्त्रिभुवकाशानु
प्रावत्य बभूव तमसः । सर्वत्राकाशे तम सोमो व्यापये । दुर्दिनानीव दीनान् तमासि
भुवं व्यापुल्लयामासुः ।

देवदत्तकेन चः शक्तिलयेऽपि क्षिप्रभवनेऽपि सुखी न तिष्ठति । तस्यानृतमपि विषादते,
पुत्रसाधनं दुःखायते, प्रसूतान्पि प्रहारायन्ते, मातृमन्दिरमपि मनमन्दिरायते । अहेतुका
आनन्दः स्फारीभवन्ति ।

मुक्तामि विप्रिबुः। “कथमेकाकिनी सञ्जसङ्कुले सोपद्रवे विज्जे बने विलगामि।
कोऽन सयां विपत्तौ सद्दय्यमाचरिष्यती”ति चेत्तस्या सतर्कक्रियमाणा निपुणं
गौरी परामृतं मूर्च्छां विशय तदस्फयनौपयौ तस्मा आप्राप्य, काँदिवद्विन्दूनपि
उन्मुने नेत्रयोश्च निपरा प्रतीक्षमाणादिष्ट। घटिकापट्टाद्येन स नेत्रे सन्मील्येतस्ततो
प्येव, तत्रैव प्रबलमवमत्। मुखं प्रोन्त्य यावदुत्तिष्ठति प्रमदानेर्का
बन्हासुतारयेन चञ्चुषद्वितयन्ती नीदय “नहि सत्नात्यन्ताभावशालिनि पुंसि
प्रेषान् शक्यपात” इत्याह।

सरोजिनी रवेच्छः पतितं सारयोः खरुं लक्ष्मीद्वय “शृङ्गाभानुं खड्गमहमपि धीर
कर्म दिष्टे” इत्युत्तमं योद्धुमसज्जत। घटिकां यावद्भूद् बहुलविषयं जन्मम्।

“कस्वम्, अप्रहरन् युध्यसे।”

“नहराज। एते दुष्टाः श्रीमन्तमाध्याह्नैर्पुतिष्ठतमहं कृत्वा मनः सेविषती।
मूर्च्छादिधिलङ्गस्य भवनो मनोविनोदय अल्लस्याप्लवनाय च कौडिता, न ह्या, सैवं
शृत्वा साधुरीरैः छम्मा। सम्प्रति अनुदामीनं,^१ नीनमिव पीन रपावशिष्टमश्वमारुह्य
ययामिलयिनं प्रदेशं प्रयातु देव, अहमपि यामि। “किं नाम देवस्य।”

“चन्द्रः” “कुत्र मयनी निरसति। विश्व नाम भवत्याः।”

“पदं एव मन्दनपुरं तत्रैव मम वसतिः आर्या च सरोजिनी स्मर्तव्यैर्य
कथं” इति कथयित्वा स्वीयं शुक्लम्बि, अक्षररुक् सद्दय्यहाय फन्कारेण
धूलिकान्तमार्गं पुनरायोज्योत्तरमवपेक्षमाणा, प्रस्थिता। चन्द्रश्च व्यतिकरेणामुना
विचर्तन्यै व्यमुदन्।

शय विरोचनो रोचीयि समकोचन्। विद्वत्प्रवृत्तिमतितादनसंयुचितास्त्रि काटसु
प्रलयं भूत् तमयः। सर्वनामसो तम सोमो व्यापये। दुर्दिगन्तीव दीनान् समाधि
मुखं व्यङ्ग्यमानसुः।

दैवदत्तेन दृष्टः राजिलयेऽपि शिवमवनेऽपि मुग्धी न तिष्ठति। तस्याप्युत्तमपि विषयते,
सुत्तमपनं दुःखयते, प्रमृताभ्यपि प्रहरावन्ते, मानुमन्दिरमपि यममन्दिरयते। अहेतुका
आरः स्फारीभवन्ति।

भुवमपि सिपिवुः । “कममेकाकिनी शत्रुसङ्कुले सोपद्वे विजने वने विलपामि । कोऽत्र सत्यां विपत्तौ साहाय्यमाचरिष्यती”ति चेतसा सतर्कक्रियमाणा निपुणं नाडीं परामृश्य मूर्च्छां विज्ञाय तदपनयनौषधीं तस्मा व्याघ्रप्य, कौन्दिनद्विन्दूतपि तन्मुखे नेत्रयोश्च निपाल्य प्रतीक्षमाणा तिष्ठत् । घटिकाघण्टाद्येन स नेत्रे उन्मील्येतत्त्वतो व्यथितः, तत्रैव प्रबलमवमत् । मुखं प्रोज्झ्य यत्नदुत्तिष्ठसति प्रमदामेका चन्द्रहासवारव्येन बहुध्वजितयन्तीं वीक्ष्य “नहि सस्त्रात्यन्ताभावशालिनि पुंसि धेयान् घस्त्रपात” इत्याह ।

सरोजिनी त्वेकतः पतितं सारथेः खड्गं लक्ष्मीकृत्य “शृङ्गाणामुं खड्गमहनपि वीर कर्म दिक्षु” इत्युत्तारिणं योद्धुमसज्जतः । घटिकां यावदभूद् यदुल्लविधानं जन्यम् ।

“कृत्वम्, अग्रहरन् युष्यसे ।”

“नहराज । एते दुष्टाः श्रीमन्तमावप्यानैर्पूरितितृप्तमहं ज्ञात्वा मनाक् सेवितवती । मूर्च्छनशिथिलशून्यस्य भवती मनोविनोदस्य आस्तस्यापनयनाय च क्रीडिता, न ह्या, सैन्यं पृथ्वा साधुशौलैः क्षम्या । सम्प्रति अनुकामीनं,^१ मीनमिव पीनं स्थावशिष्टमश्वनाष्ट्य मयानिलपितं प्रदेशं प्रयातु देवः, अहमपि यमि । “किं नाम देवस्य ।”

“चन्द्रः” “कुत्र भवती निवसति । किञ्च नाम भवत्याः ।”

“पार्श्वे एव नन्दनपुरं तत्रैव मम वसतिः आप्या च सरोजिनी स्मर्तव्येयं कार्ये” इति कथयित्वा स्वीयं गुल्फलम्बि, अत्ररक्षकं सकृदपहाय फट्कारेण^२ धूलिकणानुरसार्य पुनरायोज्योत्तरमनपेक्षमाणा, प्रस्थिता । चन्द्रश्च व्यतिकरेणामुना^३ दिक्कर्तव्ये व्यमुहत् ।

अथ विरोचनी रोचोपि समकोचत् । विद्वत्प्रभृतहिमततितादनसंकुचितास्त्रिषु काष्ठानु प्राकार्य बभूव तमसः । सर्वनामघे तम स्त्रोमो व्याप्रे । दुर्दिनानीव वीरान् तमासि सुरं व्याकुल्यमानामुः ।

दैवदतकेन दृष्टः शशिलयेऽपि शिवनवनेऽपि सुखी न तिष्ठति । तस्यानृतमपि विषयते, सुखप्राप्तं दुःखायते, प्रसूनान्वपि प्रहारायते, मानमन्दिरमपि मनमन्दिरायते । अहेतुका आनन्दः एतरीभवन्ति ।

काय, काराबन्धन तस्य शोचन्ती, तदुद्योग तत्त्वक्ष्य क्षणेनैव ज्ञातवती । चिर चिन्तयामास हन्त ! महानयमनर्थो जात ! अस्तु यज्जात तज्जगत् ।

*

*

*

पाथोनिकेतने श्वैत्यन्यद्भूततुल्य कूलमम्राथ गर परमभ्रमललितलोहितलपनपम स्ताम्भ कणै सरोजिनीच नगौ सरोजिनी । सा चोत्पन्नमहाऽपहृष्योदरवन्ति वासासि मसृणमञ्जूपया शुष्कवस्त्राणि धृत्वा ग्रीवमामिनीभूषण दूरण साहसिकानामपह्नाय शोरलोक बाहोवभूसावागत्याभिनवा स्थलेस्त्रामनिदूर एवापश्यत् । आश्चर्य-मना एकस्मिन् प्रोच्च गण्डशैलप्राकृष्टाऽमित पश्यन्ती मय्युत्पन्नतराल उद्धातिन्या भुवि शनैश्शनैर्बन्त रथमेवमैक्षिष्ट । स्वसम्मुखपादपेभ्योऽकस्मान्नि सतया तया सारथेरेवमभूवन्नालापा ।

सरोजिनी—क यासि रे । पाटवर, तिष्ठ, पश्यामि । रथे किमस्ति ।

सारथि—मन्ये धृतीवेष कोऽपि धूर्तोऽसि, पर नाह वेशेन रथिष्ये । जिह्वा चर्परयिष्यसि चेष्टमचपेटो धरां धाम्यसि । प्रज, अपेहि, न तेऽवस्था (कदायाऽधी ताडयति) ।

सरोजि०—मूढ ? मदाक्षामवशाय क पलायितुमिच्छसि, पश्य सज्जो भव ।

सरोजिनी एकतो भूत्वा रथस्य शिरोधरां कृपाणमोपकेन सद्य एव हारयाश्चकार । गतप्रीवे चार्दति, अतिरोषकपाये च सारथेस्तुण्डे क्रोधोद्यमतस्लनेप्रायां सरोजिन्यां समजनि जन्यम् । पादाहत कृष्णोरग इव प्रादुर्भूतमद करीव भीकरकाय रोषोच्छलद्वात स सरोजि-न्या वराक्या उपरि कटकटायितदशन कृपाणपाणि पतित । परन्तु सरोजिनी सौन्दर्ये एव केवल नाग्रमण्या, किन्तु कलाकलापाटापिनामपि, यत स्तप्रहार व्यर्थीकृत्य रथीयसा हस्तेन तच्छिर फलमिव पत्र बित्तस्य निपातया-चकार । मृते सारथी रथ्ये पररथ्ये च गन्तुमसमर्थेऽथे सफला सा सद्य एव स्थान्मुच्छित वस्त्रवेष्टित पुरुषमेकमुत्तावापश्यत् पेनमृतमुखचन्द्र स्मन कुमुदचन्द्र, शिपूतमधद्रव्यम् ।

तमेव चित्यां दशामनुभवन्तं वीक्ष्य नात्तमन्ताधूणि स्थानमन्त । तानि सत्परमन्तर्गतदुःखताडितानि धाकमानानि नेत्रद्वाराभ्यां नदिरामल तद्दुःखदुःखितां

भुवमपि सिपिनुः । “कथमेकाकिनी द्युसञ्जुले सोपद्वे विजने वने विलपामि । कोऽत्र सत्यां विपत्तौ साहाय्यमाचरिष्यती”ति चेतसा सतर्कक्रियमाणा निपुणं नाडौ परामृश्य मूर्च्छां विजृम्भ्य तदपनयनौपवीं तस्मा आघ्राप्य, कौटिचिद्विन्दूनपि तन्मुखे नेत्रयोश्च निपाल्य प्रतीक्षमाणा तिष्ठत् । घटिकापट्यांशेन स नेत्रे लम्बीत्येतत्सती व्यैशत, तावदेव प्रबलमवमत् । मुखं प्रोच्य यावदुत्तिष्ठसति प्रमदानेकां चन्द्रहासतारान्येन चक्षुश्चकित्यन्ती वीक्ष्य “नहि शास्त्रात्यन्ताभाषणालिनि पु सि श्रेयान् दृष्टपात” इत्याह ।

सरोजिनी त्वेकतः पतितं सारथेः खड्गं लक्ष्योदृत्य “गृहाणामुं खड्गमहमपि वीर कर्म दिदृक्षे” इत्युत्तरीयं योद्धुमसज्जत । घटिकां यावदभूद् बहुलविधानं जन्यम् ।

“कस्त्वम्, अप्रहृन् युध्यसे ।”

“नहाराज । एते दुष्टाः श्रीमन्तमावप्यानैर्पुरितिवृत्तमहं ज्ञात्वा मनाक् सेवितवती । मूर्च्छनशिथिलाहस्य भवतो मनोविनोदय आलस्यामनथनाय च क्रीडिता, न ख्या, सैर्यं वृष्टा साधुशीलैः धम्या । सम्प्रति अनुकामीनं,^१ मीनमिव पीनं रथावशिष्टमध्वमास्व यथाभिलषित प्रदेशं प्रयातु देव, अहमपि यामि । “किं नाम देवस्य ।”

“चन्द्रः” “कुत्र भवती नियसति ! किञ्च नाम भवत्याः ।”

“पार्श्व एव मन्दनपुर तत्रैव मम वसतिः आस्ता च सरोजिनी स्मर्तव्यैर्यं कार्यं” इति कथयित्वा स्त्रीयं गुल्फलम्बि, अत्ररक्षक सकृदपहाय फट्कारेण धूलिकणानपसार्य पुनरायोज्योत्तरमनवेक्षमाणा, प्रस्थिता । चन्द्रश्च व्यतिकरेणामुना^२ चिह्नितव्ये व्यमुहत् ।

अथ विरोचनो रोनीपि समकोचत् । विदूरप्रभृतहिमततिताडनसंकुचितास्त्रि काष्टामु प्रावत्य बभूव तमसः । सर्वत्राकाशे तम स्रोमो व्याप्ये । दुर्दिनानीव दीनान् तमापि मुनं व्याकुल्यामामुः ।

दैवदूतकेन दृष्टः शक्तिर्येऽपि शिवभवनेऽपि सुखी न तिष्ठति । तस्यामृतमपि विपायते, सुखसाधन दुःखायते, प्रसूनान्यपि प्रहारायन्ते, मातृमन्दिरमपि मममन्दिरायते । अहेतुका आपदः स्फारीभवन्ति ।

यतश्च द्र सरोजिनीमनुचलितो गहने गहने मदमत्त इवेयाव ।

च द्र प्रथमन्तु ज्वलित जातवेदस महात्मानश्च वीक्ष्य 'काऽऽयातोऽस्मीति भीतोऽपि, महात्मन समीपमयासादेव । स च चरणध्वनिना सतक् आगन्तुकमपश्यत् । द्रतश्च द्रोऽपि साधुवीक्षणसमकालमेवाधादवतीय वल्गाम्भारुपयन् साधोरभ्यर्णमुपेत ।

च द्र — (प्रणाम कर्त्तुं ग्रीहमान इव) भगवन् !

महात्मा — नाहं प्रणम्यस्वया वधिक ! वराका मुनेव हिंसन् भ्रमसि ।

च द्र — (महात्मस्त्वुचित कोप प्रक्षमय्य) महात्मन् ! भवता कथं ज्ञातोऽस्मि मदहं वधिक ।

महात्मा — (दृष्टोऽपि कुनिमकोप प्रदर्शयन्) आम् महात्मन् ! कृपाणपाणे ! जगद्भ्रष्टक ! त्वं नासि वधिक । वयं स्मो वधिक । योगिराज ! स्वागतं तेऽस्तु ।

च द्र — (निरीहो वास्तविक स्तवनीयकीर्तिमहात्मस्य प्रतीत्येव) महात्मन् ! किं खड्गधारिण एव वधिक भवन्ति, किं माताविकेतारो भगवद्भ्रष्टका ? गङ्गाश्रुपायिनो हर्दुरा अपि स्वर्गसौभाग्यभामिन !

महात्मा — नाहं भवत उपमानं सिद्धयामि । कस्याश्चन नायिकाया समीपं व्रज ।

च द्र — स्वर्गोऽखिलकूटचक्रपुष्पा, विपदाक्ष, पात्य प्रियसां शाज्यं स्वदेहिनामस्मि । भवतापि वधिकपदेन सम्बोध्ये ?

महात्मा — (शान्तो भूत्वा) अस्तु, उपविशसने । अथ ८-३ आयोजय । कुटीरे शय्य वत्तं ते, अश्वाय देहि ! धो गन्ता ।

चन्द्र — दया भविष्यति चच्छ्रीमताम् ।

अथ प्रलम्बया वलाया वृक्षे नियम्य शय्यधाम्ने निपात्य महात्मप्रदत्त फलमूलादिकं मुपभुज्य चन्द्रोऽपि महात्मन समीप एव कृष्णकम्बले पाण्डुकम्बलार्हे शयनं कल्पितं वान् । द्वयोरेव चित्तं प्रचुरविचारं पूर्णं द्वावेव च महोत्कौ प्रत्येताम् । द्वयोरेव नेत्रं संध्याजं सङ्कटिलेखनीक्षणं पारस्परिकं भावं विज्ञातुं मुखरिते ध्याताम् । परन्तु द्वावेवावसरं प्रक्षाताम् । अन्ततः स्वभावचतुरो महात्मैव वचसन्दोहं प्रावर्त्तयन् ।

महात्मा — पाथ ! किं ते नाम ! का च जाति !

चन्द्रः—मां लोका 'चन्द्र' इति सम्बोधयन्ति । आत्मा क्षत्रियोऽस्मि । महात्मन् ।

किं नाम भवतः ?

महात्मा०—(स्मयमानमुखः) अस्य शरीरस्य 'शक्तिनाथ'—इति संज्ञा । अस्तु,

चन्द्र ! सत्यं कथयिष्यमि, यदहं प्रश्यामि ।

चन्द्र०—आम् देव ! कथं स्यात्तिरोधानं करामलद्वयगतां भवतां पुरः ।

शक्ति०—न तेऽङ्गानि श्रमक्षमाणि, न च प्रतीयते आहितश्रमं वपुः । न च विदित-
वनवृत्तान्तं मनः, न च क्रूरवृत्तिः प्रकृतिः । पुनः किमर्थं 'च्यौलीभूयाद्वतोऽटवी',
पुलिन्दकुणिन्दा^१म् आब आबं पुरः पुरं नगादगं भ्रमसि । 'कुटखासिनो
भवादृशा नारद'^२रु^३रोदितशिवास्कन्दनसिद्धदेवाव्याघ्रविजृम्भणव्यालकरालकेलिलालिते-
शार्कूलदोलभशक^४'धावनविधुतधैर्ये, ^५क्रुधकष्टे अन्यान्यनन्यशीब^६मिसरयुते,
'सत्त्वतस्तितृ द्विपद्व्याप्तोऽवने'^७ वनेऽनवना^८ भ्रमन्ति इति न चेत् कापि क्षतिस्त्राहि
सङ्क्षिप्य कथनीयस्तावकोऽर्थं वृत्तान्तः ।

चन्द्र०—किम्विदितं भगवत्पादानाम् । सर्वं विदन्नपि बाल्यदाचरसि । धन्या भवन्तः,
यैरखण्डाच्छेद्याकाव्यतपोहुताशेन अस्मितममितं कुलस्याप्येवः । पवकपूतं वनमिवाङ्गारा-
वशेष पूत प्रतिभाति येषां वपुः । धन्यौ भवतां जनित्वौ यावीदृशं पुत्ररत्नं
प्राप्नुताम् । भगवन् ! अलमेतादृशमलिनवृत्तं धृत्वा । भगवन् ! मृदां दुःखितो-
ऽस्मि, दुःखकल्पपयुजामसञ्जातमुखसूयोदयानां भवादृशा भवविमोचका एव भवन्ति
शुभाश्रया इति कबोष्णं निःश्वस्य चन्द्रः स्वकीयमुदन्तं विस्पष्टं न्यवेदयत् ।

गलितयौवना कामिनीव यामिनी शैथिल्यमभवत् । चन्द्रो निःशङ्क^९ सुप्तः ।
शक्तिनाथस्तु निमृत्तमुत्थाय, गतो यथेच्छम् ।

अराजत प्राचीकामिन्याः सौभाग्यारुणसिन्दूरविन्दुर्विशात्माले । बभूव चाग्नेसर
उन्नतिपथे त्यक्तमेरुः पेरुः । प्रहरमात्रेणैव बभूव मथ्यमहः । परन्तु युवराजश्चन्द्रः
सुप्त एव । तस्यानल्पघोषा घोणा निद्रामरं व्याञ्जोत् । परं कोमल-दूर्वाङ्कुरभक्षण-

१ च्यौली - गमनशीलः । २ कुणिन्दः शब्दः । ३ कुटख वखरुहम् । ४ अरुः
शत्रुः । ५ रुर्मृग्भेदः । ६ शका-इस्त्री । ७ क्रुधा शृगालः । ८ शीवाजगरः ।
९ सुखा-वशा । १० अवने-निर्वले । -११ अरक्षणः ।

गतधमो हर्षदृढहृष- शरीरं धुन्वन् बाजी एनमुदनिश्रयत् । अथ चक्रितो
भीतश्चोत्थाय क्व गतो मुनिरिति सवृत् सम्प्रान्तः, अथवाऽऽयास्यति किमस्माकमिति
निश्चिन्तः, स्नात्वा प्रचण्डबुभुक्षामवदमो मुनेराज्ञा विनापि कुटीकोणभूतानि फलानि
समुपभुज्य बाह्मसूत्राभिमुखं दण्डमाथमाश्रित्यावासीत् ।

नन्दनपुरप्रवेश एवासीच्छुल्कशाला । अप्यक्षेण चन्द्रस्याभूशालापः ।

“भोजनालयोऽप्यन्तः १”

“आम्, भोजनालयः, सौत्याककुतहिमालयो जलालयः । पत्रवाचनालय-
भोजनसमये च नृत्यस्य प्रवन्धः, रात्रौ च मनोरञ्जनं गानवाद्यमिति सर्वां सुखदसामग्री
भवता पुरो नृत्यति” ।

“कस्या भूमौ स्थानं दास्यते” ।

“तृतीयायाम्, यतस्तत्रैव शङ्खवास्तरणासृतः सुसज्जाः पर्यङ्काः । महाहर्षा आसन्त्यः ।
विचित्राणि चित्राणि । सर्वां राजोचिता व्यवस्था ।”

“घोटकस्य...”

“आम्, घोटको मन्दुराया स्थास्यति । अस्मै चासादिकमप्यस्माभिर्दास्यते ।”

“भोजनशालायाः प्रवन्धः कीदृक् १”

“देव ! सामिधं निरामिषं भोजनं पृथक् पृथक् स्वानेषु निर्माप्यते । सुपाचकपक्व
वैद्यैः परीक्षितं विशुद्धं भोजनं दीयते ।

“तर्हि निर्दिश पन्थानम् ।”

“कियच्छुल्कमेतस्य”—

“प्रतिदिनं दशमुद्रा” इत्युत्तीर्थं तालिका समर्प्य “कस्यापि वस्तुन आवश्यकतायामह
सूचनीय — इति वदन् गतः ।

भवने शौचस्नानवेशागार आसीत् । स च स्नातोपस्थाय पाचकानीतं मधुरमधुरं
स्वादु भोजनं प्राप्त्य भवनाप्रभूमावेन शतमर्दी विरचय्य मृत्पानीतं ताम्बूलदलमेकं सञ्चर्य
निश्शङ्कमशयिष्ठः ।

*

*

*

एकस्मिन् भवने लघीयसि दीपाधाने स्थितः प्रदीपो मन्दं मन्दं प्रकाशते ।

प्रकाशेनामुता न शस्यते शनयितुममन्द कौटं तमः । एकस्मिन् भगवत्पाठे स्थितौ द्वौ पुरयो शनैश्चनैराद्यतः ।

“न जाने कोऽस्य कथं साहाय्यमाचरति वीर ।”

“कापि विशेषा शक्तिरेनं रक्षति प्रबल ! परमधुनाऽस्माकं जाले तथा पतितोऽस्ति यथाऽऽख्यायते एव संवत्स्यति । कान्तिसिंहाय पूर्वमेव बहुशोऽस्य वधायावोचं परं न जाने स किमिव विचारयति, यतः ‘शुभशुद्धायामेव प्रेषयितुमैच्छन् परमं सारधिमध्वं निहत्य इहायातः ।’”

प्रबल०—(चायच्छपठ निषेध) अस्तु, गतः सोऽवसरः, अनुना करणीय विचारणीयम् ।

वीर०—विचारितमेव विचरे । आवा तारसरेण चौरधौर—इति कथयिष्यामः । रवेण सर्वं नष्टनिद्रा भविष्यन्ति, न चन्द्रः । यतस्तस्य भोजने पाचकेन प्रचुरं भग्ना दत्ता । मादिनीमत्तः स नृप नोते तद् दृष्टमेव । तत आवां तदभवनस्याग्रे स्थितौ “अस्मिन् भवने प्रविष्टधौरः” इति कथयिष्यामः । एष उपायः कार्यसाधकः । शुल्कशालाध्यक्षश्च सुद्राक्षतं दावा सानुकूलः कृत एव ।

क्षणेनैव “चौरधौर” इत्युत्थितः प्रचण्डो ध्वनिः । जनध्वनिमिश्रितः । चन्द्रस्तु शुभ एवासीत् । शुल्कशालाकोट्टपालोपि कोलाहलममुमाकर्ण्य ससहचरः समेतः । ते सर्व एव तेषां कपटपट्टा कथनानुसारं सद्य एव चन्द्रभवनं प्राप्ताः । पट्टया क्वाटमुगलमानधु—प्रबलमाशुहृषुध पर ॥ गोरिधतः । अन्ततः कर्णविस्फोटकेन ‘धडधड’ निगदेन चक्षितं स उत्थितः । स्वप्नेऽप्येव शत्रु-निर्युध्यमान एवासीत् । दत्यायापि ‘धडधड’ ध्वात कुर्वतस्तान् शत्रून्नेव विहाय सामर्थ्यं पराङ्मुखः कृपाण पाणौ कृत्वा कोलाहलमप्य द्वारमुद्घाटनं युयुत्सुः पृष्ठतः । को नाम मृलोर्मुखे ज्योत्स्मान निपातयेत्, सर्व एव दर्शकाः कान्दिशीकाः स्वतन्त्रतो निपतन्तो उद्भवुः । केवल ससहचरः कोट्टपालः प्रबलवीरवरो च स्थिताः । कोट्टपालस्य मनस्यपि कृपाणपाणौ तस्मिन् दृष्टव्यमात्रं चौरविश्वासः । “प्रष्टुदुश्चौरोऽयं यद्वन-मपहत्यापि युयुत्सुविचरे, इति चेत्तस्य निश्चितं ससहचरः कोट्टपालो वीरवरः प्रबलश्च युगपदेव खड्गरातबक्रः । परचन्द्रस्तु चन्द्रहासचालनचुन्वुरासीद् यतस्तेषां मध्याद्रोच्छत्य वीरवरशिरो भूमिसात्कृत्वा यावदपरं प्रविहीर्यति तावदेव पृष्ठतः प्रसलेन दृढमावद-

हस्तयुगलोऽवतत । तं ॥ सामर्पां शुटिचपेटपादाधातैर्भृशं व्यथयत् कटुवचोभिर्मर्माणि
स्पृशन्तो युवराजं प्राप्यदृष्ट्य' भीषणाकाराया काराया निपातयामासु ।

*

*

*

प्रातः समय । न्युष्टवायुवर्षीन जीवन सञ्चारयन् रसन ग-दोऽम-दमान-द तन्नन्
वाति । उदीयमान सूर्य पूवत एवाकणवृत्तं प्रप्य स्वागमन सूचयति । भमरेश्वर
राजभवनमिदं वीक्षितुमुष्णै शिरा, पञ्चोच्चप्राकारो रक्षमिति कूपनिम्नया कण्टद्विद्रुमया
नितान्तकुर्ममया महत्या परिस्त्रया परीतो विषयकठो विहितगुणो रक्षोदर्पण अ दश
दुर्गो राजते ।

महाराज धीमन् कामेश्वरसिंहो वाजिनमारुह, एकाकी प्राभातिकपवनसेवामय
वनाय जगत प्राकृतिक सौन्दर्य समयस्य रामणीयकव विलोकयन् मनस्येव मग्न
इतस्ततश्चक्षुरविक्षिपन् यच्चासीत् ।

सघनवटशृङ्गस्यैकस्य तले आलवालकृतस्तवो माला विभ्रामयन्नेकाक्ष्येवासीत् प्रचुर
शक्तिशक्तिनाय । कामेश्वरसिंहोऽप्येतस्य नितरा भक्त एतस्य वैराग्यव्याख्याने
सर्वोदयप्रदघने बहुश उपस्थाय स्वमतुलहृमनो महात्मनश्चरणयोरारपयत् । बहुश एन
नन्दनपुरागमनायाप्रहीच । तमयात्रोपविष्ट वीक्ष्योपगम्य अश्वादवतीय देह नमयन्
'साधो ! प्रणमामि"—इत्याह ।

शक्ति०—(शनैः) विर जीव ।

कामेश्वर०—(शक्तिनायेन निर्दिष्टशिलातल उपविशन्) भगवन् ! अनोदया
औदास्यन कथम् । केनाप्यगराद्ध किम् । कथं दुःखित इव प्रतीयते भवान् ।

शक्ति०—राजन् ! अपराधस्तु साधुसद्वर्त्मरक्षितरि भवति भर्तारि न सम्भावयितु
शक्यते । परन्तु यस्य योग्यमनाशिताशपभीतय साचारा प्रजा सुख क्षरते, येन
विश्वविभ्रुतपशसा शशाङ्गनिमला ख्यातिर्वर्द्धमानमहाप्रचारेण धर्मेण सहैव दिगन्त नीता, यस्य
प्रभावण त्यधवैरा विरोधिन पक्षवोऽपि परस्परमद्व्यादद्व्य मीढति स्म । येन चुरापहृत
हिरण्यं समुत्पादितभयं मृश दण्डित लुप्टाकजुलं दस्यारातिहृदयदाहयेन प्रतापवद्विना

विदूतभीतरो भानिन्वो गृहाणा द्वाग्मेव नात्र य पितरमिव पाकक मातरमिव मानदात्स
त्रस्तमिव क्राडाकर शुर्भमिव शिखर, कुबेरमिव यननिचरनृतकोश प्रजा मेनिरे प्रवापतिम्
तस्मैव दणाधमन्यवम्यापकस्य सन्यतनवर्मेसनाध्यस्य श्रीमतो नन्दनपुरनरेशस्य शस्य-
सम्बद्धस्य योगप्रजनसम्पन्न पद रत्न नष्टुचर्तोरिति विचार्य दुःखित मे चेत् ।

‘क्षिमिति कथमिति कुत इति’ धामप सगव सविस्मय सभय सनयनेत्स्कार सास्य
क्षयितवति श्रीमति नन्दनपुरप्रज्ञाण्डप्रज्ञणि सु पुन प्राप्नोषत् ।

बोरवर । वनमशया शयाधारा विचराम । समेषा सुगुप्तान्यपि मानसमहोदधि
लीनानि वृत्तरत्नानि परेशदनया विम ।

कामे०—भाम्, निश्चितमेव ।

शक्ति०—भावी विमलेश्वरजामाता, माता वार्यैवाषा राजनारराजकुमारो भवत्पुरे
समायातो राक्षसीमनुकशालान्नावास परिकल्पितवान् । स बाधुना धूसैश्वरीकृतो
व्यथितय काराया राया निधिनिगडित आस्ते । तमुमोच्य तत्प्रसादाय स्वपुत्रीं
सरोजिनीं सनत्कुमार्यप्य तस्मै प्रशम्य मुक्ताभविमुनिच्छसि चद्रव । मा नाम भटुल
घात्य विपुलकौशलकुसूल देश रपरजितभुव भुव वीरपाषा, रोक्ष्यमान-चेक्ष्यमान
चक्षिण्यमान नारीप्रातबाल-समुदय क्षयौ । महतो इतिसम्पन्ना सेनस्य ।
राजनगणपितोस्य विमुरपि प्राप्तप्रशस्तिश्च चम् । तत्समय एव हृदयसाक्षुष
मद्राक्ष्यम् ।

कामेश्वरसिंहस्तु श्रुत्वैतच्छिषिलहो गूढ सम्मन्त्रय प्रवर्तिन्व जकनेन गुल्कशाला सद्य
एव प्रापत् । शौल्कशालिकाश्चासूचितमहाराजागमनसम्प्रान्ता भीता हस्तगुगलान्यायोऽय
प्रगमन्तः क्षमा वाक्नाना जयान् भाषमाषा एक्षत सन्तस्वरे । बास्ते कोट्टपाल’
इत्युक्तेऽहं सहस्रकुञ्ज विस्तृत एव प्रगमन् महत कुच्छास्त्रधैर्ये जायसौ स ।

महाराज०—कति उवका सन्ति सम्प्रति ।

कोट्ट०—देव ! आनत प्रवलप्रतपतस्नेन नाशित मीपगवृत्तसन्तमसम् ।
तदह द्रौ सेवकावेव पयासौ विक्षय निबुक्कानसि । अग्रे श्रीचरणाभिवानम् ।

महा०—यपि नाभूत्कापि घटनागतेऽहि ?

कोट्ट०—जगत्पते ! रात्रौ वधनपटुता चौरैकेनापहत प्रचरो स । वचन

समये मारितश्चैक पथिक । अशुनापि स सिंहवद् गजति । श्रीमद्भयो निवेदय नेवास
श्रीचरणै पूजमेव पृष्ट ।

महा०—(विमनायमान इव) कोट्टपाल । न्यायाधीशतामुपगतोऽपि अविमृश्य
कारी मूढ इव अन्याय्यमाचरसि । किं तस्य समीपे पुराप्रमाणमासदितम् ।

कोट्ट०—(विभ्यमुख पश्यति) प्रमाण तु नाधिगतम् । यथाज्ञाप्यते ।

महा०—तत्कथं स निगडित । त्वादृशे न्यायभारं दत्त्वा विपीदामि । अस्तु तस्य कृते
राजसम्मानमायोजय । त्वरा विधहि ।

कोट्ट०—इयानिधे । यामि

महा०—आम्, शीघ्रं यतस्व ।

कोट्टपालो राजोचिता सामग्रीं विरचय्य मन्त्रिणमपि विदितवृत्तं विधाय राजाह्वासास्यु
पायनस्वादाय क्षणैरेव राजान्तिष्ठमाप्स्ययौ । तानि च उच्योचितं शृङ्खलाय सदावास
स्थिताय चन्द्राय राजोपहारेण प्रैष्य स्वागमनं ससूच्य आजगाम आतिथयवर
कामेश्वरसिंह ।

चन्द्र०—(उत्थाय अञ्जलिं बद्ध्वा) श्रीमध्वरणसरोरुहयो प्रणमस्त्ययम् ।

महा०—चिरजीव । अज्ञानतो भ्रमतोऽनुष्ठितं नृयकृत्यं मर्षणीयं कुनारेण ।

चन्द्र० कथमसंख्यो भारो निपात्यते ।

महा०—नहि नहि । युवराज । ज्ञातोऽसि यच्छ्रीमानेव राजनगर
प्रजापति श्रीमानेव विमलपुरनराधिपकन्यारत्नसौभाग्यभागी । मये एत
द्राव्यमपि भवत केनापि सम्बन्धनं पवित्रं भविता । अतो मयणीमा इमे भवतो
नृत्पा ।

चन्द्र० क एषा दोष क्षम्या एते । दैव हि जगता मानापमाने सुखदुःखे
लाभालाभे च हेतु ।

महा०—कुमार । उत्कण्ठामावहन्ति दशका तत्सपत्यव राजधानीं
सुनाथय ।

अथ चन्द्रो घोटकारुढोऽसंख्यजनानुगमो राज्ञः स्वयं निर्दिश्यमानविशिष्टरचनो
राजधानीमागं यं सज्जनविभ्रमे व्यथाम्यत् ।

‘शक्तिशस्यान्नुल्लं’ पुरोहितमामन्थ विवाहतिथिं निश्चिन्वति रात्रि चन्द्रेण न्यवेदि
यत् पूर्वं कमलया सह विवाहो भविष्यति तदनु चाम्यो विचारः, इति ।

विमलपुरे व्यप्रतामकलय्य श्रोत्रमेधरसिहेनमन्त्र्य कुमुदिन्या मुञ्जं भूपेन्द्रं
विमलपुरं प्रैषयदस्त्रिस्तम् ।

देव, सादरमभिवादनम् । श्रीचरणानुक्रमया कुशस्यह परेशानुक्रमया प्राप्तव्य
प्राप्तवानस्मि ; सर्वं कृतं भूपेन्द्रो निवेदयिष्यति । श्रीमन्नन्दिनी नादावाव स्वस्था
स्वास्थ्यप्रदः सुलभसर्वसुखरसामप्रोक्तो रम्यधाम्य प्रदेशः—इति कतिचिदिनान्यध्या-
ऽऽयास्यामि, न कापि व्यग्रता कार्या । तेष कुशलम् ।

ललितवनम् ।

}

श्रीमताम्

चन्द्रः

*

*

*

वीताप्यर्द्धद्वियामरुजमलिनीरिष्टः । ज्योत्स्नावयिनी महार्हमण्डनमण्डितानां
हर्म्याणां प्रभा भासते स्म । तन्नोरम्परणकेन वशोरिमलनिरावेण कोकिलकाकत्या
विलासिनीविभावैश्च विलसति स्म ललितवनम् । अरुस्मान्मेघैर्मेदुरं वुरवस्थं जातं
जगत् । निशावशाल्लब्धवावकाश निशोभप्रहायेनधिकप्रसरं समदशासन साहसेन
विततम् । यत्र तत्र निद्युरीपा रावद्रोहिण इव शासनमवहेलितुं रुद्रप्रतिष्ठा,
किन्तु तत् प्रबलसेनयाऽनयारब्धराज्यो राजेव तांस्तिरस्कृतुं मवकाशं न वेपयति ।

अस्मिन्नेवानेहसि हस्तित्वा तडिन्मिपेण, साहसमिव वडितुं समग्रो वारिधरैः समारब्धः
सपटपटाधान पृथुविप्रुष्टकरावातः । येन युगपद्दीप्तनिद्रातन्द्र सखल कलकल-विकल-
धभूव निष्ठपम् ।

चन्द्रस्यावासे कनका निशङ्कं पर्यङ्गे गतातड्डा राड्डास्वरणा, रणाभिगता विजय-
लक्ष्मीरिव, विलक्षणश्रीः, दुर्जनसंगेषां च अल्पकलङ्कपट्टा स्तपिति । विन्दुप्रपातभवेन-
रवेण चन्द्रनिद्राऽट्टुवन् । तदेव देवचेष्टितं संघटयन् जवनिक्कन्तरितविप्रहोऽन्तपुर-
विहारो प्रहरी—“देव । स्वामिन्याः सरोजिन्याः सदाशादागत एको मृत्यो ललितवन-
वदिद्वारि तिष्ठति, नायमनेहा देवदर्शनस्येति किंनरसमनिहारेण कथ्यमानोऽपि सोऽस्यावश्यक
किमपि विज्ञापनं विज्ञाप्यमिति कथयति, अग्रे देवः प्रमाणं” मित्यसूचयत् । “सूचय

चद्विरेवायामि'—इत्युत्तीर्य यथाप्यायोज्य, चद्विरेख, इतस्तत् पर्यन्त, बहुश आहूय कममि पुमास नापश्यत् । किमभूदिति चिन्ताचक्रचकितचित्तथन्द्र परामृशन् सद्य एव प्रतिनिरुत ।

*

*

*

'प्राभातिको मातरिश्वा ललिता ललेत्सुमुमा सुगन्धिवसरमुद्गमन्त्यो वासन्त्यो लताय सुखयन्ति त्वाम् ? त्वन्मेलनहृषवर्षविधुतसृष्टिरह द्रुतमेव नापृच्छम् । तत्कथय कथं व्यवहृतम् । अहं स्थानस्यामुष्य परिचिनोऽस्मि त्वमपि किमत्र कदापि समायाता ?

कमला०—दासधर, यस्मिन्समये मयूगायां नादेन मम मृच्छा गृष्टा, सम्मुखे मुखायोजितवस्त्राख्यो भयङ्कराकम्पा कारुण्य वन्दहना असम्यक्तानिधय आकलितचुराविग्रहा, ग्रहा इवीत्पातिका पुरुषा रूपा न्यक्कृतमृत्यव स्थिता आसन् । ते मामाहु —

'कनले ! केनाप्यविज्ञातोऽयं प्रदेशः, चतुरैरप्यज्ञयोऽस्य पन्था अरमद्वयतिरिक्ता गमने च भव मरणम् । अस्माकं देव कान्तिसिंह कार्यवशाद् बाहीकप्रवेशान् प्रीक्षितु गतस्वदाज्ञयैव वयं तदनुचरास्तथामानीतवन्त । सोऽपि समये भवतीं द्रष्टुमिति तावकीनोऽयं प्रदेश इति विश्राम्य स्वस्थानं दृष्ट्वा व्यवहरतु भवन्ती इत्याभाष्य चक्षुषो-रगोचरे सङ्गता । अहम् सत्यपि क्षुत्पिपासाशामके फलबहुले चिन्ताचक्रचालनीक्रिय-माणचित्ता सर्वं वासरमत्यवाह्यम् । तस्मिंश्चिन्तापारावारे मदीयचातुरोतरणिनिर्ममा । साह उग्रवेशान्, शस्त्रप्रयोगान्, विविधसाहसिककार्याणि वेष्टि—इति साहस सरभस चूर्णितम् । दुःखितं स्वान्तं विजयवान्सस्मात्—अहह ! क्व पिता । क्व जननी हा ! हन्त ! सा ■ दुर्भगाया मम शैशव एव स्वर्गता । पालयित्री धानीव धात्री अपि हन्त कीदृशशा अहो साम्प्रतमेव आनन्दाशाकिरणावली समुदिताऽऽसीत् । विचारितमासीद् यदधुनाऽपमितसुखं सुखं चिरं लप्स्यते । हन्त ! क्वाग तास्मि, कीदृशी मन्दभागाऽस्मि । 'वा' वेतिरससम्पूरितवचोभिर्भुवं विमोहयन् क्व भ्राता मे राम । एवमहं विचारयती चिरायात्मानमेव व्यस्मरम् । लब्धबोधया मया त एव त्रयं सम्मुखे स्थिता इति कथयन्त प्रक्षिता ।

देवि अस्माकं स्वामी, देव कान्तिसिंहोऽतिथयमुदर । सौन्दर्ये चन्द्रसदृशधरण दास्येऽपि नाधिकृत यथा ■ सद्गुणो भूयोऽस्ति, तथा गुणी ज्ञानी मतिमान्

बलवान् ओडली यशस्वी वाम्नी चतुरोर्तुरितनुबल्लोऽप्येक एवास्ति । अतो
भवतो रतिरजनीयां वच सादरं प्रार्थयामो यदन भवतो नः स्वामिनी भूत्वा नित्यस्यास्य,
यौवनस्य च आनन्दसन्दोहमनुभवन्तो विर एतन्मू । ना नन प्रचण्डवन्द्येती
चिन्त एतदुपौ कमलकोमलनृपछन्दपेयलम्बिद शरीर पातयतु । चन्द्रसदृशा बहवो
राजानस्तत्परपान्पुत्ररेपुतागतुण्णिगः सन्ति, मन्वस्वेदं सद्भव” इति ।

निर्गम्य एकदा यौवनतो दृढमभिल्यान्ति एवा स तावदेको मनुष्यो नदन्मिषुत्वमा-
गच्छयसीत् । अहम् “शङ्करा भीता पादपदमसि लिडीना समनवम् । स मामन्विष्याह ।

“कमले ! त्वदनुचरोऽहं भवतो स्थानादस्माद्बहिर्निर्गमामि । परञ्जाना एव मां
सदृष्टमनोरथ द्रष्टुं नेहन्ते । अयुवावसरोऽस्ति सरयामच्छ मा मैपीः ।
अनुतान्त्यनपि स मा सहरण्य नेषुं प्रस्थितः । तावदेव चयरावयच्छैः
कृपामिच्छन्तः । भीताह्वयन्द्रहासवागन्धेन मूर्च्छिताऽभवन् । तस्य का दशा
सम्पन्नेति न जने । ततः प्रवृत्तिं काम्यां वसः । दुःखविचारैरुभायः । तरेव
प्रमा । शौचशब्दुना व्यपन्नम् । प्रजान्तावमरेण दृश्यन् । जन्तानसिहेन भक्षयन् ।
तमोमिषैः । अन्तुगमिरासिभिः खेत्य ।

अहन्तु तादृशजीवना-मरण श्रेयो मन्वाना वचनचानुर्याचित विमोहयन्त्या-
स्कन्धमवलम्ब्य भवनमगाम् । तस्या निर्मायपरिचर्याया स्वल्परेव दिनैरधिगत-
स्वास्थ्याऽभवत् । एकदा सरोजिन्या प्रिया सखी चपला सरोजिन्या हृदयभाव
न्यवेदयत् । अहमपि तदाभारमग्रा प्रतिज्ञातवती । सेयं देव, मम भवतश्च जीवनदानी
रमणीया रमणी सत्कुलीना मम भगिनीनिर्विशेषाऽवश्यमुद्राह्या ।

“कथमेतत् सम्भविष्यति, सरोजिनीसदृशो नरायमाणः रमण्योऽपि पुरुष-
मपेक्षन्ते !”

“स्त्री धनम्, धनस्याधिपतिना रक्षकेण भवितव्यमेव ।”

“अथ स्त्रियः पुरुषमनुजीवन्ति, नैतच्छोभाहम् । आयाशक्तिप्रतीका स्त्री रक्षायै
पुरुषमपेक्षते । अगत प्रसू पालिका स्वपुत्रैरवमता स्वपुत्रानेवाह्वयति । यां
पितृतोऽधिकं बन्धा विघ्नः, आर्त्ता यामेव भगवत्स्थाने स्मराम सा पुत्रं पतिं भ्रातरं
वाऽऽह्वयेद् रक्षितुम् । अशोभनम् । स्मर्यताम्, अपरेण रक्षितं कदापि सुरक्षितो न
भवति, यः स्वरक्षितः स एव सुरक्षितः । यथा नरः स्त्रीनिर्पेक्षः जीवनं यापयितुं
शक्तस्तथैव स्त्रियोऽपि पुरुषनिर्पेक्षः जीवनं व्यतियापयितुं शक्ताः स्युस्तदैव ता
स्वरक्षिता सुरक्षिताश्च भविष्यन्ति ।”

“वत्सलम्, परं स्त्रीषु मातृत्वभावनाऽन्तर्निहिता । मातृपदनगणित्वाय न स्त्री
सा वृत्तकुर्या मनुते । अतः स्त्रियाऽवश्यं पतिमत्या भवितव्यम् । भावनामेना स्त्री
केवलं कर्तुं समर्था न पुमान् । मातृत्वं विना स्त्रीत्वं न पार्थक्यम् । तच्च विवाहः यः
न पुनासमपेक्षते । पुमान्श्च सुधीः सुन्दरो विद्वान् कुलीनो धनी समवयस्को वर-
त्सदा वरणीय एव । एकदा यदि वृत्तस्तदा वृत एव सवदा । भगवान् कृष्णोऽपि
नरकानुरवधोत्तरं मनसा वृष्णं पतित्वेन बुबुर्षूणां भावः स्वीचकार एव । परिस्थितिः
प्रबला । भारतीयसर्वस्व वचस्तु रक्ष्यमेव ।”

पादभङ्गिं विभाव्योत्कर्णेन चन्द्रेण त्रयो जना अवलोकिता । भीता कमला तान्
परिचीय सन्धय आदिशत् । चन्द्रस्तु ता मध्यस्थकाष्ठपीठस्याथ स्नात् वृत्वा “पश्य
पौरुषम्, एतेऽपि फलमनुभवन्तु—” इति वक्ष्यन् सतर्कोऽवातिष्ठत् ।

‘वत्स रे, अप्रवेक्ष्ये भवने प्राविश, तदास्वादशासनपादपङ्कजम्, पातय च

कान्तिसिंहसङ्गधाराप्रवाहे स्मृ, नैवी योजना विफलीभूता तामधुना साधयिष्यामः” इति सङ्गर्ज्य युगपत् खड्गधारया अभ्यपिबन् । परन्तु चन्द्रस्तु न “नाऽऽजमलौ” फर्किकासहकारमञ्जरीपीयूषपानपीनमधुपपुङ्गव”, न च “व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नसामान्य-लक्षण”मण्डनपण्डितः, नवाद्धैतवादिवादीन्द्रवैदान्तिकप्रातपाठव”, किन्तु करवालकेलिको-विद”, यत आपततस्तान् मर्यादयापहत्यैकेनैव लघीयसा हस्तेन कान्तिसिंहशिरः रामपातयत् । तस्य कवचे च पतिते प्रकर्षामर्षौ ‘चन्द्र ! इयमागता तेऽस्तमन-धेला, वीरवरदुःखमपि महताभीलेन यथाकथञ्चित् सोढम्, परं बोद्धुमेव कथमपि न शक्यावहे, अधुना तु ते क्षोणिताग्निलिमिरेवैनं तर्पयिष्यावः । स्मर स्वेष्टेवम्, भव सज्जः इति साक्षिविशेष व्याहृत्य गृध्राखिब जिघत्स् खड्गान्यां युगपदाक्रम्यताम् । परञ्च चन्द्रोऽज्ज्वलदासः ॥ चन्द्रहास एव तौ समरुधत् । प्रशस्तकरवालपतनसमकालमेव तयोः खड्गौ ममौ । चन्द्रस्तु भविष्यैतद् वृत्त्यशिरोऽनुनूढव् । ततो गतासिः प्ररल.—“चन्द्र ! किं निश्छन्नशनुर्हन्तव्यः ! धर्म एष आर्यवीराणाम् ? अस्तु जातन्तज्जातम् । सम्प्रति सम्प्रतिष्ठ ! इन्द्रयुद्धं समाचर मया सह । चन्द्रस्तु किमपि विवशुरपि वाग्देगमवकथ्य योद्धमेव सद्यः सज्जो बभूव । निरङ्कौपीनेन बभूव सावकाशदर्शनं सपार्श्वपरिवर्त्तनं मुहूर्तं यावज्जन्मम् । परन्त्वन्ततः प्रचण्डदोर्दण्डविग्रमो युवराजस्त कटितटे समुत्थाप्य भूमी प्राक्षिपत् । स च विहसन् सरङ्गणादेव चन्द्रचरणयो-निपत्याबोध्य,—‘देव ! ममैषा प्राणसमा उपांशु प्रतिष्ठाऽऽसीद् यद् यदि कदापि-कोऽपि मां द्वन्द्वयुद्धे निपातयिष्यति तस्याह दासः सवत्स्यामि” इति । तदेव । अथ प्रमूर्ति प्रभूणां चरणधारणः सङ्कतोऽस्मि इति ।

यस्तुतो रत्नं स्थान एव राजते । ईदृशपुष्परक्षस्य, सत्यवीरस्य, अनुलसद्दृशस्य उपचन्द्रमेवावश्यरुताऽऽसीत् ।

*

*

*

विविधधातुटत्तत्रुमस्तवकेषु बह्वर्णशधवलेषु राजतपत्रात्छादितेषु तम्भेषु लामानां फर्तुस्वसनकर्त्ताप्रहरीनरीनृत्यमानानिमज्जरोणां बासदशरथद्यूताष्टदलमलविदित-सेवकजनचानुराणां, रसवत्सोवितानानामप आयुर्वेदशास्त्रमित्र लक्ष्मीदिल्लापभागि लसन्नदिरं राजकुल राजते । तत्रैव च ऋषभभण्डमानमपिनुपुताः पूर्णा वयसा,

वयसामपि विमोहि-य, काचनकाधोकिङ्किणीशिञ्जितरञ्जितसमस्तशस्तास्तलस्यजना,
 कदापि कटितटे सटे कामकूलङ्कषाया, कदाचिदुरसि रसिकचेतोहरे, कदाचन शिरसि
 रसिनशिरोरत्ने, कदाचिदस्ते हस्त-न्यस्यन्त्य, मोहि-न्य इव धृतामृतामना, लोल-
 त्पटप्रान्तप्रक्षयमाणान्नचेतोहरा हरिणास्यो वारवध्व परममधुर, स्रग्दस, पञ्चजनान्
 गानेन सकर्णबद्धमाकर्षयन्त्यो गायन्ति । वैणविका पिकस्वरा स्वरान्समेत्य मार्दङ्गि-
 सह सहस्त्रस्कार तार रणरपात्यन्ते । भ्रूकुसा भ्रूविशेषजनितविशेषा जनान् समूह
 मन्ति । सर्वत्राभिनवो हर्ष, फताका अपि अत्र लिङ्गन्त्य फर्फरायमाणा दुखोदन्ताकर्णन
 बुद्धिमाकाशमथ धीजयन्तीव । प्रबलनेजस्का निष्कासिततमसस्तडित्प्रदीपा
 अहो ? निशामपि दिनमपि । सर्वत्र सौगन्ध्यम् । समस्मिन् मन प्रपाद ।
 सर्वत्र हास्यहास्ये । स्वैर्यमजीवेषु श्रूयमाणगानममने चालस्यमासीत् ।

सोऽय महोत्सवो विविधाख्यानिपुणैर्विद्याविलासशालिभि कविकोविदै केवल
 शान्तस्वान्तवेद्य सङ्गमलस्य च द्रस्येयत् महत् कष्ट विषय सकुशलनिवृत्तौ स्वागत
 सम्पादनाय विहित आसीत् ।

रानिमुख एव दीपा प्रज्वलिता विमलपुष्पदिभूमौ चन्द्रप्रस्ताद्वर्धे
 स्वागतसामग्रीव्यशो जन इक्ष्यते । वितानस्थामिना सर्वेषा चक्षूषि सङ्गुखीनमार्गे
 लप्रानि सन्ति । अस्मादेव ससरणाच्चद्रागमन सूचितम् । इम्ये न सञ्जितारान्ति
 सरोजिनी नितरामुक्ता । प्रतिक्षणमितस्वत सखीर्दष्टु प्रेरयति । मरुत्तराणां
 दीपप्रकाश सर्वजनसमूह मुखायामास । पश्यत एव द्वे मरुत्तरे समाययतु । अ त
 पुरीय सजबनिक मरुत्तर प्रासादमाससाद, परष वितानभूमिम् ।

अथ सरललोकजयशब्देन सह सम्बतीर्य महनीयरामपालचरणसरोज नयन
 नीराभिपक प्रणम्य, सगद्गदमाशिष्य प्रतिगृह्य समासदैर्यथायोग्य सत्कृतो रामपालनिर्दिष्ट-
 मासनमलङ्कृत्य, उतजिज्ञासातिशय विज्ञाय भूपेन्द्रमणितमपि सल्लोपेण निगद्य
 राजाऽऽमन्त्र्य विभ्रमाज्ञा जग्राह ।

अथ महाराजो राजसदने दिनादौ दोषज्ञो, वरिवसिता सिताम्बरो वरो धीरेषु प्रताप
 निजितमहेद्रो भूमेन्द्रो रामपाल, नन्दनपुरेश्वर कामेश्वरसिद्धय मुख्यै सामन्तैश्च
 विधानिधिना निधिना जराया राया होतव्यवरेण मतिमता वरेण मन्त्रिणा मतिवरेण,

आयुर्वेदमहोदधिमधनमहनीयमहिम्ना हेम्नो दाम्ना विभासितमलेन धाम्ना धाम्ना नाना
चन्द्ररोचरेण शेखरेण ज्योतिर्विदा कनकदण्डोपनेत्रेण क्षेत्रेण सकलकलानां श्वेताक्षिपद्मणा
ऊलशुरुणा च परामृशति । मध्ये हन्तलिखिता भूर्जपत्रमयी जीर्णाऽऽकीर्णा स्वर्गक्षिरैः
स्वच्छयाशोवेष्टितापि न मनोमोहिनी विराजते राजते पत्रे पुस्तिका । यस्याः पत्राणि
हस्तस्ततः प्रचाल्य किमपि हस्तपत्रमु गणयन्ति गणकबरेण्याः । विज्ञेन देवज्ञेन निरचापि
चेत्री पूर्णिमा विवाहं वरणीयतमा वेत्ता च त्रियामायास्तृतीयो यामः ।

“सौजन्यजन्मनो नवेन्दुवर्मणः समागमन लघीयसि समये न मुपट पुन्यश्च
पूर्णवयसो वेलाविलम्बायाः” — इति मन्त्रिणामन्य कमलाविवाहसमारोह समारभते
रामपाळः ।

*

*

*

“नहात्मन्, महाराजः कामेश्वरसिद्धो रामपालश्च पत्रमिदं प्रैष्य जिज्ञासन्ते यद्
यानादिकं कदा किं वा प्रैष्यम्” — अत्रादुर्तोर्णः सादी प्राह ।

महात्मा च जल्पहास्य पत्रं पठाट —

आत्मीयाः,

एकोऽहं बहु स्यामिति समायमङ्गणः प्रथमस्पर्शनेन व्यक्तं चराचरसृष्टे-
र्मूलतत्त्वं पुरुषः प्रकृतिश्च । युगलोभूय संश्रुतिरम्पत्या ससृतेर्धाराया अनवरत
प्रवाहणं पुराणपुरयस्याभिलाष । विवाहस्तस्याभिव्यक्तिः सामाजिको । सोऽयम-
भिलाषो रामपालस्य पुन्याः कमलाया, नन्दनसिद्धस्यात्मजायाः सरोजिन्याश्च महा
महिम्नो राज्ञो नवेन्दुपालस्य पुत्रेण श्रीचन्द्रप्रभारेण देव्या पूर्णिमायां विवाह
रूपेण सम्पादते । भीमन्त उत्सवप्रसंगे उपस्थानुं प्रार्थ्यन्ते ।

कामेश्वरसिद्धः

रामपाळः

नन्दनपुरम्

विमलपुरम्

कोणेऽद्वितमासीत् :—

सचिषोऽभिलाषः भीमतामाश्रया सन्मूयते ।

अनागमनेऽपूर्णते च प्रत्येप्यति । सतन्त्रा महात्मानः

ध्वं तेभ्यो निधिः । —सरोजिनी

महात्मा—सूचय समये समेप्यामि । न यानस्यावश्यकता ।

*

*

*

अथ चैत्री पूर्णिमा या बहो कालात्लोकाध्रवणयो रपरणायमानाऽऽसीत् ।

अथ तुल्लतुल्लस्यापि मनुजन्मनो मनोभवभवन्मनोरमे रमेसकृपाकृटाक्षवीक्षिते क्षिते पत्युर्भवने नास्ति वार्तावकाशलेखोऽपि । यत्र तत्र पन्थान परिष्कियन्ते, शाराणि द्वाराणि रच्यन्ते, आसन्न्य आसन्न्यन्ते, जवनिका विस्तार्यन्ते, साध्या सादिव शिक्ष्यन्ते, द्विषा भूष्यन्ते, शिबिका साध्यन्ते, श्रुत्या भर्त्स्यन्ते वासासि सुवास्यन्ते ।

अथ भूते दिनस्य साये विमाना पुत्रा इव विभान्या नि सारिते प्राय उडुगणऽपनीत-
तपनतापानु धूतधूपितासु स्थि, तोभधानेन बधिरीक्रियमाण च दिगन्तराले, सन्तमस
नाशप्रवलशक्तिर्बिद्यदुत्सुकैर्दिवाभूताया यामिन्या, उपगवाक्षमागच्छत्कामिनी
नूपुरशिजितजितजितेन्द्रिये समये, समुगुण्डिकोत्तान समान सतर्कं कर्कषु घण्टापथमु-
भयत स्थितेषु कटिप्रान्तावलम्बमानरुचालेषु अवल्लेषु यजपुत्रपेयु, सुगन्धनीरेण
रेणुरहिते सिच्यमाने ससरण, स्वस्वभवनेषु वनेषु सौन्दर्यशाखिना ललित गायन्तीषु
ललनासु, सपुष्पाक्षतोत्क्षेपमाक्षिप वदत्सु दत्सु समाहितताम्बूलीदलेषु विप्रप्रवरेषु
सजयध्वनि विचलयन् विद्व, कम्पयन् सकानना मेदस्त्रिनीं प्रारब्ध प्रचलित मर्दित
सवसहो गदामह ।

अमृत प्रश्नेतरवायुभिक्कारो टकाटहार, ततोनिहिताभस्थितय प्रमदयो मौखिका,
तत सुषाससा सुषासगुल्लियासवादकाना पङ्क्तय, ततो विपक्षीप्रपञ्चचतुराणा,
काकलीसमाकुलजगमगसा सुवेशसदलद्वाररचनाविजिताप्सरसा, हेलोसमाकुलकामिना
धारभामिनीना निपतक्षेत्रराजयो राजय, ततश्चचन्महोष्णीपमस्तुर्दृढदृढपरिकरै-
र्मल्गावर्पणसध्यानकरैखलम्बितबिस्त्रियै सादिभिराक्रान्तपृष्टा टच्छच्छपुच्छप्रोत्साहिता
इवाग्र गन्तुमुत्थाभितपादा, पादाङ्गदमूयिता सिता असिताश्च, हेषाहर्षितस्वामिनो
मीननयना सदयना उत्थापितकर्णा अनेकवर्णा आज्ञनेया, तत शुभ्रधण्टिकाविहित-
महारवाणा वाणाद्बिभोमिवोरवराधिष्ठिताना, कनककलशशोभमानशेखराणा रण
खणायमानानां रथाना बोध्य, तत स्वर्णसूत्रसूत्रितचित्रचित्रितकौशेयकुम्भतिरोहित-

कृष्णदण्डानाम्, महाहर्षद्वारचित्त-स्वर्णपीठस्थित-समधिष्ठसमरजयिसामन्तकुमारणाम्, महा-
नानप्रयत्नस्वरुध्रगोघ्रगतीना, करिणां शुग्धादण्डविगजितगुगन्धिपुष्पदाननीमिजो-
न्ननद्धमरध्रेणयः श्रेणयः, ततो भुशुण्डिकापलभ-चवन्निगितसितासिधेनुकाशोमित-
स्वग्धदेशानां परेषां करच्छित्तिनिष्कोशस्त्रवाळानां वीर्यपद्मालशोभिमुन्तधारिणां,
राजपुरुषस्वरुध्रपदवर्त्त्यपित्तलपट्टिकात्कृतवत्स्यल्लाना, स्वलाना वीरतायाः रत्नाना-
राजनि, जनिमतां सत्कृतेषु, कुलेषुधिवनुधारिणा वीरवराणां वारः, ततो मुचानिमित्त-
पन्नहंसमिधुतेन, नय्यमुष्णकलापेन, नीलमणिना रचितमयूरयुगलेन भासता कनक-
दण्डेन रक्तकौशेयसम्पादितेन, पृष्ठस्थस्तसामन्तरुद्गीतेन, विशदेन आतपत्रेण प्ररुद्धि-
मुपमः, उभयतो हस्तिवरास्ताभ्यां सामन्तराजभ्या प्रचारदमानचामरमुगलः,
महाहर्षरजनिचित्तिरिटीटविभासिभातो लोलालकः, सर्वापनकुमुनकोरकुडुबुमकादमी-
चचित्तमुक्षमण्डला, दधाननिजितकल्पनिर्वि, कलानिधिः, रूर्णसूत्रस्यूतपुष्पलतास्तवक-
श्रृङ्गा, रक्तकौशेयेनप्रपदानेन वल्लसमाजा समेक्षितश्रीः, धियो वरास उदारताया वीरतायाः
सौजन्यस्य च भाजन सध्रीफलेन दुकूलेनानन्दकटितटः, श्रृङ्गा स्तूलवर्त्त्यलमुकाहारेण
चन्द्रहारेण पञ्चसानुहृतसाराफतिः, पतिः राजनगरवसुमत्या, नत्या निहसितकाव्यः, काव्य-
रचनाचतुरः, तुल्यविद्याप्रवीणः, वीणाकणनसुधीकृतप्रनदः, मदोत्पट्टरिष्टवादन
पाटवप्रथितः, कङ्कपविशोभिममिन्नयेन ह्रीरस्वचित्तस्वर्णत्सनीलकौशेयकोशकरकल-
धारिणा रत्नजटितोर्मिकाहारिणा करेण रीतितचापन्योऽपन्यः, प्रपौतपौतपसनः, मुभग-
पादनागः, महाहर्षपरिस्तरपायां राज्ञो रामपालस्य परमप्रेमभुवि भुवि सम्पदां प्रतिष्ठानाथः
करेणुकायां कायाद्विनिचित्रायां कूनक्षपांसनस्थितिः, स्मितेन दधानवसनयोत्प्लितलक्ष्मा
प्रसापेन रसिकतां, विद्यावयन् कामिनीनेननुशानि, सहोपयन्मनोभयप्रभावात्
सत्काम्यनिव पदे पदे हपवन् सन्चेतासि आसोत् कामिनीयानिनीमनो-
विषयदधन्धः ।

पृष्ठतश्च महान्तमनलदूरपमपि अलङ्कारपनधानामधोरसनाहृद आसीन्महामात्यो
मदिवरोऽनुगतः सशस्त्रै रथारोहिनिवीररैः ।

कामिनीरूपपतिकेः मुमुर्मेमांलभिः स्तवकेय नृत्या तारकितेनाभूदनुपय ।

१ पल नासमर्हतीति पत्यः, न स, सोऽपन्यो-न मासमोष्य ।

चारुहासिनीहास्यैः कथमपि हस्तः, विलासिनीनयनवायुरया कथञ्चनपि मुक्तः, नूपुर-
शिञ्जितैर्यथाकथञ्चिदनाकृष्टः, वामभ्रूदर्शनमाराकान्त इव शनैश्चैथलन् समारोहोऽयं
महामहिम्नो रामपालस्य दुयान्तहर्म्यमाद्बुद्धौके ।

अथ हि भगवतोऽवतो वसुधा मुपास्मितस्य रामपालस्य भवनं वन विलासितायाः,
विभाति महेन्द्रस्येव । हाटकषट्पितेन द्योतितशिल्पिनैपुष्येन पत्रेण अटित, चक्री-
कृतादलोचकलोचननिचय मुखद्वारम् । अभितो लम्बाय पुष्पस्तवकलतायुक्ता कौशेय्यो
ज्वनिका । सम्मुखे चैतस्य रक्तकौशेरनिर्मित विलसद्वाजतकुमुद वस्त्रप्रान्तप्रतानिनी-
वीजितसकलजन द्वात्रिंशत्सुम्भैर्विहितावाम महावितान विततम् । यत्र मुमुज्जिगानि
सिंहासनानि सहस्रशः खर्पासन्यो राजतसन्यो वेनासन्यो राजन्ते । यमभितो
निष्क्रोशकृपाणपण्य पटवो भटा सनयोदमासवे ।

मुग्धा नूपुरशिञ्जितदिगुणितरथकिङ्किणीस्त्रवाधिरष्ट्य, मोहिउसमाजेन विपबोवि-
नन्दकेन कौटिलानुकारिणा करिणामपि मनो हारिणा खरेण मधुरमधुर तारतार
गायन्ति ।

इतराम्यपि वाद्यानि यद्यपि स्वस्वविजयाय मनुजमानसान्यपहर्तुं प्रयतन्ते, परन्तु
मुग्धबधूगानमिदं सवनिशायि विजयमप्यगात् ।

अथ वादकैष्वेकतो भूत्वा वादवत्सु यत्सु मुक्तमार्गे च सैनिकसमुदये हर्म्य-
सम्मुखकुट्टिमनायाता करेणुका आयतललाटपराजितचन्द्रस्य चन्द्रस्य ।

निश्रेणियोजनेन जनेन दत्ताश्रिणि समवतीर्णे वरे हस्तिरकेनान्यतो नीतार्या
करेणुद्वया करधृतैः सौवर्णैः कृत्रिमनिर्झरैः मुग्धविस्तर यमद्वि सुप्रभिते
जनसमुदये, सहास समनसमुच्छास प्रवत्सु अट्टसु च पञ्चजनेषु विहिततोरणाघात
आहतोऽपि परममुन्दरीणा दरीणा मनोभवस्य भवस्य सारैः कटक्षैः, अदीत्य
हर्म्यप्रथमद्वारमाससाद बधूविधूयमानननसराजहसपशतिसितव्यजन सौन्दर्य-
विपूर्णतनयन, नयननोरजैर्नीरजाकरायिताजिर, कन्कदण्डचामरप्राहिणीमिस्ताम्बूल-
काहिनीभिः, पद्मप्राहचारिणीभिर्भूषणभूषितामिदासीभिर्वाचालित, मङ्गलमानमुखरित
द्वितीय द्वारम् ।

तत्र राज्ञाभिः कृतोऽर्चने कमलानि यापितुं स्वदयामिन्या सरोजिन्या सह
सविभ्रम लम्बान्तरितशरीरलज्जया पुण्यस्तवकेनाहते चन्द्रे इतस्ततः सविलासं
प्राप्तासु विलासिनीषु गौडविगौडसा परिकल्पितग्रम्भारां परितः कदलीदण्डां चतुर्द्वारां
वेदिषां सपत्नीकः कर्मेधरसिंहो रामपालश्च कन्यादानाय परिकल्पितमहार्ह-
सम्भारावविद्यताम् । सम्यगे जगदानन्दी चन्द्रोऽपि मण्डपे स्वर्णपीठे पदस्वकार ।
यथाशिवि कमलासरोजिन्योबन्धेन सन्नग्नो विशाहसंस्कारः । शानील भस्म
बभ्रुवयोऽप्राप्यङ्गुयामास ।

राजा रामपालः स्वधर्ममावरोपेतः कर्मेधरश्च वासदासीहस्त्यधरथराजालङ्कारानुक-
यौतुक कौतुककरमदान् । दम्बनुद्य विवाहक्यापकास्तोभाः । सम्यगे विवाहे चन्द्र
आचार्यं राजानं रामपालं कर्मेधरश्च प्रपन्न्य शक्तिनाथस्य पादयोः
परमप्रभ्याऽजनिर्ननुः “केवलेन नमस्कारेण किम्, कमरि भूयसीं दक्षिणां देहि
यं यावज्जीव स्मरामः ।” इत्युक्तः स्वर्धाय महार्हमङ्गुल्येयकं ददौ ।

अथ सम्पन्ने उपग्रमनेऽनलाभिर्बलादाहृतः पुररूपीनः सिञ्चानवल्गुना कमल्या
सज्जोरजन्या सरोजिन्या चानुगती गतवानुरक्षे देवधन्द्र । तत्र च इतदुल्लासरो-
मदिलाभिरगृह्यतो नेत्रसम्पत्तेन परितः प्रेक्ष्य मदनसदनलामिनीभिः प्रमदप्रमदभिः
सौत्कण्ड्यवलोत्स्यमानोऽचिर विशार्य पश्यन्तः पठात्

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पायेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य ।
यिभ्रामस्थानमेकं कविचरवचसा जीवनं सञ्जनानां
योजं प्रेमद्रुमस्य प्रभवतु जगता भूतये च्चुक्रामम् ॥

त्ये चैक महार्हनङ्गुलीयकम् ।

तत्र च ग्यारसलोतसि प्रवहवने प्रकृत्यैव हासप्रिया प्रिया सखी कमलाया
गनोरमा, मोविनिन्दकस्याऽङ्गारं तर्जयन्ती गुञ्जरः, रज्ज्वैर्मण्डितनुरग्निः, यतिः
स्मस्तल्लितरः, किञ्चित्परिचित्तरद ह्युनघाटकोनं पश्यन्तः श्रुत्वा स्मयमान-
मुखी टवाच—

वेव । यदि न कालेक्षेपो यदि च प्रसादसम्मुखो देवोऽस्मासु, तर्हि भवद्व्याख्यात शुभ्रपामहे पद्यमहः । अबोधविह्वलस्य लज्जनाज्जनस्यानुपेक्षणीयोऽयमनुरोध ।

“कलितवैदग्ध्यस्य दग्धस्यापि स्मरस्य प्रधानजीवनसङ्गतो निमुग्धस्यापि मुग्धम्मन्व-
स्याज्ञनाज्जनस्य कृतानुभवः सङ्केतोऽप्यत्र गरीयान् । कठिनार्थविशदनमानफलिका
हि विदग्धवृत्तिः ।” विकसितसिताम्भोजमभ्यमुखध्वजोऽबहत् ।

“तथाच कलिरत्र प्रणयकल्हः स एव मल, तदपनयपनञ्च भयनम् । गुगुक्षोर्नीवि-
मितिशेष । पर पदाभ्यां तत्प्राप्तये प्रस्थितस्य, इत्येव भावमाणे चन्द्रे व्याधून्वता
हस्तेन निषेधयन्ती, व्यत्मलमिति व्याहारचञ्चला च्युटकृतकमल्य समुत्तम्यौ मनोरमा
विमोचितचन्द्रोत्तरीयः प्रमदाज्जनय ।

*

*

*

वासन्तनिशीधर्यौवनमचेतने जगत्स्यपि सजीवधौन्दर्यं पूरयति स्म । विशादनीलाम्बरे
वरे रजनीरमणीरमण उदारोज्ज्वलेन हासेन मुख भासयते स्म । दिगङ्गना नक्षत्रपुष्पाजलि-
मादाय जगज्जनाईनस्थार्चां विदधाति स्म । शुभ्रज्योत्स्ना जगतीतले शान्तिमुधां
प्रसार्य क्रीडन्त्यासीत् । कचन कचन नारीनूपुरा निशीथिनीनीरवतां भजन्ति स्म ।
इन्दीवरस्याम विग्रहपुस्ताराहाराकलीमण्डितं राजतमाप्रपदीन परिदधन्नेने रजयति स्म ।
पवित्रपावपरिपूर्णपुष्करिणीपङ्कजपरामं प्रचौर्य सरसि स्नात सुभगसमीरो रसालकुञ्जाशितो
मन्द मन्दं वहति स्म ।

विभिधारागप्रकल्पितमिति चन्द्रभवनमद्य भवनेषु राजानति । सजीवनिर्जीवध्रममुत्पाद-
यन्तीनां मूर्त्तीनां शोभा सत्यमवर्णाऽऽसीत् ।

स्वर्णचरणौ सुगन्धिकुसुममथौ चेतोहरी पर्यङ्कावभितो लसतां क्षुपानामावलिः
विभिन्नवर्णा दीपाद्येतोहारिणो प्रसाधना ।

चन्द्रकमलयोधिरप्रतीक्षित समयः समेतः । नाय गमने सङ्कोच, न च वाचि
नान्यम्, न च चकिता दृष्टि, न चोच्छलच्चेतः शरीरम् ।

चन्द्रं सहास काश्मोरं कमलरूपोल्लोलिम्पति । विहसितनि घटदशनविभासित-
भरना गुणालप्रभृति प्रसारयन्तो चन्द्रावच्छदस्ता खवञ्च एव रजयति,
चाम्पेयं पयः पातयितुकाया च्युतल्लया वयुधामेवार्जयति । धमसिधित तयो. शरीर

विभ्रमितुमैच्छन्, शर्मामधुदाश्रामिभ्रमासवमास्त्राय पत्यङ्काङ्कगतयोरचिरादेवाविर्भूय
नयनयोनिद्रा ।

वीताप्यर्द्धद्वियामा त्रियामा । चन्द्रस्तस्त्वतरमणीये शयनीये गवाक्षागतसुरभिनभस्वद्वाद-
न्द्रोऽस्तपत् । प्रियतमा च तस्य भर्तारङ्क विहाय उपपर्यङ्क पर्यङ्किकामेकामप्यास्त ।
द्वुतनिद्रा, साय निर्भर चन्द्रप्रकाशे चन्द्राननामृत निपीय विलक्षणां तुष्टिमध्यगात् ।
महोत्का सा चन्द्रस्योरसि कपोलयो शिरसि पाणिपस्त्व भ्रमयन्ती तनपि
गततन्द्रं चकार ।

“पश्य देव, कीदृशी मनोरमा यामिनी, क्विद् सुधाविप्रपु इव वर्पति ।”

चन्द्र —“निस्सन्धेहम् । परमेष्वास्था शोभा पत्या चन्द्रेणैव । अस्तु स्वपिष्टि, मधुरा
निद्रामनुभवामि । चिर रात्री क्रीडतो शैथिल्यमापन्नयोनिद्रैव स्वास्थ्यप्रदा । अवेयेहि
जगति परिस्थित्यनुसार मनोरममनोरम वा भवति, श्रेष्ठ ।

“(मध्य एव तद्वात्तामश्रत्वा) प्रिय ! मणिनी सरोजिनी योम्यभर्तृकृत्परिणया
अल गर्विता । सम्प्रति तु सा केनचिद् प्रवीत्येव नहि—”

चन्द्र०—अये ! केन किं प्रवीपि मुग्धे !

“अह तन्नाम न जिघृक्षामि । यत कृपण 'केलिकाले आरुश प्रजति ।”

चन्द्र०—किन्तिहि चन्द्र ।

“नाम्, जाम् आर्यपुत्र, स एव मस्य कृते महान् दर्प शिरस्यारुढ
सरोजिन्या । किं वदामि अद्यत्वं तु सा विलक्षणा यामिनी सम्प्रज्ञा ।”

चन्द्र०—अरे ! एतत्किम् ? किं सर्वेष्वेव विमृष्टासि यदसम्बद्ध प्रलयसि ?

‘कथम्, किमह सरोजिनो न जानामि, आदोस्त्रिस्तपति न जानामि । सोऽपि
सविघ्न भ्रमति ।”

चन्द्र०—(सोद्वेगम्) अरे ! त्व कासि । किन्ते नाम ?

“धन्या (सदासम्) भवद्विरप्यय भद्रा पीता, सत्य क्षीण सर्वं विस्मरन्ति ।
अदह ! पतय पत्नीरपि विस्मरन्ति धन्या । सत्यम्भवन्तो मन्वामापि विस्मरह ?
अस्तु, सम्माध्यते कामोन्मादे स्मृतिश्रु श ।”

चन्द्र०—स्मृतिप्रशः ? आः पापिनि ? वञ्चितोऽस्मि, छलम् (प्रकाशं प्रज्वाल्य बलात्तन्मुखं वीक्ष्य) आः कुटिले ! किं कृतवत्यसि । नाहमस्मि तव पतिः ।

“स्वप्ने ? उत जाग्रति ?”

चन्द्र०—जाग्रदशायां प्रकृतौ स्थितोऽहं वच्मि यत्—यं त्वं स्वपतिं मन्यसे सोऽयं पुरस्ते चन्द्रः ।

(सनयनोत्स्कारं मुखं दृष्ट्वा) “नहि नहि भवन्तो धौर्त्यं विरचयन्ति । मुकुरे मुखं पश्यन्तु भवन्तः ।” (मुकुत्मानवयति स समुखं वीक्ष्य विस्मितो भवति)

चन्द्र०—अवश्यं मद्रूप केनापि परिवर्तितम् (जलेन क्षालयति रागः पतति) पश्य मे रूपं केनापि परिवर्तितं वञ्चकेन ।

“अरे ! (अश्रुमुखी) भवतां किमनेन वष्टम्, अहं नष्टपातिव्रत्या नष्टास्मि । राजकुमार ! नेदं भवदनुकम्पम् । स्वयं स्वयं परिवर्त्य स्त्रीणामुज्ज्वलपतिव्रतविनाशनं किं भवद्विधानां कर्म ? अहह ! भवादृशा एव धर्मस्यैतस्य पालकचरा नाशाय भविष्यन्ति वेषेता दहन्त ! वत ॥ क नामाश्रयिष्यत्येकः । अन्यायम् ?”

चन्द्र०—कथं मां दूषयसि ? सर्वथाऽदूषणोऽस्मि । मां निरयपातिनं विधाय स्वयं सतीत्वस्य षडका निनादयसि ।

“तर्हि कं दूषयामि ? (सविलश्विस्मय) अहो ! भगिन्याः सरोजिन्या अपि एवैव दशा भूता भविष्यति । सा मम पत्युरावाशं गता भविष्यति । अहह ! विस्मृत्या, द्विधा, सङ्कोचेन, मूढदासीकथनेन द्वयोरेव च्युतौ धमः, हा ।”

चन्द्र०—किं किं मदीया प्रिया परस्याहं ? (यद्गर्गं निष्कोशकुर्वन्) कोऽस्ति !

“युवराज ! किम्भवन्त एव क्षत्रियाः । ओमन्त एव शूरवारवराः । किं मत्पतिर्नास्ति क्षत्रियः । तस्य तनाविर्जोष्णं सञ्चन्मरकं राजते । वीरवार-
वर्णीयवीर्यः ॥ को जानीते किमाचरिष्यति रुष्टः । अवज्ञाप्यम् ? यस्य प्रिया भवन्तो रहसि छलेन प्रियाप्रेमपरामणो युवराजः कुकर्म कृत्वापि न जिह्वेति... ” इत्यनर्गलं प्रवदन्त्यामेव तस्या समाजगमं विकसितवदनसरोजा सरोजिनी । इसन्त्या सरोजिन्या धोतवदना चन्द्रेण साध्वयं वीक्षिता च तत्सम्मुख एव कमला समवर्तत । महदभूदास्य लास्यम् ।

सुखं जानिष्यन्धन्वद्वन्द्वना कनलना सत्तुतिव्यस्तितनयनसरोजया सरोजिन्या च
रनमानः पद्ममुकुटश्रेष्ठपाननापप्रबलप्रबलसिंहविरीयमानरजो विदस्तं रश्मि-
प्रसादोऽविपादः सानन्दं राज्यमीशनाम् नीतिनाशितर्मातिः रीतिरद्विदानीति
प्रज्ञः प्रवेशपरमप्रणय वहन्, नानन्दनविकारिण आश्चर्यमवनानीतविपुलधनराशि-
देवान् वृद्धान् विप्रान् मानयन् प्रसन्नप्रजो किमलपुर एव स्थितिमकलयन् ।

पुनान् सुखे सर्वं विलसति । प्रचरं कष्टं विपन्नं स्वर्गीयं भाग्यं सन्देहसिन्धौ
निनास्य जनयिनी प्रियां मातरं, कृष्टतल्लभूषणनादिकमर्जयित्वात्मजमेव सर्वस्य मत्वा
पालयन्त पितरं, शीघ्रवसहस्राणि निनानि, कलत्रपुनत्रातृनपि विलसति ।

हन्त ! महामदो लक्ष्मो विषम् । सुदृगन्तु कथं का वा प्राप्य शीघ्रमेव ईष्यन्वीनमुद्,
अशेषदेवदत्तवरक्षोमनुष्यसिद्धसाध्यविषासुनिमुनुत्तमद्विपन्नपिदेवविपन्नसर्विषजड् शस्त्र-
स्त्रिड् कैटभद्विषि क्षीरनिधौ निद्रामेव क्षुप्तेऽनारुहम् । अहह ! सत्यं ! “हाहाहलो
नैव विषं विषं रमा” । यामिमां लब्ध्वा सततमेव परमात्मनपि विलसन्ति स्मरणीय
चरिता विप्रधिताः । का कथा सद्यस्मान्महृष्टेन्द्रियाधानां नुच्छानम् । यद्यपि
याप्येयं सर्वस्य भूभुक्षो जनस्य, परन्तु वां प्राप्यापि न सुखेन पुञ्जन्ति, अपि तु
महता दुःखप्रजेन । सर्वत्रेवैवा, सर्वथा, कोपेन, जिपुण्या जिपुत्सया, युभूषया, अनन्तं
कष्टसमुदरमसौ लभते ।

योऽसौ नेत्रनिरोक्षितप्रकृतिको सज्जापदुर्वाटिका—

वाप्यारामतडागकूपसरिता इत्यस्य मर्मग्रहः ।

तेन तेन वचोनेन कविना श्रीश्यास्त्रिया द्विस्त्रिणा

तस्मिन्धन्वमहोपतो नुमतयः ! पष्ठो गरिष्ठो गतः ॥

इति—

श्रीश्यास्त्रियप्रत्यस्तद्विप्रीत्यश्रीनवरद्वारायश्यास्त्रितयनेन

वैद्यबालनेन काव्यालङ्कारेण धीनिवसश्यास्त्रिया

इत्येवमहोपतो पष्ठो निःश्वासः ।

सप्तमो निःश्वासः

अघटितघटित घटयति घटित घटित च दुर्घटीकुरुते ।

विधिरेव तानि घटयति यानि पुमान्नैव चिन्तयति ॥

फुल्लेषु य कमलिनोकमलोदरेषु

चूतेषु यो विलसित कल्कान्तरस्थ ।

पश्याद्य तस्य मधुपस्य शरद्व्यपाये

कृच्छ्रेण वेणुविवरे दिवसा प्रयान्ति ॥

सुधास रावलिप्त इव चक्षुश्चन्द्रिके विद्यति यतिमानसविमले परिमलोद्धारिणि प्रफुल्ल-
 कैरशानोदसामोदे दीपिकार्ण-रणे, हिमशीते चरतिदोलितल्लटे, अगुरुपनसार
 चन्दनधूपधूमे रसिकप्राणरन्ध्रे स-तर्पयति नैशिके मातरिद्वनि, मयनेव निर्मिते वैभवभवने
 कौशेयास्तरणास्तुते महति मध्ये उपबहमाश्रित्योपविष्ट च त्र परित समासीनेषु सभ्येषु
 प्रकाशेन दिनमनुकुर्वाणाया विभाषया मान साधयत्सु गायकेषु हर्षमुद्भवति जन
 निवहे वेनहस्त प्रहरी प्रविश्य 'जयतु जयतु देव — इति निर्व्याहृत्य कश्चन शान्ति
 परोततनु तनुमानिवोत्सहोऽविपादी सादी भवत्सभामव्यमय समेतुमिच्छति, देव
 प्रमाणम्—' इति निवेद्य, 'आम् प्रवेशय इति ध्रुत्वा गत ।

चक्षुश्च दूरत एव प्रहरिनिर्दिश्यमानमार्गं परितो वीक्षमाणं दृष्ट्यन्तमागन्तुकं वीक्ष्य
 परिचितामिव गतिं चिरानुभूतामिवाकृतिं बहुश अवलोकित्वा पादक्षिपे सहज्रम गाम्भीर्येण
 पश्यन् समीपमायातश्च परिचीय भासानिव मेरोकटित्युत्थय 'आ किं भवान् श्रिय
 शक्तिधर ' इति कथयन् स्वयमेवोत्तरमधिगम्य सकृष्टप्राह समास्तिङ्ग्य साध्रपात सत्कृत्य
 मद्य एव समुपावेशयत् अथोचच ।

'अभ्यागतोऽयं दयितमत्पत्रं शैशवत एव सहचरो मन्त्रिजुमार शक्तिधर '

(सर्वे) 'विजयतां श्रीमान् मन्त्रिजुमार शक्तिधर

एको वृद्ध सभ्य —

“द्विर्हर्षः । अथ कुमारस्य पुनरज्जन्मनः षष्ठं दिनम् । परममित्रं कुमारस्य श्रीशक्तिपरस्य समेतं, अथ निरवधिर्हर्षः । देव प्रार्थने जातस्य शिशोर्द्विर्हर्षवर्द्धन इति नामकरणात्”

सर्वे सभ्या एकसूत्रेण :— “अथ किम्”

चन्द्र—अपि कुशलम् ? कुशलिनस्त्रातपादः ? मद्दियोगदु खिता अत्रा वासरापि सानन्द व्यतिपापयति कश्चित् ? पितुः परमश्रद्धास्पर्द मन्त्री कुशलो ? भवता कुशलवृत्त वेदिनुं व्यमोऽस्मि ।

शक्ति—सद्य दुःखितोऽस्मि, किमिव कथयामि ।

चन्द्र—(सभ्यान् प्रति) अद्यतनो महोत्सवो द्विगुणतरोत्साहेतानुष्ठातव्य आर्यः । अहमपि समये समेष्यामि । ‘त्रिनमन्दिरे ‘प्रखल । घोषं प्रवन्धमायोजय’—

*

*

*

चन्द्र—शक्तो, मम दुःखानि परैरनुमानुमशङ्कानि ।

शक्ति—आये, तज राम्रोपहृत्यै, तयसे, सिद्धये, दिव्यायै धनाय वा, किन्तु प्रियार्थे (हस्त हस्तेनायोज्य हसति, चन्द्र स्वनामाङ्गनङ्गुनीयक बोध्य इवेतमुच्यो भवति) मीनम्, अस्या एव कृते वनाद्गन्तोऽसि, कारासेवोपहृतोऽसि ताडितोऽपि बद्धोऽसि, कृतम् एव लभ्यन्ते मनःप्रियाः प्रियाः ।

चन्द्र—सद्य मा खैत्सो, खिन्नचरम् ।

शक्ति—शेदः । अटवीतोऽटवी भवनाद् भयनमटवी महान्त काल यापनत्, भीरु-भामिनीभिर्भिक्षोढा मीढा कुर्वत भवानकलत्रवत्^१ वानक^२ शयानकां, ^३ अरन्ध्रलामनीक्षित-^४ भवन्तु, ^५ वररीक^६ शरीरोरुवन्तु^७ जन्तुसमन्तुपर्वनां वनाभनिमरणा^८ बन्धूदमापस्य रहः^९ सायन्तभापन च विदयतो न ते शेद्वोऽपि, सम्प्रति स वात्ताभिरेव ? न शिहेपि ?

चन्द्र—नर्त्य मित्र मर्ष्य ।

शक्ति—स किं क्षम्यो भवति यः पतर पिउमनन्त्यवृद्धां नातरं, विषययोजनावद

चित्ता प्रजा सहयोगिनो मित्राणि चासूचयित्वा दीनो हीन इव आसां जीवनरत्नकृष्ण-
यामिनीनां कामिनीनां पृष्ठलग्नोऽश्लेषबान्धवाङ्गततधरणरेणुं चुम्बन् त्यक्ताभिमान कारी-
भवति लक्ष्योभवति च किञ्चस्मृतिजलानाम् । इन्त इता मनखिता ।

चन्द्र — अस्त्यागं तथापि क्षम्योऽहम् । प्रथममेतन्ने किमेव मण्ड्ये ।

शक्ति — अहन्तु सखे, मिलितवान् पर त्व न । प्रियापरमप्रेमपानीयागाधपाधोधौ
शिखामामम आसीत् ।

चन्द्र — मा स्म त्रपापारावरे पातय

शक्ति — त्रपा वरकी स्मृतिक्षयमायाताय, भाग्यम् । सा तु त्वा स्मृत्वा त्रपते ।

चन्द्र — अल, विरमास्माद्

शक्ति — तर्हि पश्यैनम् । (अत्र लीयक दर्शयति ।)

चन्द्र — पूर्वमेव प्रैक्षि । इदं शक्तिनायाय विवाहमयी दत्तवानस्मि ।

शक्ति — स शक्तिनाथ एव शक्तिधर ।

चन्द्र — आ एव किं ल तत् । विचित्र रूप परिवर्तितवानसि, मायाविन् ।

शक्ति — मायान का, एषा तु कला ।

*

*

*

‘चपले, इयं दिनपर्यन्तं क स्थिता ? केवलं दिनद्वयार्थं गता सप्ताहमेवागमय ।’

“महाराज्ञी कमला देवी शरीरजिनी च विजयताम् । अहं देव्याह्वया पितृपाद दृष्ट्वा
मातरम् सम्भाव्य आयन्ती पित्रानुशासिता यद्विमलपुरमस्माकं प्राचीना पृ । मत्पिता
महोऽथ कदाचन प्रथमामात्म आसीत्, पर पित्रुनेन भ्रमितमतिर्देवस्त निरवासयत् ।
तत्पत्न्युति नन्दनपुरेश्वरस्य छत्रच्छायायामावासः । तत्रैव व्यतिकरेऽस्माकं सदा सम्पत्
राज्ञाऽऽत्मसात्कृता केवलं भगवन्ते एका वाटिकावशिष्टा यस्यां मम मातामहवन्द्यो
न्यवसत् । अद्यापि तत्र मम वृद्धा मातामही निवसति । पित्रा मात्रा च प्रेरिताह तां
द्रष्टुकामाऽगमम् । वाटिकेय विद्यायां किन्तु भवनं दुर्गमम् । वाटिकाभित्तिर्नमा
पतिता च वृद्धमपि तादृगवस्थम् । परितोऽवककूट, पश्चिदिष्टा । अहं धमेण परिहृत्य
जलानयनसमया वृद्धामवृष्य कूर्पं मत्ता जलमाकृष्य घटं शिरस्थस्योज्य प्रत्यावर्त्ते
तावदेवागत एको मामपरिचितां वीक्ष्योद्दिष्टो मद्दिदलनकृतमति प्रतुल्यपानपीनो

गोवत्सः । अहं 'त्रायष्वं त्रायध्वम्' इति वदन्ती स्वव्यपादा नृत्तुं प्रतीक्षमाणाऽऽप्तं परमेष्ठो युवा देवप्रेरितोऽद्याद् ब्रजव्रात्तं वक्त्रं ध्रुत्वा "ना गैर्यो", अयमहमागत एव" इति कथयन् अद्यादुत्तमं वायुमत्या ब्रजन् क्रोचोद्वेगवमद्वापुर्णचोणं वत्समनुवाक्मनुपेत्य नम वत्सस्य च गन्धमुत्तस्थौ । नृद्धो गर्वितस्य वत्सस्त बोध्याहन्नुमनाः प्रचलितः । युवकस्य श्रद्धावादाय पद्याच्चकार । पुनः स पशुरुधाय यूनां शिरसि तथाऽऽब्र-
 पान यया रक्तधारा प्रादुर्भूता । पर युवक उवाच एकेन हस्तेन तस्य नासां परेष च शिङ्गमाचर्च्य । एतावता च मनाम्बुद्वभत्ता पुरुषाः समेत्य वत्स रज्जुनिर्वङ्गः । युवा च मूर्च्छितो भुव पत्तर्श । तमम् चतुर्दिन यावत् ससेभ्य प्रसादमुत्तुं हात्वाऽऽनन्य धीमतीं स्वयितु नागतास्मि यदाभ्यमासादयितुं नष्टमपि अमसो देयः ।"

"यूतोऽधः किं नर्ष आसीत्"

"मेवह", वराहो मूकः पशुः स्वामिन्मोहयस्त्वं प्रेक्ष प्रकटितानल्पदुःखो वेगेन घातितः"

"को नागः कथं समय आसीत्"

"तौ प्रातः सप्तवादनसमयः"

"निश्चित कथं घातिधरमेवानुसृति । स एव प्रातर्ब्रजनाय गतो न निवृत्त स्वतैर मेवहोऽतो मन्दुश्यामद्वानुसृते रिच्छृष्टो निवृत्तः"

"कोऽयं घातिधरः"

"देवस्य परममित्र मन्त्रिजुमारोऽस्माकं चिरपरिचितः कुमारान्वेषणाय दृढविश्व-
 वेशः घातिनायः"

"आः घातिनाय एवं घातिनायः ? हे ईश्वर, सत्य सत्यस्वरत्नम्"

"देवो नितरामशान्तस्वरना सूचय इत्तम्"

"आम् यामि"

*

*

"देवस्य परममित्र घातिरो नां रक्षन् गोवत्सेनहतो मद्दहमध्यास्ते निश्चिन्तो भवन्तु देव," चरतयोषम्

शक्ति स्त्वद्गृहमास्ते ? त्वस्तिमेव प्रधानराजकोपचिस्त्रिस्त्रेन एह गत्वाऽऽनय'

*

*

*

कथय कीदृशी स्थिति, अस्मात्तर लोकोऽयस्य प्रत्यारर्तनवस्मान्नेदयत् ।
दत्तिणो देवोऽय यत्तां कुशत्रिं पशामि । मन्ये शीघ्रमेव स्वस्थो भविष्यति, त्व
त्वेवायै कृताभित्तया चरता चानैव स्थास्यति, अहम् त्वां समये दशामि ।' चन्द्रोऽशेषव

*

*

*

शक्तो । कीदृशी स्थिति'

स्वयोऽस्मि अयैव स्नात्वा शिव पूजितवान्स्मि'

कथयास्मै कायाय को विशेषतः पुरस्कृत्य'

'एवाऽनित्यमु इरी दिव्यदेहा चरता । एषा नर्कादिव त्यक्ताहारनिहारनिद्राऽनलक्ष
ममेवापत्यत् । मूर्च्छितो मयि भिरग्वरमपृच्छन् 'भिरग्वर, अयं जीवन धारयिष्यति
किम् ? जीवने कृते पुण्यकर्मभिभवन्तमेतस्य जीवनाय प्रार्थये' । अहमेनां यदो
कालाज्जने, किन्त्वस्मिन्नसरे एतस्या किञ्च त्वरमणीय मनोऽवलोक्तिवानस्मि

'कथय यत्ने किं देयमस्मै उपकाराय'

देवो मनोऽभिलषितं दास्यति ।

कथमन सदेह

विश्वस्योऽप्यात्मा केवल बाधा सदेधि'

निजित वान्छितं ते दास्यामि'

यथाज्ञापयति देव इति कथयन्ती शक्तिधरस्योत्तरीयप्रान्तं गृहीत्वा शिरःकृताम्बला
लज्जावनतमुखी भतिष्ठत् ।

'योग्य प्रशस्तस्तेऽभिलाष, नितरां प्रसीदन् युष्मत्स्य सौक्याय प्रानशक्त
ददामि'

देव भररोऽप्येक उपहारो देवो नाम देव प्रसीदतु'

कथय कोऽसौ

'देव सर्वोऽपि परिज्जन कुशल कलयति, केवल कुमुदिनी प्रचलवदप्रेमा देवाज्ञां
प्रतीक्षमाणा वत्तते—देवोऽनुमोदयतु'

‘अथमद्य तव त्रिह्रा समुदिता’
‘देवस्य स्नेहो मां मुखरयति’
‘अस्तु’

*

*

*

कथं रे हर्ष कथं रोदिषि, आश्चर्यम् ? ‘कुमारपाठ कथं कुमारस्यैतादृशी अवस्था’ !

‘अरारां मर्षन्तु देवो, अद्य सायंकाले कुमारः सवयोभिः स्वमातामहामात-
कुलद्वैतचकुलप्रभयैः स्वसमानबिभ्रन्तः कुमारैः पूर्वपदनप्रेरितं सुदृढदोमले उपवने
क्रीडन् कमपि अविवक्षं वैश्वसिधुननाज्ञाचारिण दया अपेष्टाभिराङ्गत् । अपेष्टापात-
संजुचिताङ्गेन वैश्यकालेनाभाणि—‘मृषैव दर्पितोऽसि, दुःशील, नैर्घटिक इव मातमहगेहे
कौलेयकवद्वहमसि, न ज्ञातं कस्य कुलस्य देहस्य ग्रामस्यापीदो दासो वा पिता,
न च पैत्रो पैतामहिर्को सम्पत्, न वा । अत्र दयालुता यज्ञाऽस्मत्सम्भवा परिपोष्यते
अपरिवारः पिता, सद्युना मातामहमदिम्नोऽनुभव मुभोगम्, ताडयानपराधिनः
शिर्यत्, दुश्चरितैर्धरं चर । इतो निर्वृत्तिस्तंस्पते किं कुमारैः कार्यम्, को जानीते
आडवीप्साहिन्दमानो बुभुक्षितो मत्ता ।’ इत्युनिप्र वज्रकयैः नमैच्छेद्वैः
लोहधारिभित्तैः पशुपतिरश्त्रनिशितैरिभुम्भविनाटनपटुभिः सिद्धन्तैरिव अरद्वदुकुट-
वचोभिलितवज्रक्रियमाणोररुहः सकम्पोऽनलोपनो दयाप्रप्लुताक्षो निरानन्द एव
मुष्ममुशयितो मया चिरं सान्त्वनानोऽप्यद्यान्तः धीमतामपेतः—

कालान्तरां कपटपनपि सान्त्वनवचोभिः घोरा हृषयितुं कथन्त्यां तन्मातरि
स पप्रच्छ ‘आस्माकं देहः, किं कुलं पिनुः, अत्र कथं कथं निवसामः, यदि कपयितुं
शक्नोसि पितृदय नो चेत् स्थिरमावृच्छे ।’

“अथ विलक्षणोपक्रमं तव वचः श्रुत्वा प्रसीदानितनाम्, अस्तु, अस्माकं राजधानी
प्रतिभारते भारते दयातनामयेवं, ध्येवं सद्गुणसंगुणविरमुनिः, रुचनपरं नानं चानृतेना-
निगलनाबगरमिव नगम् । तव स्तिता विश्वरूपे सज्जो नरेन्दुसालस्य प्रियः पुनः ।
एवम् धुनाऽस्न्यायेनेतः समन्यातेन सस्कावशान्नन जातो विवाहः । सानन्दमत्र
निवसामः । स्वन्ना अपि नोद्वेजिनः, पानय तव रोदननाकम्भं मनापि शत्रियेयिता विचरः
प्रसरन्ति ।”

‘मातरौ नाहमन तिष्ठासामि तामि क्षणम् । लज्जास्पन्दमेतत् क्षणस्य कृते’ ।

*

‘

-

प्रयाणसज्ज । प्रारब्धा । शक्तिपरप्रबलसिंहयो शासकत्वे कमलासरोजि-यो चपलाकुम्भदियोर्हृष्य च दासीदासगणेन कोशन च सम सेनासुरक्षितानां गमन सुनिश्चितमासीत् । जलविहारप्रेमिणश्चन्द्रस्य च जलमार्गेण । किन्तु कमलाहृषावपि जलविहारणोत्सुकौ क्षीक्ष्य सह गमनमनुमोदितवान् ।

पुनः, त्रिनयनाम्बररामविमर्दिभि भिरष्टतैरायतबलै स्वरूपसम्नासितदिगजै गजै परिवेष्टितां फेनसितस्वकीनै निमृतोर्णकणैर्विपुलनर्णैस्तुरगै परिभृतां रातकार्त्त-स्वरभास्वरवसनवर्णाभिर्दासीभि सेविता पटुपट्टप्रदहननविगतविषादां यन्तीं भवन्तीं प्रेक्षमाणो भृश सुखमनुभवामि—साधुनेत्रेण गद्गदवाचा रामपालेनोक्त “परमेशस्वर्ना सदैवेदशसौभाग्यशालिनौ रक्षेत् । पर मोहमदिरामोदितो वियोग वीक्ष्य भृशमुद्विग्नोऽस्मि । दुहित । हितावायको वृद्धः पिता न कदापि विस्मर्त्तव्य । श्वशुरगृहे सदैव गुरुजनाज्ञा करिणी पितृकुलमुन्नतमापादये । अनाज्ञासम्पादिन्यो हि दुहितर पितृपदमवन मयन्ति, विरायुष इष्य प्रेम्णा परिपालये”

जलाविलोचना कमलापि ‘पित ! स्वस्वमेवायास्यामि भवत्पादपद्मप्रक्षणाय”— इत्यामन्य प्रणनाम सरोजिनी तत्सख्यो हर्षश्च ।

अनीतजीवनस्मृती भविष्यज्जीवनयापने च कल्पितानल्पकल्पनश्चन्द्रो जलधरावृताभोग भित्तमालनीलमुल्लोल प्रज्ञपुत्रम विशत् । स्वत्पा विहरणतरणिष्वनिना गमन सूचयन्ती शब्दायमाना स्फूर्त्ततीवाचलत् । अन्तवर्ती कमला इव त महा-तमनालोक्यमान जलतिरिक्तवस्तु वीरभीषक प्रेक्ष्य दृश्यमुद्दिगचेता भज्यमानेन लज्जमानेन स्वरेण जलप्लुतविलोचनाऽवोक्त —

भायपुन, आव्य प्रादुर्भवन्ति, शिथिल कुक्षि सञ्चल जघन समन्तात्कट्या पोदा मलग्नतृप्यागेच्छा च असञ्च प्रसव सूचयन्ति, प्राणनाथ प्राणा निजिगमिषन्ति आ दुःखम् । आ कष्टम् । अवरुप्यतां यानम् ।

‘किमुच्यते, कथं भयङ्करे परिपतौ यानमवरोद्धं शक्यते, क्षण धैर्यमाधत्स्व इयं मल सुदूर निकटतदवस्थापि, स्वल्पेनैव सगयेनवयं पारं प्राप्स्याम, भगवान् शिव शिव विधास्यति ।’

“आः प्रिय,”—स्वयुज्वा मुमुर्च्छं कमला ।

*

*

*

“आर्यपुत्र, ययं पुत्र सः” ।

“प्रिये, आर्तवत्सलो भगवान् स्वत एव सर्वं साधयति । एषः प्रासादः केनापि रसिद्धेनात्र प्रवालपर्वतस्योपरि निर्मापितः मुखदसामग्रीपूर्णो भ्राजते स्वर्गस्य खण्डमिव । श्वेतस्फटिकनिर्मितं विद्याल भवनं शरदभ्राजते । स्वर्गदम्बा मुकुरा हंसमिधुनाष्टदलभासि उज्ज्वल कुट्टिमं निर्मापुत्रिका आसन्त्याः कलाविदः कलावर्त्ता स्थापयन्ति”

“प्रवलं शूलमनुभवामि, हन्त, दैवं किं विधित्सति”—इति कथयन्ती मुमुर्च्छं कमला ।

चन्द्रो यथा जलमन्वेष्टुं प्राचलत्तस्य दृष्टिः शिलाखेडगच्छत् “विरन्नाम पत्न्यानिषे सुखं प्रदातुं सदा नवीनेन नयप्रिवेषे राज्ञा राजदेवेन आनन्दभवननिर्दं धमेन सिद्धा च निर्मापित, पार्श्वे वक्रपुत्रः स्तिमितः स्नानागारे जलमपि निर्मलम्

इत्येव पठित्वा पार्श्वस्नानागारतः स्फटिकजलमापूर्य प्रत्यावर्त्तमानेन समाकृषिं वातशिखी रोदनम् । सम्भ्रान्तेनागत्य दृष्टं यत्—विद्योतितान्तर्मनन भावतल्लाटो स्नानागारयवदुखो नवशिखी रोदिति । कमला च प्रसवरीडामुच्छिता, हर्षश्च मुखे दत्ताङ्गुलि धधितः स्थितोऽस्ति । चितुस्फटिकाङ्गुष्ठधन्वोऽपि निर चिन्तयामास—

विलक्षण घटन विधानुः । क्व वितापतेर्वेन्दोः पौनरङ्गम् । अत्र पुनः प्राप्सते भवनम् । कुतश्च प्रस्तापरिचयायै वैद्यन्द धान्यो दास्यथ । हन्त, विलम्बो विचक्षण धार्य भगवान् किं चिकीर्षति ।

कन्याङ्गुलिरुपेण जलप्रदीप्तरीयेन शीतलेन मत्तशिरसा क्यद्वयमनि प्ररोष्य पिप्लुं शीतानिरद्रिपद्मस्य न्यतोच्छेदनादिक्माच्छर्ज्य मृगतोममृदुले पर्यङ्के शययित्वा सप्रेम जगाद चन्द्रः—

प्रिये, वरमः साहसैक्यरथा दुर्गमविहारप्रियाः श्रमिकाः । अस्तस्य न भेतव्यम् । अत्र नरमात्र समीपे भोज्यं कलात्मकम् । न च धुना प्रत्यपसह ते वपुः, अनुभूतभावन-भावनं वसिष्ठप्यमेव । अतोऽहं भवत्यै भद्रनानेनुमासन्ननगरं यानि, अन्यथाय सर्वमेव ध्रुव मरणम् । मूलमत्र सानन्दं निवसत । इदानीं मेन पार्थ एव प्रेरिते

आशितज्जरीनमरणमतं स्याद्वात् पूर्वमेव प्रत्यावर्तनं निश्चितम् । शीघ्रतायै चतुरो नाविकान् सहैव नेष्यामि ।

बराकी कमला किं ब्रवीतु, अगाधे पयोराशौ प्रियेण सह वियोग, बालद्वयसहायो भोज्याभाव — सर्वं युगपद् निवार्य गन्तुमनुमेने ।

हर्षस्योत्कण्ठिते नेत्रे स्रवद्भू कमलामुखं सप्रेमं प्रेक्षमाणं “नवशिशु” पर्यवेक्षणीयम्” इति कमला प्रर्य यानमारोढुकाम, प्रचलन् नाविकानवोचत्—
“यथाशीघ्रं चलत ।”

‘देव, विहरणतरणिरवतरणसमये दुरवस्थाऽभूत् न्यग्रैस्त्माभिरुदा नाध्यायि । अधुना सूक्ष्मेक्षिकयाऽवेक्षणेन तस्य स्थितिर्न शोभना प्रतीयते ।” नाविका प्रत्यवोचत् ।

‘भगवान् स विधास्यति सम्भववेगेन चलिस्तन्यम्’ छपछपाशब्देन नौश्चलिता । यन्नस्यास्वाभाविकं शब्द, मध्ये मध्येऽवरोप्य सर्वेषां गनस्तु भयमुदपादयत् । पर्वताकारा कल्लोला अभित उत्थाय नावमुपायन्, परं नाविकाश्चातुर्येण पन्थानं निर्माय सत्वरसत्वरं निर्गन्तुमचेष्टन्त । किन्तु विधेरिच्छा विचित्राऽऽसीत् । जीर्णशीर्णयन्त्रा कल्लोलाघातविहता विहरणतरणि, सामुद्रपर्यतेनाहत्य शतधा भिन्ना ।

दुर्गम्यकाव्यविज्ञानदुःखितानां कृते कृते ।

यात. सप्तमनि.श्वास. श्रीनिवासस्य शास्त्रिण. ॥

इति श्रीभूदेवमौर्मिनिधाणायमानवरणस्य विपक्षितलजस्य
श्रीनवरत्नरायशास्त्रिणस्तनूजेन श्रीनिवासशास्त्रिणा कृते रसिकमन. कैरवचन्द्रे
चन्द्रमहोपतौ सप्तमौ निश्वास. ।

अष्टमो निःश्वासः

आरामाधिपतिर्विवेकविक्रलो नूनं रसा नीरसा
घात्याभिः परुषीकृता दश दिशश्चण्डातपो दुस्सहः ।
एवं धन्वनि चम्पकस्य सकले संहारहेतावपि
त्वं सिञ्चन्नमृतेन तोयद ! कुतोऽप्याविष्कृतो वेधसा ॥

पण्डितराजजगन्नाथः

पाटीर ! तव पटीयान् कः परिपाटीमिभामुरीकर्तुम् ।
यत्पिपतामपि नृणां पिष्टोऽपि तनोपि परिमलैः पुष्टिम् ॥

पण्डितराजः

रोलम्बैर्न विलम्बितं पिघटितं धूमाकुलैर्व्याकुलै-
र्मायूरेष्वलितं पुरैव रभसात्कीरेरधीरेर्गतम् ॥
एकेनापि सुपल्लवेन तरुणा दावानलोपप्लवः
सोढः को न विपत्सु मुञ्चति जनो मूढांपि यो लालितः ॥

मुभाषितम्

मनसि यचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णां—
स्त्रिभुवनमुपकारध्रेणिभिः श्रीणयन्तः ।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजद्विदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥

मर्तृहरिः

सुन्दरमुनीन्द्रवसतिं दूषयितुं याति शूकरो विड्भुक्
इति पथिकेनापि मया मुदृढं हृत्तोत्पते लगुडः ॥

जहोहि गुरु गर्जितं विजहि शुण्ड्या शीकृतं
परिभ्रम शनैर्वनं किमु गजेन्द्र ! गर्वायसे ।
तथा न किल केशरी गिरिदरीषु निद्रा त्यजन्
विमूर्च्छयति जृम्भया सुभग । सावकीनं मनः ॥

सुभाषितम्

शी

तम् । प्रातः । प्रियबालंमनोस्मदछात्रवर्गं इव धनिजनसुखकारी, वराकनरदुःख-
कोशोदारभाण्डगारिक', समुद्रसद्वसनधनिवृन्दवन्दनीयः परमात्मरूपो
मासधाय मार्गशीर्षः । अहः प्रथमो यामः । अस्मिन्ननेहसि हसितमनोहयो, रयेन
दुःखयन् प्रचुरप्रबलकार्पासोर्णाकवचनिबद्धस्तनुननूतामपि तनुमतां तनू, शरनिघातैः,
प्रवेधनिपुणैः स्वप्रवाहैर्वाति विपुलितशीतो वियद्वज्रातङ्कसङ्ग, तपनतापातप्त' शीतलं
भुवस्तल जडयन्, हाहाकारितजगत्, पातितापत्, विततप्रभासो हेमन्तिको मरुत् ।

वराका अवना अधुना खेलचयनिचिता', मरुविशीर्णेशरीरा', हिमकुन्निताः
शिरोविधृतपाणय, अग्निशरणाः, एकत्रीभूय पार्श्वमेल स्थिताः सन्ति । इतो धनिन
आस्वादितवातापसमावाः, निपीतपयस्विनीपयस, कामेश्वरमोदकमुदिता', वासोवापिधि-
निममा अवि'हितहिमागमा', यन्नैरुष्णीकृतभवनाः पर्यङ्केषु सानन्दमुपविष्टा जगति
सौभाग्यं तन्वन्तो भगवत' समदर्शिता म्याविताव विलज्जयन्ति ।

कचन आता विद्या राम । शिवेति भगवत', तिलकाङ्कितप्रसालनस्तथाः, धर्म-
प्रतिमूर्तय', चक्षुर्मैलं भगवन्त ध्यायन्तः स्वासनेषु कम्पमाना आसते । कचन शरय-
पद्मपूर्णे दृष्टे "सुप्रभातं बहुहानि बहुधानी" वा कारय" इति ध्वनिभिः सहस्रङ्कान
धिरयन्ति केतुन् विष्ट । वराकाः शकुन्ताः समसाधनहीना अन्योन्यं तनूयौजयन्तो
दुःखस्य परां काष्ठानुसृजन्ति ।

विलङ्घनोऽयं भगवान् कालः । अयं जगत सर्वभावानां भवाभवे हेतुः । परमेश्वरः
सृष्टौ स्थितौ लये चास्यैव काष्णता । एव एव उत्पादयति वर्धयति नाशयति च जगद् ।

१ धूनी - बोहणी वा । केतुर्बहुहानि, विक्रेतुस्तु बहु धीयते यस्यां वा मञ्जूषा तां
तथाभूतां कारय । तस्यां बहुजनस्य बहुधन समागच्छेत् ।

अमुष्मे विलक्षणाय नमोऽस्तु भगवते कालाय ।

भवव्याकुलतया सह रजनी वीता । परमकारुणिकः सारुणो गृहीतनमस्कारो
भगवानहस्करो हैम दुःख ताडयन् रक्तनमकशामिरिवारुणामिर्दीप्तिभिरुदेति । सूर्यस्य
कोमलकोमलः सरलसरलो बाललोकः पुण्डरीकेषु नवद्वन्द्वेषु वल्लीपल्लवहिमकण-
प्रकरेषु झोडनेधाधके । बालमास्कल्पयया विकसितकवाटः प्रासादोऽयं
सिन्दूरपूरितकेशमध्याया, अनवगुण्डितमुरया नववध्वा, साम्य धत्ते । यस्य सस्कृत-
काचखण्डमण्डितोऽयं भागः, सूर्यास्तगिरिपारुणितो बध्वा, पद्मरागमणिजटितचूडामणि-
तुलना धत्ते ।

महामहिम्नः । भास्वदनुलप्रतापतपनस्य राश्वधिरपुराधीशस्याभिगवपद्धतिनिर्मितं
नम्य भव्य भवन आजते । यद्यपि भवनस्य निखिला सामग्री हिमवूषिता परं
नवीनेय रचनारीतिविध्वकर्मणा श्रमेण विचार्याविष्कृतेवावभाति । कुञ्जेषु भुशुब्ज्यादि-
लक्ष्यार्थं रचितैः छिद्रचक्षुभिः साम्यमिवावलोक्यत, विनिमेषनेत्रमखिलामिळा पश्यतीव ।
प्रोन्नतभूभागे शोणितपाषाणदृढप्राकारस्य मध्ये विस्तृतक्षेत्रे रमणीयतमाऽस्य रचना ।
परितो मरुकूपनिम्ना बन्धूलव्याप्ता दुस्तरणीया रणीया परिजा । द्वाराभिमुख्य
नवनीतमृदुलसितश्यामोपल घुट्टिम प्रकाशयन्ति यतिप्रदादनीं सुपमाम् । द्वारे काचख्याटा
भट्टालिकाः सम्भोक् भूमिमद्वितीयं प्रकटयन्ति । गोपुरे भूतोर्णावसनोऽपि ऋतुबलविभूय-
मानगात्र, कथतो हस्तनि सारणमनीहमानोऽपि जनपासशासनभयविषतोऽप्रलम्बम-
चन्द्रदासां भुशुण्डिकां करे कलयन् हिममपनयन् सत्वरसत्वर वगरदशानी श्रमाशो-
भमति गीतुरिकः ।

द्वारमिदं मारकतश्च निवद्वुष्टिम् बहुभिर्भवनैर्विभासनानं विद्मसते । अजिरे च रमणीया पुष्पवाटिका, तदुत्तरतोऽवलोक्ष्यते राजमवनम् । पुष्पवाटिका न विद्याला, परं तिर्यग्विष्टकारचितकंश्चिभिः, पश्चिमिधुनाङ्घ्रितमारकतल्लाल'लप्रविष्टपरिमलैः, विचित्रैर्द्वैमैः, द्विकद्विरेषमयूरसन्नाक्षितैश्च नापक्वो वनावनोमत्वयेत ।

पुष्पवाटिकाया उत्तरतो द्वितीयं द्वारं विपुललोहं विशालं गालौन्मत्तम् । अत्र कचन ह्येषाच्चनिमहिषजना बाजिनः, कचन निमोक्षितेक्षणा मत्ता अमन्मभुलिङ्गः करिणः, कचन चकोरकोरगिरा विष्णिपितेक्षणाः हरिणाः शोभन्ते ।

तृतीयद्वारकपाटनुगलं स्वर्णपणे मणिगणेन रचितैर्लैलापुष्पलवङ्गैः लावण्यपद्मनैपुष्पमादधत् घिलिनः प्रमाणपत्रमिवावभासते । उभयतः सुविष्टपानां परिमलभाजापुष्पाणां परिमलमतिनिर्हारिण प्रान्तर्पणं समेभ्यो विभजन् भुगवान्पद्मजौ विद्वलितोद्यानविष्टपः प्रवृद्धयोऽपि कदलीपर्णपुष्परक्षणखण्डितवेगश्चतुलस्यो गोदेव मन्द वाति ।

अथ वैद्यः कौशेयज्वानिकस्य हर्म्यस्यान्तः प्रविश्यापश्यद् यत्, सुदुरोज्ज्वलायां श्लक्ष्णभित्तौ रम्याणि चित्राणि पुष्पस्तोकानां सर्वादीनि सर्वनामानि चाङ्कितानि सन्ति । मध्ये च परितो जाम्बूनदाचन्द्रीद्विगुणितनुपनायां, सदुपलसम्पादितानामुन्मत्तचित्त-तुलिकाभद्रोपवर्हपरिकृतायामेकतो वीप्रशातकुम्भनिमित्तेऽक्षिलप्रोदधिसारक्षेह्यै, मारकत-बह्वै, नीलकौशेनालङ्कृतशृङ्गे, जातरूपातपत्रे मयूररुणे अनुपविष्टे शुद्ध इव, उपहार-शानैतराजन्मशुमारोकगूढः, गूढजनुराद्यन्तः, अनारतधराथरपतिपुनीचेवितः शिव इव, प्रान्तेवादिष्टसरस्वतीरुः, राम इव दुःखितदुःखहारी, अर्जुन इव भारतप्रसिद्धः, राधेय इव दानार्दानः, भीष्म इव ब्रह्मचारी धनुर्विद्यावित्तः, रचितदृढग्यासो वररुचिः, वाग्परिः, दैत्यासि धीशो विष्णुदेवो होतृकारः, सुग्रीवः, साङ्गदो हनुमान्, सुजनिरेलकचोऽपि परिमलपुष्पपद्मदुल्लिखेष्टः समुज्ज्वलावतमस्तको दीर्घमुन्दरघ्नः गोपुरकटादोर-स्थलो राजा राजते ।

तं कचनोपवीथयति, कचनोपलोक्षयति, कचन दूरस्थायी सामन्तः साञ्जलिवन्धं प्रणमन्नपराधमिक्षा भिञ्जते, कचन दुःखजालचकितचेताः कष्टं निवेदयते । अथ

तमायतदोपमदोष विकचोडुविसराया वाशुरायाचन्द्रमिव नरेन्द्र किञ्चिदुपहृत्यैकत उपविष्टे
भूमिस्तृप्तिः, महाराजस्य ज्ञानवेलाभाक्लप्य भ्रूभङ्गवैलक्षण्येनैव निरितेषु नृपु
महाराजवैश्ययोरेवमभूदालापः ।

राजा० । आनन्दितोऽसि श्रेष्ठिन् ।

वैश्य० । (स्वजातिप्रभावेण बिभ्यत्) आगू जगदक्षक । को नाम क स्याद्
भवति भवद्राज्ये च कोऽप्युत्पातः । गता दूरचीरा । महद्भयं यस्मादासीत्तदपि
पलायितम् । विरज्जीवन्तु श्रीमान् निरमवन्तु ।

राजा० । कोऽपि हेतुरस्ति किमागमने ।

वैश्य० । देव ! देवपादानां दर्शनादते को नाम मुख्यो हेतुः सम्भवति,
बन्धुपादः । वयं वणिजो देशादेशमटन्त सुन्दरसुन्दराणि विविघ्नाणि वस्तून्वबलोकयामो
देवपादानां दयया लभामहेऽपि । गतयात्राम्यामह काश्मीरदेशमयासिपम्, ततश्च
वपुःपरिमलमोहितमुनिजना सुरभिनि धासा स्त्रियमानीतवानस्मि । सकलदेशतिलकाय
माना साऽशेषभुवनभालायमानो भवानतोऽहं समवेतसौन्दर्या दासीत्वेनोपजिहीर्षामि
सकामा वामाम् ।

राजा० । बह्वयोऽत्र दास्य, नास्ति प्रयोजनम् ।

वैश्य० । परं देव, महता कष्टेनानीता तां श्रीमच्चरणसरोजस्य सेविनीं द्रष्टुं
नितन्तमुत्सुकोऽहम् ।

राजा० । अस्तु, प्रेष्या ।

*

*

*

‘देव देवीमहता वक्ष्ये, तां वैश्योपहृता ‘काश्मीरीये’ति कृतनामधेया दासीं भवता
ज्योतिःशास्त्रानुसारं परीक्षितुमनुशिष्टां परीक्षिता । महता श्रमेण अनुनयविनयेन सा
खहस्तमदर्शयन् मुखम् । सा सत्यं त्रिभुवनपट्टमहिषीत्वानुरूपा कथमिमां दशां भजते
इत्येव विचारः । एका खल्पीयसी रेखा तस्यां साम्राज्यं विदूरयति, मन्ये द्वित्रैर्वर्षैरेषा इमां
दशामनुभवति । एषावश्यं भगवतीस्वरूपा न कदाप्यवमान्या मान्या च पट्टमहिषीव’ ।

‘किं कथयसि ज्योतिर्विद्’ ?

“सत्यं देव” ।

“दृश्यता किं भवति”

“देव, विद्वद्भणोऽयं विनि, प्रातर्भ्रमता मयाय द्वौ गोपयालवपि तेजोमयदुखौ
वीक्ष्य तयोर्दृष्टौ विलोक्षितौ। उभावेव राज्याहावास्याम्। निनांधराज्यदानी
सयो रेखा। अहं तयो स्थितिज्ञानायाहोरात्र तावपश्यम्। दुर्विनीतो विविनोऽयं
काल, विचित्रश्चास्य मद्दिना। यस्य आत्मन प्रतिनूर्तय इव मन्त्रियामन्त-
मान्यधनिवशावतसा अमलकुलजलनिलयनिर्गता नणव इव शानोल्लीलाः
सर्पस्यूतवासस सुगन्धिगौरधारीरा घोभाला दृष्यवात्य बाला सहाया उचिता-
स्तस्यैव शिद्धान्पूर्णधोना सवत्सलाला दूषिकापितृवीर्याणां प्रकाशं पुत्रिकिरन्त सविप्रदा
इव काला नमा बाला सद्वरा आसन्। यस्यालक्षेण प्रयत्नासिद्ध परिमलानुलं
तलं, सुगन्धमुपगन्धवाहः पागपटलभिन्नमवलेपनबोचित तस्यैव दुर्दिनपरिभूत-
प्रभस्य पेरोरिव एडकामूतमिश्रिता धूलिधारणाय। प्रतिदिनधावनिर्घुष्टोत्तररुदे
प्रतिदिन तौलिष्ठन्यमानतूले मृदुलमृगरेमास्तरणे शीतलविद्युत्प्रजनबोचिते सौवर्णे
कौशेयतन्ती पतिगुणयो मखे स यनोचितो हलकाल्बरमेणु प्रचण्डकरतलेषु स्थलेषु घटान
आहूतोऽपि न जागर्ति स्म। यस्य सुमधुर सामोद धरदाज्य भोज्यमुचित तस्य यवागू-
दृष्टात्रायमद्यनम्, तदपि कदाचिदपह कदाचिदुभयम्। काश्मीरनखामृतफलदाडिमीका-
निद्यायनीफलोचितस्य करारवान् दुःप्रापम्। भाषवन् इषोषवने भ्रमणोचितोऽजागोष्ठ-
निष्पुञ्जवेदी। धानीभिन्नातापितृभ्याम् सप्रेमान्ययनोचितो भोजनाय रौदति स्म, विलपति
स्म। मृदुलगणिकावाग्मेयनागरेघरबन्धुलमन्धुलबलेन स्वानोचितोऽयं स्वेदयिन्दुदूषित-
तनुर्गर्हाते। कदा अपरिणृता दूकालयः कदा अनीशवां समर्पयन्ति। कर्णयो पीण्णम्,
भलादूषिका, हारोचिते गले मलरेखा, तनी दैर्गन्ध्यम्, करयोस्तपटनम्, कमलकोनल्यो-
पादयोर्विरादिद्य, धारीरे काण्ड्यम्, मत्सां मान्द्यम्, प्रतिभावनप्रभत्तमन्तर्दृष्ट-
मन्धतनसम्। दुर्गन्धं, दंतं, किं दृष्टवानसि अनपराधिनि शिष्यौ, विलक्षणेऽसि रे अपटन-
पटनापटनादीय। सोऽयमय देव, ननापरोऽवसरो दृष्टो वदेका दत्तमेतदहरेखायां
पश्यामि। मम मतिना अन्त्या शास्त्राणि वा विपरिंताणि, नैवाकल्पितुं शक्नोमि।”

*

*

*

पतन्तिर नशन्ति विरचितान्तेन्या मारुतो क्षत्रियसेनेव शत्रो सर्वानान्

विशिपती धनधान्तमध्वसयत् । पशुचिता रात्रिर्मुखमन्तर्दधौ । प्रातरञ्ज पिपतीनां
पुरथोपिता मन्दगम्भीरो द्युदध्वनिमादकतां प्रसारयामास । प्रकृतिस्रस्तचरेण मुडेन
पुनर्जहास । पङ्कजवनस्य मुकुलानि विचक्रमु ।

प्रेतान् पवम न सेवितु सदश्वमाहूढो याति चित्रपुरेश्वर । मार्गे कावपि मुग्धौ अज्ञात
वारुणपटवौ कोमलकमनीयतनू मलिनमुखौ शीर्ण-वस्त्रौ बालौ दृष्ट्वा ॥ ज्योतिर्विशोक
स्मृत्वा सस्पृह सप्रेमावोचत् 'बालौ । कस्य तनयौ स्य ' ?

'देव । कृष्णगोपमुतौ स्म ।' ग्राम्यशिशुमुलभया ह्रिया हतभैर्यौऽपि
उपेष्टोऽब्रूत ।

'अपि शिक्षितौ किञ्चित् ।'

'नहि देव । अध्यापको रुप्यक याचते, अस्माकमुदरदयैव न पूर्यते, पितास्माक
गतमासे मृतो गात्रो महिष्यश्च महामार्या मृतास्तदा वराकाणामस्माक क सम्भाव्येत
पठनप्रबन्ध ' 'आवामजगृह्या गाध्वारयाव ' ।

'अपि कार्यं कर्तुं शक्नुथ ?'

'देव । कथनास्मभ्य कार्यं ददात्येव नहि । आवा व्यजन चालुमितु, गाध्वारयितु
शक्नुव पर नास्मादशेषु कथन दयते, दरिद्राणा दर्शनमेव परिहरति लोक । श्रीमता
यदि दया भवेत्तदाऽऽवामपि दुःखोदन्वत पार लभेवहि ।

राजा ॥ दिहस्य दुर्गे व्यजनचालनकार्याय आदिश्य जगाम ।

अधुनैतयो सुदिनानि समितानि । पावकेन सहाप्येतयो प्रम भूतम् । करुणदशे
दरिद्रे सहृदयो दयते । सोऽप्यवक्षिष्टभोजन ताभ्या प्रायच्छत् । अधुना तयो राग
स्वभावी मुक्तिर्विशदता परिवर्तिता । तौ स्वकमणा विनयेन आज्ञावहनेन बालमुलभया
मर्या च राजकुल वशवदयामासु । उभावेव राजनामाङ्कितवर्तलपित्तलपट्टिकाभूषित
वस्त्रौ तदुचितवाससौ महाराजशयनागारेऽवसर घाटीक व्यजनकार्यमधुरता
समये सलग्रमनसावपठताम् ।

ग्रीष्म, रात्रि, उष्णता, शीत प्रेतम, वायुरनायुरिव प्रतीयते । चित्र
पुराधीश कमलकोरुकुतोपबह बहुलशय्यायां निमग्न इव स्तपिति । उष्णतापोपक
विद्यद्वयजनमवरुप्य काश्मीरीया हिमशीतेन व्यब्जनेन शिर पाद्मस्थिता सतर्क नीजयति ।

मध्ये मध्ये रक्षो मुख निपुण निरीक्ष किमपि निचारयन्ती पुनः स्व कर्म सावधानमा-
चरति । बहिःस्थितौ बालौ च राजभयेन शिगुखभावाच्छनैरालम्बन्तौ बृहता-
सूत्रणान्तर्व्यजनं चालयन्तौ स्थितौ स्तः । यद्यपि शिरोग्रहं परितोद्धारं तदपि कष्टा-
वपि दिशोऽद्य भगवान् समीरो न सरति । दूरस्थवोर्बालयोऽप्यालम्ब्य कादमीरीया-
ध्यानेन शृणोति ।

कनिष्ठ — भ्रातृ कामपि गीतिमालम्बये ।

उपेष्ट — नाहं जनामि ।

कनिष्ठ — केशवस्तु बहु जानाति ।

उपेष्ट — तेन किमस्माकम् । अवान्तु न जानीवहे ।

कनिष्ठ — तर्हि किञ्चिद्वन्द्यालम्बये । अन्यथा तन्ना शिथिलयति, उष्मा ग्लायति ।

उपेष्ट — यदि आग्रहस्तर्हि शृणु —

अथ मया एरुपय रचितं, श्रुत्वा श्रावयिष्यामि त्वमेव पूर्वं शृणु —

क राजास्ते चन्द्रोऽस्तमितरिपुटुदो नरवर

क ह्यपौ बालोऽस्ति क नु जलधिजातो नवशिखु ।

क माता मान्या नावहह । कमला धर्मविमला

करालोऽकाले हा । किमिव विदधे कालवधिक ॥

बालस्तु ध्रुवमात्रप्रसन्नो नष्टप्रमीलं पुर्विर्नभूव । परन्तु कादमीरीया बीजयन्ती
मधुरमधुर स्फुटधर गुग्गुमार्थं श्लोकमिमं धृत्वा किमपि स्मरति । निश्चितच्छिरिक्रिया
इति विदधति । सन्तानप्रसादात्पुत्रि मुनोव । तानि च तदा विराट्प्रसादेन नरेन्द्र-
मत्स्ये निषेधुः । अयोगोलकृतापस्य तस्यैव भृत्योऽप्येव भिन्नैर्निद्रेणोत्पितेन राज्ञा
पृथक् —

‘कथं रोदिषि ? कादमीरीये, विशदय, अहं ते दुःखकारणमचिरं निरुद्धे’ ।

का० — देव ! भवति शास्त्रं कोऽन दुःखत्रयोऽपि । किं तमालोमहन्तरि
भवति सत्तिरि समुदिते सम्भाव्यते तनोऽत्रोऽपि ।

रा० — सत्यं कथय कथं रोदिषि ? अभयं ते ददामि ।

का०—महाराज ! विमाग्रहेण, किन्तु कथयामि, नितरां दुःखिन्यस्मि । नाहं
सार्त्तिभिर्दुःखवार्त्ताभिः सद्यः भवद्दुःखं विषेदयिष्यामि । न चाशुचि^१ शान्ते स्मृते
दुःखशल्पमारोपयितुमुत्सहे, अल्पमधुना कदुदन्तं धृत्वा । मा नाम प्रलीनमनसं सधु
क्षयन्तु, स्वपन्तु ।

उदितजिज्ञासस्तेनोत्तरेण बहुश काश्मीरीयावृत्तं श्रुत्वा कृतसङ्कल्पश्च स उत्थाय
पर्यट्य पानीयं निपीय बहिष्कृत्यरे आसन्दीमाह्वय्योपविष्टो वृत्तं श्रोतुं सज्जोऽभवत्
सा च कथमप्यवस्थुं वाप्या पृथिव्यां समुपविष्टः प्रवक्तुं प्रारभत—

जनपाल ! यद्यत्यन्तं कुतूहलं यदि च मन्दभाग्याया दुर्बलं दुःखदं वृत्तं श्रुध्रूयते
तदा शृणोतु—

वर्त्तते प्रतप्तप्रतापपर्वरीक^२ सारितशनुशर्शरीक^३, धनपुष्टयोधभर्भरीक^४ श्रीविमल
पुरेश्वरो रामपालो नाम विलक्षणख्यातेर्यस्याहं मन्दभागा तनया

राजा०—(साध्वर्यम्) तत्र भवतो विमलपुरेशस्य पुत्री !

काश्मी० । आम्, देव !

राजा०—आम्, ततः, त्वरस्व ।

का०—ततो देव, श्रीमन्नरेन्द्रप्रातःभालायमानस्य नवेन्दुपालस्य पुत्रो विश्वभृतयशा
परिणीयः प्रसूतपुत्रा वधुरालयमानवत् । जलमामे ममाभूदेकोऽपरः पुनः । आहारादिकं
नासीत् । जीवनायावश्यकं वस्तुजातमानेतु मत्पतिर्न विमारुहेह । तस्मिन् बहो कालात्
समुद्रे स्थिता जीर्णाऽऽसीत्, अवतरणसमय एव विद्वमपर्वतादृता दुरवस्थामभजत् ।
किञ्चिद्दूरं गता समुद्रपर्वतेनाघटिता, मत्पतिश्च पर्वतोच्चतरङ्गे विलीनः । अहमसमर्थापि
पक्षद्वारेण विलोकयन्ती आशङ्कितानिष्टा न्यपत सवे सहामासहया ।

रुदतो हर्षस्य वारिजस्य चाक्रोशेन कथञ्चमपि नष्टमूर्च्छां हर्षं वाग्भिः वारिज
शिरस्फोरणैः सान्त्वयन्ती “नानिष्टं शङ्कनीयं”मिति मनसैव दीयमानधैर्याऽतलस्पर्शे
पयोराशौ भोजनमानेतुं भवति प्रतीक्षमाणा सर्वं दिनं व्यत्ययापसम् ।

अथाशेषदिननिरन्तरस्याप्यपि रक्षमिते विरिंसौ पश्चिमदिशमवलम्बिते भगवति

सहस्रदीधितौ लटकण्डितं हर्षं शान्तवन्ती स्वयमपि बुभुक्षिता तृपिता जलमग्नेयवन्ती
लेखानुसारं जलागारं प्राप्य पानीयं निर्वायोत्सङ्गवारिजाऽऽश्रमम् ।

चन्द्रिका विकसिताऽऽसीत् । पुन्यदानं प्रोक्षा भित्तिः । एका जलनलिका
पादपतर्पणाय भित्तेरधस्तात्सनायति । दृष्टाः सफलाः सपुष्पाश्वासन् । बुभुक्षितो
हर्षस्त्वर्जनीमाकर्षयन् मामदुःखवत् । बालविलापमाकर्ष्य साधूनेना परोधानप्रवेष्ट-
शङ्कित्वापि किमकरिष्यम् । पत्रपुष्पफलानामनिद्योभनेन पार्तं सङ्करं परिहरन्ती कटिति
गत्वा रसालानि नारङ्गानि दाडिमानि च प्रोदयित्वा धीतवन्त्रपुटे संस्थाप्य समग्रं
वीक्षमाणा तस्मै श्रद्धां ददाम् । स च वन्यान्वपि फलानि सानन्दमुपभुज्य सुप्ताप ।

महीया दशा विलङ्घनाऽऽसीत् । भर्तृरगमनं प्रतीक्षमाणा, नौकाविघटनेनानिष्ट-
माशङ्कमाना प्रसववेदनाभिभूता बहुकालं निद्रां गालभे ।

द्यान्तो निशीथसमयः, सर्वतः श्रान्ता तन्द्रापूर्विका निद्रा मां प्राप । प्रातजल-
गर्जनवीतनिद्रा किमकरिष्यमहं रोदनाहरे ।

बुभुक्षायुक्ता प्रवला पिशाची दुःखेऽपि दुःखिणं दुःखाकरोति । तयाकान्ता-
ऽऽसम् । प्रतिदिनचौर्याभ्यासः फलापहरणमुचितं मेने । पक्षो मास ऋतुरयनं व्यतीयाय ।
अहं परमात्मानं स्मरन्ती फलान्वदन्ती भवन एव समयं यापयन्ती भवतिपि ।

एकदाहं धहिरलिन्दे केशजलं शोषयन्ती तण्डुलपनया बालौ हादयन्ती बलु-
पूर्णनाभं विवेद्याभ्याकारं वैद्यमनुमद्राश्रमम् । नार्वा मायौ निकेतनस्य पार्श्वत एवासीत्
कलोललात्तत्र द्यान्ता आसन् । अयैवाहं बहोः कातात् पुष्टं दृश्वतो । सहसा
चलन्ती नौ रुद्धा, पाशं एवाहमासम्, मीतिविह्वलो बणिग्वे 'देवि, कथय किमिच्छसि ।
मृहि किं करवान, भगवति, प्रवालन नाकम्' ।

“महानुभाव, काहं रोधिक नाकः, नम्येऽनुदुष्टेनेधरेण नवन्त इतः प्रापिताः । अहं
मानुष्यस्मि । सत्यां अवददावामनाशंसितं भूभागमाभ्यामेव लोचनाभ्यामहमपि
पश्येयम्”—विशिष्टिलेन स्वरेणाहमुद्वारम् ।

“भगवति, ॐ मम धर्मभगिनी, आगच्छ त्वामहं परं पारं प्रापयिष्यामि ।”
इति वणिजोक्ता क्षणं विचार्य सपुनः नावमारुढा, नाविच्छलेनाचलतरिः ।

विचित्रोऽयं विधिर्मानुष्यच्छास्त्रात् । महता वेगेन प्रारभत बालुं पृथदधः ।

विवरमिव जिगमिपुरकूपातल दिदृशुश्चलाभवन्नौ । नावि भाराधिक्यमासीत्
पापपुञ्जश्च । उभयतः कल्लोलघातधासादेव मुद्गरसमः । वायुना ग्लपितचेतसां
शुभाशया सहैव भग्ना नौ । एकस्मिन् शकले हर्षवारिजौ परस्मिन् कुम्भना वणिक
अहश्च । शेष मृत्यभाण्डादिकं यादसा पत्या स्नाद्धेकृत्वा स्वाश्रितेभ्यो वितोर्णम् ।
मज्जतां जनानां भीषणं चोत्वारमाकर्ण्य जलधिर्जहास । जलतज्जैर्विदग्मपवाह
मानौ विह्वलौ हर्षवारिजौ विलोभय द्विहस्तमितकाष्ठफलकसहायाह विरसन्तौ मूर्च्छां
मालिङ्गितवती । अर्यस्यास्य विशिषे भग्नोऽभून्मे मूर्च्छासवेद्यः । एष मा नगराद् बाह
वटिकायामरक्षत् । उत्तमा प्रसाधनसामग्री, चतुरा प्रतिक्षणं मां कामवासनासु
सलमां दिदृक्ष्व सप्रयत्ना दास्यो ममाग्रे प्रस्तुता आसन्, अर्हत्तमं भोज्यम् ।

एकदा रात्रौ चक्षुश्चक्षे चाकाशे प्रसाधितवेश परिमलालक स्वार्थपर पापपुरेद्य
कल्पितहक विट भगिनीं मत्वाऽऽनीतायां मयि पतिव्रताया पासुललल्लनासुलभां दृष्टि
प्रोष्टुमैच्छत् । पर मया, 'नीच । कदर्य ! वितथप्रतिज्ञ ! नाह गणिद्या, अपि तु
कुलीना क्षत्रियास्मि, तन्मूढ यदि मामदस्पर्शेन दूषयिष्यसि चेन्नियता ते मूर्तिर्मत्करात्'
इत्युक्त परमभीरुर्भुक्षिताया सिंहा इव सकोधाया मम वचोभिर्भर्त्सित स्वकर्तव्य
धिककुर्वन्, स्वाभावचतुर, अष्टेनापि कार्येण भवतो धनमानेषुर्वात्तवैशद्येन
भवदभ्यर्णं प्रैषयत् ।

पूर्वस्मिन् दिने भवद्वयजनचालकयोर्बालकयोराकृति दृष्ट्वा विस्मिता व्यचारयम्,
ममापीदृशौ बालाङ्गास्तां यदि जीवत कुत्रचित् परन्तु शक्तुतोऽपरावपि समानाकृती
भवितुमिति विचार्य मौनाऽवतिपि परमधुना पञ्चभ्रवणनष्टशया क्षत्रियवीरपत्नी
वीरुनी तविनय सप्रणाम सास्त्रं द सोत्साह सरोदन सहास सकरणधमह प्रार्थये
गदापनीयौ प्रलीनपतिकाया क्वावाया दुर्भगाया मे पुत्रौ । दीनसमाश्रय ! कुरु
मामपि साश्रयाम् । इत्त दैवी विचिन्ता यति । हिरण्यसूत्रस्यूतमहाप्रशस्तविस्तृत
पटपरिदृता च दनदण्डा महाहौपचर्हा मुखनिलयामध पातितदुःखाह्वामिव शिबिका
चञ्चलेय मिलयामयत किङ्किणीसहस शिखरखण्डुम्भविभासि सद्गजिबुध
रथमपि शब्दिदगमनमिति, हेबाह्वितजन केन मृत्युकृष्णीयुगलमुच्चैः श्रवणं ततस्तदा
वाजिनमपि वरगाकपणकष्टमिति, सकुयमञ्जानुकारि दिग्दद द कुण्णरूपमित्यवामन्थ

यो राशमद्वादङ्गं श्रमन्वावकाशमलमत यश्च भाविनश्चवृत्तिर्न विदुर्वाणीयवाणयो
वचनमलस्याद्यैषा दशा ? विचिहितसते शास्त्रेषु सामक मनः । इन्त ! किमिदम् ?

राजा० इन्त किन्नाम भ व त्याः

काश्मीरीया० देव ! कमला ।

राजा तु उत्तरमुवाच विगलदध्नुः सर्वदाऽवगुण्ठननिहीन धादृशि तस्या मुख
मट्टियुद्धात्य निपुण निरीक्ष्य करभ्यां दृष्ट वद्वत्वा मृगमरोदीत् । कमला तु
महाराजस्यापूर्वालिप्तनट्टतां विलोक्य निर्विण्णा विविधुरसि वकुमणमर्षा सम्प्राप्ता
विस्फातिभ्यां नेत्राभ्यां कमपि प्रचुर दृष्टवनिव पश्यन्ती कथमपि विपुलेन कलेन
करभ्यां मुक्ता विवेकविकला एकतः स्थिता ।

राजा तु विह्वलः पादयोरामतः “प्रिये ! यत्न नष्टं मन्यसे, यश्च त्वमनाया
वारां राशावजहात्, यस्य कृत्ये त्व वराङ्गीव सेवितनृत्तिका भ्रमसि, यश्च श्रीलश्रीमवन्दु-
नयनानन्दनोऽप्यनालन्दनः सोऽस्माकमभ्यो भाग्यशाली च भर्ता तव चन्द्रः ।”

कमला तु पुनर्निपुण निरीक्ष्य मुखचन्द्र चन्द्राय “हा ! प्राणेश” इति कथनेन-
सार्द्धं कदमलमुपगता पतिता च मालती ततैव चन्द्राङ्के ।

विलक्षणो मनोहारी परममधुरः सहृदयहृदयसर्वेयामन्दानन्दस्यैव समागमः ।
नाटकीयवस्तुनो ज्वनिवापातो जातः । ६००००० महदन्तर जातम्, शतशो दास्यो
विविचोपचारैर्मुच्छासपनिन्युः । घनीकृताकाशशोभास्त्रोभाः कमलसम्मानाय दिष्णुपद
विदलयाताम् ।

विधिधमन्त्रं विज्ञाय मम मातामहसदनमायातो देवदयया सम्यक्कृताजीवनं सुखं न्यपतत् ।
स ऐषमं वसनकपीडितो देहं बद्धौ तस्यैवावा तनयौ स्वः ।

इष किन्त्व कृष्णस्य पुत्रोऽसि अपि स्मरसि परिचिनोपि माम् ? किं जलनिकेतन
विस्मृतवानसि ? —हपस्नेहदुःखविगल्बधु स्नाताननया कमलयोच ।

यून —(स्तब्ध इव आश्चर्यचकित इव कमलमुख निर्निमेषनयनो विलोक्य
तद्वचनरीतिषु परिचीय) आ मात ? इत्युक्त्वा साधु गलमालिलिङ्ग ।

उत्तापतमरौ पीयूषवर्षिण प्राकृष्या वारिदा वसुधा स्वगयामासु, ऊपर आरामतां
भेज । स्थनी रसिकाना मनोमुदे क्रीडास्थली जाता ।

कृष्णगोपालस्य पत्नी ससम्मानमाहूता पृश्ना चावधीत्—

एकदा मध्याह्ने वृद्धो मामुपेत्याह : प्रिये नाक्यो सन्तति, वृद्धोऽहं त्वमपि च,
षार्द्धके आक्यो सेवार्थे परमकारुणिकेन भगवता प्रेषिताविमौ विधिविपारुदाहणवेदना
विपन्नौ रोदनसम्बन्धकण्ठौ जलसम्पक्वणौ प्रवाहोद्यमानदाहशकलसहायौ यथाकथमपि
सुक्रोमले तटे समानीतौ कम्बलान्त कृत्वा घृत विलिप्य त्वदन्तिकमानीतौ पाल्य चमौ
देवदत्तौ —इति ।

स्वभाववशाद्दमबोचम् समाप्तसप्तमीक, बुद्धिस्ते भ्रष्टा, प्रतिदिनं कमपि समावयसि,
अथ मृताम्बो वत्स अथ ध्वऽय गदम मन्वे त्वमेव धात्रा निराश्रितानामेकमात्रमाश्रय
सृष्ट । शृणु एकदाह युवतिरस, त्वदाज्ञापालने कष्टानुभवो नासीत् परमधुनाहं वृद्धा
स्वस्यैव जीवनाय आवश्यककृत्येऽपि सालस्य वपुरेतेषां निराश्रितानां सेवार्थे नालम् ।
क्षमस्व अद्याह त्वान्तिमामं ज्ञा पालयिष्यामि पर नान्यदाहमक्षप्या —इति ।

शृणु वृद्धे ! एतौ मानवजातीयौ देवदत्तौ बालकौ, एतादृशावयवानीतवानस्मि ।
इमौ प्रमणा परिपाल्य ।

शृद्धे देव गवा माहपीणाश्च समूह आसीत् । अध्याह्नकं घृतं प्रतिदिनं भवति स्म ।
दुग्धस्य दध्नश्च पटा पृथन्ते स्म । श्वानोऽपि पयस्तृप्ता अस्तन् । शृद्धे केवलमावा दम्पती
आसत् । अहमेतावेकस्या कोमलावा शय्याया शाययित्वा नवनीत विलिप्य पर्यचाम् ।
स्वयसमयेनैव व्यपगतवर्णवेदनौ हृत्पुशङ्गौ सञ्जातौ । आश्रमेतयोर्नामान्यबुर्व
न्यूत ऊनयति । प्रतधारोष्णपयःपानपीनौ, नवनीताहाररजस्रक्तदेहौ मुन्दरकन्धरौ

सुपरिणाहौ सवेणीकौ अभूतामेतौ । दृढेनैतयोर्विवाहादि कर्तुं पथो विद्धेतु
मजैदद्यपालनक्षरच्यम् । किन्तु देव, दृढोऽनृषाभित्वा एव मृतः । धसनकेन ॥
आक्रान्तः । प्राप्ते कश्चन वैद्यो नासीत् । परप्राप्त एको द्रष्टारः पञ्चाशन्मुद्रा
आदावागतः परं सोऽल्पज्ञस्तस्य जीवनं रक्षितुं न शक्नुत । तस्यान्तिमच्छा एतयो
विवाहस्यासीत् ।

अनुता देव, एतौ मम जीवनस्य स्यामौ भवता दयया मृत्यौ नियोजितौ ।
एतयोः कृते कन्ये मयावलोकिते, मुद्राश्च सन्विताः, सीतकण्ठे एतयोर्विवाह विधाय
आनृष्णमापादयिष्यामि देवस्य कृपया । यद्यपि नेतौ विवाहयोग्यौ, परमहृद्वा न जाने
कदा दृढवदेहं त्यजेन्मृ, अतो विवाह विधाय निश्चिन्ता बुभूषामि ।”

“दृढे नितरां प्रसीदामि”—इत्याभ्यामुत्थाप्य सिंहासनमारोहयता राज्ञोपे “त्वमद्य-
प्रभृति आजीवनं हर्म्य एव स्थास्वसि राजमातं च सम्भावयती, एतौ च तव पुत्रौ अस्य
राज्यस्य राजानी” इति ।

हर्षवारिजापुरनयनयोग्यावास्ताम् । सङ्गमे सम्पन्नः संस्वरः । भविष्यद्वापी
ज्योतिर्विश्वि धामराज्य प्राप्नु । प्रत्यक्षममम स्तपितौ भास्त्रद्रास्यौ स्वर्णकोशसि-
धेनुकविलसन्मप्यौ मुष्मिन्सरीरी विविधचिह्नैः सिध्यमाणौ मनोवोगेनाप्येतुं प्रवृत्तौ तौ ।

*

*

*

मासोऽयमापादः । दिनद्वयस्यतरकरनिकरभज्यमानतनुतनरः प्रधीपाः पक्षिणोऽनुवृताभि-
वशदलेषु द्विषु सरिवार स्थिताः प्रचलत्पवनानपर्ममर्मरप्यनिशङ्किता ईशणमुन्मील्यन्तः
पट्टन्तान्त्ववहारा आलस्यमन्मस्यन्ति । पक्षिण न तथा पक्षि पाथेय पाथः पथ्य
यथा मन्वते । मासेऽस्मिन्नास्ति पाथनूरपूरितशाम्बरभरच्छटाश्यामल विपन्न, न च
तौमसदृष्टचनिपरिमाजको बालभीवित्पारको विस्फूर्ज्युः, न च स्वषारुचमपचमट्टतिचदेन
लोचननिचयमरुत्तिलो पीताम्बरस्य भगवतो नीलवपुषोऽनुकरी, महान्धकारेऽपि
ज्ञानचल्यैव प्रपद प्रदर्शयित्री, जलधराहस्यिनी चचच्छटा छटा । कविद्यनिनीव सा
सर्पसन्प्रहोता दीना विनयनवावहे जगति स्वमुख मुख दर्शयितुं न शक्नोतं व ।
वर्णोन्मुखजलधरदर्शनोन्नतमनसा मेघनाशानुत्पत्तिना नीरदष्टलक्ष्यामलमल्लिलिहानिभूत
वाधितमपि शीतमेव । प्रकुञ्चलस्यटमजरीजरीह्रीतनानसाना पुष्कोटिल्लना भ्रमपरमन

स्तमपि विरतम् । वृष्टिजलभरिष्यमाणालवालानां चालना शाखिनां मनोहारको नूतन-
च्छदनविक्राशोऽपि निराश ।

सिरुतिले, तिलोपममुखे ये प्रोद्गीयमानरजसि प्रदेष्टेऽन्तराऽप्य सुहृषान् विरूपयन्,
पल्वलान् किमु हृदानपि विज्ञोप्योत्पाटयन्, शाखिशाखा नाशयन्, स्वभावनील नभो
धूल्यापारेण पोतयन्, अनभिभवनीयामाभिभूतसकलरुग्निवि, सेत्येन निजितहिमालय-
मालयमिव गिरीशस्य, हास्यमिव प्रकृते, यद्य इव रवीना, प्रभवस्थानमिव मुक्ताना,
सुधालितसर्वाङ्ग भवनमपि मलिनयन् प्रचल्युत्पातवात । मनुतनूजाना नास्येषु हास्य,
नच प्रभया विद्रितबिम्बफलचरोधधरेषु राग । तेष्यद्याभ्रकवेता पर्पटी प्रसृता ।

परचन्द्रस्तु चित्रपुरावीश पुनपत्नीसमेतो नितरां मुक्ती मध्ये शयानोऽस्ति ।

विलक्षणचर्योऽयं भगवान् काल । एरुस्मिन् काल एव विविधभावना विभावयति ।
एक समय आसीत्, चन्द्रस्य कमलाया हर्षस्य वारिजस्य च का दशाऽऽसीत्, स्वायपरायण
जगत् कानेनाश्याऽपि तान्नेऽधे स्म । जगत् स्वसुखे व्यासक्तमासात्, कस्यापेक्षा क
कीदृशोऽस्ति, जगद्भूते निपतन्तु पात ल वा प्रयातु, किमितरेण प्रयोजनम् । परमद्य

कमलाया न गतदिवससाधारण काल । साद्य पतिपुत्रसमेता स्त्रीता,
महिषी देवी पट्टराज्ञीपदैर्भूष्यते । एकाह्वाणे शतशो दास्य सकरमन्ध पुर सम
वतिष्ठन्ते । विलासेनापि भ्रुकुटिविलाससङ्कोचे सर्वमन्तपुर परमेजते । अहेतुकेऽपि
तिर्यङ्गनेनविन्यासे सन्यास इत्य समागच्छति ।

अथ तु रुधैरलकैरलङ्कृतचर शिर प्रयत्नसिद्धेन पुष्पमुगन्धिना तैलेन स्नेह्यते ।
यस्याधो भ्रूमध्यलग्न ललाटेविभासि काश्मीरतिलकमननवालङ्कारस्योदाहरणम् । यस्या
नासिकोदरीष्टजङ्घादन्तर्कर्णश्चन्द्राच्च सौन्दर्य प्रच्यवत इव । प्रीदायां प्रैवेयकस्तस्मिन्नेव
वक्षोजविपमे, सरलेन यस्मिन्नासीत्ततताश्रुपातदुर्दिन सविभ्रम भ्रमत्, नवा मृदुल-
कौशेयनिर्मिता रक्तवर्णा, स्वर्णसूत्राङ्कितपुष्पा कट्यां शाटी, शिरसि रसिकास्त्र शिरोरत्न
सीमन्ते पारित्य्या, ललाटे पत्रपादया, मले ललन्तिक्का, करमे पारिहार्य, सौवर्ण केयूरद्वय
मुक्ताजटिता षट् मणिवन्द्ये वलय बन्वा, वेदूर्यस्त्रचितोमिका, पद्मरामचन्द्रकान्तमणि

१ सन्यासो नाम रोग । २ कर्णश्चन्द्र = कर्णशिखर यत्र स्त्रिय स्वर्णवलयका दधति ।

३ भाषाया—“बन्द बगली” ।

चटिता सप्तको, नयेषु मुखरमञ्जोरः, स्वर्णकिङ्किणीशतालककृत गुल्फालङ्करणम्, शास्त्र-
धन्वादिलष्ट्रधनदण्डं चण्डातकं करे वासितपटद्वैतेऽधिकां छविमेधयन्तेऽस्याः ।

पद्मप्रेमपता, सतीऽद्वारभूता कमला वीजयति । प्रचुण्णुस्म्या चम्पा च पादौ सवाहयति ।
एकस्यां शुभासन्ध्यामुपविष्ट्या व्यजने व्याप्रियमाणया कमलया भवत्यालापध्वन्द्वस्य च ।

कमला०—देव, तदपि कथनीयम् ।

चन्द्र—अये, किमिव कथयामि, महानसौवृत्तान्तः, शौचकरय ।

कमला०—आदेव जिज्ञासे धीमन्, यावन्न श्रोष्यामि तवकथान्ति नेष्यामि ।

चम्पापि बृहमुक्ता—

चन्द्र०—श्रूयता यदि कुतूहलम्, प्रवालपर्यंतदुर्म्याद् भवत्या विपुलौऽह...

कमला०—(मध्य एव) नाय ! को नामाय प्रवालपर्यंतः ।

चन्द्र०—मुग्धे ! जलजन्तवः प्रवालक्रीडाः सावासाय जालमयं दृढं विरचयन्ति,
तदेव यदस्मान् कालान्तरेण पर्यंतरूपतामुपैति, तत्रैव हर्म्यं निर्मितमासीत् । प्रवाल-
पर्यंतान्तःपातित्वेनैव सन्नत्य जलमधुरं निर्मलं तस्मान्निष्पादेव तरङ्गाणां सैमित्यवासीत्,
परन्तु प्रसङ्गेन प्रभावो द्योतित आसीत् । अस्तु, भवत्या दत्तज्ञः शीघ्रं निरुद्धवर्तिनो
नगरादधमूलीयौपधौः बलातलं गम्यमाज्यं यवानोमोदकान् पूगपात्रानेतुक्रामः
प्राचलम्, परन्तु मम नीर्ममा । विभिन्नफलकेषु जीवनरक्षायाऽवृत्तायां तत्प्रयोजको हेतुश्च
विधरेवासीत् । पयोविषयं शैत्यशीतले कमलमलङ्काराचिंतनमस्वस्मिन्नागव्यजने
कोमलसदृशौष्ठले सिद्धितले म्यपगतमूर्च्छौऽपि नितान्तं शिथिलं शोतवातवीजितस्तन्ना-
पूर्विकां निदानलने । परं ततोपालम्भप्रचुरैर्दुःखैरपेतनिद्रस्तत्तं हर्षसाधितृत्य
व्यलम् । हन्त, प्रचण्डकण्डकूरध्ननिकरैर्मरौ भलती पादमार मारयिष्यते । दहो,
वेध ! एतदेव निपटयितुं त्वमेतद्वचरितम् : विदूषाखिन्नामरातायां प्रेम
गुल्लुमुषेष्वात्मानं निपात्य यामानीतवान् हन्त, सैव यन्नामचर्चिस्म अशहाया
मिप्सुपते । मयपेक्षमाया तज्जन्त्या हर्षं वहन्ती दत्तज्ञेन च वारिजं बहिर्गतात् पुर्वती
माननागच्छन्तं बन्धुं नियोगविपुरा नूनं वार्धौ पतिता कस्यपि सिनेः कवलंभूता ।

भक्तवात ! प्रपातय ! सनुदबन्धो ! जालकद्वन्द्वं नरुणः कथन्त्या दृष्टीत ।

१ "लङ्गा" भाषायम् ।

मित्र ! प्रवत ! ध्रूयते त्वं प्रामाण्यं प्रचलन् सुखदहसि, यनायपि समूलन्येव
नयसि ! तदा 'प्रवात ? अहमेव बहुभार ?—(हसित्वा) पश्यत कीदृशी निष्ठुरा
अस्या करुणापि नादेति

कमला०—आम् आम् करुणाहृयार ! भवतामिव करुणा जनेषु कस्यापि मा नाम भूत् ।
धन्या ! स्त्रियमपि न सत्सर । हन्त ! कारुण्यम् ?

चन्द्र०—अस्तु पुनरहमेव व्यलापिषम् ।

सुप्रिनोर्वत ! केलिकामयो परतन्वोरपि साम्यमीयुषो ।

हरता महमावयोर्विधे । निहता हन्त ! वयं तु दुःखिन ॥१॥

हे विधे ! केलिकामयो क्रीडाभिवाययोरत एव सुप्रिनो तन्वोभेदेऽपि भविष्य
जीवयोरवयोर्महम्—उत्सव हरता नाशयता दुःखिनो वयं निहता ॥१॥

रतिहास्यपदानि चिन्तयन् गमने विभ्रमचेष्टितानि च ।

विजितेन्दुमुखे कथं प्रिये ? कमले । कथंन हा । विजीविषेत् ॥२॥

विजित इन्दु येन तादृशं मुखं यस्या सा—तत्सम्पुद्धौ प्रिये कमले रतौ ते हास्य
पदानि, गमने विभ्रमेण चेष्टितानि च चिन्तयन् कथंन कथं विजीविषेत् ॥२॥

जघनेऽयि । निधाय मच्छिरो रचयन्त्या रचना कवे क्वचित्

मुखवासन एति शस्त्रता कुसुमेपोरधुना स्म किं । प्रिये ॥३॥

अयि प्रिये ! मच्छिरो स्वजघने निधाय क्वचित्—स्थाने समये वने उपरने वा कव
रचना रचयन्त्या भवत्या मुखवासन कुसुमेपो शस्त्रतामेति स्म । अधुना किम्, त्वमि
मृताया वार्त्ता एवावशिष्टा इति भाव ॥३॥

तपनीयललाटपट्टके ललित वर्तुलबिन्दु ते सखि ।

स्मरतोऽपि कुजीवन प्रिये । व्रजति स्मृत्यवशेषता नहि ॥४॥

प्रिये ! ते=तव तपनीय=स्वर्ण तद्वद्भास्वरे ललाटपट्टके ललित वर्तुलबिन्दु
हिष्टगुलस्य योगेन रचित वर्तुलबिन्दु स्त्रियो दधति । तस्मिन्स्मरतोऽपि ममैतत्कुजीवन
स्मृत्यवशेषता = मृति ॥ व्रजति ॥४॥

प्रथिताभरूपोलतट्टवात् ललितात् पकरसालवद् वरात् ।

व्यथते हृदयं समाधुना हसितात् कन्दुकवत्समुज्ज्वलात् ॥१॥

प्रथिता = जगत्प्रसिद्धा आभा यस्य तस्मात् रूपोलतल्लज्जत् = भ्रेष्टाद् गण्डयुगलात्, पकरसालेन - रसालफलेन तुल्यात् वरात्, हसिते = हासावसरे कन्दुकवत् समुज्ज्वलात् = अनुभवतान् कन्दुकवद्भासमानात् कपोलादधुना मम हृदय व्यपते ॥१॥

कुमुमाचितहेमपट्टिकाललितास्तन्य ! विचुम्ब्य तेऽलकान् ।

त्यद्वयात्सुगन्धसत्क्रियः सदयं शाययतीव मादृतः ॥६॥

कुमुमैः = पुष्पत्वेन न्यस्तः, हीच्छच्छब्दैः आचिता = सञ्चिता हेमपट्टिका = शिरो-
भूषणभेदः, तेन ललितानलकान् विचुम्ब्य, त्वत्तोऽवाप्ता सुगन्धसत्क्रिया येन तत्केच-
परिमलप्राप्ता प्रवृत्त इति भावः । मादृतः = बाहुः, सम्प्रति मां = सत्कारकारिन्वा-
स्य पति सदय = तव ऋणित्वेन शाययतीव ॥६॥

यिकचानन आकुलाङ्गनो रजनीनाथ उदेप्यति प्रिये !

हृत्तुल्यगुणो महात्मना मुखदो हन्त ! हता महार्त्तता ॥७॥

प्रिये ! अथ रजनीनाथश्चन्द, यिकचं प्रकुलमावनं यस्य अत एव आकुला
अङ्गना येन कामोदीपकत्वात् तथाभूत उदेप्यति । यतो हृत्तुल्यगुणः समानगुणो
यनैरम्भूतः । महात्मना = महाद्यवानां मुखदः = हर्षप्रदः अथतना महाद्यवाः स्वसमाने
नष्टे प्रदीदन्ति । हन्त ! खेदे, महात्मता पुण्यवती महात्मपदार्थहता = नष्टा ।
“सर्वे भद्राणि पश्यन्तु” इति = तेषां विचारोऽपि विदलितः ।

तय लोचनमित्रमभ्युज्जं समदुःखप्रमदं विरूपये ।

युतिमन्तमुदीक्ष्य यद् विभुं समकोचीत् तव मृत्युशङ्कया ॥८॥

नदं अभ्युज्जं, इव लोचनमित्र अतएव तव दुःखेन प्रनदेन च समी - तुल्यौ दुःख
प्रमदो = हर्षश्च यस्य तथाभूत विरूपये = विचारयामि । यत्कर्मलं विभुं युतिमन्तं वीक्ष्य
मृत्युमनुमाय, कमलायां सत्यान्तु कदाप्येव प्रकुलाननो नोदगात्, नदयोदेति, तन्मन्ये
नृता कमलेति विचारं, समकोचीत् = सङ्कुर्वन्वितयान् ॥८॥

अधरे मधुरानने । प्रिये सुरतामोदनवेधुना स्मृतम् ।

न्यसन तव कोमलाङ्गुलेर्विरत मा विदधाति जीवनात् ॥६॥

अयि मधुरानने । सुरतस्य य आमोद मनोहारी परिमलस्तेन नवे । सुरतोत्सव्य
अधरे कोमलाङ्गुलेर्न्यसन = स्थापन मा जीवनाद्विरत विदधाति ॥६॥

समितो नहि विस्मृते स्मृति सुभगौ विल्वसमौ कुचौ तव ।

अयि मञ्जुलदेहवल्लरीसुषमान्यपकृतकामकामिनि । ॥१०॥

अयि । मञ्जुलदेहवल्लर्या सुषमया = परमया शोभया न्यपकृता = दूरीकृता
कामकामिनी = रतियया सा तथाभूते । ते सुभगौ विल्वसमौ, कठिनौ
वर्तुलत्वेन शालिनौ च कुचौ विस्मृते स्मृति = विस्मृतिमात्रं न समितं
न गच्छत ।

कमला—(मन्द हसन्ती, अपाङ्गेन चन्द्र पश्यन्ती निश्चसिति ।)

चन्द्र०—(हसन्) किमर्थं मुधैव कृत्रिमनिश्वासविधौ व्याप्रियसे ।

कमला—नहि देव । अहं भवतो जीवन एव नौकाघट्टनात् शङ्किताऽऽसम्,
परंतु भवन्तो इतास्त्रादमनासयन्तोऽविच्छेदेन प्रकृतमनुसरन्तु । आ ततः ।

चन्द्र०—ततोऽहं पुनरपि 'दैव । किमनाम कृतवानसि, अस्मिताक्ष । विपदां
मातरं दृष्ट्वाऽपेताहर्षो हर्षोऽपि नूनं कथावशेषतां यास्यति । हा । नवजात शिशुः
विदलिते लतेव पृथिवीतले प्रसरिष्यति । मामदृष्ट्वा रुदत बाल हर्षं कमला सान्त्व
यिष्यति 'पुनः । हर्षे । नवोन्नमनीयानि वासांसि, स्वर्णसूत्रस्यूत छत्रम्, आसक्त
मुक्तामुष्णीयिका पटत्कारान्, फुल्लमाला ज्योतिर्दशलाभा आनेष्यति मा रुदिहि
रे हय । मा रुदिहि' परंतु हन्त । कियत्काल सान्त्वयिष्यति, अन्ततः । हा ।
हन्त । प्रिये । भगवन्ते मनोरथा ' इति विपुल विलप्य चेतनामजहाम् । एषा
विभावरीष प्रकृष्टादिलक्ष्मूर्च्छाय एव व्यत्यास्यम् । प्रातः प्रबुद्धो विलपन् जीवनं
जिहासुरात्मानमुपजिहीर्षुर्वक्ष्यन् गत्वाऽऽत्मानं जलसात्कर्तुं सज्ज आसम् परन्तु
अप्यमावनो भगवान् यदिच्छति तदेव भवति, यतस्त्रिस्मिन्नेव समये एषाव
विश्राभिर्गाम्भीर्यपूर्णमि कव्युक्तिभिरिव वितताभिर्मण्डलाकाररचनाभिर्जटाभिर्भाभिधौ

प्रासितमुखमगदः प्रोन्तस्यतल्लट्टो मात्सरोन्तपोपो मस्त्रिपुग्गद्वितरिगाहिल्लट्ट-
मासलवधुम्यः, सव्येन दग्धमितरेप कमज्जुं करेप कल्लन्, लम्बमानस्सत्तमालः,
कदलःदल्लोपोन, पोन्धनुस्सम्मीराह्विः ह्वी, वेवसा सान्तेन पाप्पुधानपि खप्पन्
टप्पुगुखिानर्मस्य दल्लन्, प्रभवो धर्मस्य, विहतपाप्पुवोऽस्तमा, शनदमनिर्मल्यमा,
अस्सट्ठमादुद्वल्लु निः । स च गनीरया वाचा दग्धयन् दग्धयुगमुवाच—

पुच्छराज । नास्ति पापमात्रमहनमुत्तमं, यस्मै दुग्धं च क्षिप्तं तत्तेऽचिरादेव सम्पत्स्यते
सुखम् । ना स्म शतकं कैरीः । आमाहि तपोर्वं प्रविद्यापोऽतिवर्त्तेऽर्द्धनंला, इति ।
वनभूनि विपूय क्षुदिशिधुधनेप निर्मित आधमो र्ध्यायानेवासीत्, पर पन्थापोपेन
पुणपरिमलेन धूपगन्धेन च मुखरित आसीत् । कचन निदग्ध इरिणा रोमग्य
वर्त्तयन्ति स्म । कचन पेनवो नवीपत्येन स्तरितयः स्तन्यवान् स्तन्य पाययन्ति स्म ।
इचन पनपात्राश्लात्राः पुष्पाज्यवकिन्वन्ति स्म । अश्वर्मक्षिणोऽप्यर्द्धाणा. पक्षिणोऽप्यस-
प्रावुर्वाच्याग्राग्यम्यस्यन्ति स्म । हृत्तराज इशाव विपुलच्छरितोऽपितमुनयो नयोपगारिताः
प्रवा इव फल ददति स्म । पापिनामपि मनसि तनयमाव जनयन्तो वनावनीय विलक्षणा
नन्मरनपोपाणीवसाप्येनसा रहिता हितगोत्रा । यत्राह कश्चित्कालमप्युध्यात्रम सप्रनोऽरण्या-
नाप्यसंयच्छेत्ताः । परिपत्यमानवरवारपट्टकुम्भात्पाटनविस्तृतमुखाभास्तरनखमयूखाः
दैवज्ञ ॥ ज्योतिषा भासन्तः, सग्नरावक्ष्यद्वैकाल्यायनीप्रदत्तयन्यवादहत्या इव हर्ष-
वर्षेण हरिणप्रानान् हरन्तो वामपमारणोपगच्छन्तं अनितविधितादननदमनन्धरा,
जृम्भगदोदस्वमानघोमितघोणरद्वसदवा, बलनास्त्ररपेन, कृगराश्लक्ष्मापक-
षत्रेनेव, मृदुललोमनिविताप्रसुधप्रवेष्टेन घोमितशृङ्गदेयाः वनवसतय, केशरिपो
रगावन्ते स्म । इचन केशर्दिशोरकाः नीहनवह्वर कैशोरयोयं रचयन्ति स्म ।
इचन करिषोऽलमभूतिरासितपार्श्वं, अलमज्जगदाद्यह्वत्, सापेऽहः स्वाप्तुं सरां
गच्छत्, दृग्दृग्नेषु नीरमापूर्वे पूर्वतत्प्राप्तं, नयनानरुज्ज्वलं, सखन्दं चक्षुष्योक्तं
कज्जलमर्षतमिवाज्याभुक्षितं, युमुक्षितं, प्रसस्त्रटं कर्तियुगं कृत्वा आमुत्थति स्म ।
विहितं दिताः द्विपेत्ताय वराग्रहितं हिसन्ति स्म । कचन 'मन्त्रमन्त्रक'वद्वद्वन्त-
निशान्त्या निष्ठुराश्लात्रापरपूषित्या कान्धमुचि, मुचि निवशा वातव्यधित्पदतनः,

शापोऽलीढोऽप्रविषाया धोरशोषघोषा, घोषिनो द्रुमान् घर्षयन्ति स्म । क्वचन
व्याधमुत्तार-कौट्यकनासनास्तैः, त्यक्ताधचवितरोमन्यैः, फेनिल्लपनैः, जडजालुभिः,
जीवने हताशरितरस्मिञ्जलुभिः मेलिष्याम इत्यादिष्टमृगीर्वै, मृगीभिः सप्तम
कण्डूयमानैः, मृगैर्विस्त्रायमाणनना - सप्तनेना इव, नरीनृत्यमानमयूरा क्वचन
शमालीलीलाललिता, क्वचन विशालपिङ्गलालिता, क्वचन वन्यरासभीरव
राभस्यनीरसा, सततभक्षभक्षन्दिस्तपस्वला, क्वचन शुक्रपिङ्गकन्यमाष
जयघोषा, तरलवृक्षनेगीयमानगुणैरभिनयाच्च पुरितपत्रपूरितदुर्जटवटं प्रकाश
सरण्डमण्डितकाण्डैश्चालतमात्सरसालशालाक्षत्थविम्बैर्विहितविधाना, अनी, यमाणतपना,
वधितकरिरदनलोलुपशुणिन्दपुलाऽऽहिष्यमाना, भयङ्करदक्षना, शुभ्युनऽभागा,
अविदिततरना, वनभूमाभ्रमन्, क्वचन पर्वत, क्वचन वृक्षमारोहन्, सिद्धगजजन्ममवलोकयन्,
रुदन्, हसन्, विलपन्, पतन्मुत्तिष्ठन् जीवदन्मनेकमप्यपराधं वत्तमान सतर्कमीक्षमाणो
वञ्चितदृष्टिः, अपेतापोटमुचफ्रिततापनस्तैरलसो दुःखितो, दर्श दर्श जीवानामात्मनो
वनस्य च दशा भ्रमज्वलन्तिपि ।

लेखकललेनैव विचारमलिना सध्या शय्या भेजे । केशा इव तमोरदमयलया
विक्षेपिता । प्रादुर्बभूव च कालाम्बरधारिणी विधवव विभावरी । अहमकस्या
वोषिकाया राजहूतैर्हीभिर्गुलामाणमृणालावास्तवभवेनेऽपि निदशङ्कोऽशयिपि ।

प्रत्युपम् । अरुणित वियत् पत्रयसमुदयवातवीजितम् । सरसु उदम्भासि
कमलवनानि पुस्फुट । कौमुदी त्यक्ताभ्यासस्य विपश्चित इव तविमानमधृत । पेचद्य
शोक, कोकाश्च शोकविमोक्तमापु । प्राभातिको राग इव मनोहरन् बभौ सालसुगमन
प्रभञ्जन । तपोवनवासिना ध्रोत्रियाणा वेदध्वनिः सर्वतो व्याप ।

अथाह विचारैवपुत्यविनष्टविवक्त प्रातःकृत्य विधाय, व यफलानि प्राप्य पाथेदध
पोट्टलिकायामावध्य जनपदगामिन पन्थानमाधितो यथाकथञ्चिद् राजदुग नाम विद्वत्पुरुषक
ध्रीमन्नस्य नगर प्रापम् । विशालविपथौ श्छाटकललाटे ऊर्ध्वपुण्ड्रायम ग नादथोतितसमय
षण्टारुह जनान् बोधयति स्म ।

मम दक्षा विष्टल्लला, वट्टाणि नितरा- मर्त्तनानि अव्यवस्थितानि चासन् ।

१ दीनो पक्षिणा चारेण गमनेन ।

इशानकोणस्थत्रिदारे आलप्ता महर्षिबालकल्पानां चन्दनभाभाभालानां छात्राणां
परमात्मस्त्वान् शुभ्रपुस्तत्रागमम् । प्रैक्षिषि च छात्रा भगवन्तमुपश्लोकयन्ति ।
केचनोपलचयरचितकुण्डिकाप्रतिष्ठापितस्य महामहिम्न शिवस्य समर्हा विदधति । कच्चन
ऋद्विसिद्धियुतस्य भगवत करिधोत्रस्यान्तरायनाशका स्तवा पठ्यते । इतरत्र काष्ठपीठ
विराजितपित्तलगुभासनस्य श्रीलङ्घनस्य पादोदक जरीगृह्यते । अन्यत्र पार्श्वकुच्यन्त
प्रविश्य सिद्धराहितविद्वद्भिर्भासिवणमालाया, केशरिणो लावण्यधराया कण्ठराया
विराजमानाया निश्चलरूपाया भगवत्या जगद्गम्बिकाया पादयोर्निपत्यते । सम्मुखे
वास्य भवनस्य काष्ठपीठप्रतिष्ठितपुराण, श्मश्रुनिचितमुख ग्रीढ जसराम इत्याख्य र्मा
भगवच्छङ्कराचार्यकृता गीति गायन्नासोत्—

जय नारायण । जय गुरुपोत्तम । जय वामन । कसारै ।

उद्धर मामसुरेशविनाशिन् । पतितोऽहं सत्सारे ॥१॥

दीनोद्धरण । नरकरिपो । नर । केशव । कल्मषहारिन् ।

मामनुकम्पय दीनमनाथ कुरु भवसागरपारम् ॥२॥

जय मुकुन्द । राधावर । सुन्दर । जय शिशुपालविनाशिन् ।

नय करुणामय । जय गनरक्षक । जय बैकुण्ठनिवासिन् ॥३॥

त्व जननी जनक प्रभुरच्युत । त्वञ्च सुहृत् कुलमित्रम् ।

त्व शरण शरणागतवत्सल । त्व भवजलधिवहित्रम् ॥४॥

जय जय देव । गयासुरसूदन । जय मुरमधुहन् विष्णो ।

जय लक्ष्मीमुखकमलमधुव्रत । जय दशकन्धरजिष्णो ॥५॥

पुनरपि जनन पुनरपि मरण पुनरपि गर्भनिवासम् ।

सोढु नाल पुनरपि माधव । उद्धर मा निनदासम् ॥६॥

यद्यप्यहं सकल कलयामि किमपि हरे न हि तत्त्वम् ।

तदपि न मुञ्चति मामिह माधव । पुत्रकलत्रममत्वम् ॥७॥

अपरार्धं मे मुरहर । परिहर कुर्वे चरणश्रयणम् ।

संसारार्णवतरणे करुणाचरुणालय । भव शरणम् ॥८॥

जनकसुतापतिचरणपरायणशङ्करदृढपरिगीतम् ।

तारय नाथ । परं पुरुषोत्तम ! मां भवजलधिनिपीतम् ॥९॥

तत्रयादृच्छाया यदा रात्रौ पठन्ति स्म, सूर्यं उदेति स्म । तेषां शान्ताभ्यासः शुद्धः शुद्धः, शुद्धभक्तिः स्वयं पूर्णा, निवसन सरल विनीतम्, वचनावली मधुरा भोजस्त्रिनी, स्नाथं पानञ्च देश्यं साधारणमासीत् । ईश्वरभक्तिस्तेषामीदृशी यत्ते षष्ठैः शिवं स्नापयन्ति स्म, विविधनियमव्रतानि, पालयन्तिस्म । तेषां सद्व्यवहारोऽविनीतात्ममयतिस्म, तेषाञ्चेतौ नैरविरोधेन श्रम्यमासीत् । ते परस्परं मात्सर्यं न कुर्वन्ति स्म । सङ्घपाठिभिः पाठ्यार्थं चरितुं, प्रोचान् विनीतभावेन सकृत्, ते जिज्ञितव्यार्थमादातुञ्च ते प्रवीणा आसन् । पारस्परिक प्रेम तेषां जीवनकालस्य विशिष्ट आनन्द आसीत् ।

मध्याह्नसमये सस्त्रिंशदात्रैः सक्रियमाणोऽभुक्षि । पाकशाला स्वस्वीयसी धूमपूर्णा चासीत् । उद्धृतीदनाः स्वाद्य एकत्र निहिता आसन् । भोजनभाजनेषु एकैक द्वौ द्वौ वापूषी, सूपः, स्वात्मोदनञ्च परिवेष्टितासीत् । महामयेक भोजनभाजनं दत्तम् । सत्यं वच्मि, यथा स्वादुत्वं तस्मिन् भोज्ये आसीत्तथा नाद्यावधि मयास्वादितम् । यतो भोजं भोजं भोज्यं घृतमग्निं, पायं पायं कौण्डं पयस्तृप्तिं नाथ्यगमम् । तद्भोजनसम्पदि तव सर्वा भोजनरचना व्यर्थतामुपयन्ति ।

सायमभूत् । अहमुत्थाय दक्षिणदिशि अध्यापनभवने तूलिकोपविष्टान्, महोपबर्होप-
वृद्धितृष्टदेशान्, मुखरमुत्तान्, पवित्रधर्मकथान्, परिहृतलौकिकनायान्, धर्मसायान्,
सरुरक्षरसन्तुष्टान् मलयजचर्चितप्रलम्बभास्वरमस्वरान्, त्रियम्बकविभूषितवपुषः, पुषः
समस्तशास्त्रयाथातथ्यस्य, सर्वतन्त्रधीरधिषणान्, प्रसारितैकचरणान्, शान्तान्, दान्तान्,
व्याकरण-सदकारफकिङ्कामञ्जरीमधुलिङ्गः प्रकाण्डकर्मकाण्डसरोराजिताजहसावर्तमान्,
अनाचारप्रचारधुरीणतृणधनञ्जयान्, धर्मचक्रकरीपाद्गुणुष्मणीन्, जगत्तिरुविपज्जलद-
घटापहरणमातरिधनं, सेवकजबैभातिकवायून्, कासयस कुमुदसान्धवान्, सहृदयधन-
पुत्रपेपीयमानजोगीयमानानन्दगुणगणान्, इन्द्रानिव बुधवसूज्यमानपादपान्, परमेष्ठिन

पण्डिताः—भवद्वत्तरेक्षामु त्रिलोकीराज्यमुत्तं पश्यामः । (क्षणं विरम्य)
परमन्वीवसी वाचा, अर्हस्व चर्ता तु न निवारयति कोऽपि । त्वय्यं वाच्यं केषा
प्यवहतिः ।

अहम्—एदपूत्यै अलब्धाज्ञानां नः क्व वरर्षमनर्णान् भूभूषि शरीरम् ।

पण्डिताः—किमिव कथयानः ।

अहम्—देव ! अहमपि अस्माद् दिनार्णवादि-संस्थितानि, ममाप्युदारो भविष्यति
कदापि ।

पण्डिताः—एदाराः, (घटीवन्त्रं पुस्तकमावलोक्ष्य गणयित्वा) आमुदतिस्तु भगवती-
प्रसादान् शीघ्रमेव, परमेष्वेव दिनेषु कु-ञ्जनपि लभ्यते ।

अहम्—देव ! देवेभ्य दीयमानं सर्वं सहिष्ये ।

सायं सन एव छात्रा प्रचुरभनपर्यध्ययनाः धनमपनेतुं, शीघ्रं निर्वर्तयितुञ्च
गच्छन्ति स्म । अहमपि पण्डितवरान् गिरसा सादरं प्रणम्य सतीर्थ्यैः सहगमनम् ।

छान्नेषु बहुष्वपि ॥ एवमुद्यया आसन्, ये पण्डिताग्रमन्तिके दृष्टाः । एते सुधर्म-
धीमन्ता इन्दारकगिरा वनमपि नगरयन्तः, हास्येन, क्रीडया दिनभ्रममप्यन्यतो विचरन्तः ।
व्यचाराय विलक्षणपुद्गलो विद्यार्थिनः ।

शीघ्रं निर्वर्त्य परारुतास्तेऽहमपि । विद्यालये टतस्तः, उपभित्तिं स्वल्पद्रवा
कृपाशीत् । अमृतनधुरवल्ग्वं पल्लवम्—कुण्डम् । उपरूपि पुष्पविटपाः सुगन्ध
विकिरन्ति स्म । छान्नेषु विधौ व्यापृता अन्तेवातिनः । विद्यालम्पूर्वदृष्टिं मङ्गलम्
आसीत् । वैद्यानरे पयःपूर्णानि पात्राणि सन्तानिक्रिया राजन्ते स्म । तैलक्रिष्णान्द्वानाः
दग्धे पट्टिद्यायाश्च दग्धाः । व्यायामो जीवनं प्राप्तिमानस्येति छात्रा व्यापच्छन्ते स्म ।

पूर्वगणः । प्रथमतस्तु अनावस्थानिशा, द्वितीयतथ नेषावा महासन्नेहम् ।
प्रथमम् । यथा विद्वद्व्यात्रिका नेषाः सद्भिर्भूय कञ्चलायन्ते ।

अहं धूमशच्छीपयिकावासे^१ जनवाक्षम् । स्वार्चं रजनीयं विरलजननेवासीत् ।
जनैश्चर्यान्तारं आगच्छन्ति स्म । प्रकाशस्त्वनेषु दग्धाः प्रदीपा दग्भिः सहवैभं
विषयं तनसा सुपन्ते स्म । दग्धाणोपोऽमृतः । इतो जन्तुदुः प्रवदितः । एका

इव ह्रमभ्यसारित्रीकान्, विष्णूनिव द्विजेन्द्राध्यान्, शिवानिव लघ्वनिभूतीन्, भवभूतीन्,
कलिदासान्, त्रिविक्रमान्, रामानिव शास्त्रार्थमवनिमुपागतान्, कृष्णानिवार्तुनसम्पृक्तान्,
नारदान्, श्रीमन्मृपतिमुत्कृष्टायितवीरबलविपुलोत्सकासलज्जतरलो रुथीगद्गासिद्धशासित
बोकाभेराज्यान्तर्गतददप्राकारवेष्टितभास्वद्राजदुर्गराजदुर्गस्य, शिवाधिष्ठितेशानकोपविस्तब
मानच्छान्नपूरपुरितान्त करणसदर्मनिधनधरणदध्वस्यमानधर्मशरणप्रतिष्ठितवराणार्थामिदमात्र
शास्त्रमर्मच्छान्नवारणसजिलयटीकमानीवेदवेदाङ्गविद्यालयप्रधानाध्यापकानपश्यम् ।

नय पारायणिका पुस्तिका उद्घाट्य स्थिता आसन् । मां तथा स्थित धीर्य तेपा
मेकतममाहाचार्य — 'ननु रामचन्द्र । पृच्छ, कोऽयम्, कुत समायात, किमिच्छति ।
आकृत्योच्चजातिरिव प्रतीयते' ।

हठोरुवक्षा, प्रभाविललष्टचन्दनो, व्यायततनु श्वेतवासा, नि सरच्छमध्र, सतत,
शास्त्राध्ययनाविलया बाण्या सप्रश्रयमाह स — 'पान्थ' । कुत समागमन, का च
जाति 'अहम्' 'विकूरादागमन क्षत्रियोऽस्मि' इत्युदतरम् ।

स च तदेव वाक्य विपश्चितामपधिमाना पुर प्रापयत् । अहमपि विमूढ इव
स्वत पादो विक्षिपन् तेषामन्तिकमुपगम्य प्रणम्योपविश्यावादिषम्, 'भगवन् ! कामपि
हृदयान्तर्वर्तिनीं वार्तां चिकीर्षामि, यदि

अथ ते मामजानन्तोऽपि स्वसीजन्य प्रकटयन्त आवश्यक कार्यं विहाय
ग्रन्थपरिधमभ्रान्तमपि ससत्त्व गौर तेषामेकतम कथयामासु —

"सोहलाल । मञ्जत धूय ध्व प्रातरेवागन्तास्थ"

अथ उन्मनस्के तरिमन् रामचन्द्रेण, अपरेण चाज्ञाताभिरूपेण सहपाठिना, पाठन
भवनाञ्चि'सृते स्तिग्धया वाचा पीयूषमिव वर्षन्त शुच्यन्तो मद्ध दयहृदभूमि वचननेष
जलैरापूरयन्तो मा जगदु 'किम्मानाह'

"भगवन् । दु खस्य परा काष्ठामनुभवामि" ।

'एवम् ? हस्त दर्शय'

अह तेपा पुरतो हस्त प्रसार्य सङ्मेशिकयाऽवाञ्छलोक यत्ते क्षण विचार्य हृष्टा इव ।

पण्डिता — क्षत्रियोत्तम ! इमां का दशमनुभवसि । शास्त्राण्यधवाऽयथाथानि ।

अहम् — कथं देव ।

पण्डिता.—नवदलरेखासु निखेदीराज्यसु पद्यामः । (क्षण निरन्त्य)
परमगीवर्ती पात्रा, अर्द्धस्य सत्ता तु न निवारयति कोऽपि । तस्य वाच्यं केषा
व्यवहतिः ।

अष्टम्.—उदरसूत्रं अलम्बाधना न. इ घर्नरसनर्गभ्रू भङ्गनूनि ररीरम् ।

पण्डिता.—किमिव कथयामः ।

अष्टम्.—देव ! अहमपि अस्माद् दिनाल्लंघनिसिखरिष्यन्ति, ननाप्युद्धमो भविष्यति
कदापि ।

पण्डिता.—उद्धारः, (घटोचनं पुस्तकधनलोका गच्छित्वा) अमुकवित्तु नगवर्ती-
प्रसादात् सोऽत्रैव, परमेष्वेव दिनेषु दुःखमपि दृश्यते ।

अष्टम्.—देव ! देवेन दीयमानं सर्वं सहिष्ये ।

साय सन एव छात्रा प्रचुरभ्रमपर्मभ्यचनाः भ्रमनपनेषु, औच निर्दलंतिव
गच्छन्ति स्म । अहमपि पण्डितवरान् गिरसा सदर प्रपन्न्य सतीर्थैः सहगमम् ।

छनेषु बहुष्वपि स एव मुक्ता वसन्, ये पण्डितानामन्तिके तृष्टाः । एते सुबन्ध-
वीर्यनन्ता वृन्दाकनिरा वनमपि नगरान्तः, हास्येन, कंठ्या दिनभ्रममननन्तो विचर ।
मचरण विच्छन्नपुद्गलो विगर्हितः ।

औच निर्दलं पण्डितास्तेऽहमपि । विद्यालये उत्तम, उपरिगति स्वयंशला
बुध्यासीत् । अमृतनुरज्जलस्य पञ्चलम्—कुण्डम् । तरूनि पुष्पविदराः सुगन्ध
निरिच्छन्ति स्म । सान्ध्ये विधौ ध्यायता अन्तेवासिनः । विद्यालयपूर्वदिशि नवदल
असन् । वैद्यानरे परम्पूगानि पात्राणि सन्तानिक्रमा रात्रन्ते स्म । वैद्यनिष्ठाशान्ताः
दग्धं वृद्धिमान्नामः । व्यायामो शीघ्रं प्रणिमानस्तेति छात्रा व्यापच्छन्ते स्म ।

पूर्वपणः । प्रथमतस्तु अनावस्थानिशा, द्वितीयेन मेधाया महासन्नेहम् ।
प्रथमम् । यथा निद्रान्निद्रा मेधा सद्भिन्ना कञ्चलान्ते ।

अहं धूमशब्दोपयिक्तावाते^१ व्रमन्नासम् । म्याल रमणीय विरज्जनमेवासीत् ।
अनेकशर्ण्यातार आगच्छन्ति स्म । प्रकाशस्तम्बेषु छात्राः प्रदीपा दग्धनिः सहयोग
विधाय तमसा सुषन्ते स्म । पट्टाधोषेऽहम् । इतो जन्मसुखं प्रवर्धितः । एका

उद्धमविधमा प्रासस्त् । क्षणेन धरु-धकायितधरणी, पथिकशोकहरणी, दिक्किणीव
अभीष्टदेष्टप्रापणतटी शक्यते समेता । अहं प्रथमधेन्या आवासेऽविराम् ।

शतश उन्नेप्रधारिण्यो रमण्यो वातायनेभ्यः प्रेभन्ते स्म । दैवाद्विद्यालये मया
वज्राणि प्रक्षालितान्यासन् यतः कोऽपि पृच्छको मां चिटिकयै नाखेदयत् ।

*

*

*

कान्तारम् । बहुशोऽवलोकित्वा सान्द्रा इमावली । दूरत एव इमदलमप्यतो
दृश्यमानं रक्तपत्रजं सस्यं कृत्वाहमचलम् । गच्छत्यन्तरे परमरमणीयं मन्दिरं
प्रोचभूमौ शिलाशकलानि सौन्दर्येण न्यस्य विरचितमासीत् । अग्रे च
प्रत्तरमयं कूटिर्न यत्र सदस्यो मनुष्याः स्थातुं शक्नुवन्ति, नवीननिब
प्रतीयते स्म । श्वेतमसृणपापाणसम्पादिता द्वारशाखा, शिल्पिसम्पादित कपाटयुगल-
मासीत् । मन्दिरमनारुतमेवासीत्, अहमन्तरविरामम् । सुन्दरं विशालमञ्जिरम्,
नभ्यानि भवनानि, चेतोविकर्षि च सभाभवनमासीत् । मन्दिरं भगवत्याः शाकम्भर्या
आसीत् । पवित्रमूर्तिः पूजकश्च स्वकीयमनुष्ठेयं निर्वर्त्योपविष्ट आसीत् । परमातिथेय
॥ मदीयं वनोचितं सत्कारं विधाय मदुत्तमपृच्छत् । अहमपि सर्वं विशुद्धभावेन
न्यवेदयम् । षण्महाम्बिकाचरणधारणो मदुत्तमपृच्छत् स मह्यं मन्त्रमेकमुपादिशत् ।
सताहं यावत्पूजकाक्षया कृतार्चनजपपण्यानोऽस्त्वायं बन्धुं पूजकं प्रथम्य, लब्धाशी,
मातृमातृविभूषितकण्ठः प्रसन्नमनाः प्रातरेवैकं पन्थानमभिधितोऽचब्दम् ।

सायंकालः, प्रभाविभासी भास्करो विरहितां पश्चिमाशामालिङ्गयारुणिम्नाऽऽचक्रमे ।
विदूरतः सवरणसमुच्चनेव करिकुम्भापातसहाभ्यां जटिततीक्ष्णायसशूलान्यामान-
साभ्यामावृताभ्यां कपाटाभ्यामुत्पाटितगुप्ताहस, हसन्तमिव वीरगणं वीरेण, प्राणापहारक,
नीलशिल तोपकोपसङ्कोचकं गोपुरमपश्यम् ।

बहिर्विस्तृते चतुष्कोणे क्षेत्रे नमनिर्लिखितानां रक्षकाणां चन्द्रहासचमत्कारै-
रायसान्यप्यरराणि राजतानीव राजन्ते स्म । पन्थानमभितः शीतलच्छाया सान्द्रा
इमध्रेणिः । प्रतिद्वर्गं मारुतप्रभया दुर्व्या ललितानीव ललितालवालानि व्यद्योतिषत ।

“रक्षकाः” मया पृष्टं ‘क्याऽऽख्ययालङ्घ्यतेऽदो नगरम् । कस्य च दशस्या-
नृ’ ! कानि चाक्षराणि यमाप्य धन्यानि भवन्ति !

ते मामहमहमिक्या व्याजह. —“पान्थ ! चित्रपुस्ताम्नोऽमुष्य नगरस्याधिपतिः
यमपिबक्ष्यं श्रीमान् कन्यापतिह, वंशिष्य प्रवेद्यान्नास्यते” —इति

रात्रिर्मुक्त व्याश्व विरद्विपिने वेगेन धावन्ती समापतत । अह नगराद् बहिः किन्तु
द्वारस्यान्तरेकरिमन्भग्नवने शयनमुपाकृत्यम् ।

अकस्मादेकस्या अट्टालिकाया, गीतध्वनिमधौषम् । कापि विभोगिनी विमुक्तवाय
गायति स्म ।

प्रियवर ! पातं नेत्रयोः

मम चेतोऽतिव्यथते (स्थायी)

अरे बधिक ! अयि निप्टप ! मम वृद्धार्यकिशोर ।

मश्चितं जलतो हरन् बं कुत्र गतोऽसि रे चौर ! (१)

मोहकमन्त्रजशीकृता प्रिय ! भयव्रीक्षणतः

पित्रशास्त्रि गतचेतना जहा प्रेम्णि पवित्र ! (२)

त्रिहुयामहमातुरा न प्रियमेलनमास

विरहाग्निस्तुदते तनुं निवनं यामि निभास ! (३)

विलक्षण कारुण्यमासीदस्यां क्रन्दनगीतौ यतौ मदीयं पापाणमय हृदयं दुःखायात-
सनं शतं न भवितुमचेष्टित । चतुर्ध्रस्रोतः सारयामास, त्वपुरवेपथु सरयम् ! दुःखैव
दुःखिनो दुःखमनुमातुं शक्नोति ।

यनिप्रासादचित्रधालामि सचित्रदासाच्चित्रपुरम् । वैयाकरणकाव्ये रसानुभूतिरिव
क्वचन वचन प्रथ्यते स्म जवावस्थितिः । भोजनप्रिये विप्रं ननस्वितेव नेक्ष्यते स्माऽऽह्लादः ।
मुनिज्ञे वणिगिव दुर्लभदशमासीन्नगरम् । सरस्तु न ननोमोहिनी मन्जुशोभाऽनपीयानेषु
छात्रेष्विव । मुनं सुपमया सह मुरपुरमिव यात प्रतीयते स्म दीव्यता चरित्रमिव ।
रसिकानां सरतावासश्चा कुशा कपोतानां गुहृतिगुहृता आसन् । स्रोतांसि, येषु नभोविम्व
दृश्यते स्म, मलिनान्यासन् । मधुमधुररावापां कण्डहसानां वारिषु क्रीडा सत्रीढेवासीत्,
न चासीदस्र्वादितमकरन्दानां पुष्कोकिलनां रसालकल, प्रायशः पन्थानः शय्याहता
न स्पृशनीक्ष्यन्ते स्म । क्रीडागृहाणि यत्र पुण्या अहमहमिक्या आमोदविनोद-

प्रमोदिन प्रतिशुक्क योद्ध युध्यमानाश्च द्रष्टुं समवयन्ति स्म नामपट्टिकया लक्ष्यते स्म । गोपायिकानां प्रसन्नहृदयोद्गाररूपा गीतयो वीता आसन् ।

पूर्वरात्रमतिवाह्य मध्यरात्र आयन्नासीत् । तीक्ष्णरसो वायुरशरयुतः । आदिलिङ्गनी शारा से^१ मुखं सुता । पयिकानां स्मिन् प्रहरिणामपि यातायातोऽवर्द्ध आसीत् । ससरणदीपा मूकमुनय इव बलिङ्गता मरा इव च निधला आसन् । एका स्वप्नभग्ननिद्रा सुप्ता विधवा विदूरे^२ बलपत्, परन्तु घातनिघाता निरुद्धमिव प्रतीयते स्म ।

निशे । हे आलि । नाथ कास्ते मे^३

सुमास सुखनिद्रया,

निद्रा स्वप्न । जहर्ध (स्थायी)

रे । स्वप्नाधम । वथ्वक । प्राणास्ते वियुनक्ति ।

स्वप्नारे । दुष्टासत्य कथं दृष्ट ॥१॥

मन्वस्मितसुधया हरन्, मन्त्रासादसुधाम् ।

^४ विदुतवर । नाक यातोऽसि ॥२॥

स्पर्शेनाह विपुलयन्, यन्नवधीरितहस ।

हताशा मुत्तवा यातोऽसि ॥३॥

मुकुटे बीक्ष्य मुखं मयाऽभूषि शरीरं हन्त ।

^५ वदनजितनीरज । यातोऽसि ॥४॥

भृशदुःसाह चन्द्रिके । मयि दुःखं माऽऽधेहि

हितायासनीय भगिनि ॥५॥

नासि तमिस्रा यामिनि । रुचिरादा न श्रुतासि ।

दयितवरमयि । दयिते देहि ॥६॥

१ राजस्थानी गीत 'ऊ बाए रानी पिया मिलादे ऐ ।'

२ शहीद ।

जलमग्रा अभवन्मम आशा प्राफस्फीव १

मृत्यो ! चरणौ ते शरणम् ॥५॥

एतस्या धनिनी च ऋणामयी हृदयसाक्षिना चासीद् यत् पर्वता दनन्ते स्म, सिन्धवः सन्तुष्टान्ति ॥५॥ । ममापि ससारोद्विग्नस्य विरक्तस्य हृदयचत्वरं दुःखस्य दृश्य चकार ।

नगरं कदापि ज्ञानविज्ञानेन कलया विख्यातं भूतं भवद्, परमेश सुवस्थम् । मन्दिराणि, विद्यालयाः, पुस्तकालयाः, प्रदर्शनालयाः, स्मृतिभवनानि च दृष्टिपथमागत्यापि न विभाव्यन्ते स्म । अफुलितमनसा मनुष्याणां सुखकमले शोककालिम्बे कला जलि कृतमिति स्म ।

एतददर्शनासह्यलिकास्रमत्रवापनप्रवाहसिन्धुवधस्रः, श्यामलवसना, अनलद्वारा, मृतावरणद्वारा, दद्याद् दृश्यं मनसिजमपि जीवयन्त्यो विधवा विविधवियोगवृत्तेन जगद्वेदं ब्रूवन्ति स्म । ससरणेषु सङ्करसङ्घति, शून्यगृहनिवासीत्यातथ्येन नगरस्य स्पष्टा दयामुन्मेषोपयन्ति स्म ।

पारावतपुरीपद्मव्रीहृतप्रान्तेषु निधान्तेषु दीर्घसूत्रनिगूढनिगूढलम्बन्ते स्म कन्दुकानि । शून्यापनेषु रासभा रास रचयन्ति स्म । व्यावहारिका मलिकाभिर्नुज्ज्वन्ते स्म । दलकपु गायन्त्यु, गुह्यमुरेषु रसिकेषु कपोतेषु तालविपुलेषु, शिवा वन्य वादान्, श्येना उपहारान् वितरन्ति स्म । महान् महाकातोत्सवः, कथं व्यपेतमु दव प्रकीरते पुरमिति चिन्तयति मयि समभ्रूयत प्रचुरकण्ठं समबिम्बेन्दनं हा ! पुनः ! इति प्रचुरं रोदनम् ।

दुःखी सर्वं विश्रमेव दुःखि पश्यति । नश्युनकलत्रोऽहमपि स्वजीवनेन परदामा मौल्यमविर्हापुंरभिक्कन्दत भट्टिति प्राटिप्रम् । परन्तु पथ्येव एकस्मात्पार्श्वे गृहान्निर्गत एव विखागीतप्यनिमा व्यलम्बयत् ।

हा ! गतः कासौ प्रियो मे कृष्णकेशैः शोभितः (स्थायी)

यं विना सततं भजन्तो दुःखपूर्णं दुःखिता ।

मामनाथा हा ! त्रिहाय, सोऽजगद् भृशमर्थितः ॥१॥

चन्द्रभासिललाटपट्ट, शुभवारिजलोचन ।

रम्यतैलसुगन्धिमूर्धा हन्त । दव । समापित ॥२॥

मच्छिर स्वाङ्गे निधाय लालयन्त सत्पतिम् ।

हा । लभे काह हताशा हन्त । वत । हा । हा । हत । ॥३॥

श्वेतपद्मशिरुरुहा श्वभूर्मदीया त्वद्वृत्तिम् ।

याता भवन्त द्रष्टुकामा नाथ । नाथय वागित ॥४॥

तानि पूर्वदिनानि चित्ते, हा । विचार्य करोमि किम् ।

श्रीनिवाससुशान्तरूप, सनमामीशं सत ॥५॥

कल्पय। कष्टकितचेता अभ्याकन्द गच्छन्नेक भव्यभावन सज्जनमन इव विशाल
स्वरक्षण गृहमपश्यम् । नूतना रसालमर्णसज्जोऽशुष्कानि सिन्दूरकुङ्कुमस्वस्तिक
चिह्नानि अर्द्धमुच्छिता कदलीस्तम्भा पूर्णा जलकुम्भास्तस्याभिनवा वास्तुप्रतिष्ठामसूचयन् ।
शतश क्लिप्तचक्षुषो धैर्यधरा नरा विनता विनिताश्च गतागतेन देहलीमघर्षयन् ।
अस्मिन्नेव प्रावप्राव जना क्रन्दन्ति स्म ।

अथाह विपुलविचारो विप्रप्रासादार्जियत कस्माच्चिन्नुरज्ञासिप यदि जनपदगुरो
वैवविदुष कर्मशौण्डस्य विप्रस्य भवनम् । अस्य वैक एव पुनो युवा । एष एकदा
लोकमन्त्रे सर्वहितैषिसभाया स्नातन्यमुपदिदेश । अतोऽयं शङ्कितमनसा जनपदाध्यक्षेण
तिगटितुमाश्रितोऽयस्य मृत्युदण्डाय कल्पयिष्यते । निर्दोषोऽयम् । नवीन हर्म्यमनेन
निर्माणि । श्रुत्वा पलीपलितो धवलमूर्धा चञ्चलप्रीवोऽरदनवदनो यद्विभूताङ्गयद्विभंग
वत्सहायोऽस्य पिता । अपवेना विलसत्रवणशक्तिर्जस्ती जननी । सम्यगजात
यौवनवनविकासा हन्त । हताशा नवोद्य कुलीना सुन्दरी चास्याप्रज्या धर्मपत्नी, सर्वेषा
मेषामाश्रय एष वेदविद्याविचक्षणोऽयं विप्रस्यते विप्रयुवक इति दुःखितानां बाष्प-
मात्रेण सदातुभूतिं प्रकटयति नागरिको जन । किं न पश्यसि । एता सर्वा विपुलवैभवा
भट्टालिका मलिनाम्बराभिर्विधवाभिरेवाध्यास्यन्ते । सदस्यो युवान स्वतन्त्रतासम्प्राप्ते
दसकुनेत्रवोद्विष्टा पाशेन यमावास प्रेषिता इति ।

राजपथ एव विप्रप्रासाद पार्श्वे चासीत् सर्वहितैषिसभाकार्यालय । अह तत्र

प्रविश्य जवनिकाच्छप्रद्वारस्य गृहस्याग्र कृष्णकाष्ठपट्टे “प्रधानमन्त्री” इति पठित्वा “अन्त
रागन्तु शक्नोमि महाशय” इति शृङ्गा तेन “आम् स्वरम्” इति प्रत्युत्तरितं प्रविश्याद्राक्ष
यदेको वृद्धः समाप्तसप्तमीक एकस्मिन् भग्नमलिने पीठे उपविष्टोऽस्ति । भित्तौ च लोक
नेतृणां नटितभुक्तानि चित्राणि ।

अदृश्यं प्रणम्य भूतले उपविष्ट “भगवन्, कथं केयं दशा नगरस्यास्य”— अप्यस्ति
कथनं शासकोऽस्य नगरस्य ?” इत्यप्राश्नम् ।

“अस्य नगरस्य शासको द्युमनिवश्य कल्याणसिंहो नाम प्रख्यातपौरस्यो वीरेषु,
शासनव्यवस्था चाद्यतनेषु दिनेषु नगरस्य प्रजीना —मद स उदत्तरत् ।

“यो नाम्नैव केवलं कल्याणसिंहं पालकम्मन्यं सूयवश्यं सशक्तिं दुरवस्थस्य राज्यस्य
रक्षायै असमर्थो मुपैव क्षत्रिय उच्यते । तस्मिन् जीवति जायति वैदेशिको राष्ट्रं
विपश्यति, तस्य कीर्तिं कलङ्कयति, क्षत्रियत्वं व्यपाकरोति, किम् जीवनम् ! धिक् चास्य
‘प्रजाहितव्रतिनो वयम्’ इत्युद्घोषः । यथा हरिणप्राणहारी हरिर्नृगेन्द्रस्तथायमपि
क्षीय कल्याणसिंहः” ।

प्रधानमन्त्री०—नेतृत्वं सत्यम् । शासकस्यैव बलवान् कृतकृत्य एवासीत् । परमधुना
वृद्धः । केन्द्रं गोरान्नाधीनम् । किमयं कर्ता शक्नुयाद्वरकः । शासकश्चैतस्य न
परम्पराप्राप्तं किन्तु बलाधिगतम् । तदाहं शिशुरेवास्मिन्, मम पिता कथयति स्म यदस्य
नगरस्य जनसंख्या लघुन्यमितासीत् । एको राक्षसोऽस्मिन्नगरे समायज्ञासीत् । यावत्तो
नगरस्य सम्मुखं समागमन् सर्वानभक्षयदमारयच्च । अत्रत्ये नागरिके पलाय्य
नगरान्तरं गतेऽपि राक्षसोऽस्मात्परत्, अतोऽनृत्या ज्ञापि स्थानं न लभन्ते स्म ।
एकदा एतत्प्रदेशाधिपेन राज्ञा “वदेयं कृते कतिपर्यैरेव दिवसेज्यध्वजं शून्यराज्यो
भविष्यामि” इति विचार्यैव प्राबुध्य यत्, प्रत्येकं गृही प्रत्यवसरं राजाज्ञानुसारं निशीथे
श्मशानशिलायामेकं तरुणं मासलं महिषं सपादमणमितं मिथ्यजमेकं नवीनधातुं युवानं
(न ॥ स्त्रिय) प्रहेयाद् इति ।

राजा प्रतिदिनं रक्षोभक्ष्यमानुषद्वारां प्रार्थयत् च “मा नाम राष्ट्रं नाशय” इति ।

राक्षसोऽपि तत् प्रभृति अप्रयासप्राप्तमश्नन् प्रासीदत् ।

एकदा दुर्भाग्यकृष्णाहिदुर्दं ध्वादस्यैकस्य व्रज्याणस्यावसरं आसीत् । वृद्धस्यैव एवासीत्

पुनो वृद्धाया मातुर्युवत्या स्त्रियश्च कमाथ समाश्रय । अयमस्माकमद्यतनो राजा
 तदा कस्यामपि सेनायां सैनिकोऽविकारिणोऽसूचयित्वाऽऽगतो विधान्तथासीद्
 विप्रगृहे । अयम् युवा क्षात्रभावोपपन्न कल्परोदन ध्रुवोद्विग्न उत्थायाश्चयद्
 यदेततोऽधस्तोत सारयन्, भित्ती रोदयन् निरुद्धगद्गदवण्डो वक्त्रमशक्तोऽपि वृद्धो
 'हा ! पुन, तत्रोह यास्यामि रक्षोबुभुक्षामौ ख होष्यामि त्व मा गा ' इति विलपति ।
 पुन ! अवगतलोचना मुलोचन ! को नेष्यति नयम् । सम्भाषियति भाषणदक्ष ।
 सुख प्रक्षयति पटो । हा ! हतास्मि बटो । अमुष्मै दिनार्यैव पालितो दुग्धघृतसेवनेन
 हा ! सूनो ! इति समस्तकृताडन रुदती तमाताऽऽनुरासि । अन्यत प्रिय ! प्राणेश्वर ।
 मन्त्रयनचन्द्र ? अविदितजगदानन्दास्मि ? हा ! ह त ॥ भवन्तमन्तरा कथ
 द्विविध्यामि, अवेध्यामि स्वामिन् । भवन्त स्वामिनोऽनुज्ञा पालयन्त सानन्द गच्छन्तु
 हा ! प्रिय ! इति प्रचुर चीरकृत्य ससक्ध्युरशिरस्ताडन रोक्ष्यमाना युवकाङ्गनऽ
 ज्ञानि भुवि लोठयति । एकतश्च समूर्पवे विप्रबालकाय राक्षसतृप्त्यै चीरललप्रस्फोटितस्य
 'तितज्जविशोषितस्याक्षस्य रसवत्या' बल्लवैरन्तिकाया' मधुर क्षरदाज्य भक्ष्य निर्मायते ।
 एकतोऽलिङ्गरेपु', पिठरेपु च 'ऋजीपपक्षव घृताक्त सोपस्कर सचक्रवेल्लजाजाजीक
 विश्वमेपजजलामिध बाह्मीकगन्धि सनिशाह' साक्षीव राक्षससम्बन्धि मिष्टान्न निष्ठान्न
 परिवेधते ।

विदलितभीरुधैर्यं दुस्तिना दृश्यमदो वीक्ष्य समुपजातदयो गृहाजिरे निश्शङ्क
 भ्रमन्, घराह्ण दृष्टो गम्भीरवाचा तान् सम्मुखयन् प्राबोचत्—'मा शोक काष्ट,
 यतो मृतसकलदुःखोऽहं ससारे निवृत्तजीवितेच्छो मरणमेव ध्रयो म ये । अनुना नभ्र
 शरीरेण ईदृक्ष सदसत्त वदापि न लप्स्यते अतोऽहमेवाद्य तस्य रक्षोराजस्य
 भक्ष्यभूयोपैष्यामि । रुद्धो । मा शोचतम् । भवदाशाकृताश्रय पादप सुदृढमूल
 चिर स्वैर विलसतु । गवोदे । मा स्म तनु शोकाग्निसात्कार्यो, न वियोक्ष्यसे । पत्यु
 जीवनोत्सव विधेदि इति ।

रुद्ध — कस्त्व देव । एभि सुषामधुरं शब्दै सिम्बन्नागतोऽसि स्वर्गत । परन्तु

१ चालनी । २ सूफकार । ३ शुचि । ४ महाकुम्भ । ५ तापवाहन 'तवा'
 ६ सलवणम् । ॥ तेमनम् ।

महादाय ! अहं भारतीयः स्वस्य सुखस्य कृते न क्वापि दुःखयिष्यामि । मयानपि स्वर्गदारीरुः कस्या अपि अद्भुतपुष्पं सौभाग्यसिन्धूरं नयनोत्सवश्च । अहं स्वनेत्रे शोषयित्वा परेषां नेत्रे नार्द्रयिष्यामि ।”

“अहं कल्याणो नाम धन्विषकुमारो धनंति न कमप्यात्मीयं पश्यामि । मां मृतं विज्ञाय न कश्चन नेत्रे आर्द्रयिष्यति । भारतीयधन्विषस्य कर्तव्यं मां विवशयति यन्मयि शतैतद्वृत्ते जीवति विप्रकुमारं हन्तुं न कश्चन समर्थः । अहमप्यामीं भारतीयं संस्कृतिं न कलङ्कयिष्यामि ।”

वृद्धः—(वृद्धा लक्ष्मीकृत्य) अहो ! धन्योऽसौ कल्याणः । यस्य नामसङ्कीर्त्तनेन तनुर्जगति स्म, अतिघातधाप्रतिपिद्धो भवति स्म बृहद्गङ्गापरेषापि, भोक्ता भामिन्यो निपातयन्ति स्म गमांनपि, राज्यं सन्देहहर्त्रमेव रष्ट्रा जिगमिषव इवासन्नसवस्तस्यैव नाधितवीर्यैर्यस्य एकोराजस्य पुरः स्वेच्छया प्रमियासति, धन्योऽयं धन्यौ चास्य पितरौ यावीर्यं मुसाहसं पुत्रं जनितवन्तौ यः परये प्रेम्णा वेहं ददपि निहङ्गकारः

अथ ते श्रोत्रचपकैस्तदीयां मुधामधुरां वचस्तति पेपीदमानाः, कथद्वयमपि जातनिश्चयाः कामपि शान्तिं लेभिरे ।

सत्यमभूत् । सञ्जितमभूद् भक्ष्यं परिपुष्टे मांसले मर्दिपे । इतस्ततो मित्राणि भन्तिम-
दर्शनायाऽऽगच्छन् । राजपुत्र्यो मनो मूर्च्छयता, प्राणान् हरता च वचसा राजशासनं सूचयादकार । वृद्धः क्रन्दन्दावितराः पुत्रं ग्राह्यं वृद्धाधनं ? प्राप्तत्त्वमेव । हा ! हा ! पुत्र ! ग्राहि । ग्राहि अहमप्यायामि इति ।

अथ कल्याणस्थानं सान्त्वयित्वा शिलादर्शनाय विप्रविप्रियं विप्रप्रियं समादाय महिष-
सिद्धार्थः सद्यः प्रस्थितो निर्मगो निद्राशोकश्च । गौरिकान्तोज्ज्वलप्रसरणगूर्णैश्च, पिशाचकीड-
कुटिमम्, रक्षां स्थितिभूः, स्थापितमुण्डचक्रा, दुःखदहन्वचसप्रेमसौ, शोणितपङ्कपङ्किला,
नैयायिकवर्णरवि समेतवैयाकरणा, कलुपिता, असिता शिल्पा सत्वायते स्म । एकतो
गोमातुङ्गकुर्वन् शर्यभाषास्थान्यो रज्जोराजस्य सिंहासनमिव मृतमनुष्याणां कीदृशपर्वतः,
कचन निष्पन्ना लता इव सिराः, कचन नूनं सञ्चितनरगोर्ध्वं, कचन भीतलुलाव-
शमलम्, निर्मांसो नरकङ्कालः, कञ्चोस्काकुलम्, अर्द्धमुग्र करोष्टि परशुकृत्तेन पशुंका,

अवदक्ष्य ऊरु, प्राणिप्राणहारिणी भयङ्करा मनस्विमानोदीपनी भीषणा सामग्री । कल्याणश्च विस्तृत्य विप्रात्मज कासार धावयन्, कासार गत्वा पय पीत्वाऽधिगतशान्तिं पथि कर्मचन वराकाय हार्तिकस्य सैरिभ दत्त्वा, शिलाभेत्य अपूपादीनुपबर्हीकृत्याशयिष्ठ । अथ मौनमाकलयति पत्रनिपूरे, अधकारेणाधीकृतास्त्राशासु, किञ्चित्प्रकाशमानेषुदुषु, श्रद्धनमिव वपति विवति, मृत इवेक्ष्यमाणे समस्मिञ्जगति, निशीथदीपेष्विव विद्योत्तमानेषु खद्योतेषु, निशीथप्रायायां निशीथिन्या सहाहाकार रुदत्सु गोमायुषु, सानलज्वाल क्रोशन्तीषु शिवासु, राक्षसागमनमपेक्षमाणे, विचारोर्मिसङ्कुले च कल्याण प्राचलदुत्पातवत् । मन्दरस्य समीर क्षणेन सूक्ष्मदृष्टस्त्वण्वत्ता दधत् प्राधत्य भेजे । प्रकम्पनकम्पिता पादपा सहतोद्दीपमानैः पक्षिभिः सूचयामासु राक्षसानमनम् ।

अथोच्चिद्र ॥ दूरत एवापश्यत्—अशुभदर्शनं निष्केशेन भूर्जत्वक्कातिना विस्फोटकप्रणाद्धितेन रजकस्य वस्त्रप्रक्षालनोपलेनेवाशिखेन शिरसा, निम्नमध्येन अर्भित उच्चैर्न घूर्मरोमराजिविभासिता भावेन, ग्रीष्मर्तौ कूलान्तकृशा कालिन्दीमिव सिकर्तिते भरमपङ्क्तिमिव च दधानम्, विरलवाला धूसरितां भ्रुकुटीम्, शुष्काभुगपादनाणाविव धवणी, क्रूरे गर्तगते वदरबोबोपमिते सिकतावर्णपक्ष्मणी वीक्षण चोन्मोलयत भेकाकारा पृतिगन्धिशिङ्घाणमृतया शैशवेऽथ पतनप्रसृतया शाखामृगैर्भक्षितयेव समुपजत मसुरिकाकिणया बभूव इव मुसृष्टमज्ञायमावभक्षितया विपुलबालया नासिकयोपलक्षितम्, निक्षिताम्रै शीघ्र मासजिष्टया चिकित्सया वा बहिर्निगतैरालोहितसिताशुनाक्षितौ पद्मविषकै रदनैः प्रपूर्णवदनं विस्तृतपुष्टेभयाधर प्रलम्बमानजिह्व हीनहनु सरोवराविव निर्नीरापुण्यदङ्कपुरी गण्डी दधान पुष्पद्वेषिणा पापपुञ्जेनेव आशोहितेन बहिर्निगतेन विरलेन दमधुजालेन व्याप्ताननम्, प्रत्यक्षमीक्ष्यमाणजन्व्यूहया मासादनमासलया ग्रीवयाऽधिष्ठितसहनन पीनेन सर्पप्रतिमेन मर्दिनानेकानेकपञ्चनेन रुधिरादिधेन नखविरर प्रविष्टमासपूतिगन्धिन्या स्फुटनाडकेन भयसन्तप्तपलायितपुस्तोपरोधवेनेव दीर्घेण प्रचण्डेन दोषण्डनानुमितवर्णिप्रदायी परिणादिनिष्केशस्फुटकीकरोरस्कं मनुष्यमहिष मांसापूपादिनिधानमिव प्रलम्बमुदरमुद्वहन्तम्, अमितमासभक्षणनि सृतेन उपह्रियमाण मानवमारणभुगुण्डिकाप्रभागेनेव नाभिदेशेन प्रदेश भीष्यमाणं विस्तृतकटितट करिचर्मा शतगोप्यप्रदक्ष ज्ञानुपात मारितपुस्तोपसुरापातसहृदोस्त्युगलं खर्जरमिव प्रांगु मांस

उष्टप्रवशलिप्तोभयजानुतथा समन्ताद् व्रमन्चरिक् शुष्कस्यतपद् श्वेतनखनपि रक्तनख
नक्षितभुवनमप्यनासभुवन सतत भुजतमप्यलब्धान्न प्रस्फुटविरादिक समलच्छ्वर
भर्तमानव दानकम् ।

यममित धन इव व्याधम्, कुमन्दिन इव कुटपतिम्, असत्प्रतीक्षा इवोत्कोचिनो
न्यायावाधान, १ मुनिमा इव धनिन सहचरा केचिदेककृणा कनिद्मगमनासिका कर्त्तृष्ट
लम्बोदरा अनन्ता क्राणा ककरा कुम्भ गुणोदपल्लवमुत्तमोऽस्तुतनवधोर्ध्वकेशजत-
शला इवैद्यन्त । परिपदिव सज्जनबलपानासत्यभूता, नियमनमयेषोरुदमरूप, वदन्ध
तामिस्रमा, योगिजनसमुद्भूतवात्या देवार्चनप्रचारनौबध्नालयावत्तारिमिका काश्यप्रासाद
भूष्म्यानुकूला दयालुदावागमिस्रमा, विद्यायिकुलकृतान्तरूपा, विपुलमुरा २ अपि सनतनधर्मो
दारुणरक्तपुरा सरा असात् । अग्रे च कालास्यव्युत्पन्नेन ३ आटङ्कनावरणव चर्मणा
सङ्काशरीर, परिपुष्टमासलप्राव, रम्याभुम्रविपाणमण्डलो, रल्लितलिकाममानप्रितरेमराजि
परिष्कृताऽऽज्यसपट्टायितल्लाट, प्रलम्बपुच्छदण्डेन धनता दूरदन् विश्वसद्भावन्, उपरि
विन्यस्तन तल्लूर्णचतुर्वर्तिना स्वर्णशपेन प्रकाशितशरीर समीकृतम ऐरिम चलत्
सानन्द सज्जम् साराव विस्फारितनत्र सजिह्वाभ्रानण पश्यजागच्छत् ।

येपमाहृतिरेव जगदरुन्दुरा कथ न स्वातेषा मावास्त्व प्रकृतिषिदम् । यतस्त
पामागमनेन मुक्ता विपद्रुतयोऽपि निद्रा जडु । सहसा दपो निवापता गत । प्राग्दे
तनसि सर्वे सहचरा इन्द्रियागेवरता वन्तु । सङ्ख्यबन्धुपट्टस्तिरजनाहती रासध
धिलसमपमेत्य धौवन्त त महिषानुवरभयस्य सिद्धान्तस्य न्यूनता महिषामवध
निभास्य नगरदाहिना क्रोयाग्निरा भिष्यमाण 'कस्तव रे ?' इत्युन्वैरप्रनोत् ।

नैनमव श्रवमाने च सस्मिन् पुन स सामिनातनद—'सुनूयै ! नन्दन यो यो भूरा
द्रापद्विष मा विस्मृतवान् किम् ? किं स न वति यतस्य नगर मन प्रातराशावाप्यदम् ।
सन्त्य स कथ विजानीयात्, नयापि तन्नारे एषु दिवसेषु नाग्रमि । अस्तु, त्वानुना

१ मुनीन, मुननपि मित्रतपरिजान्ति शब्दयन्त = भत्सयन्ति च । नाष्ट् मने शब्द
च 'अतोऽनुसर्गो कः । २ विपुल' मुरा अत्रिवायुमप्रकृतयो नस्यानव भूतापि ।
पठे—विपुत्र मुरा—नदिरा दस्तां सा । ३ टेट ।

दध्नाभूषण विधाय नगर प्रवेक्ष्यामि, उत्तिष्ठ, स्मरामीष्ट यावदह कुलिशकूराभ्यां
कराभ्या त्वा नामृश्यामि ।'

विपुलोत्साह स्मित्वा क्रोधोत्पन्ननेप्थुस्तथाय सम्भर्त्सयन् सोऽनूत—कोऽसि रे ?
सत्त्वाभ्रम । किमर्थमुपशिलमागत्य चित्रा हापयति ? स्वपिमि, सपद्यपसर इत, किहस्य
सुम्ननिद्राभञ्जको सृणो मा भव । ग्राहि ग्राहि दस्य पृष्टम्, इति ।

राक्षसे त्वधुतपूर्वं पर्यवन्तोभिस्सीपितमन्यौ कल्याण प्रबलपराक्रमया तोभयोक्त
भयङ्करया दृढया साह्य गुणान्गुलिबद्धया सिद्धया मुष्टिकयोर आहूय सप्रौढि श्लवत्
'राक्षसाधम । समेतस्ते मृत्यु । कर्दर्य । नाधुना ते विमुक्ति । तावद्गज शोच भ्रम
उच्छल यावन्मम मुष्टिरष्टिविनष्टतनुयष्टिर्मृतिमवाप्यापेतसमीरो विमुक्तमस्योऽन्यस्मि
क्षुधि कस्यचिद्रक्षसोऽजिर न पश्यसि । विपुलाय । बहवस्त्वया धर्माधया देशभक्ता
मानिनो विपक्षितो नीच । भक्षिता । विधवानेन विष्य देन महीयसी सरसी त्वया
सम्पूरिता अधुना त्वधन्य । प्राप्तस्तव प्राणहस्ता कप्ता चित्रपुरवासिनागरिकनिकरस्य
सुखम् । चिन्त्यान्त । चिन्त्यान्तिमचिन्तनीयम् ।' इति

अथ क्ष्वेडानुकारि धनघनाघनध्वजानुसारि दमितजनारि वच आभाष्य उत्प्लुत्याय
समिध तच्छिरो हलेन करालकरतलेन मृदुलयत् । पुरोपयो सत्वरपदन्यासमृदुलितधायो
मुष्टिकापतनसङ्कुचितान्वयवयो खिन्नखिन्नगान्धोस्तयो सध्वान सकरदलपात बभूव दुर्मुलं
जन्यम् । तत स शुण्डिशुण्डामिव प्रचण्डा शिलामिव नीला शालग्रामस्य
माहिषीमिव आयसीमिव तद्ग्रीवा दौदण्डेन भृशमाहृत्योत्थाय गजमिव ॥ चलदस्त
ध्रौव्योर्भूतलेऽपातयत् । तेन च दिगन्तव्यापिना कणकुहरभेदकेन ध्वानेन भीत पक्षिपूर
आख्यातुमिव विद्विहारेण विनतानन्दन शब्दितसकलप्रदेशो दिशास्त्रगमद् नृते
केकाभीपितजन केकिनम् ।

अथासौ प्रसूतस्य तत्सोरसि समुपविष्टस्तुदन् वचनसूचीमि प्रारब्धमुष्टिर्दृष्टिप्रवीत् ।

"रक्षोऽपसद । जगतोविपाद । निपाद । क्षणस्थायिनस्ते प्राणा, स्मरामीष्टम्" इति ।

पर परमगव ॥ क्रोधाभूषणवीक्षण पद्भ्या ददभ्या नखाभ्या तुदन्, नासिकया प्रबल
समुच्छ्वसन, मुप्याऽऽहतो भुञ्जि, फेनमुद्गमन् नसा रुधिरत्न, मुखं व्यादाय शत्रुतो मान
मर्दनमनुभूयान्तविश्राममवभवत् । तस्य प्राणमस्तु नामरिवमित्रतेव सय एव

लब्धेव वीतः । तस्य पण्डितनामि सुख मीस्वैर्यं फलैः । दूत्यः ॥ प्रदशः प्रहार-
कोटहजे गुह्यः । तस्य लेहचपेटा अमोघः प्रहारः सक्तेन ज्वलतां चतुर्नां
निधिता इन्तः स्फुरन्तःकौटौ निःश्रान्ता नासिञ्च तस्य वीरत्वसंज्ञायै अलम्बन् ।
परं स वर्ततेः । तस्य च कर्मानुनिर्गतेन नेदस्तिवा नोळगाटेन पिच्छित्तेन प्रक्षिप्यत
पशुना श्ववेन, दधतां अन्वयात्वां सुद ३३ नेदस्तिनां ।

अथासौ जन्मजन्मधनधान्तो विस्मृत मादिर्यं वनांक्षेत्रं रणोवज्ज्योदनी-
हृत्य गाढमगनिष्ट । शरादनवानकपतिन्याप्रटक्करेदुन्दरस्रष्टप्रवकाद्योषतादि-
दाधत्यकौहुररागा एवेन सार्धं बन्धवानेन सविस्मयमुत्पितोऽपदत्त स यत् तन-
गन्मोर सुवज्ज्यतालयरिवादिनांवादिनो वैपस्त्रिकाथ फलजना समत्यान्ति । लक्ष-
सुनिचतुस्रस्यमपिजट्टिकात्तरकन्नामा' महेन्मत्तपुर्लछमनत्वा एन्तावध्वन्तिप्या
चित्रपुरपतिः मन्त्रिप्रचुरयोऽप्यन्याताः सुवसुःसञ्चितवाचिनः सादिनधामन्ति स्म ।
कन्यान्तु सैलिक धावाद् ध्वपहणनमिहः, नुदुस्वनाऽऽनच्छतलान् विघट्टनानो
विघ्ने,सामिध्यालोदमरादयोदतिष्ठ ।

“देव ! खागर्त विनीतभावेन विरेचम्, पुनरपनस्यसुरपत्त सविशेष सत्कर्म, अतः
पदुधमेव कलनायन, अन्धया कौ जलाते किमाचरेदस्य युवा” इति मन्त्रिणा प्रविशोक्तिो
हस्तिनोऽपरीयं ककलितरूपायात्रो मन्त्री राजा च तनन्वैदमत्त समारेहेन पुरमलयच ।

“वीरवर ! देवस्य दुन्दुभनलपन् सगरिवर राजानमेव व हि, स्रष्ट देवमेव वयो-
हृतवन्ति । आत्मदये प्रचुर कटं विपश्व मरीतिहतां देवसेनेऽश्वयां हृतवन्ति ।”

कन्याय.—धार्य ! अवहुत्तकर्मनरनं नवदशसित धृत्वा शिहे नि । इप्रिय-
धर्म एव । का नर्वागता ।

मन्त्री०.—महता महत्तमेतयद् देवकर्म कर्म हृत्वाति न प्रमादन्ति ।

कन्यायः.—केन सूचकेन एत एतत्तटं दत्तम् ।

मन्त्री०.—विश्विवात्मनधिम ! जगति जना ज्वालितान् वंत्त प्रहयन्ति ।
तं चावसरान्तेन तत्र “अथ स द्यो हवः”—इति दिदृशुना चन्ति । दैव नीर्जनस्य
महता प्रदत्तेन राक्षसो नृपो नमः । तनुषोपहतस्त्रिभुवः फलवेन स्तिदम्भ्या

राज्ञ राक्षसमारण सूचयाच्चक्रः । केचन दलमायोज्य वासाति लिप्त्वा “अस्माभिः
 ॥ देव ! प्रसह्य हतः” — इत्यपि प्रोचुः परस्पर व्यवादिषु । महाराजमुखगगने नवीन
 ज्योतिरुदगात् । मानससमुद्रस्योपहारतरङ्गाः कराभ्यां निर्जम्बु । ग्रामाणामधिकारपत्राणि
 लिखितानि । सर्वेषां मुष्टयो भारैर्भृता ।

अहं विचार्याबोच “देव ! किमर्थं निर्धनीक्रियते कोश । अत्रत्या एवेते न
 कदापि व्यापादि राक्षसोऽप्रस्यैरेव । अथ किमेषु दैव बलमुपेतम् । देव ! यदि
 राक्षसो मृतस्तर्हि अनन्यसाधारणो हन्ता तत्पृच्छतु कस्यावसरः कोऽगमत्” — इति ।

तत्र च व्यक्तिकरे भवद्भूतमन भवच्छयकथं विदितम् । अतः परं यज्जातं तज्ज्ञायत
 एव श्रीमद्भि ।

कल्याण—आम् ।

मन्त्री०—कस्य वशस्य विभूषणं देवः ।

कल्याण—राजन्यकुलप्रभवोऽहम् ।

ससरणे सदासोभूषणैर्नरैर्नारीभिश्च कसुमस्रभिर्मधुरादरवाग्भिश्चाद्रियमाणं कल्याणो
 राज्ञा राजभवनमानीतः ।

केवलमेतज्जगरनिवासिन एव न हि प्रान्तीया अपि समूहिताः । मानवमहोदयेस्त-
 रज्ञास्तरङ्गिता आसन् । सर्वो जनः प्रान्तप्राणप्रदातुर्दर्शनाय आकुल आसीत् । कल्याणो
 महाराजेन सह राजभवनस्य गवाक्षे स्थितो जनसमूहं नन्दयामास । चित्रयता
 विद्युत्प्रदीपा लोकवधूनि चमदकुर्वन् । महाराजश्च लोकं सम्बोध्य ‘ध्वनिविस्तारक-
 साहाय्येन प्रावोषत्—

प्रिया प्रजा ! अद्यतनं दिनमस्मज्जीवनस्य प्रदीप्ततमं दिनं वर्तते । केन शब्देन
 कथां रीत्या केन कर्मणाऽस्य महाप्रभावस्य यूना आभारं प्रदर्शयामो मनो न निश्चिनोति ।
 अस्मत्सविधे नैतादृक् किमपि यत् प्रत्यर्थं वयमानुष्यमासादयाम ।

शास्त्रकारैः राजनाद् राजा नृन् पातीति नृप—इत्येवं वेदोऽतिशयित्वात्
 पाल्नाच्च सामान्यो मानव एतद्गुणवैशिष्ट्येन राजाभिहितः । एतद् गुणद्वयमस्मिन्
 यूनि वर्तते । अतोऽयं राजा भविष्यति । भगवता राज्ञः पदं योग्यतानिष्ठमेव

रचितम् । अस्माभिर्दौरात्म्येन तत्कृत्स्नसम्पत्त्या स्वीकृतम् । अयं युवान वीर्य-
अनुत्तमो लज्जितधारिम्, अत इत् प्रभृति अयमेव प्रबन्धना शासकः । लोकस्य न्यास-
योग्येऽधिकारिणि समर्थं भारद्वाजोऽहं नितरां प्रसीदामि । नवीननरपालस्य शासने सर्व-
विधमानन्दमनुभवन्तो भवन्तः प्रेयः श्रेयश्चाप्नुवन्तु—इत्यस्तु मे शुभाशीर्वाद इति ।

महाराज स्वयं स्वमुकुटं तस्य शिरसि पर्यधापयत् करवालं करयोरादापर्ययत्,
चामरश्चादाय सर्वतः प्रथमं व्याजयत् ।

महाशय, अधुनायं नितरां रूढः केवलं नाममात्रेण राजा । केन्द्रादेशानुसारिकार्य-
निर्वहणे विवशः किं करोतु बराक इति ।

अथाहं प्रधानमन्त्रिणं सम्भाव्य त्राहणवदुनाऽऽरपितुकामस्तस्यावारां गत्वा यमदूतो-
पर्यवधुर्मीं राजपुरुषं कृतेक्षणं शृङ्खलाबद्धपदं सहयोगिभिर्भविष्यत्कार्यक्रमायाऽऽरपन्त-
मनितरसाधारणवैदुष्यमनालस्य कमः कर्तुमात्रेऽद्यन्तं विप्रयुवानं वीर्यं तद्भावमुपगच्छत्योद्देश्यं
विभाव्य तस्य जीवनं परमावश्यकं मन्वानं उदघोषयम् —

“मान्या, शासनस्यान्यास्य परा काष्ठां स्पृशति । परोऽपराध्यति दण्ड्यते चामरः ।
अस्मदीया एव भ्रान्त्याऽस्मान् हन्तुमप्रेषय । कः एव गल्मपजिहीर्षेस्त्वेत्कथं
जीवनम् । अस्माकं भ्रातर एवास्मान् हन्तुस्तदा कथं जीविष्यामः । अस्माभिः प्रतिज्ञातस्य
वयं संपदिता शासनमनुल्लिष्यामः । एतदर्थमेकां शिवास्मिपत् स्वतन्त्रोपवने
परिचर्य पवनदनसमये भविष्यति सर्वं समेतव्यम् । एतद्विज्ञानं सर्वेभ्यः भावयितव्यं
येनाधिकां वनां समागच्छेयुःसिति ।”

हृद्वापुगम्यावोधं “शोकं त्यजतम्, अहं भवत्पुत्रमन्यायं कारावासिनं उन्मोचयिष्यामि
नो चेत्स्वीकृतापराधो भवत्पुत्रस्थाने शूलमारोह्यामि । अहं कथयिष्यामि यमम-
प्रबन्धो मदाज्ञया मयि रोमग्रस्तेऽनेन पठितः । पाठो विदोषः । भवत्पुत्रस्य
रक्षणं देशस्य कृते परमावश्यकम् । धन्यो भवन्ती यौ स्वार्थं परित्यज्य देशस्य
निर्माणाय स्वातन्त्र्याय च प्राणार्पकं मुतं प्राप्नुवाताम् । भवद्दशमाधयेणैव स्थिता भू” ।

नयोदशपलन्यूने पवनदनसमये स्वतन्त्रोपवने मनुष्या निवसन्ति । धरिणो
मानवान् प्रसवनादेव प्रतीयते स्म । पवनदनमध्यधोपेधं सममदमुत्थाप्य सभापतिरादाय
जनशुक्रं प्रस्तूय पार्श्वमखे स्थापिताया भातनानु प्रतिमायां गळे पुष्पहारं समपावोचम् ।

समवेतसहयोगिन ! सुहृद् !

सर्वतः प्रथमं स्व सर्वथा निरीक्ष्यास्मामि प्रतिज्ञातव्यम्, यदहं स्वच्छन्द्यं स्व भारताय तस्य सेवायै स्वतन्त्रतायै उन्नतयै च समर्पये। एतदर्थं कशाघातो वृधिका तोद काशवासो मशकादन परिजनैर्वियोग क्षधा द्रव्यदण्डो मृत्युश्च मन्निर्णय प्रतीपयितु न शक्ताः। स्वार्थं परित्यज्य देशहिताय वणवर्गधर्मनिरपेक्षं कार्यं करिष्यामीति।

यूयं सर्वे भारतस्याधिपत्यं, स्वतन्त्रे भारते सर्वस्य समानमुत्तरदायित्वम्, इदमनुपपन्नं भविष्यति यदहमाज्ञापयामि, परमहं भवद्भिर्विद्योजितोऽनुसिष्टं सहयोगीव निवेदयामि।

अस्माभिर्यथाशक्तिं सघटय देशस्योत्थाने यतितव्यम्। रुद्धैतद् विचारणीयं यत् स्वाधीनं भारतं द्रष्टुं कः स्वास्पति—एष विचारः कर्मणि शैथिल्यमौदासीन्यञ्चापादयति। सर्वेषामस्माकं कर्तव्यं यद् वयमस्मज्जीवनसर्वस्वं स्वतन्त्रभारतस्याधारशिलाया अवस्थात् स्थापयिष्यामो यत्र कोऽपि नेष्टेत। अद्यतना भोगा अस्मद्बान्धवरक्षसिक्ता ह्यतव्या। अवधार्यताम्, परतन्त्रतायां घृतादनात् स्वतन्त्रतायां घासादनं गरीयः। महमणि प्रत्यपो वासमेव जयसु।

विध्वंसन्तु, एष दासो विजये पराजये तेजसि तमसि मुखे दुःखे स्रहैव भविष्यति। अहं किं दातुं शक्नोमि, ऋते क्षुधा तृषा ध्रम खेद क्रोध मृत्यु वा। एतज्जीवनं भारतमातुश्चरणदोरर्पये।

सुहृदो मातरो भगिन्यश्च,

समर्प्य बालयितुं धनस्यावश्यकता वसंतैः। निर्धनो ह्यसमर्थः स्थातुमद्यतने समये। एतदर्थं युगम्। अर्थस्याद्य महती प्रतिष्ठा। धनस्य प्रतिष्ठोन्मूलनमस्माकं ध्येयम्। परं नायं तस्य सत्यः। अतः कष्टकेन कष्टकमिदानेन परतन्त्रतोन्मूलनीया। अस्माकं कार्यं न सरलम्। सत्पुण्यं दीर्घकालं कठोरं च सम्भाव्यते। शासकस्य दृश्यं नवनीताभं न भवति अपि तु चञ्चलम्। यत्र स्त्रीणां चीत्कारा शिशूनामार्तनादां रुदानां घेतकेका अधद्रुमं कर्तुं न शक्ताः। अतः सर्वसाधनानां समग्रोऽस्माभिः कार्यः। अस्माकं भ्रातरो भगिन्यश्च करुणात्म्यं मुञ्चुष्विकामादाय सर्वविधां परिस्थितौ प्रतिरोद्धं समया भवेयुः, यदापि नास्मान् शस्त्रेषु विधासुः। परं क्षमाऽपि दातुं सत्यामेव वीर्यसोः। भारतस्य परिधमपिष्यामि प्रजाभिर्देयं शसितव्यं यत् परेषां

यन छेत्तेन व्यसनेन लुण्ठन्तो वनिः, साम्राज्यवादिनः शासनस्य लुण्ठने साहाय्यना-
चरन्तोऽस्मत्साहाय्यं करिष्यन्ति । सर्वनिधिः स्वार्थं साधयितुं सत्यैः साम्राज्यलोभुः
सह सम्मित्य विद्वस्याश्रदाता वृषकोऽघ्राय परमुखापेयी, विश्वव्यापाराय तन्तुन् वयन्
तन्तुवायन्व तरुण्याः पुण्याः लज्जाय वासासि याचमानो विहितः । कर्मण्यविधकर्मनुत्प
प्रासाद विर्मायापि शूकरवास वसन् नर्त्तुं बाधितः, ■ एव समाजस्य कलङ्कः स्वार्थी
जलौका इव सासनस्य घटः स्वस्य साधारणमनोरज्ज्नाय लक्ष्यो रूप्यकाणि प्रवाहयति ।
एषोऽन्यायो बहुदिनं यावन् न स्थास्यति । आधुनिको धनी ज्वालामुख्या ग्रीहति
चेदयापि सोऽन्यद्विहो निश्चितं पतिष्यति । किं सम्भाव्यते योऽस्माभिः सहस्रिष्यते ?
सोऽस्माकं शवे हसिष्यति, स्थायीनसप्रामाग्नौ दत्ताग्वाहुतीरवहेल्यिष्यति, क्वाबोऽपि
व निपयस्तः प्रेमदृग्गं भ्रंशयितुमेपिष्यति । स्थायिनो देश्या वा सुविदेश्या वा स्वार्थे
लुण्ठतां रक्तं शोषयतां वनितां वा नाम्तरम् ।

सगृहीतधनस्य पण्यः स्वतन्त्रतामन्दिरस्य पथि विक्रियन्ते, भारतमातृशरणयो-
रपिष्यन्ते इति ।

समास्थले, विशेषतो विधवाः स्त्रिय आसन्निरलङ्घरणा नराश्च, तथाप्या-
भूषणानां वृत्तिस्तत्राभूत् । धर्मेणैव भारतमातृश्रमभूः कर्णनासागलाभरणैरङ्गुलीयकैश्च
व्याप्ता । परमनेन श्रीणा वृत्तिर्न ज्ञाता, ताभिर्न ज्ञातमासीद् यद्यपि धनसमृद्धौ भविष्यति,
ता भरपदिने सभायै आजगृह् । तासाम्नाग्रहेण द्वितीयस्मिन् दिने तस्मिन्नेव समये
स्थाने च समाऽऽहूता ।

नगरस्य सर्वाः स्त्रियोऽयं आतुलिता इव कीदृशैरङ्गुलिषु चरप्रभान्वाभूषणान्यादप्य सन-
वाहपूर्वमेवोपेताः । तासां मुखेष्वेव विवक्षणा तेजोमयी च्छाया व्यापत् । आभूषणानां
एशाषां बहुमूल्यानां राजतानां सौवर्णानां भाजनानाञ्च कूट भारतमातृ शरणयोजातम् ।
बांकेने उपश्रदास्त वसन्तान् प्रक्षिप्तवत्यो बालिकाः पुलक्षिताः प्रणयलज्जारत्नमुख्यो
गवो हिमरेत्यः स्वार्थं वासवमुमुक्षु इव रुद्धाः स्वतन्त्रमप्यतथेदितायां जीवनसमितिं
निदलं न्यर्चयुः ।

एका निदलार्द्धं रुद्धी युवति समाजस्य मुखमुन्नामिता उपदेशाः श्रियः समाजानुः ।
ता यथावद्विशदयन्त गतेन नृपत्या मज्जता स्वरेण प्राबोधयन् यदस्याः सत्यं

मुसीलो युवा भर्ता राजद्रोहापराधे बद्धोऽयं शूलमग्निरिति इति । “हन्त, हन्त,” इति कोलाहलं सर्वतो गगनं व्यनादयत् । अध्रूपूर्णरक्तज्जोहना रमणी च सखीभ्यामसिन्दूरेष सह रत्नसंचितं चञ्चत् शिरोरत्नमञ्जलीं कृत्वा भारतमातुष्यरण्येऽर्पयत् ।

सत्यम्, ईदृशदेव्याधरणरेणुं प्रक्षीणु देवास्त्रापोरता मुनयश्च तालागिता ।

एषा वृद्धा स्त्रालन्ती एतेन हस्तेन वज्रसाक्षिलं चित्रं परेण च दण्डं दधती समता । हिमश्वता सा रुदत्पत्रोचत् “एतन्ममैकमात्रस्य पुत्रस्य चित्रमस्ति । अस्य पिता महापण्डितो विद्याध्यसनो मनस्वी निर्धनो युवावस्थायामेव देहमजहात् । तस्यान्तिमेच्छाऽऽसीद् यत्तस्य पुत्रो महान् विद्वान् भवेत् । मित्रा पत्या निषिद्धाऽऽसीत् तद्दृष्ट्या च पुत्रमानसे निम्ना दयनीया भावना न भवेच्छतोऽहं वनात् शुष्कं कष्टं समानीय विद्वीषन्ती सुतं पाठयन्ती जीवन्त्यासम् । एकदा मम पञ्चदशवर्षी निर्भक्तं भायमाणो माणवकः शासनेनावद्धः । एको गौराङ्गः आयुक्तः सह दशभिर्न्यै राजपुरुषैर्नुगं शिशुमाहूयावदत्—“बन्दे माताम्” न वक्तव्यम् । परं विक्रमसाहसोऽदम्बोत्साहः स तस्याग्रे एव तारुवरेण “बन्दे मातरम्” इत्यवदत् ।

पाशवप्रवृत्तिरधिकारी कृतयाऽऽहन्तुमादिदेश । विद्यालयस्य प्राज्ञेण एव सह सङ्गतिं शब्दायमाना कथास्तस्य कमलकोमले कलेबरे निपेतु । एतदन्तरं माध्याह्नकालिकं भोजनमादायाहमप्युपेता । स बन्दे मातरमिति कथयन् भूमौ पतितः । तेन कदापि ताडनं नानुभूतमासीत् । तस्य त्वचो निर्मलवद् रक्तं व्यवते स्म । शनैश्शनैः “बन्दे माताम्” वदन् स जीवन्वाचलि भारतमातुष्यरण्येऽर्पयत् । गौराङ्गस्य विहायित धा शिशोरुण्यं सद्योरक्तं लिहन् स्वामिनं प्रियतां वभार । अहं च जडाभूता पश्यन्ती सङ्क्षोभनश्रविवेका रुद्धगत्या उन्मत्तेव विस्फारितनेत्रा शिशोःशरीरं निपत्य मूर्च्छिता । दिनप्रयानन्तरं ममोदने मम मूर्च्छा भग्ना । गौरी सारमेयोत्पटिता त्वचं घृतमधुमधुयश्मिभक्ष्यनहन्ती आसीत् । समस्तं शरीरं सवाणि वज्राचिरकदिधान्यासन्, यानि दृष्ट्वाह पुनर्मूर्च्छिता ।

तस्य विवाहाय महा मुक्ता क्रीतमासीत्, यदेव एतां गतिं प्रापितस्तदा मम सुवर्णस्य शिशोश्चित्रस्यैषा शाखा निमापिता । अद्यतनोऽवसरः पुनः न प्राप्तः, एतत्कर्मण्यपेक्षांमम शिशोरुमा शान्तिमधिगमिष्यति—इति कथयन्ती वृद्धा चित्रं भूमौ

प्राक्षिपत् । इद्विविक्तेन सर्वो जनः स्फुट रोदितुमारभे । अश्रुतोः नेत्रद्वारेऽमान्
नासिकावात्या बहिस्त्वाह, धर्मस्य पन्थः कणशो भग्नः । कचो भग्नः । चित्रान् मनस्विता
वर्षति स्म । मुग्धस्मितं तस्योद्योः कण्ठे च प्रवृत्तनासीत् । इदया चित्र क्षीरणीं शाखा
च मानुषरूपयोरारात् स्थापिते ।

अहमुन्मत्तावौचम्, क्वमवस्यं सफला भविष्यामौ यदेतस्यः शरणागतदीनात्तरिणाण-
परायणा देव्यो निवसन्ति, तद् भारत कथं विपद्भिः ? नाभिः पतरः पुत्र आतरः पितरः
परिजनाश्च स्वाधीनतावेदिकापानारोपिता आहुताश्च, तासां भारत कथमवसांते ?
समाख्यते धावन्नेको युवको मग्नं पत्रमदात् । अहस्रोद्घाट्य जनतामथावदम् :—

प्रत्युत्स प्रथमे क्षिणेऽहमेऽस्माकं भागवनिर्णयो भविष्यति । अस्मदवसानमनु-
हृदनसन्दर्भं समीपात् समीपतरमेति । अस्माकं जीवनप्रदीपः प्रातर्धूमनीं विलेप्यते,
उपाधिनाशे घटाकाशो महाकाश इव । परमस्वदीया विचार विद्यस्मिन् विद्युत्सेख-
चमत्तुर्वन्तो जागरण सम्पादयिष्यन्ति । अस्माकं मुष्टिमेव भस्म यदि विनश्येत,
तेन किम् । शासनस्यात्याचारान् वरिसमाजस्य श्रावयितुमभिरोद्योऽवश्यं योग्यः । तेन
जगतो जागरणसम्भावना । वन शत्रुरोष निवेदयितुमुद्युक्ता यदेव सङ्घर्षमन्ताव-
च्छनीयो यावन् मुष्टिमयाना दक्षिणालिना श्रमिषु भारतायेषु प्राकृतिकशापनेषु च स्वार्थं
साधयितुमधिकारस्तिष्ठेत् । इत्यप्यानां वीराणां बर्धनं भवता सपर्यो यत्नवान् भविष्यति ।
तेषामनुमं साहसमुन्नीरादशो निर्भयतापूर्णो भावश्च विद्यं कस्तद्विरप्यति ।

अन्ते, इनेऽज्ञाने वा मृतानां घृष्टानां हृते क्षान्तभ्यर्च्यमानः पत्रमहः उनापयामि—
बन्धे मातरम् ।

“अस्तेऽप्येकः”

वन राजधानीं गताः । शुल्कशालासामेवैको घटकः* कथमपि विदितोद्देशोऽस्मानु
दशनदर्शयत् । तस्य प्रेरणया चेकः कन्दस्थो बाङ्गोली घटच्छर्कटमहाप्रभावोऽ
लम्बावकाशः सर्वेषां स्तनन्नतास्तयवाभिमुखानस्तुन्मोचनाय पञ्चदशस्तुशभिः स्थिरैरुतः ।
सोऽस्मान् बहुविधं पृष्ट्वा सर्वाणि परान्वस्माकं विचारार्थं विनाशय पान्शद्
यत् न्यायाधीशस्योपस्थता* सुखिनः सत्यमनाना विद्यते, तेन गेलननावस्यन् ।

१ इल्ल । २ कः पराणि न्यायाधीशस्योपस्थानमस्ति (विरस्तेदार, पेशकार)

समागमो यद्यपि सिद्धातविद् आसीत्, परमद्यतनजनपरिज्ञानाय, राष्ट्रव
कारावासे म्रियमाणेभ्यो लोकभावनामधिकारिभावनाय ज्ञातु समागममपरिहाय्यं मत्वा
विहितसमयास्तस्यावास गता ।

यामसीमि कस्यापि समानशीलस्य धनिनो विशाल भवनं तेन स्थायसीकृतमासीत् ।
तस्य विशाले सभास्थले कुमुदकुड्मलाकारेषु पुण्डरीकसितेषु सहस्रश काचभाण्डेषु
उत्प्रभा प्रदीपा प्रद्योतन्ते स्म । अभित उपविष्टाभिरुपदृश्यामाभिरप्सरोभिरधिष्ठिता
मिन्द्रपुरीमनुकुर्वति सभास्थले नगरस्यानर्जितधना धनिन कृपकोपाजितराग सामन्ता
उत्कोचिनो राजराधिकारिणश्च कौशेयासनेषु बृहदुपबर्हप्रष्ट मय पित्रन्तस्ताम्बूल चबदन्त
पतद्ग्रह निष्ठोचन्तो धूममाकर्षन्त आसन् । मध्ये च विलासलीन सलीम ।

*

*

*

गृहीतमुद्रेण द्वारपालेन बहिरेवासूचि यदुपस्थाता महोदयो गानसमाप्तिसमकाल
मेषान्त पुर प्रवेक्ष्यति, आलम्बेच्छा चेत् प्रतीक्षितम्यमेव । वय कोण कथङ्कथमपि
प्राप्तस्थाना हृदये शोकशाल्येन विद्धा अपि गानमखे उपविष्टा ।

अथैकाऽऽनखशिखान्त रत्नलचिता नर्तकी नि सरदनन्तवद्वा पौर्णमासी निशेव भासरा
अनन्तचञ्चलारासमायुक्त पारावताम्बर शिरसा वहन्ती स्यूतरत्नवनीतकौशेयचण्डातका
विद्युच्छेलेन मन्मथपेता । सा जानुभ्यामवनि गत्वा बृहत् कमलकुडमल हनुस्पर्शेण
विकाश्य अञ्जलाकादाय रिपतेन सितयन्ती सभास्थल जनसाधुवादेन सार्द्धमुपस्थातु
श्चरणयोरापमत् । पार्श्ववर्तिनो ज्ञात यदुपस्थाता महान् कलाकारोऽस्या गुरुर्वेति
गुरुवन्दना ।

अथ सा प्रतिस्पर्द्धिभिरनैकैर्वैषविकैर्मादङ्गिकैरनुस्तर प्रकणद्भिरनुगता हस्तौ
भ्रमयन्ती विरक्तिपदन्यासा ॥ वय शिरसि मध्ये च हस्त न्यस्यन्ती अङ्गुष्ठतज्जयौ
परस्पर योजयती मण्डलितचञ्चलचण्डातका अलङ्कचित्रितहस्ततला विशदिव चञ्च
लसत्या भ्रम कृतनूपुरा कदाचन चूषण्कुतलान् स्पृशन्ती रुदाचन कणभक्त्यायमाना रसना
प्रकणयती कदाचन मुद्रया हस्तौ सयोज्य विभजन्ती उत्तरीय हस्तपोरादाय वातवेगेन
रतिध्वजमिव प्रसारयती पादतलेनापि ताल रचयन्ती चतुर्मुद्रया विश्व विमोहयन्ती
परमविलासविभासिसौन्दर्या मुद्राभिरेव गानस्यार्थमुद्बोधयन्ती सप्रभमुरती ओष्ठमुद्रया

मनोजभाव मानवमानसे लब्धिदयन्ती ग्रीवा मध्यञ्च वलयन्ती कमलकुङ्कुमापितगुरोजौ
कम्पयन्ती कज्जलाक्षी प्रलम्बकृष्णकुन्तला दीपतिष्ठातिलला सप्तविधेप नृत्यन्ती
गानुमारभत .—

मम मनो व्याकुलम्

रात्रिन्दिवमलि । मिलनं चिन्तन् । (स्थायी)

शीत. सान्द्रो वायुर्वाति

त्रिधुत् पत्न्या सह चाभाति

प्रोषितपतिका मुग्धा तरुणी

यनघोरघटा पश्यन्ती

भृशनेतव । वद्विजते ।

मम मनो व्याकुलम् (१)

वदीप्याशादीपं दृष्ट्वा

अङ्गनमव्यमहो उपविष्टा

सज्जा भूपानेपाद्यै रलि ।

द्रष्टुं श्वाममुखं भृशमुल्का

मुविलम्बो मा तुदते ।

मम मनो व्याकुलम् (२)

तियेग्नोक्ष्णमधुरालापन-

इस्तस्पर्शः प्रेमोत्पाद्य

चक्षुर्मेलं निद्रा हृत्वा

वशय न तारा. गणितुम्

प्रियतम ! त्वरनेहि ।

मम मनो व्याकुलम् (३)

उभयतो हस्ताभ्यां नवनोतकण्ठातकमुत्थाप्य छन्नच्छन्ननच्छन्नन्पुरा भ्रुकुटिकोत्था
कामकोटिं वशयन्ती विद्युत्लेखेव क्षणस्थिरा आपततो अमरकान् कोमलप्रलम्बाभिरङ्गु
लिभिर्मध्ये मध्येऽपसारयन्ती अङ्गुल्यङ्गुगुहसाहाय्येन शिरसि मकुटमद्रा रचयन्ती
अपाङ्गे कर्णमूले नेत्रयोध हस्त विन्यस्य विविधभाव प्रकाशयन्ती मध्ये मध्ये स्कन्धा
उन्नमयन्ती मोहिनीव राज्ञ ।

मध्ये भावोद्बोधनाय द्रुतविलम्बिता गतिमाश्रित्य आरात्तिकमुद्रा वा प्रकल्प्यागाधी
तदा भित्तिरिष्टकाश्चापि धयवादान् व्यतरन् ।

मदोन्मत्त उपस्थाता सर्वेषां समक्षमेव प्रदर्शितानुरागस्तस्या कम्बुकमनीये उन्नतबभुरे
कन्धरे सप्तावलिहार स्वहरनेनाबध्य हस्तमायोज्यान्तःपुत्राभिमुख गन्तुमना अभवत् ।
एतत्सङ्केतेन सर्व एवोत्थाय अपसन्न । अहम् कथमपि जनव्यूह प्रतीर्य तमुपेत्य
अनभ्यस्तदैव्योऽपि त प्रसादयन्नवोचम् ‘स्वामिना समयो दत्त’ इति । पर मेरेयमत
कभीहृतकामिनीसमुपाहृतगर्भो विगलितदन्तश्च्यवदोष्टोऽस्फुटवाक् भर्त्सयन्नाह—“अपेहि
नायमनेहा” ।

अथाह बहिरुपेत्य सहयोगिन सूचयित्वाऽचलम्, दास्य पुनरुपहाराय हस्त प्रासारयत् ।
‘एतादृशस्य धमिनो दास्यस्त्व किमु अस्मान् खेदयसि ? समुद्रे इ विन्दो
स्थानम्’ । अहमवोचम् ।

“ज्ञान धनम् । स्वामी प्रतिमास पञ्चविंशतिमुद्रा प्राप्नोति शासनत, व्ययश्च
प्रतिदिन पञ्चशतम् । वर्षद्वय व्यतीतम्, मासिक मुद्रानवमेव न लभ्यते । शिक्षणा
पालन भवादृशानां दण्डैव सम्पादते” स उदतरत् ।

* * *

वयं समयात् पूर्वमेव ग्यायालयमुपेता । वाक्कोलस्थानवेपणमारब्धम् । तत्र जन
समुद्रेऽवेपणमेव दुष्कर नवीनेव । पर तस्य लेखक उपलब्ध । सोऽब्रूत यदश
गानवाद्यरविको वाक्कोल उपवनभोजने कस्या अपि गायिकाया सम्मानभोजने
सम्मिलित इति । पञ्चसहस्रमुद्रा गृहोत्वापि देशसेवकत्वा प्रणै कीर्डा विचार्य
मनो घृणया पूर्णम् ।

• ग्यायालयो जनसमुदयेन परिपूर्ण । अप्राप्तस्थाना बहिरब्जिरे वृक्षश्यामालवालेषु

दुर्वास्थो दयाविशन् । समये आरक्तपुन्यविशः शासनस्य विरोधत्रया निपुणैर्विधि-
विशेषैः सह न्यायासनमलङ्कारः । अभिवृत्तनाममुपस्थितवेव तेषां नामनिर्गमः
प्रत्ययः । यत्ने सदा अत्रा किं पठन्त्यते ? पौरत्रैरप्येद्य सनितिरभियोग-
प्रतिरोधाय उपस्थिताऽऽसीत् । तत्र निबोधितो वाङ्मयः प्रार्थयत यदनयागिनां
समन्वेयभियोगकापवहन भवति । शासकाग्रहविश्रुको विभिन्नज्यैसु प्रत्ययं
कारवहनवाचकं जनोत्तेजकं निर्णये प्रतिपेयकम्भानुत । परमस्मयप्राह्विवाद्यन्या-
श्रयान्वयानिर्मुक्तिमिरन्तः खड्गवैता प्रमानन्यागवाद्येनोदयोः यदनयागिनामुपस्थित-
वैभिनोगः धोप्यते इति । परित्याग धवण स्वगितम् ।

विरोधेन तु मया कृतनासादेव, अमुना प्रकृतैः प्रकृतैश्च हंतोः प्रतिदिनमरिहः
सनो विविपुस्तकाल्य एव ध्यत्येति स्म । कुतानुदित्योगशालः सः साधनमस्तुते ।
स्वपरहितो वच्मि यदहममुना विधिज्ञो नूतः ।

विपनस्य सङ्क्षेपे, इतरशासननिर्मातानुदरपेऽह सर्वदा सत्य आसम् । एकदा
विपिपुस्तकाल्ये विधिविदुषा त्रिविक्रममण्डितेन सह मनः सन्धौऽभूत् । एतस्य नाम मया
भूतमासीत् । अथ यदा कदा न्यायालयमुति स्म । एषोऽनुवैतन्त्य “असद्” इति
परित्यज्य गोसेवामानेव लभः । मया सावरणमरिहवेतारि सर्वोऽभियोगस्तस्मै आवितः ।
सत्तमावः भूत्वा प्रभावितो निपुणमेवास्मनुवक्तुं सज्जोऽभूत् । न्य महारमा
कदाचि सर्वेषु नदप्रभाव आसीत् । परित्यज्यप्रतिपरीक्षमरूपेण साक्षिचो जनाय तरमाद्
मिभ्यति स्म । न्यायावीरोषु वानकलेषु वादिप्रतिवादिषु च तस्य समानः प्रभाव
आसीत् । न्यायार्थायः सव तस्य तर्काद् विभेति स्म ।

तस्य स्मृतिज्ज्वला प्रत्यया स्मृत्यप्रसिद्धी ज्ञा सिखोन्त यदृष्टाट दीपनाने
चतुर्गो उदया नया मन्द्रमन्नीय तर्कशाला वाक् च सुदेशं शिरो नमस्ति
स्म । योऽस्या एकालया दृष्टा अभिवादिप्रतिवादि पदस्य मनोनिविष्ट
भावनाय रहस्य वा प्रतज्ञाहरिष्यन् प्रत्येते स्म सः । अस्मत्प्रक्षिप्तस्य हति श्रु
पलायन्ते स्म ।

परित्यजे नृहंतम्यसहस्रदोऽस्मक यद्विदोऽपुन्यनवन आवतः । नदन्यि
दन्तं तस्य चरित्र सदिग्धमपोन्नापोनन् ।

अथ समस्मिन् नगरे सर्वेषु कर्मसु हरिताल^१ प्रसृतम् । नगरस्थोद्बुद्धयो न्यायाल्य-
मुपेताः । कारावासिनः सैनिकमुपक्षिताः समये समागताः । कारावासीना सहस्रा
अधिकाऽऽसीदतो दशैवागन्तुमाज्ञप्ताः । आगतमात्रा एव ते “वन्दे मातरम्” “ज्यतु
स्वतन्त्र भारतम्” “वत्स्रान्तिर्जीवतात्”—इत्युद्धोपैर्विष्णुपदमेव व्याकुलयाभासुः ।
असह्यस्त्र्येयजनगलनादिना ध्वानेन न्यायसमितेरासनमेव दोलयितमभूत् ।

कारावासिनः पुष्पमालाभिराच्छन्ना आयस गृहमानीताः । मृतभुशुण्डीकाञ्च
सन्निकाना पङ्क्तिरभितः सज्जाऽऽसां देव ।

शासकीयप्राङ्गविवाकोऽभियुक्तानामपराधं पुनः श्रावयामास ।

(१) अभियुक्तैर्भूग्धा जनता महाप्रताप राजान् दुलन्ती कारिता । राजद्रोह ।

(२) सभाया बहवो बधा जाताः । नरहत्या ।

(३) दुर्बलमनसा मनस्सु दुर्भाविनां सङ्घर्षभावनाद्योत्पाद्य देवा दुर्गतिहरणेन
प्रजाना बौ सध्यम् । आदिरादिः ।

प्रतिदिन होराष्टकनेतात्कर्म प्रचलदासीत् । शतशः साक्षिणो भारतीया अपि
स्वतन्त्रतासङ्घर्षिणा विरुद्ध मुद्रालोभेनाचूतं वस्त्रं सज्जा स्थिरीकृता आसन् । अभि-
योगोऽयमादशस्यो वर्षेभ्यश्चलन्नासीत् । अपराधिषु बहवो राजपुरुषैः परप ताडिता
देहमल्यजन, केचन रुग्णाश्चिकित्सालयेषु नवतर्न् । दायनस्य निशलक्षमुद्रा अस्मिन्
व्ययिता आसन् । पर कार्यं निर्णयाभिमुख नासीत् । अतः शासनेनैका विशेषा समिति
घटिताऽऽसीत् । अतः सर्व बलं सर्वः समयोऽस्मिन् कार्ये लग्न आसीत् । पण्डितपुत्र
प्राप्त्याभियोगे जीवन समेतम् । अन्ततोऽन्तिम प्रतिपरीक्षणदिनमभ्युपेतम् । न्यायावी-
शाना मण्डलं चर्चरायिताभिरुपानर्द्धभिर्मसृणकृष्णपरिधानैः प्रलम्बेन भ्राजमान ग्रीवाबन्धनेव^१
चक्षुदण्डेनोपनेत्रेण मणिवन्धघटी पश्यत् सम्मानिते उच्चैर्भव्ये कक्षे यथास्वभासने-
पूपविष्टम् । सम्मुख एव वाक्कीलानामासन्य सज्जा आसन् । पुस्तकेषु उद्धरणसौविध्याय
दत्तपत्रच्छण्डा, सहयोगिभिस्सर्वसंग्रहवृत्तशलरूपेताः परपञ्चखण्डनपण्डिता, वाक्काल्य

१ सङ्कताप्येतारोऽशुद्धपदेषु हरितालप्रायोज्य सूचयन्ति स्म “इदमव्यवहायम्”
एवमेवायतने कर्मावरोधे । नायं, हट्टतालस्यापत्र शः । तालकवाचकस्य तालस्य
सङ्कतवाच्येऽभावात् । २ न्यस्यार्द्र ।

अनुपेक्षाः । अस्माकमात्मन्यसहस्रसुदोऽपि कथमपि लब्धवान्काशः ? । स्वल्पदुःखेनः
खेदस्वेदभ्रातः पुत्रकोद्वृत्तबन्धुरागतः । होराचतुष्टयं वावदन्तिमं प्रतिपरीक्षणं जातम् ।
केशनिर्मोहमोचिनस्तर्का न्यायालयाजिरं मोहरामातुः । शेषेऽस्माकं त्रिविक्रमपञ्चित
आर्त्तान् । जदकातलघ्वनिना वदित्वापीप्रवाहः प्रचुरोत्साहः कृतसनाहः स न्यायाधीश-
मण्डलमिमुक्षोभून्वावदत् । सर्वे धोतारयिप्रवृत्तिता इवामवन् । यदा कदा जनकरतल-
घ्वनित्तनवाधायकात् । तस्य मापयस्य सारमिदमस्ति ।

यदि कश्चन स्वभ्रातरं शिशुमित्रमुत्तेजुं स्वावलम्बनाय स्त्रोक्त्यं वा प्रयतते स किं
साधयः ? देश स्वतन्त्रमित्रुं सेवकसपटनं तेषां कर्मजनतोत्पादनं तेषां नैतिकमुत्थानं
न राजद्रोहः । शासनस्य प्रगोलीं समालोचयन् स्वस्यचेताः किं देशेया ? उत्कीर्चनां
स्वार्थसाधनाय परान् पीडयमानानामधिकारिणां समालोचने किं राजद्रोहः ?

असह्यता नरा नार्यथ कारागु निर्गडिताः, यद्यो वयन्ता वीतस्तेऽधृताभिव्योना एव
कारागु सीदन्ति, राष्ट्रं तेषामागत्य चिन्तितम् । भारत स्वतन्त्रमित्रुं कष्टं सहनानेभ्यो यदि दण्ड
दास्यते, ययानि तेऽपुना दण्डनेष भुजन्ति यहुभिव्यैः कारागु कष्टं सहन्ते, तेनाल्लघिका
विरोधिनां भावना भारतस्येषु जागरिष्यति, केन शासनस्य नद्वी इतिः सम्भाव्यते ।

स्त्रोन्नतिः सातन्त्र्यं सर्वतः प्रयतो धर्मः । देशभक्त्यो देशेतरस्वार्थं यदि भवति
तदा न कोऽप्यनपथः । अथ नागरिकचारीऽतः सदाचारो गम्यते । अत एते निर्दोषाः ।
अथ राजावकाशतदल्लघनाधित्वं निस्तोऽपि शिवराजो राजनीतो न क्वपि सापराधो
गणितः । स्त्रोन्नत्यै कदाचन स्वधर्मसिद्धान्तप्रतिकूलमपि सनाधयन् न हेयो गम्यते ।

सातन्त्र्यं सर्वेषां जन्मसिद्ध ईश्वरप्रदतोऽधिकारः । स नरहत्यापराधी यः स्वच्छया
परान् लक्ष्मीकृत्य मारकरूपेण प्रहरन् सख्यो भवति । आकर्षन् । सातन्त्र्यनिर्दिष्टा
हिंसा लोकशिक्षकेष्वारोप्यते । सर्वा हिंसाः शासनीयराजपुस्यैः कृताः । अतो नस्त्ये-
पन्ननीयानपि दोषः । न्यायस्य न्यायमानेते सर्वथाऽदोषाः । न्यायस्य परिपट्ताः
राज्यं न्यायालयस्य प्रधानं कर्म इति ।

न्यायाधीशानां कृते सङ्कटमुपस्थितमस्तीत् । परीक्षणप्रतिपरीक्षणेन तेऽभियोगतत्त्वं
संस्थापयन्त्यन् । तेन काराकसिद्धान्तः प्रभावितो नाभूत् । परं कथमप्यनपि ते
दण्ड्यवस्थां ददुर्व । दिशती तेषां निरुपपत्तौप्यनुच्छ । दिशती दण्डनकार-

वासेन पञ्चशती पञ्चवर्षकारावासेन दक्षिता । कारामु निवसतां दण्ड समाप्तप्राय
आसीत्, अतः सर्वे तत्क्षणमेव मोचिता पौष्टप्रतिष्ठानस्थ विशालं भवनमुपेता जनसमूहन
सोलास सत्कृता राजावेव चित्रपुरमायाता ।

कार्तिककृष्णपक्ष । दीपावलीमहोत्सवो बहुभिर्बर्षै रूढ आसीत् । सत्यमुख विशता
शोऽवसर उत्सवस्य ? सर्वे दोनवदना अल्पिताया हतोत्साहा हीनहासा दृश्यन्ते स्म, तेषु
महोत्सववात्सर्वातिकरी । सर्वेषु कारवासिषु मुक्तषु राजाज्ञयोत्सवधक्के । मुधा
कारिणा कारुणा महषता सम्पन्ना । तैरहोरात्र गृहाणि धवलवर्द्धिभोजनवेलैव न लब्धा ।
इतः पटरागिणा काष्ठरागिणामप्यभाव । सर्वेषां मुखे मनसि चानन्द । सर्वेषां
करौ पादौ च परिमाजने लभौ । रूढा अवकरनिकरव्याप्ता विपणयश्चाथ सङ्करकूट
मुदगिरन् । पौष्टप्रतिष्ठानस्य नृत्या सरणिसङ्करपरिमार्जनाया प्राचुर्येण व्यप्रा अवगत
महिषैगवर्भैर्वहतो व्यकुला आसन् । नगरे नवीन जीवन समेतम् । मुधालितैरुद्दै,
रागरक्तैश्चित्रचित्रितैस्तैलस्निग्धै कषाटैश्च नगर विचकास । मलिन मालिन्य द्विषा
गर्तगतमभूत् । ससरणानि जननिरीक्ष्यता भेलु ।

महालक्ष्मीरात्रौ प्रदोष एव गृहेषु विचक्रमुदीपावत्य । विविध न्यस्ता दीप
पञ्चक्यो ससरण दीपयामासु । विलक्षणराग प्रकाश प्रकाशते स्म । कादविकाश्वेत
प्रसादयद्विर्लालामाश्वेतयद्वि खर्णरनतपत्रलिप्तै सर्वैश्च न्यस्तै काचमञ्जवा दुप
मार्गैर्मिश्रजैर्विपणि पूणयामासु सौन्दर्येण । इतः फलविक्रतारोऽपि दाडिमजम्बीराङ्गूरै
स्तरङ्गितपिठरा पुरुषानार्चयामासु । वस्त्राणिकानां विपणयोऽथ प्रोज्ज्वलाभासैश्चासीमि
दीप्यत स्म, येषु पटप्रभा द्विगुणयत प्रकाशा अवलम्बन्ते स्म । मनोहरमज्जपुत्रं विवृत
खणरञ्जनभूषणा भूषणविष्णुराश चञ्चुवशयन्ति स्म । ताम्बूलिकानां विपणिष्वथ मेलोष्क
श्च लक्ष्यते स्म । तेषां वात्सविशदा एव दुर्लभ । परिणामे परिदेविनो द्यूतदेविनश्चाथ
राजाज्ञयाऽदीव्यन् । युगपद्वचनोद्भूतस्तेषां कोलाहल आकाशमपि व्याकुल्यति स्म ।
तेषु केचनाहसन्, परे उदासत ।

अभितो वेदध्वनय ध्रूयते स्म । विभविनां भक्तेषु गायका गायन्ति स्म ।
रमणीभूषणशिञ्जितानि विजयन्ते स्म । पटनासवासितवसना परस्परलापप्ररुदितप्रेमान्
पुरुषा प्रेक्ष्यन्ते स्म । यवारीति सम्पन्नोऽभुदुत्सव ।

वासेन पद्मशती पद्मवर्षकारावासेन दण्डिता । - कारासु निवसतां दण्डः समाप्तप्राप्त
आसीत्, अतः सर्वे तत्क्षणमेव मोचिताः पौरप्रतिष्ठानस्य विशाल भवनमुपेताः जनसमूहेन
सोलास सत्कृता रात्रावेव चित्रपुरमायाताः ।

कात्तिककृष्णपक्षः । दीपावलीमहौत्सवो बहुभिर्वर्षै रद्ध आसीत् । मृदुमुस दिशतां
कोऽवसर उत्सवस्य ? सर्वे दीनवदना अल्पिताशा हतोत्साहा हीनहासा दृश्यन्ते स्म, तेषु
महोत्सववासैर्वात्किरी । सर्वेषु कारावासिषु मुक्तेषु राजाज्ञयोरुत्सवश्रद्धे । मुखा-
'कारिणां कारुणां महर्षता सम्पन्ना । तैरहोरात्रं गृहाणि धवलपद्मिभोजनवेलैव न लब्धा ।
इतः पटराणि काष्ठरागिणामप्यभावः । सर्वेषां मुखे मनसि चानन्दः । सर्वेषां
करो पादौ च परिमार्जने लभौ । गृहा अवकरनिकरभ्याम् विपणयश्चाथ सङ्कट
मुदगिरन् । पौरप्रतिष्ठानस्य मृत्याः सरणिसङ्करपरिमार्जनायां प्राप्नुयेण व्यप्रा अनवस्त
महिर्पैर्गर्दभैर्वहन्तो ध्यायुला आसेन् । नगरे नवीनं जीवनं समेतम् । सुधालिप्तैर्गृहैः
रागरणैश्चित्रचित्रितैस्तैलस्निग्धैः कवाटैश्च नगरं विचकास । मलिनं मालिन्यं क्षिप्य
गर्तगतमभूत् । संसरणानि जननिरीक्ष्यतां भेषुः ।

महालक्ष्मीरात्रौ प्रदोष एव गृहेषु विचक्रमुदीपावलयः । विविध न्यस्ता दीप
पञ्चयो ससरण दीपयामासुः । बिलक्षणरागः प्रकाशः प्रकाशते स्म । कान्दविक्राधेतः
प्रसादयद्गिलाभाश्चोत्तयद्भिः स्पर्शरक्तपत्रलिप्तैः सर्वैर्चिन्त्यं न्यस्तैः काचमण्डूपां जुष-
माणैर्मिष्टान्नैर्विपणि पूर्णयामासुः सौन्दर्येण । इतः फलविक्रेतारोऽपि बाहिनजम्बीराङ्गूरै-
स्तर्जितपिठरां पुरुषानार्पयामासुः । वस्त्रापणिकानां विपणयोऽप्य प्रोज्ज्वलामासैर्वासोभि-
दीप्यन्ते स्म, तेषु पटप्रभा द्विगुणयन्तः प्रकाशा अवलम्बन्ते स्म । मनोहरमञ्जूपामु विपित-
स्पर्शजतभूषणं भूषणविक्रेतारश्च पञ्चमस्यन्ति स्म । ताम्बूलिकानां विपणिष्वथ मेलारक्त
लक्ष्यते स्म । तेषां वार्त्तामन्त्राश्च एव दुर्लभः । परिषामे परिदेविनो द्यूतदेविनश्च
राजाज्ञयाऽदीप्यन् । युगपद्बन्धनोद्भवस्तेषां कोलाहल आकाशमपि व्याकुल्यति । तेषु
तेषु केचनादसर, परे उदासत ।

अमितो वेदध्वनयः ध्रुयन्ते स्म । विभविनां भवनेषु गायन् गायन्ति स्म ।
रमणीभूषणसिञ्जितानि विज्यन्ते स्म । पटवासवासितवसनाः परस्परालापप्रकटितप्रेमान्
पुरुषाः प्रेक्षन्ते स्म । ययारीति सम्पन्नोऽभूदुत्सवः ।

अरस्ति समामने समार्चनेष्वखिलेषु सानन्तेषु, प्रतिष्ठितेषु नागरिकेषु च, बन्धि-
त्तारक्ष्यन्तेषु च तन्नेषु एकस्मिन् स्वर्पासने स्थिते नवि सज्जयां च समन्तात् रात्रा
रात्रिगिहासनादुत्थाय सन्धानं सम्बोध्यन्तः— .

प्रियाः! सम्भाः! विदितमवैतद् वज्रगरजननः स्वसिद्धिद्विष्टासकृत् वीरवारि-
चनस्य धीचन्द्रकुमारस्य ज्ञानतर्ककीर्षया बभारप्रदर्शनमिपेनेतस्य महत् कन्दारस्य
दृष्टे किमपि दयनसमीडनायाः केष्वन्यं साधुवादान् दित्वा नहं, इत्येव महोत्सवस्य
विषयः। महत् ध्यानन्दस्वावसरो यत् धीचन्द्रकुमारो वीर्यवीरवन्द्यस्य धीनवंशुपादस्य
पुनो निनलपुत्रनन्दनरेणयोष जन्माता विजयं । . .

प्राणप्रदाने प्राणदानमपि स्वप्नदानम्, परन्तु 'अदानमनन्ददत्तं धेयं, इति कृत्वा
कर्मणि दुर्घां सत्कृतिं कुमारवरपरपेपोरादायत्ये। धीनन्तो जनन्ति यदस्माकं
पूर्वं महाराजो नम्रं वैजोऽतिशयानित्येन पालकत्वाच्च राज्यं दत्तवान्, ते गुणा नय नयि
दानाः, दत्तवन्तिवरा धृष्ट प्रजाः पश्यन्ति सर्वपाप्मनर्थः। अतोऽहं राज्यं लोकस्य न्यास
योग्ये सर्वपुण्ये समर्पयन्मैध्मानसन्तत्या राजकुमारानां धम्मायाः पापिरस्त्रनप्युरहरामि।
अनेन कर्मणास्माकं पूर्वस्य राज्यं प्रगल्भी पालिता नवति वा न्तिपुनरुपय इति।

प्रयसतां जनानां साधुवादेन सहैव मन्त्रिपुत्रिषु छत्रं चामरयुगले च वलमे। दलः
सत्तने ध्यूरा येन चन्द्रिकाचयाचितेव, नवर्गानिनिमितेव, नृपालमृदुला, सप्तवटमृदयेव
नवधियात्मकलितकुमावलीव शांठला, नन्दमुत्थस्मिता, शस्यश्यामला वन्द्यैव सज्जीवना,
लवण्यलंकारविस्तरिणी, वीमावाद्यप्रवीणा, मुक्त्यविनलकरोला, हिमशुभ्रवदना, रत्नप्री,
सत्पनामागमुपाया त्वमिवापरा चन्द्रा। तत्तत्सर्वदुर्गं प्राच्यं, वीर्योदारेण नवनिर्माणे-
नाभिनवता नाशम्। देवास्त्वमपि लज्जचरणपद लज्जा, गुणधरि।

सम्पत्तिं गुणं समृद्ध्या यशसा राज्येन ज्ञापुनान्नात्रेत्वेव नमोदन्तः।

श्रीविद्वत्त्रिचिरं नितान्तमवुरं वागोशवन्यं लस-
शास्त्रं तन्त्रकृतलि विदुरसिद्धपागावाहितोऽगाङ्गुषि।
रम्यं नानिमनश् चिरं रमयता त्वयाष्टनोज्ञं वचन्
दर्शितस्य भवेन् नयूस्महितोऽहीनो गुणः सत्कृपः ॥१॥

इति श्री—

समस्तशस्तशास्त्रवततिततिपुष्करधरस्य पुराणभक्तानन्दमधुकरस्य
 महामान्यविपश्चित्तलजस्य धीनवरद्वारायशास्त्रिण पुत्रस्य
 विश्वविभूतविपश्चित्तमण्डलाखण्डलानल्पदर्पदलबदधस्य
 तस्यैव गुरो परमानुकम्पाऽग्रणपात्रस्य काव्यालङ्कारस्य
 श्रीनिवासश्च स्त्रिण

चन्द्रमहीपती निरगादयमष्टमो नि दास ।

अखिलवैदुष्यरूपया श्रिया युक्ता य विद्वांसस्तेभ्यो रुचिरम् साधारणजनायापि नितान्त
 मधुम् लसशास्त्रम् अतएव वागीशैव य किमपि वचन्—वचन् विदा रसिकाना पाणौ
 आहितश्चन्द्रमहीपतिनामको ग्रन्थ भुवि ज्ञानिमन चिरं रमयताम् । एतस्य दृष्टा च
 ज्ञानपूजक चक्षुषा पश्यवत्कोऽभ्ययनशील मयूखैस्त्रि विविधैर्विषयै महित युक्त
 अतएव गुणै अहोन = पूज सता कृपा यस्मिन् एवभूतो भवेत् । तस्यायमष्टमो नि दासो-
 ऽगात् । पद्यऽस्मिन् श्रीनिवासशास्त्रिणा विरचितश्चन्द्रमहीप —इतिवाक्य नि सरति ।

नवमो निःश्वासः

विद्वज्जनसम्पर्को नष्टेष्टज्ञातिदर्शनाभ्युदयः ।

कस्य न सुराय भवने भवति नहारद्वलाभय ॥

नानवत्ती नचनाभ्या चरणाभ्यामपि प्रफुल्लकमलयती ।

शैवालिनो च केशैः मुरसेयं मुन्दरो सरसी ॥

अद्यापि ता कनकचम्पकदामगौरी

फुल्लारविन्दनयना तनुरोमराजिम् ।

मुमोस्थिता मदनविह्वलसालसाङ्गी

विद्या प्रमादगालितामिव चिन्तयामि ॥

सर्वे भयन्तु सुरिजः सर्वे सन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेन् ॥

रचना विरच्यमानाऽनुपदं क्लेशयति नम्यमानेव ।

कालेन परिचिता सा मुक्ता गलभूषणीकर्तुम् । अत एवसहरान्येनम् ।

शक्तिपरो मनोमोदिन्या कुन्दिन्या प्रवितपत्या चरत्या सहस्रान्दृष्टयवन्मया
सरोजिन्या च संहितः समापत्तौ राजनगम्, स्वकीय चन्द्रस्य च तूर्तं राक्षसपुरो
न्यवेदयत् । सरोजिनो कालाह्व विना प्रभस्तमिव नन्दनलम्समोर विना कुन्मितपस्यन्
इव प्रेयासं विना नापिचनराजत, किन्तु छिप्पुयादन्तत एकाकिम्येव ध्वजसौ स्पृष्टा प्राणादं
प्रविष्टा । चन्द्रविलम्बे शक्तिधरस्य सरोजिन्याश्च विशेषतः संहितमभूच्छेतः परं परमनिनो-
दिनोऽस्य सम्भाव्यते विनोदविलम्ब इति विचार्य हिन्दुधर्मयं वभूव जनः । मास अनुरदनम्,
जनवर्षो वर्षः, प्रतीक्षायांनेव व्यतांयुः । शतशः सुखं लब्ध्वा निमग्ना, मुदीर्षाणि महान्याययुः
स्नानानि वभूवुध । विशाला निशा राज्यं तेनुनेश्वर, विद्वद्य विचकन्, चन्द्रमानयावत-
स्थिरे च । परं चन्द्रो न समायातः । महाराजो निविचप्रर्नस्यशक्तिधर प्रतिदिनं वेदति ।

पुनः पटवः प्रेरिताः, पुनर्वियोगवारां निधेः शोकसागरस्य च प्रवाहोद्गाराः प्रावत्य प्रापुः ।
मालिन्यं पुनर्मनुजमुखमण्डलान्यभजत । महाराजे मन्त्रिणा मन्त्रयति द्वास्थो गुप्त-
विभागाभ्युदागमनमसूचयत् । इक्षितान्तः स त प्रैषयत् । स च त्रिः प्रणम्यासूचयत् —

‘देव, महत्या सेनया राजनगरमधिगन्तुकामश्चित्रपुरेशः समेति । शतं शिबिकानाम्,
प्रतिशिबिकं निष्कोपनिस्त्रिंशत्तानां यत्नद्वयपुषां पदातीनां शतम्, भोज्युष्णकानां सादिनाभ
त्रिंशती, मदमतमातद्गस्थासिना द्विशतो, भण्डकराणां नराणां चतुःशती । विज्ञानशला
असत्यातयन्त्रा परा सेना, तस्या रक्षायै चाश्वारोहिणां पदातीनाश्च दशसाहस्रो ।
परा च महत्तराहटा वस्तुजातरक्षायै पञ्चसाहस्री । सहस्रशब्द कर्मकराः सेवकाः पाचका
निवेशकाः । प्रतिदिनं गन्धूतिपञ्चकं प्रचलन् वनाद्गन्धं कृतनिवेशः समायाति ।’

राजा०—‘दुर्दैवेऽविचारितममना विपद् स्फीता भवन्ति । मन्त्रिन्, को विचारः ?

मन्त्री—युवराजे गते सर्वत्र शिथिलता विद्यते विभागेषु, अस्मां स्थितौ सन्धिरेव
गतीयान् ।

राजा०—‘नहि नहि, एतन्न भवितुं शक्नोति ।

महाराजो नवेन्दुर्वीर आसीत् । शक्तिवरप्रबलवपि गणनीयगुणावाहकम् ।
एतेषां साहसगिरा निर्जीवानां मानसेऽपि साहसविक्रमान्या समचारि । राजनगरसेना
जगद्विदितपौरुषासीत्, चन्द्र गते शिथिलता तामजूगृहत्, तथापि समुद्रः शुष्कोऽपि
मानस सरस्तिरस्कर्त्तुं प्रभवत्येव । —

विभागास्तुवाचन्नेव, विद्युत्स्पन्देनेव तेष्वेका नवीना स्फूर्तिः समाजगाम । जल-
सेना जले विद्यद्वाहिनी च विपति, महत्तरचमूध स्थले सञ्जिता । ‘छत्रधारिसैनिका
खाल्यास वदयामासुः । नगरमन्धतमसेनं^१ परिचितं कारितम् । समुद्रे प्रकाशः^२
स्वम्भानां प्रवन्धका नियुक्ताः । जलनिमज्जिन्यो^३ विरह्वीकृतरणपोताः सुरद्राक्ष^४ समुद्रे
प्रसारिताः । परं परप्रपीडकस्तारपीडकः^५ परसोढायै प्रेरिताः । आटङ्कना^६ लोहस्य
चक्रा दुर्भेद्यदुर्गा भीषणशक्त्या जगदुद्वहयामासुः । सहस्रजन्यो दलमर्दनतोषा अथ

१ पैरायट २ अन्धेरा (Black out) ३ (Light-house) ४ पनडुब्बियां
५ सुखे ६ तारपीडो (Torpedo) ७ टैंक (Tank) ।

तैलनिग्ना बभूवुः। जगतीं सन्देहसिन्धौ जुबुधितुं विषोद्गमद्वा वनाः
 विस्फोटकवना^१ नगरभस्मकर्मणोऽन्तिवना^२ शीघ्रविस्फुटनशीलाः^३ सनयापेक्षिण^४ च वनाः
 प्रचुरमानया निनिताः। गोतिकोद्गमिनीना^५ शक्तिः परीक्षिता। नरसहस्रा विशाखा^६
 अभ्रुत्तारिणः^७ क्षात्रिणः^८ तोदोत्पादिनो^९ विसर्पसम्पादिनश्च नेपाः^{१०} प्रभाव-
 प्रचारणैव भुव भीमनादकिरे। परप्रयुक्तान् नेपांश्च व्यर्धयितुं दुष्टवातोपशोषिका^{११}।
 सङ्ग्रहा समाख्याः। पाममुन्दर्यो गानकाचप्रनयलीलाप्रवीणा बीजाङ्गण्यधस्तातानां च^{१२}।
^{१३}बाधोपन्नाणि सैनिकवाससां कृते नियन्त्रितानि। तारविभागे^{१४} दूरालापयन्प्रविभागे^{१५}।
^{१६}अतारदृत्तोद्घोषकविभागे च राजनिनन्दनानि च्यनबन्धुः। राजभवनानां घनिभवनाना-
 ननुगरि पार्श्वतश्च सिक्तासंग्रहः समञ्जसि। चिकित्साख्येषु दिशेभ्यश्चान्यद्विज्ञानि। शिष्टान्
 स्त्रीणाञ्च कृते धृयग्व्यवस्था प्रारब्धतः। भूरक्षालहाणि^{१७} प्रचुरमानया सत्वरसत्वर
 निमित्तानि। वायुयानविष्वसक्तोषाः^{१८} भविष्यसिद्धैश्चक्यन्दैश्च^{१९} उच्चतानिर्देशक्यन्दैश्च^{२०}।
 च सयुक्ता आध्वर्यकर कृत्यं बन्धुः। वायुयानदर्शनान् प्रशङ्गीनि प्रकाशयन्नापि^{२१}।
 आविष्टतानि। समस्मिन् राजनगरे यानान्तनवालाः^{२२} प्रसारिताः। गुप्तभाषप्रयोगाः

१ वनतोडि वनः “टूनम् डर्नरुपे” पचायच्। विस्फोटपतीति विस्फोटकस्य
 पदापय वना इत्यर्थः। (High explosive bombs) २ दाहकवम (Incendiary
 bombs) ३ पृथ्वीपर गिरते ही फूटनेवाले Immediate bombs, ४ टाइन
 पर फूटनेवाले वम (Delayed Action Bombs) ५ मशीनगन Machineguns,
 ६ जहरीले गैस (Poisonous gases)। ७ इत्यने वाली गैस Tear gas।
 ८ छिन्नने वाली गैस Nose irritant gas। ९ चुनचुनाट्टपैदाकरने वाली
 गैस Long irritant gas। १० फकोले टपन्न करनेवाली गैस Blister gas।
 अत्र सर्वत्र गैस अन्विष्टायामित्यस्मात् घवि ‘गैस’ शब्दः। अन्विष्टप्र = अन्वेष्टन-
 माविष्टरपमिति शब्दः। ११ गैस के असर को न होने देने वाली टोपी Gasmask।
 १२ काटनमित्स। १३ तार। १४ टेलीफोन। १५ रेडियो। १६ जमींदोर रजायद।
 १७ हवाईजहाज को नष्ट करनेवाली तोपें Anti Aircraft Gun. १८ जिससे यह
 मायूस होता है कि गोला जब वहां पहुँचेगा, वही जहाज नष्ट होगा। १९ जहाज की
 लम्बाई मोल, फाट, इत्यादि मायूस करने का यन्त्र। २० अधिक पावरवाली लाइट।
 २१ बैलून बैरिज (Balloon Barrage) एकतरह का जाल, जिससे रणक्षेत्र
 ही जहाज में आग लग जाता है।

सङ्केतलिपयथार्थप्रापणं नवीं रीतिमनुसृतम् । पक्षिणोऽपि श्वानोऽपि शिक्षामसेदु ।
सङ्गमयुद्धय इन्द्रियज्ञाननिपुणा विविधभाषाप्रवीणा, लिपिजाळालुपुषा तत्त्वबोधवर्धनो^१
नियुक्ता ।

लघवो युद्धपोता^२ रक्षकपोता^३ सहायकपोता^४ औपचारिकपोताश्च^५ विविध
सम्भारैः सम्पृताः ।

अथ राजनगरस्य चत्वरान् चतुष्पथसमुद्रानभिमतोऽभिनव आहवकोलाहलस्तरागते ।
सोऽयं धारणार्थानामोप्सित कालो वसते । अलङ्कर्मिण्येव नवयुवकेषु किमु प्रौढेष्वपि नवीन
उत्साहो मुखरोभवति । सर्वेषां कसौ श्मश्रुसाधने लग्नौ स्वधनुषोद्याहणिमा प्रक्षयते ।
परितो वीरतावरवचास्सुच्यन्ते ध्यन्ते च । भटानां वीरभावो भेरीमङ्गारेण दुर्दुभि
ध्वानेन चतुर्गुणितो भवति । युद्धबाधनं योद्धृणा पादा स्वयमग्रतश्चलन्ति ।
पूर्णजसोऽत्यतीना अथा अपि रणकण्डूमपनेन सर्वप्रथमं जिगमिपया कृच्छ्रेण सदि
भिचार्यन्ते । मदमत्ता कटिनो घण्टाघोषैर्विश्वं बाचालयन्त प्रातृपण्या सविद्युतो वारिदा
श्च अभितो भ्रमन्ति । खड्गानां खण्डच्छरेण कुन्ताणां प्रभया भुशुण्डिकानां तोभानां
तुमुलेन शब्देन शङ्खानां ध्वनिना सर्वा दिशोऽयं परस्परमालपन्त्य इव प्रतिभा त ।
सर्वोच्चबुगशिखरेऽभिमानलालिता जगन्मानिता कीर्तिल्लेखं विजयपताका पफरायत ।
सुहृन्मनोहरे, मिमलनिमले, प्रोच्चप्रोच्च आकाशे हर्म्याणां कनककलशाः, विरोचनकिरण
कुलेन धौता इव विश्वं विहसन्ति । तत्र तत्र वातायनेषु स्थिता सौभाग्यमुद्दय
कमनीया कन्याश्च पुष्पाणि पुष्पमालाश्च विकिरन्ति । यत्र तत्र वन्दिरूदेन वीरवरणा
वर्णना वप्यन्ते । भगिनीभिर्प्रातृभाला भूयन्ते । कथनं सर्वमयति, इतरोऽनुलोमयति
परोऽभिप्रेणयति ।

मन्त्रशालामन्दिरे मन्त्रिण्यो मन्त्रस्यापढक्षीणतामक्षीणयितुं सप्रयत्नाः प्रतीयन्ते ।
अमित सतर्का धृतद्विन्दलिका सैनिकप्रहरिणः सदर्पं भ्रमन्ति । एको दूतश्चिन्पुरनामा
द्वितपदकप्रतिष्ठ आगम्य प्रहरिणमसूचयद् यत् स चिन्पुरेवास्य पत्रवाहकोऽस्ति

१ सैन्यर । २ छोटा जगी जहाज Sloop । ३ Escort ship ४ Auxiliary
Vessels ५ Hospital Ship

महाराज दिदुते” इति । प्रहरी च त प्रहरिष्यन्नघ्ये न्यस्य, तदन्त समाम्य
राजतनयस्यत् । स च तत्प्राग्मन वृत्तानमनविधितमुमुर्षु । अहिनियद-
पट्टि स परित आसन्नसन्वाया परिधि समाम्य महाराज ददर्श यत् दुष्टकुमेनादि-
तोऽर्द्धतोऽङ्गुष्ठितः घात्रेषु गुम्फितो गुणरत्नैः, अनुत्तारस्य यत्र परद्वर्ण इव
सोदहरपो राजा राजते । तत्र निः प्रमन्य जननेनैविविधभावभङ्गाया वञ्चनायाः पत्र
शदत् । महाराजः पत्र पृष्ठतोऽङ्गुष्ठोन्म नान्यत्र पञ्चावारिद्यत् । अनन्त्योदपद्य
प्रत्य ह्यो राजातनयप्रावन्त् ।

श्रीमत्तेजशान्तस्रान्तसमस्तस्रान्तदेर्दापननागनितनापस्त्रनिर्माह्नुदुदुष्टोऽङ्गुष्ठ-
सर्दीगितितितनाधितारापमपठनस्य, असन्प्रत्यप्रमुखाहृष्टप्रद्वयसुतनदनयपुञ्ज-
सौहृदनिविष्टेषु प्रत्यप्रनास्त्रायमानेषु श्रीपितृवररूपे सादर सस्नेहं नमोवाचनपुरस्सर
प्रपन्नति ।

चित्रपुरम्

}

नवना सुचरितुष्टः पुनः
दन्तः ।

अथ चन्द्रस्य प्रमिदमिति सुचरितेष्वखिलेषु शोभनमपठितमिति विचारयत्
वीरम्भनेषु अमध्यमे च राजति पत्रवाहकेन सह नान्यत्र एतन्मूढान् —

“उग्रलो रुचिचन्द्रो महाराज ?”

“आ देव ।”

“जाने क्षत्रियोऽस्मि ।”

“आ देव ।”

“शरीरेण साहसेन पुष्टश्चन्द्र ?”

[लक्ष्मणे रात्रि एष्टवप्रभेणैव स्त्रिय इव] “आ देव !”

“किं महत्ता सेनया चित्रपुरा-सेनत्वेन सनायातश्चन्द्र एव ?”

“आ देव ।”

“चित्रपुरत एव त्वा प्रपितवान् ?”

“आ देव ।”

महाराज दिदृक्षते” इति । प्रहरी च तत् प्रदक्षिपन्नक्रम्ये न्यस्य, तद्गत सभाय राजानमसूचयत् । तच्च तस्यागमन दूतागमनविविधानुसमुदे । अक्षिनिबद्ध-
पट्टिक- त्वपरित् आसन्नसभ्याया परिपदि समागत्य महाराज ददर्श यत् कुट्टुमेनाङ्कि-
तोऽश्वितोऽकुण्ठित शस्त्रेषु गुम्फितो गुणस्तनैः, अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण इव
सोदाहरणो राजा राजते । तच्च त्रि प्रणम्य जननेत्रैर्विविधभावभङ्गया बोध्यमाण पत्र
प्रादात् । महाराज पत्र पृष्ठतोऽवलोक्य मन्त्रिण पठनायादिशत् । अमात्यश्चोक्त्वात्य
प्रपन्न हृष्टो राजानमप्यभ्रावयत् ।

धोमसेजशान्तशान्तसमस्तसामन्तदेदीप्यमानामणितमणिलिखितनीलिमुकुटपृष्ठोज्ज्वलन-
रजदीधितिततिनाशिताशेषमयतनस्तु, असन्धस्तत्रजानुखाट्टहासप्रख्यससमुत्पन्नयदा पुञ्जसि-
तीकृतत्रिविष्टपेषु प्रत्यप्रभास्करायमाणेषु धीपितृचरणेषु सादर सस्नेह समावाचनपुरस्सर
प्रणमति ।

चित्रपुरम् } भवता मुचिरवियुक्तं वृत्तं
चन्द्र ।

अथ चन्द्रस्य पत्रमिदमिति सुपरितेष्वखिलेषु शोभनमापतितमिति विचारयत्सु
वीरमन्येषु भ्रमध्यग्रे च राजानि पत्रवाहनेन सह मन्त्रिण एवमभूदालय —

“कुशलो कविचन्द्रो महाराज ?”

“आ देव ।”

“जाने क्षत्रियोऽसि ।”

“आ देव ।”

“शरीरेण सादृशेन पुष्टचन्द्र ।”

[स्वकीये शक्ति एरत्यप्रयोगेण खिन्न इव] “आ देव ।”

“किं महत्या सेनया चित्रपुरापीयत्वन समावाचनं त्वं एव ?”

“आं देव ।”

“चित्रपुरत एव त्वा प्रणिनवान् ?”

“आं देव ।”

“तदा स्मिन्मसि सुख्यमपेक्षते स ?”

“आ देव !”

“तर्हि सूरय वयमायास्याम ।”

“आ देव !”

“किं चन्द्रेण ‘आ देव — इत्येव कथयितुं नियुक्त !”

“आ देव !”

वासैव परिवर्तिता । इक्षिन्द्रायणयोराम्रनिम्बयो, दीनारकपदयो, सुभिक्षुभिक्षयो युद्धपथ्योरिव भेदा बभूव । शत्रोरभिमुख प्रयात्री महती सेना चन्द्रस्तागत चिकीर्षया प्रोज्ज्वलमाना बभूव । कणाकणिभ्या क्षणेनैव समाचार सर्वत्र प्रवृत्त । मलिनमुखे नगरनरे विलम्बणा दीप्तिरामता । सर्वे सम्मिस्थ पताकाभिः ससरणसेवर्नैः परिमलविटपयासीमालामात्माभिद्वाररचनैश्च पुर पुर दग्धपुरयामासु ।

*

/

*

हारकपनरस्थकोरगिरा विघूर्णिते प्रासादे रम्यासन्ध्यामासीना राजमाता । भित्ति भजमानानां भ्राजमानानां विटपानां पुष्पलतानां सौन्दर्यं भवनसौरभश्चादाय धीरधीर समीरो विश्वस्मिन् वितरितुमिव वाति । सरोजिनी च सत्यपि सखीशते दासीसहस्रे परमप्रेमप्रसूदप्रणया स्वयमेव लघुना व्यजनेन व्यजयति । करकलितनीला कुमुदिनी च शिल्पिनो नैपुण्यबोधेने निमग्नविक्ता अभस्तादुपरिष्ठात् पार्श्वतश्च हर्म्यस्य रचनां सौन्दर्यं दौर्बल्यं द्वाराणि अवस्थानबोधेक्षते । सैव हर्म्यरक्षायै अधिष्ठाता । शतशो दास्यस्तस्या आह्वया परितो भ्रमन्ति । एका दासी तस्या कर्णान्तिक शनैरबोचत् । सा च सरोजिनीम् ।

सरोजिनी० — सत्यं कथयसि वा व्यामोह ?

कुमुदिनी० — व्यामोह ? महाराजमुखाच्च ध्रुतम् ।

सरोजिनी० — किं भूतम् ।

कुमुदिनी० — यच्चित्रपुरेशत्वेन तव सौभाग्यसिन्दूरं समावर्ति ।

सरोजिनी० — कास्ति द्वारि ।

तेहारिणी० — (प्रविश्य) आज्ञाप्यता महाराज्ञि ।

सरोजिनी—ज्ञातं राजसमासवादः ।

*

*

*

बोजनदीर्घः समारोहोऽयं नगरससरणानि व्यापत् । हर्षवर्षप्रसङ्गा भूमिदृश्य
आकाशमपि निदिशतु चकार । तोपनां निवेदेन दिशोऽपि विज्रपित ।

समये राजभवनं प्रविष्ट अश्रुपितपितृपादः पितर मोहमुग्धमूर्खौ मातरश्च
प्रणतान् चन्द्रः । प्रणेतुश्च हर्षमुवनेष्टौ ।

अथ सरोजिनी कविकामिनीव दृष्टा प्रोत्त्वविचारा कमला प्रणम्य प्रस्तुतेन
पुञ्जलभपृच्छत् । कमला च कमनीयाङ्गुल्या चर्मा निदिशन्ती सर्वमसूचयन् ।
कवयननसा सरोजिनी च प्राणप्रियाधानेता विपत्तिं सध्रुव नाशकरोद्ध वाप्याणि ।

*

*

*

“देव, महतो दुःखस्य विवर, महानात्यो विद्याधरः सन्यासाढान्तोऽकरमाजगज्जही”
—कृष्णवस्त्रेण सृपेन महाराजो नवेन्दुर्नवेदि ।

“आः विद्याधरो दिव गतः, अर्धुन नया सद्य बहुशो राष्ट्रिययोजनास्त्राढ्य गतो
सूतश्च हन्तः । कौटुक क्षणभङ्गुरमिदं शरीरम्, कोटशो व्यामोह, अर्थातिमामिमीन वयः,
तिलः परममुन्दर्योऽप्सरस इव स्तुया. सोदर्या इवाकलहाः सृष्टल्लभावाश्च, त्रिवर्तिला
जगद्भ्रमचक्रिपुलप्रतिभक्षन्त्र गुमनी पीत्री, सुष्वबन्धप्रबन्ध राग्यम्, तयसि नाह
लक्ष्मुस्तुहे, अतन्तेय मोहर्तश हन्तः ।

“नृत्त ! वनमायोत्र शाप्रं मा गुरुसमीपं प्रापय—” नवेन्दुना प्रोक्षम् ।

*

*

*

“शुरो ! कीदृगय ससारः कथनस्मादावर्त्ताद् बहिर्गन्तुं शक्यते” ?

राजन्, अह्नमेव बन्धनम् । अज्ञानन् यथा पुमान् नवनगरे भ्रमननुभवति
तद्वत् दुःखं तथा न जानन् । अह्नमेव मोक्षः, अह्नमेव बन्धनम् । सृष्टिरितं
मायातिष्ठ । नात्र सुखम् । पुमानलोकमुख्यया भ्रमन् दुःखनेषणीति ।
मुखं तु केवलं भगवत्त्वानुसन्धानम् । त्वमत्रैकान्ते निवसन् नृचक्षिणा व्याघ्र-
माणो न विरेप प्राक्ष्यमधिवनिष्यसीति मे विश्वम्

*

*

*

“वन्द्य पण्डित, किं नाम भवतः” ?

महाशय ! मा जना के के शास्त्रीति भाषन्ते ।

के के शास्त्रीत्यस्य कोऽय १

के के ०—अर्थन्तु भाषका एव जानन्ति पर लोके भाष्यते मन्त्रमैतत् सैनिक ।

सैनिक ०—(सहसम्) एतदेव पृच्छयतेऽन्यक सायक चैतत् १

के के ०—को जानीते ।

सैनिक ०—क = ब्रह्म च जानाति १

के के ०—(अनपेक्ष इव) सम्भाष्यते ।

सैनिक ०—(सादरम्) मपत्वाय । उरकण्ठाकलितवत्तया पृष्ठम् ।

के के ०—केचन कविताकमिनीकात् परे च कमलाकान्त इति स्वरूपं प्रकाशयन्ति ।

सैनिक ०—आ एवम् । आकञ्जलिप्यनुरूपम् (सिद्धिद्विरम्य) किं क्रियतेऽत्र महाभुभावेन ।

के के ०—किं क्रियते अस्मिन् काले किमपि कृतं शक्यते १ कं पृच्छति पण्डिता नय कोऽयं पिपठिषति सरूढता वाचम् । दोहासद्वयारचयितृणामल्पज्ञाना केवल कण्ठमधुरिण्या मोहयितृणा तथाकथिताना नवीनानां कविम्मन्यानामय सम्मान । साय जगद्भाषाजनन्यपि विश्वेनोच्यमानापि विभिन्नरूपेण, मृत्भाषति शक्यते म्लेच्छ भाषाविद्विन्नवीनैः । सरूढतज्ञाना सुदुस्तरतरा दारिद्र्यापणा प्रतिदिनमेधते । यया प्रप्रीज्यमाना मानवदोदधिचराश्चक्रशक्तिभिरपि प्रत्यहमर्चयानचरणचुगलचरा सम्प्रति अविगण्य अम्बरमग्नगणितगभस्तीन् खेदजाता प्रतोलीत प्रतोली पयटन्ति वचनव । येऽञ्जलिप्रसन्नानुष्टुप्तास्त्रयोधना राशोऽपि बाहीकृत्य ५३ सक्कोधु येपु लोकापालानामपि त्यक्तस्यैयभैय मन त एते प्रक्षीणतपोवैभवा अज्ञातजातीना धनिना गृहेष्वनाहूता यान्तो विना प्रणाममाशिष वदन्त उद्गारे अम्भुज च चिरञ्जीव इत्यादि न वतो मिथ्याचारा ध्यायन्ते ।

असत्योत्क्रोचयताधिगतधनाश्चरिणान्चारविरहिता धनिनश्च समुद्रप्रेतमुधात्तार कारण्डव षष्ठपटलायितसितहितशीतवसनविभूषिता कुन्तलतल्पपरिमलेन भवनमामो दयन्त पञ्चदशप्रोशीरा शीततापनियत्रकेण सेव्यमभ्या राजतपादपेय मद्येय स्थिता

वेधसमिव तत्रान्तः स्वस्वोत्पादकान् वर्दकाश्च नाक्षणान् मर्त्ययन्ति । धर्मरक्षकाः प्राधान्ये-
नासन् इतिराः, पर तेऽधुना मासे मये च शौर्यं चिन्तयन्तो निःश्रान्ता जटाज्वलानिवापय
पश्यन् पन्तोऽनुपनीता बालाः कन्याहमनपक्षिणः परस्परविरोधविनाशितवरा विशा
लाटाटिक्टा कुर्वन्तस्तेषां पुत्रोत्सवे सम्मानं लभन्ते ।

यदानश्च विलासाचारपावकाद्यग्नेन न लभन्ते दुष्टाचारं वक्ष्यामकः ।

सैनिकः विचित्रचरित्रोऽयं कलकत्तप्रयोगशीलकारणबन्धून् एतेऽपि भिक्षुकान् हरेति,
यर्ममूर्खान् हरिश्चन्द्रादेन दृष्टच्छोभनजीविनः इमद्यानसेविनो निष्कस्य मूलतः पुनर्याति
सौदासदीश्च वरभोजित्वं प्रापयति ।

इदं तामस्मिन्नेव नगरेऽस्माकं युवराजश्चन्द्रो विद्याबुद्धिविबुधवित्तोऽपि प्रयसा-
प्रयस्यजननेना विलासासक्तः समरमतिवाहयति । न्तिरा योग्यधायमासीत्,
बहुः प्रतिज्ञा अग्नेन कृतवराः प्रजातन्त्रपदस्या घासग्मनेन प्रतिज्ञातवरा
परमपुत्रा मधुना हतविवेकः कथं स्मरेत्, प्रेयसानुपुरम्भितौ कथं प्रजादृष्ट
शृणुमान् ।

सैनिकः —सत्यं देव ! एतदत्र जातम् । पर चन्द्रो हृदयेन शुद्धः सद्बिचारश्च,
परिपितयत्नं वन्मृतमकार्षुः । अहं चन्द्रस्य सखिष्ठः स शीघ्रमेव स्वप्रतिज्ञादुसारं
विकीर्षति । परमेतन्निश्चिन यत्तत्सोद्यानं मालतीपरिमलेन शणिकामुरभिगा
वकुलगन्धेन धुक्पिच्छलहसकट्यवैर्नकरन्दलुब्धानां पृथ्पदानमहनिशजन्देन सुद्योभित-
मासाद् कुटिलकालकटाक्षहृष्णाहिनष्ट धूलिपुसरिणं इमद्यानारितं जातम्, पर
चतुरो बालाकर इव स त शीघ्रं पुनरजीवयिष्यति । स न नयपो न च स्त्रीभक्तः ।
तस्य विरहिनयनानि परिस्थिरा जातम् । सरोजिन्या विवाहः कमलाऽऽग्रहेयः । कमला
च कमला नृता विज्ञाय राष्ट्रप्रत्यावर्तनानुत्पुच्छन । तस्य दिनवोऽपि पुरुषनिर्विरोध-
राज्यधर्मनिपुणत्वं प्रजातन्त्रपदतौ प्रेरयन्ति । भ्रूयते स स्वः स्त्रिय एव विनिव-
प्रान्तेषु राज्यप्रतिनिधित्वेन प्रेषितुमिच्छति । चिन्तेतत् सर्वथा सत्यं यदिपरीतायते
कालः । प्रत्येकस्मिन् क्षेत्रे विपरीतमेव स्थितिं पश्यामः । इत्यध्यात्मिनः पुराणः पुरा
वरा गन्तव्ये गन्, अनुना च शिरसि विन्यस्तकेशा निरुत्थुखाः स्त्रीनिर्विरोध एव वैशिष्ट्यं
लभन्ते । करवलो यथा प्राक्कलिकानां करं करवत् एव युनिकता तथा नमुयां वरयति ।

पूर्वं पुरुषाणांमाज्ञया स्त्रियोऽधुना च ता एव वाम दक्षिणयन्ति । प्राचीनानां वामिता यथा तथैवाधुनिकानां धूर्त्तता ।

नवीनाः सम्प्रदाया प्रतिदिनं प्रेक्ष्यन्ते । जगति जागरूकदम्भारम्भा जना जठरपित्र-
पूरणाय अविधेकिजन्मवधनाय सुतरा स्वपरिवारपूर्वै मिथ्यायश-प्रचाराय च नवीन
सम्प्रदाय प्रचारयन्ति । नवीनत्वञ्च प्रचलितविपरीतत्वम् । जगत्प्रचलितस्य सम्प्रदायस्य
व्यवस्थापका जटिला मुण्डिनो वा, अतो नवीनैः केशा लुप्त्यन्ते, प्राचीनाः क्लान्ति जनतां
परोपकाराय प्रेरयन्ति च, नवीनाश्चान्तो मातापित्रोरपि सेवा कर्त्तव्ययन्ति । चन्द्रमुख
कमलिनीकमनीयतनुलताः कदलीकोमला बालिकाः परलोक्तादिष्वद्वैधादुशतैः प्रबद्ध-
वचोभिः प्रलोभ्य धौवने पदमर्पयन्त्यः प्राथिता अनेकैर्वरैः प्रथिताः पृथुगुणैः केशान्
विलुच्य वासपट्टिका मुखे आवध्य ज्ञानज्ञानाचारसस्कारान् सर्वथा परित्यज्य केवल
विषयनिरतैः (केवलिभिः) छद्मधर्मगत्तैः पादयन्ते ।

के० के०—अक्षरशः सत्यं कथयसि ।

सैनिक—भगवन्, जगत् स्वाभाविक एष धर्मः । नयाः प्रवाहोऽपि नैक
स्यापयितुं शक्यते, किं पुनर्मानवानां चञ्चला प्रवृत्तिः । विचाराः प्रतिक्षणं परिवर्तन्ते ।
अस्तु, अहं देवस्य परिचयं श्रोतुकामः ।

के० के०—सखीयान् कविरदमस्मि, सोऽहमधुनाऽस्त्वय इति गृहीतावकाशो गृहे
निवसानि ।

सैनिक—तर्हि श्रीमन्तः कवितामपि तन्वन्ति ॥

के० के०—आम्, कदाचित्पुनर्दृष्टव्यवशाः ।

सैनिक—किंविषयिणीं देव ।

के० के०—को विषयः, यस्यावसरः समापयेत्, स एव विषयः ।

सैनिक—गुरो ! जगज्जालोद्विग्नं चेतः साहित्यचर्चाचरितुं यच्छेत् । यदि नास्ति भवतो
वेलाविलम्बः, यदि चेत् साहित्यसुधयाऽनुजिघृक्षन्ति, तर्हि पूरयन्तु ममाभिलाषम् ।

के० के०—शुनिय । कः संसारविहारी एतस्माज्जगज्जालदुन्मुखोऽस्ति । मादृशा
अप्यस्मिन्प्राये मुमुक्षु वद्धा, परं साहित्यचर्चा चरितुमोहास्ति चेद् गूढं हि क विषयमधिकृत्य
त्वं प्रसादयामः । त्वमस्माकमयानिनवः साहित्यातिथिः ।

सैनिकः—गुरो ! त्वत्तं जननंवाविहृत्य चात्र सरसा ननेनोद्दिता सान्त्व-
नप्रदनी रचना भवेत् ।

क० कं०—यतिष्ये । नद्य रोचते दत्त पद्मम् ।

सैनिकः—मगधम् । पद्मम् ।

क० कं०—श्रोतव्यं तन् । अहमस्य जनस्य शब्दचित्रं नवतः पुर एव वदामासि—

सुरदशारदपौर्णिमचन्द्रमःसुविशदप्रभभास्वरविग्रहान् ।

अबहुदर्शनुरच्छतो त्रीणि त्रिपुलविग्रमचिन्त्यगुणा तुनः (?) ।

सुख ददतीति सुखदो यः शरदः नवः शरदः “द्वत्तन्” शरदः पौर्णिमचन्द्रसदृश-
विग्रहप्रभः—दृग्ज्वलन्ति, भास्वरस्य विग्रहो दस्याः सा तन् अबहुदर्शं भवत्य इतो =
रत्नाणां विजयसमूहम् अतसरन्तीं अतिवाञ्छुषा कमरि रुनः ।

जिगमिपुर्दिशि पाशभृतः पपीरपहरन् कमलत्रियनोक्षितः

परिचिह्नैरित्य लज्जितमानसः मनभवन् परिरक्षसिताकृतिः (?) ।

पाशभृतः—बहुरथ, दिशि—पश्चिमाग्रा, जिगमिपुः—बन्तुमिच्छुः परीं सूर्यं, पपीर-
रथ चत्तौ, सिता अकृतिरस्य स मनभवत् । कमलतां श्रिय=शोभा अहरन्,
परिचिह्नैः—लोक-लोकैः ईक्षित=इष्ट, अतएव लज्जितमनस इव । अनहरनमनपं
इष्टः यतोऽपि लज्जते । अन्तः सहस्रमिहसुप्तिम् सुदमश्रं कर्मणि प्रवृत्त इति
महत्तमत्वम् । लज्जितस्य सुख रक्षं स्ति च भवतीत्यनुत्तम् ।

सकलवासरविमनरगावपश्यितकाय श्वोऽश्वलितोऽग्निना ।

बलनिधाविव मङ्कुनभीहते कमलजातविशोकिविभाकरः (?) ।

कमलजातविशोकीं चत्तौ विनाश्र=कमलद्वयशोकाया एव सूर्यः । अग्निना
दग्मल्य इव बहिर्दग्नाः प्रवृत्तो नर इव, सकलवासरे=समस्तदिने, विमनरगा अतयेन
व्यभितक्षन्—दुर्लभतया । अलनिधौ क्लृप्ते मङ्कु-—कतुंअनेह इव ।

श्रमणशोक्षितपापदृढन्यकं गमयितुं नयितुं मुनितानिनः ।

गिरिगुह्यमुपविश्य तितप्तसि स्वदुल्लभद्वितवार्धिन्युपेति वा (?)

इतः = सूर्यः । अमरे बोधित = दृष्टं, पापकदम्बकम् = अनाचासमूह, गमयितुं = नाशयितुं,
मुनिर्ता = मुनिभावं, मयितु = प्राप्नुं, गिरिगुहाम् = अस्ताचलदरीम्, उपविश्य = आसद्वेन
परिकल्प्य तितप्सति = तप्तुमिच्छति ।

स्वस्मान् (जात) कुल = स्वकुल = सूर्यवशस्तेन वदितो यो वाधिः = समुद्रः
(पट्टिसदृशसगरमुनादेव मृगयमाणरेष खनितः—इति पौराणिकाः) ॥ वा उपेति ।

उपतटोद्भवपादपमञ्जुले किसलयारुणिते नववञ्जुले

विशदवारिणि वाधितटे शुचावयि । विधित्सति सान्ध्यविधिं रविः (१)

रवि, तदस्य समोर उद्भूतः = उत्पन्नः पादपैः नञ्जुले = मुन्दरे । किसलयै-
नववनरुणिते, न्वाः = नूतनाः वञ्जुला = वेतसा यत्र, शुची = विशुद्धे जनदुर्गम-
त्वावितिभव । विशद वारि यत्र तयाभूते वाधितटे = समद्रकूले, सान्ध्यविधिं विधातुं =
कर्त्तुमिच्छति इव ।

क्षितितले कमला भवता प्रिया युवकराजकयान्धितसुस्मिता ।

इति निवेदयितुं जलशायिने त्वरितमस्तमगादिव भास्करः (१)

क्षितिर्—“युवैव युवक, राजा समूहो राजक “गोत्रोक्षे ति युव” तेन बान्धित्य
अभिलषित सुस्मित यस्याः सा भवता प्रिया = भवतां प्रियेव सुन्दरी कमला, क्षितितले
मर्त्यलोकेऽस्ति—इति जलशायिने भगवते विष्णवे निवेदयितुं ॥ भास्करः = सूर्य,
त्वरित यथा स्यात्तथा अस्तमगात् ।

सैनिक० । शास्त्रिनः । केय कमला ।

के० के० । कवयो हि नाम केवलकीर्त्तनपरा वस्तुनः सौन्दर्यमुद्गिरन्तो निर्दूषणा न
दोषभाजोभवन्ति, अम्भोजनिरिवाम्भसः । कापि भवेत् कमला ।

सैनिक० । तदैव निस्तारः । अस्तु, प्रकृतमनुसरन्तु ।

उपगतेऽपगतिं जगदक्षणि विपुलगर्वसदर्वविधूननात्

गगनसंस्तरणात्परिमार्जितं निपतितं पततीन्दुसमं रजः (७)

जगतोऽक्षणि = चराचरस्य नेत्रे भगवति सूर्ये, अगति = अस्त प्राप्ते, विपुलार्वा-
धासी सदवा = श्रेष्ठस्वस्य विधूननात् = कम्पनात् निष्पतितम्, इन्दुसम = कर्पूरतुल्यं
रजः, गगनमेव ससरण = राजपयस्तस्मात् परिमार्जितं सत् पतति । श्रान्तोऽधुः
शरीर विधूनयति ।

उदरदर्पविनाशकृतश्रमाः शुकरूपोतमयूरपिकादयः ।

कथयितुं दिनदृष्टमिवाद्भुतं विविशुरेत्य कुलायचर्यास्तरुन् ॥८॥

उदरस्य “नाह केनापि पूज्यो भवामि” इति यो महान् दर्पस्तस्य विनाशे =
सकृदाशो कृतः श्रमो यैस्ते शुक्रादयः पक्षिणः, तस्मिन् = स्वाभ्यान् दृशन् एतद्
दिनदृष्टमद्भुतम् = आश्चर्यं परस्पर वालेभ्यो वा कथयितुमिव कुलायचर्यान् विविशुः ।

अगरुतः शिशावोऽशनयान्विताः सरुणचन्चुपुटानथ वीक्ष्य तान् ।

विदधते विरुतम्, नवपत्रिताः शकुनिभिर्विटपाः सुपमामिव ॥९॥

न गच्छन् येषां तेऽगस्तः = अपज्ञाः, अतएव शिखरः = बालाः पक्षिशावकाः । अशनया =
वुभक्षया, अन्विताः = युक्ताः, सरुण = अजकृणसहितं चन्चुपुट येषां ते, तान् पक्षिणः,
वीक्ष्य दृष्ट्वा, विरुतं = कलत्रं विदधते = कुर्वन्ति । अथ विटपाः शकुनिभिः = पक्षिभिः
शुरुदिभिः, नवपत्रिताः = सज्जातनवपत्रा इव सुपमा = परमां शोभां धारयन्ति ।

सैनिकः—साधु ! पण्डित । साधु ! वस्तुतः कविताकामिनीकान्तोऽप्यसि । कवीन्द्र !
अनुभूतोऽस्यैकस्मिन् विषये, पुनस्मिं पुरविला अनुगृह्णाण विलक्षणार्थां समस्यां “दिनकरे
रजनीकरतां गते ।”

के० के०—(क्षण नमो विलोक्य) शृणु—

प्रचलितेऽहि, तमोलिहि भास्करे कमलिनीचलनगदिव संस्थिते ।

सुरारितं विहितं विभिराचनं दिनकरे रजनीकरता गते ॥१०॥

अहि = दिने प्रचलिते, तमोलिहि = तमोहन्तरि भास्करे = सूर्ये च, कमलिनीचलनात् =
पद्मिनीचलोच्चात् ‘बल’ सवरणे ल्युट् संस्थिते इव = मृते इव लक्ष्यमाणे, अत एव दिनकरे
सूर्ये, रजनीकरतां गते प्राप्ते, विभिः = पक्षिभिः, आ =, समन्ताद्गतमाचनं मुखरितं =

वाचालितम् । निशाकरणे सूर्यस्यापि अस्तमयनेन साहाय्यम्, अतो दिनकरस्यापि रजनीकरत्वं युक्तम् ।

लघुपु पुण्यरथेषु कृतस्थिति भ्रमति वृन्दमिदं रमणीजुषाम् ।

विमलमाल्ययुजा सुहृदामितो दिनकरे रजनीकरता गते ॥१॥

दिनकरे रजनीकरता गते लघुपु = स्तरपेषु, पुण्यरथेषु = सुखभ्रमणार्थेषु रथेषु 'तागा' 'वग्धी' इत्याख्यातेषु "असौ पुण्यरथश्चक्रवान्न न समराय तत्" इत्यमरः । कृता स्थितिर्न तत्, रमणीजुषा = लोपरिमृष्टशक्तिना वृन्द = समूहो भ्रमति । इतश्च विमलमाल्ययुजा = निर्मलसजा सुहृदा मित्राणां वृन्द भ्रमति ।

अरुणिते सुरवर्त्मनि तारका बृहत्तिकाङ्कितशुभ्रकुशेशया ।

यभुरियातनुभास इन्द्रिपो दिनकरे रजनोकरता गते ॥२॥

दिनकरे = सूर्ये, रजनीकरता = अस्तमामिति यावत्, गते प्राप्ते, इन्द्रिपो = सूर्य-विरोधिन्यस्तारका, सूर्ये उदिते एता निष्प्रभा भवन्ति अत एता सूर्यं द्विषन्तीति भावः । अत एवातनुभास = प्रोज्झत्य । अरुणिते = लोहिते, सुरवर्त्मनि = वियति, बृहत्तिकाया = उपयाच्छादनवस्त्रे, अङ्किता रजतखण्डसूत्रैश्चङ्किता, शुभ्रकुशेशया = सितरुमलानीव यभुः ।

वियति मौक्तिरवृन्दमिवातत रवितुरङ्गमरुणतलाच्च्युतम् ।

यिपुलभं भमल प्रतिभात्यदो दिनकरे रजनोकरता गते ॥३॥

सूर्येऽस्ते विशिष्टप्रभ नक्षत्रवृन्द रवितुरङ्गमाणां = सूर्याधानां कण्ठतलाच्च्युत वियति = आकाशे, आतत = विस्तृत मुक्तावृन्दमिव अल प्रतिभाति ।

कमलिना मलिनी समभूदर कुमुदिनी मुदिनी भ्रमरै समम

सरसिका रसिकाचितभूमयो दिनकरे रजनोकरता गते ॥४॥

दिनकरेऽस्ते कमलिनी = नलिनी, अरम् = शीघ्र मलिनी समभूदर । सरसिका = सरस्वती = भास्वरी, अचिता = व्याप्ता भूमयो यासां ता अभूवत् ।

अहनि कार्यरुदम्बभृशाकुलं जनकुल शयनीयगृह गतम् ।

नभस आचिरभूमुगदत्तमो दिनकरे रजनीकरता गते ॥५॥

स्येऽस्ते, अहनि = दिने, कार्यकर्मणेन - कर्मसमूहेन, रुधमाकुलम्, नरकुलम् घटनाय-
रुधम् = स्वानात् गत । नमस सकाशात् मुनहत्तमश्वाविरमूत् ।

क्षणदया विततं स्वशिरोऽश्रुकं रजतपुष्पयुतं कृमिकोशजम् ।

गगनमृशगणेन विभात्यदो दिनकरे रजनीकरता गते ॥१६॥

स्येऽस्ते, अदो गगनम् - आकाशम्, मृशगणेन तारकासमूहेन क्षणदया = रात्र्या,
रजतपुष्पयुतं कृमिकोशजम् = कौशेय स्वशिरोऽश्रुकम् - उपरिषत्त्र विततमितीव विभाति ।
यन्वेदेशे स्त्रिय कौशेय रजतपुष्पाङ्कित "नोटना" पद्माक्ष्य उपरिवाधो दधति इति ।

कनकदामहिमाशुमुचन्दनैर्विहितकल्पन एष महेश्वरम् ।

अभयदं भजते क्षितिनिर्जरो दिनकरे रजनीकरता गते ॥१७॥

दिनकरे रजनीकरता गते = प्रदोषे, एष क्षितिनिर्जर - भूदेव, कनकदाम =
यत्तुरस्तर हिमाशु - कर्पूर मुचन्दन फादमीणुल्लुचस्ती विहिता = कृता कल्पना
पूजनसामग्री येन स, अभयदं महेश्वरम् = शिव भजते ।

यमदमेर्जिमलं गतवासन नियतशान्तिनुपो विदुषो मन ।

भटिति सध्रयते विनुमन्त्रय दिनकरे रजनीकरता गते ॥१८॥

नियतशान्तिनुप = निबाधा शान्ति दधानस्य विदुषः = ज्ञानविज्ञानसम्पन्नस्य यमदमे
विनलम्, यमदमाभ्या मनसो विमलकराणि सवाणि साधनान्मुपलक्ष्यन्ते । वसन्तरहित
मन प्रदोषे भटिति अन्वय विभु भ्रयते ।

जपति मन्त्रपवित्रकुशासने बटुजने हरिणाजिनधारिणि ।

समुदगात् कुमतेरपि सन्मतिर्दिनकरे रजनीकरता गते ॥१९॥

सुपास्त्रजनये मन्त्री पवित्रे कुशासन हरिणामजिन = चम धारयत तच्छाल
बटुजने = ब्रह्मचारिजने जपति सति = जप कुर्वति सति, कुमतेरपि = न स्तिरस्त्रपि
शोभता बुद्धिः समुदगात् ।

स्मरति योगिजने त्रिधुशेररं मलिनकमनुपामपि नानसम् ।

दुष्टमहो । परमात्मनि सद्गतं दिनकरे रजनीकरता गते ॥२०॥

सूर्येऽस्ते योगिजने विधुशेखरम् = शिव स्मरति सति, मलिनकर्मजुषा = निन्दितकार्यं
सेविना मानसमपि अहो । आश्चर्यम्, द्रुतम् = शीघ्रं परमात्मनि सन्नतम् ।

नदति वाद्यवर सुरमन्दिरे कनककुम्भविगूषितसानुनि ।

प्रविदधत् किल दुष्टजनव्यथा दिनकरे रजनीकरता गते ॥२१॥

कनकस्य = सुवर्णस्य, कुम्भौ = कलशैर्भूषितं सानु यस्य तस्मिन् सुरमन्दिरे, दुष्टजना-
व्यथा प्रविदधत् = प्रकुर्वत्, वाद्यवर नदति ।

पिपठिपुर्निजपाठ्यसुपुस्तिका ज्वलयितुं किल दीपमयोमयम् ।

विशति सत्वरमग्निगृहं वदुर्दिनकरे रजनीकरता गते ॥२२॥

सूर्येऽस्ते निजपाठ्यसुपुस्तिका = पठनीयपुस्तकानि पिपठिषु, अयोमयं दीपं ज्वलयितुं
गृह = प्रज्ञाचारी सत्वरमग्निगृहं विशति ।

किरणकमकरैः परिशोधिते क्षणदया वितते तिमिरे घने ।

विपुलभ प्रतिभाति वियद्वपुर्दिनकरे रजनीकरता गते ॥२३॥

दिनकरे = सूर्ये रजनीकरता = चन्द्रता प्राप्ते सति, प्रकाशकत्वेन चन्द्राय तेजो
दानाच्च । क्षणदया = रात्र्या वितते विस्तारिते, घनतिमिरे किरणकर्मकरैः किरणकर्म-
चारिभिः शोधिते वियत् = आकाशस्य वपुः विपुला भा यस्य तथाभूतं प्रतिभाति ।

विरहिणा प्रचुरार्त्तिकर शर विहितसालसचौरजनाकर ।

वितनुतेऽतनुतेजसि सत्वर दिनकरे रजनीकरता गते ॥२४॥

अतनुतेजसि विपुलतेजसि दिनकरे गते सति, विरहिणा = स्त्रीवियुक्तानां प्रचुरार्त्ति-
कर = विपुलव्यथाप्रदं शर इव । विहितं = कृतं सालसं चौरजनाकरो देव,
चौराश्चन्द्रिकायां सालसा भवन्ति, तथाभूत एष चन्द्रो रजनीकरता सत्वरं यथा स्यात्तथा
वितनुते विस्तारयति । दिनकरभयादिति भावः ।

मदनमोदकरो वनितावता घवलरश्मिभिरन्धमधो नयन् ।

द्रढयतेऽतुलकान्तिविधुर्निजा दिनकरे रजनीकरता गते ॥२५॥

दिनकरे गते = सूर्येऽस्ते, अतुलकान्तिर्यस्य तादृशो विधुः, वनितावता = स्त्रीमता,

मदनमोदकः=स्मरकर, हर्षकर, नवलरसिभिः=शुभ्रकिरण, अन्यं=तमः, अयो
नयन् निजां रजनीकरतां=नितापतितां द्रव्यते ।

अलकमञ्जुनिकुञ्जतिरोहितद्विजपतिः प्रथिताभमुविग्रहा ।

ऋटिति सज्जति विश्वजिगीषया दिनकरे रजनीकरता गते ॥२६॥

दिनकरे रजनीकरतां गते=सूर्येऽस्ते अलकानां मञ्जुनिकुञ्जे तिरोहितो द्विजपतिर्यथा
सा, प्रथिता आभास्त एव नु घोभनो विग्रहो यस्याः सा कापि ऋटिति=क्षणमपि
मातिवाह्य विद्वां जेतुमिव सज्जति ।

सैनिकः०—अत्यंतचिदपचिपन ! गुस्वर ! साधु,

भवति यच्छविमत्कमलाकरे नयति यत्कमलापतिरर्चने ।

ग्रहपतेर्विरहे मलिनं हि तत् कमलजं कमलं कमलाकरे ॥२७॥

कम्=जलम् अल्यति=भूषयति तत् कमलम्, कमलजं=पयोजं, कमलाकरे=कल्मी-
हस्ते, छविमद् भवति । यत्कमल कमलापतिरर्चने=पूजने नयति, तदेव कमल ग्रहपतेः=
सूर्यस्य विरहे मलिनं कमलाकरे=हृदे वर्तते । नारं स्थानं स्थित्सति ।

अथ वियोगजनिर्वत । कोकयोः प्रियवियोगमहोत्फटशोकयोः ।

असुलमेति सुलात्परतः सदा नियतिसिद्धमिदं जगति भ्रूयम् ॥२८॥

प्रियवियोगेन महोत्फटशोकयोः कोकयोः=चक्रवाक्योः, वियोगजनिः=वियोगोऽ-
भूः । सुलात्परं सदा दुःखनुपेतीति निवर्तिनिवमः ।

गणिकया गणिका सुपमान्विता गृहगवाक्षनिधापितकूर्परा ।

पथिचरान्नयनेन विकुर्वती धवलिते विद्युदायन इन्दुना ॥२९॥

विद्युदायने=आकृष्टे, इन्दुना धवलिते=प्रकाशिते, गृहगवाक्षे निधापितः=कूर्पो
यदा सा, गणिकया—"जूही"पदवाच्यसुषेण सुपमा=परमाशोभा तदाऽन्विता गणिका,
पथिचरान् पथिघ्नन्, नयनेन विकुर्वती=विकृतिं नयन्ती विद्यते ।

सुललनामणिनूपुरशिञ्चितं बलयमङ्ककृतयोऽम्बुलोदताः ।

कुन्दवान्यरशोभितदिग्गजे न पुरुषस्य हि कस्य हरन्ति हत् ॥३०॥

कुमुदवाधवेन = चन्द्रेण शोभितश्चासौ दिग्वजस्तस्मिन्, सुललनाना मणिखचितम्
पुराणा शिक्षितम्, अट्टानां शिरोग्रहाणा, मुखेन - द्वारेण उद्गता = निःसृता इत्य
मङ्गलतयश्च कस्य पुरुषस्य हृद् = मानसं न इति ? अवश्यमेव हरन्तीति भावः ।

सैनिक — साहित्यामलसरोराजराजहस ! कवीन्द्र ! भग्न्या भवन्तो म एवमहनिश
मकरन्दमोहिनि पीयूषमयै कव्यालापविनोदयन्ति मनः । नानायास भवादृशा साहित्या
वताराणां समागमा सागमाना सम्पद्यन्ते ।

के० के० — सेनापते ! बहवो जगति काव्यकलाकलापरलापिनः किल । यदा काव्य
मूर्त्तीनां मादृशास्तु छात्रत्वेऽपि न मताः । परन्तु सरणिरियं प्रत्यहं प्रश्रीयमाणा ।

सैनिक — गुरो ! चित्रालङ्कारपूर्णां कवितामपि तन्वन्ति भवन्तः ?

के० के० — तस्यां काव्ये गडुभूतत्वं मतमाचार्यैः ।

सैनिक — भगवन्, तेषां रचने वैदुष्यं तु परीभ्यते एव भवेत्ताम गडुभूतवत् ।
सोऽपि रस आस्वादय ।

के० के० — आकण्य —

सैनिक — आमवहितोऽस्मि । देव ! साम्ब्यविष्णुवितोऽयं कालः । तथा यतनीयं
यथा देवानां स्तुतिरपि सहैव भवेत् ।

के० के० — अस्तु, एवमेव यतिष्ये । अयं सर्वतोभद्रः शिवस्तव —

देव कुरा शङ्कु वन्दे रदता ककवा हरम् ।

कुनाम्बर रम्बनाङ्कुश सर व्यव्यर सशम् ॥३१॥

कुत्सिनान् = कुटान्, त्यसि = तनूकरोति यस्तादृशः देव = भगवन्तमुपापति, शङ्कु =
वण्डवद् वन्दे । छिम्भूत-रदतां = वेगवताम्, अविचायं कुवतामिति यावद्, ककटां
गव कुवतां “कक लौल्ये” लौल्यं मयश्चापनयः । अनुदात्तत्वलक्षणमात्मनेपदमन्तिल
चक्षिणो छिक्वरेणात् । हरम् = नाशकम् । सशम् = कल्याणसहितम् । कुत्सितं न अम्बर
यस्य तम्, रमन्ते = क्रीडन्ति ते रम = विलासिनः ‘रमतर्चिच’ तर्पा वनस्य = समूहस्य
अङ्कुशमिव । सशम् = ससारं प्रति, अरम् = क्षीघ्रं भक्तस्य निपतसमक्षमेव व्यपी =
विधियोऽपी, रशङ्कः ।

अम्बा नुमो भासमाना बान्धवादशुभादिमा ।

नुवाममा नाल्पभासमोदमानाननाऽऽशुमा ॥३०॥

रसासाररसामन्दकासारा तमसामताम् ।

ता मसामसुसाहित्या शमराररसाहिताम् ॥३१॥

गुणम् । पूर्ववर्द्धनम्, द्वितीयो मुरज्वन्ध । ता भासमाना = तैजसा ज्वलन्तीम् अम्बा = देवी नुम । बन्धो बन्धन तत्सम्बन्धी बान्ध ए एव वाद गृहस्था श्रमरूपो वाद तस्मै शुभा = श्रेष्ठा, आदिमा च । नुवा = प्रणमता अना = सहवर्तिनी, नाल्पभास = विप्लवेजस्क मोदमानाश्चान्न यस्या सा आशुभा आशु = सद्य प्रसरणशीला भा यस्या सा ।

रसाना = शृङ्गारदीना य आसारा = घारासम्पत् स एव रसो जलम्, तस्य अमन्द कासारा = महाजलाशयरूपाम्, तमसा = अज्ञानेन, अमताम् = अस्वीकृता । मा ह्यमी रस्यास्तीति मम् = शोमासम्पन्नम् “अर्थ आशब्” तथाभूत यत्सम तदेव सु = शोभन, साहित्य यस्या साताम्, द्य = गुण प्रियते एभिर्गति दम्भरा = राक्षसा, “ददोरप्” तानामयतीति “अम रोगे, द्विप्” दम्भरान् = विष्णु, तगन्ति = आदश्च, इति दमराय = साधवस्त्वेषा रसेन = प्रेम्णाऽऽहिता = व्याताम् ।

मारतो विपमा चारुचामादत्तकालिमा ।

नालिका देव्युमा गेया यागेऽमाजगतो रमा ॥३२॥

महेशायामनयना नमामो जगदम्बिकाम् ।

प्रदेशायानयना समाप्या जगदम्बिकाम् ॥३३॥

गुणम् । पूर्व न पयान्ध, उत्तर न गोमूत्रिकावध । वय महदस्य वन = सुन्दरे नयन यस्या = सा ता नयान । जगद् अम्बर्यति = प्रेरयति तथाभूतम् प्रदेश = सूर्य, यायते नयने यस्या सा ताम्, समाभि = वरे, भाया = प्रप्याम् “हायनोऽप्रा यस्त्वना” इत्यमर । जगदम्ब अनङ्ग = शिष्यस्य स्ताम् = जगज्जननीम् । मा मारतो विपमा = विपरीता । चारुचा सुन्दरीणा मय्य आदत्ता = रुद्राता काना = स्वादीना अदि पङ्क्तिर्यया सा, चासी मा । को नम्रणि समाज्जनयनदशेषु भस्कर =

इति मेदिनीकोश । मालिका जगद्धारिणी “मलधारणे” देवी—देवनशोका जगत्—
ससारस्य, अमा—सहस्रतिनी शक्तिरूपेण, यागे पूजाया गेया—‘एव वाक्य साव-वारणम्’
प्रथम गणनीया, रमा—उत्कृष्टरूपा एव भूता या उमा ता नमाम ।

पालिका जीववृन्दस्य लये महति कालिका ।

कापि माता सता मान्या भवे जयति विश्वपा ॥३६॥

पाकशासनसम्मान्याऽनन्तदेवमहाधिपा ।

पाश त्वद्धपापिपूरा पाथोजाडधिसुपादुका ॥३७॥

खल्ववध । जीववृन्दस्य—प्राणिमात्रस्य पालिका—रक्षिका । महति लये—महा-
प्रलये कालिका—क्षयकर्त्री । पाकशासनस्य—इदस्य सम्मान्या, अनन्तदेवाना—असंख्या
ताना सुराणां महाधिपा—अधीश्वरी, पाशेन आवद्ध पापिना पूर—समूहो यथा ॥
पाथोज—कमल तद्वद्वृक्षो यो दु—द्योतने पादुके यस्या सा, विश्व पाति रक्षति सा, सता
मान्या—पूज्या कापि विलक्षणा माता भवे जयति—सर्वोत्कर्षेण वर्तते ।

श्रीर्या नित्यं कुञ्जवास भेजे चन्द्रसमानना ।

मनोरमकलाधारा ता नुमो वीतसवित ॥३८॥

सततभ्रान्तकमलो हस्त शान्त्यै भवेद् ध्रुवम् ।

दैत्यवृन्दशिरोहर्त्री स्त्रीवरा नो विशेषितम् ॥३९॥

पर्वतवध । युग्मकम् । या चन्द्रसमानना यस्या सा श्री—राधारिणी कुञ्जेषु
वासो यस्य ॥ कृष्ण भेजे—सिंघेवे । ता मनोरमार्णा—हृदयानां चतुष्पष्टिभ्रान्तनामाधारम्,
महासरस्तीरुपा वीतसवितो वय नुम । सतत भ्रान्त कमल येन तथाभूतो हस्त ध्रुवं
शान्त्यै भवेत् । महालक्ष्म्या इति भाव । स्त्रीषु वरा—श्रेष्ठा दैत्यवृन्दस्य शिरोहर्त्री
महाकालीरूपा नोऽस्मभ्य हित दिशेत्—दद्यात् ।

रमा या मादमायामा क्षमा श्यामा दमान्विता ।

उमा प्रेमासमा वामा हे मात । मानमाचर ॥४०॥

हार्यधोऽयम् । हे मात ! या त्व मादस्य—दर्पस्य, ‘मादो मदे’ इत्यमर ।

नायायाध अमा = सहस्रतिनी । “अमा सह समीपे च” । रमा = लक्ष्मीरूपा । धमा = तद्रूपा, श्यामा = सदैव युवति । इमान्विता, प्रमिग्न = प्रेमविषये असमा वामा, नास्ति समस्तुष्यो वस्याः सा वामा उमा = पार्वतीरूपिणी त्वं मानमाचर = निर्देहि ।

मुक्तिवर्ये । मुरारिस्त्रि । मुक्तोपेतमुखाम्बुजे ।

यामावर्येऽन कृष्णास्त्रिप्रिये । पृतपदाम्बुजे ॥४१॥

चक्रवर्ण । हे मुक्तिवर्ये । मुक्तिदाने धेष्ठे । मुरारे त्रि । मुक्तैस्तेत मुखम्बुज वस्याः सा तथाभूते । वामासु वर्ये । कृष्णधारी अस्त्री = अस्त्रकुशलस्तस्य प्रिये । पृत = पवित्र पदाम्बुज यस्यास्तथाभूते । मा = तत्र सरणागत भव = स्थ ।

सततं नम्यते या श्रीरस्तु सा नितरं पया ।

वारेण योगिनीना सहिता मा नितराममा ॥४२॥

पुनरुग्योऽयम् । या श्री सतत नम्यते, सा योगिनीनां वारेण = समूहेन सहिता, मा = माता, नितरा पया = अत्यन्त पावनी, नितराममा च = अत्यन्त समीपवर्तिनी वास्तु ।
चैनि०.—एकदा देव । देशभ्रमणोत्कोऽहं विद्वन्मतश्चिदाकान्तकृपा भगवत्स्तारक-
तापितुर्निस्सार्धमुक्तिप्रदस्य विद्वन्माषस्य पुरी गत पूर्णपुरीमन्नपूर्णो शिरसानि-
नन्द, जगदघोषनाशनसङ्ख्यायां त्रिमुबनवन्द्याया महेशोत्तमाज्ञसन्नाया गङ्गाया-
मखिल मल विद्योष्य, भैरवदण्ड कालभैरवधानम्, भव विधाय, दुन्दरुवाणी-
मुघासतृण, कवितोक्तः कस्यापि कवीन्द्रस्य भववनमनम् । दृष्ट्वाय पदमष्ट-
दलाकार यदभितोऽष्टदलापेषु कर्तुं शान्तापि न्यस्तमासीत् ।

के० के०.—आम्, आम्, भवन्ति तादृशा अरि बन्धाः । तानपि म्रु—

धीर्यस्य चञ्चन्मुखचन्द्रदैत्यशा नितान्तरम्या मुदभाजिनी स्त्री ।

यामेतरः स्यान्मुखदैत्यघातुक स श्रीपतिर्मे मुदभावहृच्छयिः ॥४३॥

पञ्च कमलवन्धाः । यस्य विष्णोः चक्र = क्लृप्तम् मुक्तवन्दस्तेन दैन्यम् = शेक्त
रसि = तनुकरोति सा, अत एव नितान्तरम्या मुदभाजिनी = हर्षप्रिया । रम्यानि यदि हर्षं
वापन तदा तथा किम् ? श्री = लक्ष्मी, श्री = पत्नी । स मुदभावहन्ता हर्षस्य स

सैनिकः—आश्चर्यम् । शास्त्रिन् । यद्वदसि तस्य चित्रमेव पुरः स्थापयसि । विलक्षणो भवन्नोऽभ्यासः । देव ! किमाल्पं वृत्तनिदम् ।

के० के०—इयमुपजातिः । यद्यपीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्राप्रमृत्योः समानाक्षरयोरुपजातिः प्रयुक्ता प्रसिद्धा च, परं समलयेनेवोच्चार्यमाणानां वक्षस्थादीनामित्य नवीनोपजातिः । “एवं क्लिप्तान्यासवि मिथितासु०—इत्यादिना तस्या विधानात् ।

सैनिकः—आ एवम् । गुरो ! हारबन्धे नाम समागच्छेन्नम, तदा गुणोभन स्यात्, यथा कस्याश्चन नायिकाया गलेऽर्पितमिव । यदि सम्भाव्यते तर्हि भवतैष गीतगुणायाः सुन्दयाः कमलाया एव गलेऽर्प्यताम् ।

के० के०—उक्ते हारबन्धे तु नाम न समेप्यति, परं परस्मिन् पङ्गुच्छके हारबन्धे समेप्यति । शृणु, साधयामस्तावत्—

मिथ्यारम्येऽतिकान्तिप्रतिभसमसमष्टौ मुखे मुद्रमुद्राः,

लेद्राधिद्रावहृद्ये ! हृत्तहृदयदरे ! दत्सु कर्ता कलौ कः ।

मन्येऽमन्दं मलेनं चिनशानकृतिरुत्ये कृतेषां प्रशान्धा ।

शम्भावे ! भारभासे ! मणिमयमधुरे ! धुर्यधुर्ये ! रयीमि ॥४८॥

कविः कमलां विशिनष्टि हारबन्धेन । अयि ! शम्भावे ! विलासादिना भानन्दशयिनि । कमले । मिथ्यैव रम्यवद्भासमानेऽस्मिन् जगति, अतिशयान्त्या = विपुलप्रभाया, प्रतिभा = तुल्या, समा = सर्वा, समर्पितस्य तत् तस्मिन् मुखे । एतः धौन्द्ये सर्वं जगत्, एकउस्त्वन्मुखमेकम्, उभय समानमिति भावः । तादृशे ते मुखे दृष्टे मुद्र - हृषं गच्छति तादृशी मुद्रा भवति । अहं त्वन्मुखा वीक्ष्येव हृष्या-मिति भावः । अयि ! लेद्राधिद्रावहृद्ये ! लिनाति = स्लेखति घृष्टारे ॥ ले - मोह, “लिनातेविच्” तं शक्ति = कुत्सितं गतिं गमयति सा लेद्रा = मुक्तिस्तत्परिपूर्वा । तस्या विद्रावेन हृद्ये । मनोहरे ! हृतो - गमितः हृदयस्य दरे दुःखं यथा तयाभूत् । दत्सु विपये कलौ युगे को नाम कर्ता उन्मरति, भवत्या दन्ता अप्यनुलमुन्दरा इति भावः । अयि ! नारेण भासे । उज्ज्यते । “नारः स्वाद्रिद्यतिस्तुल्या” “तुला स्थिरा पलशतम्” इत्यमरः । प्रकरणशब्दत्र भावः मुक्त्यस्यैव प्रण, तेनैव स्थिरानलशब्द-

तथाभूतः, एतेन सौन्दर्यं च्यज्यते, मुरदैत्यघातुकः=मुरहन्ता, एतेन वीरत्वं गम्यते ।
 स श्रीपतिः=विष्णुर्मे=मम वामेतरः=दक्षिणः-अनुकूलः स्यात्=भूयात् ।

श्रीशङ्करः कामरिपु शुभस्पृशा नितान्तमव्यान्मखनाशकोऽस्त्री ।

वामेतरः स्यान्मददा कदम्बकसमृद्ध ईड्यो मदमत्तशीविः ॥४४॥

कामरिपुः=श्रीशङ्करः, मखनाशकः=दक्षयज्ञविध्वंसक, अस्त्री=अन्नवतुरः, शुभस्पृशा
 नेत्रेण मां नितान्तमव्यात् । मद=हर्षं ददतां कदम्बके=समृद्धे समृद्ध, मदेन मत्तानां=
 दानानां शीविः=हिसक ईड्यथ अस्माकं वामेतरः=दक्षिणः स्याच्च ।

श्रीद्रोहिणामाशु विनाशकर्कशा निश्शेषदेशेऽशुभनाशिनी स्त्री ।

वामाभिरामाऽऽशु निहन्ति दैत्यकसङ्घं नुमस्तां शुचिना हृतो रविः ॥४५॥

या वामाशु=स्त्री, अभिरामा=सुन्दरी, श्रीद्रोहिणां=समृद्धिदेविणां आशु
 विनाशे कर्कशा, या च निश्शेषदेशे=सर्वत्र, आशु=शीघ्रमुपदेवसमकालमेव, अशुभ-
 नाशिनी=अकल्याणहर्त्री, अथ च दैत्यकसङ्घं निहन्ति । यया च शुचिना=शुद्धारेण
 “शुद्धारः शुविहज्जलः” रविः=सूर्योऽपि हृतः=अपतेजाः कृतः । तां नुमः ।

श्रीभास्करो दीप्ततनुः समस्पृशा निश्शङ्कमव्याप्ततकान्तिरस्त्री ।

वारेण रश्मेस्तमसा व्यपोहकः समः समेपा तरुणारुणो रविः ॥४६॥

श्रीतुल्या भास करोति भवएव दीप्ततनुः तता=विस्तृता कान्तिर्यस्य तादृश-
 अस्त्री, रश्मेः=किरणस्य, वारेण=सङ्गृहेन, तमसा व्यपोहकः=नाशकः तरुणारुण-
 समेपां=सर्वेषां समः=तुल्यः, रविर्मां निश्शङ्कम्=अतर्क्यम्, अभ्यात्=ख्यात् ।

श्रीर्यस्य हस्तीशमुखस्य दुःखशा नित्यं गतास्ते शरणं शुभा स्त्री ।

वामः खलानां शरणं नृ मेचकसर्गो नृतोऽन्यथायविप्रजागृधिः ॥४७॥

यस्य हस्तीशमुखस्य=गजाननस्य, दुःखं दयति, तादृशी जगद्दुःखहन्त्री, शुभा-
 पतिव्रता स्त्री, श्रीः=शुद्धिद्विद्विषिणी, नित्यम्=सततं शरणं=सेविकात्वं गता=प्रज्ञा
 आस्ते । स खलानां=दुष्टानां वामः, मेचकसर्गः=चित्रविचित्रावयवः अपस्तान्तरत्वात्
 उपरिशाद् गमत्वात् । अत्याशयाः ये विज्ञास्तेन जागृधिः=जागरूकः । मे शरणमस्तु ।

सैनिक —आश्वयम् । शक्तिम् । गद्गदसि तस्य चित्रमेव पुर ग्थापयसि । विलक्षणो भवतोऽभ्यासः । देव । किमाख्यं वृत्तमिदम् ।

के० के०—इयमुपजातिः । यद्यपीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्राप्रसृत्यो समानाधुरयोऽपजाति प्रयुक्त प्रयुक्ता च, पर समलयेनेनोच्चार्यमाणाना वशस्यादोनामिय नवीनोपजाति । “एव किलान्यास्तस्मिन् मिथितानु०—इत्यादिना तस्या विधानात् ।

सैनिक —आ एवम् । गुणैः । हरबन्धे नाम सनागच्छेनाम, तदा मुद्योभन स्यात्, यया कस्याद्यन नायिकाया गलेऽर्पितमिव । यदि सम्भाव्यते तर्हि भवतैव गीतगुणाया मुन्दया कमलाया एव गलेऽर्प्यताम् ।

क० के०—उक्तं हारबन्धे तु नाम न समेप्यति, पर परस्मिन् पदगुच्छके हारबन्धे समेप्यति । अतः साधयामस्तावत्—

मिथ्यारम्येऽतिकान्तिप्रतिमसमसमर्थो मुखे मुद्रमुद्रा,
लेखादिद्रावहृद्ये । हृत्तद्वदयदरे । दत्तु कर्त्ता कलौ कः ।

मन्येऽमन्दं मलेनं विनशानकृतिरुत्प्रेक्ष्ये कृतेषां प्रशान्या ।

शम्भावे । भारभासे । मणिमयमधुरे । धुर्यधुर्ये । रयीमि ॥४८॥

कविः कमला विशिनष्टि हारबन्धेन । अयि । शम्भावे । विलसादिना आनन्दराशिनि । कमले । मिथ्यैव रम्यपद्भासनानेऽस्मिन् जगति, अतिकान्त्या-
विपुलप्रभाया, प्रतिमा-तुल्या, समा-सर्वा, समष्टिर्यस्य तत् तस्मिन् मुखे ।
एवमौन्दये सबं जगत्, एवमस्त्वन्मुखमेकम्, तमय सनातनमिति भावः ।
तदये ते मुखे दृष्टे मुद्र-हृष्य गच्छति तादृशी मुद्रा भवति । अह त्वन्मुखं वीक्ष्यैव हृष्या-
मिति भावः । अयि । लेखादिद्रावहृद्ये । लिनाति-श्लेषयति सकारे स ले-नोद्,
“लिनातेपिब” तद्वन्ति-कुर्वन्ता यति गनयति सा लेना-मुच्छिस्तन्तरिर्वा । तस्या
विश्रवण इये । मनोस्ते । हृतो-गमित हृदयस्य द्रो द्रुप नञा तपामूते । दनु
रिपवे चलो युगे को नन कर्त्ता सम्भवति, मयत्या दन्ता अप्यनुलमुन्दय इति भावः ।
अयि । भारेण भासे । उज्जम्बले । “भारः स्वादिशतिस्तुल्या” “तुला स्थिरा
पलशतम्” इत्यमरः । प्रकल्पनराज्यं भार मुक्तस्त्वेन प्रशान्, तेनैव स्थिरानलङ्कार-

निर्माणादिति भावः । तथा भणिमयैः = भणिखचितैराम्भूषणैर्मधुरैः । ते मुख
ममन्द = विपुल मलेन — तमोराज प्रति, विनयनकृतिः = विनाशनम्, तत्र कृत्ये कर्मणि
कृतेशम् = विहितेश मन्ये — जाने । चन्द्रमास्य तमोऽपि त्वन्मुखं नाशयति । त्व
प्रकृष्ट श = कल्याण दधाति तादृशी । अयि । धुर्याणां = सौन्दर्ये अग्रगण्यानां धुर्ये ।
प्रथमगणनीये । अह त्वामेव स्वीमि ।

सैनिकः — अहह ? पण्डितसार्वभौम ! कविचक्रवर्तिन् । (स्वकोदा मुक्तामाला
शास्त्रिणो गले पातयन्) धन्योऽसि । शोभन विरचितवानसि । नामातिरिक्त
तद्गुणानपि वर्णयन् वैचित्र्यमाश्रयञ्च कृतवानसि । (परितो वीक्ष्य) अनुमीयतेऽहो याम
इय गतो यामिन्या ।

के० के० । आम्, इयानेष प्रतीयते । चन्द्रचन्द्रिकया पुनर्दिवाभूता रात्रिः ।

सैनिकः — आम् । अन्यत्किमपि श्रावयिष्यते ?

के० के० — (वक्षसि दृष्टि क्षिपन्) अये । इय कुतो ग्रथितद्वयचन्द्रा देदीप्यमानामल-
वर्तुलमुक्ताऽमूल्या महार्हा माला ।

सैनिक — (गदितुमनीहमानोऽपि) गुस्वर । एषा तुच्छोपहृतिः श्रीचरणाना
नारादादरादाहिता धीमत्पादपद्मपरागप्लावितमनोवपुषा दासेन, कविनासकचेतोभिर्भवद्भिर्न
प्यानविषयीकृता ।

के० के० — भस्तु, शुभ्रया चेदन्यच्छ्रावयामः । त्वमस्माकमद्य वचोऽर्चनीयोऽतिथिः ।

सैनिकः — आ दत्तावधानोऽस्मि देव । महतीच्छा ।

के० के० — शृणु,

नुमः प्रदात्री गुणभूषणा मा नुमः प्रदात्री गुणभूषणा माम् ।

नुमः प्रदात्री गुणभूषणा मा नुमः प्रदात्री गुणभूषणा माम् ॥४६॥

सर्वयमचम् । प्रदात्री — प्रकृपेण दानशीला, गुणा एव भूषणानि यस्याः सा ता मा =
लक्ष्मी नुमः । आसमन्तात् नायते यः स आत्रः = विष्णु, तस्य स्त्री — आत्री तां
विष्णुस्त्रियमित्यर्थः । या प्रदा = प्रकृपेण दति — स्पर्शयति दादिय सा तथाभूता विष्णुपत्नी
लक्ष्मीः । गुणानाम् — औदार्यादीनां भूरूपतिर्यस्याः सा चासी, उपणा, ओपति = ददति
पावर्त्तन् या सा गुणभूषणा तां मां नुमः । “उप दाहे ।” गुणानां भुवो गुणभुवः —

कलाप्रमिषद्गानाः, तेभ्यः सन्वन्ति = ज्ञानं ददति ते गुणभूषणो विद्वांसः “सनेतेविच्”
 तेषां गुणभूषणां = विदुषां कृते प्रदानीं मां = मातरं नमः । गुणभूषणान्ति ते
 गुणभूषणः ‘ऊय रुज्यायाम्’ कनिच् तेषां गुणभूषणां = गुणभूषणनाशकानां प्रदानीं =
 प्रकर्षतयाऽवखण्डनशीलां मां देवीं नमः ।

चिन्तामणिप्रातचितप्रसादसमुज्ज्वलाङ्गा स्तुम ईशवामाम् ।

चिन्तामणिप्रातचितप्रसादसमुज्ज्वलाङ्गा स्तुम ईशवामाम् ॥१०॥

समुदगपनम् । चिन्तामणिः = अभिलषितयस्तुदं रम् । तस्य प्रातेन = समूहेन
 चितः = निमित्तो यः प्रसादः = प्रसन्नता तेन समुज्ज्वलान्यङ्गानि यस्याः सा ताम्,
 ईशवामाम् = त्रिषङ्गिय स्तुमः । अप्यते = इत्यपः शब्दः, बाहुल्यवत्पचायच्, स येयामस्ति
 तेषाग्निः = शाब्दिकः, तेषां प्रातेन, अतः प्रतिज्ञा-शास्त्राध्ययनरूपा तदेव प्रातः, तेन चितः =
 उत्पन्नो यः प्रसादो नैर्मल्य तेन समुज्ज्वला, चिन्ता = स्मृतिरूपाम्, मां = वामाम्,
 ईम् = लक्ष्मीं इयन्ति ते ईशाः प्रधानत्वाद् ईत्यात्वेपां वामा = प्रतिरूपाम् स्तुमः ।

सासिः सिसा सासिसासा सामुम् सेः ससाससोः ।

सासासो सामुसा साऽऽम ससंसासिः ससाससा ॥११॥ (कुल्लम्)

एकादशः । ससन्ति = चिन्तिद्रमां ससन्ति मानवा यस्मिन् तत् ससम् = मुद
 तस्मिन्, अविना सह वर्तते वा सा सासिः = विभूतखट्वा । सिनोति = दप्नाति = पाद्यादिना
 स सिः = वण्डकः । ‘पिन् वण्डने’ विच् “स्त्रुपूर्वको विधिरनित्यः” इति गुणभावः । सि =
 वण्डक इति = नाशयति सा सिसा । “षोऽन्तर्धर्मनिश्चान्ताट्टाप्” । सासिसा अविना सह
 वर्तमानान् सति सा पूववत्कान्ताट्टाप् । सामुम् = अनुभिः सह वर्तन्ते वे सासवः = प्राणिनः
 भोजयित्वा संमिसा वा, तान् मुदति = कर्मणि प्रत्यति वा सा सामुम् “सू प्रेरणे” विच् ।
 से. = अस्य सोऽं = लङ्गीः, तया सह वर्तते वासा सेः । लक्ष्म्या अभिन्नेति भावः । ससा =
 सन्ति ते साः = सङ्ख्याः “भातोऽनुसर्गो कः” तन् सति सा, स्यवेविच् । अससोः =
 अस्यन्ति ते असाः = अमुता, अस्यतेः ‘पचायच्’, तन् मुनोति षोडशति सा अससोः ‘पच्’
 अभिवर्त्तं पचायच् । सासासो = ससनं सास. = त्वातः ‘क्षत सप्ये, पन् । तम्, अतते =
 गमयति, “अस मत्तिदीप्त्यदनेषु” कर्मण्यञ्, अग्न्यन्तान् ऊर्त् । जगज्जागल्लङ्गी ।

ससुसा—अमुभिः सह वर्तन्ते ते सासवः = विपुलौजसो दैत्याः, तान् स्पति सा । असे = स्कन्धे असिर्वस्याः सा । ससाससा—समानान्स्थन्ति ते ससाः = दैत्याः, एकपितृत्वाद्देवानां दैत्याः समानाः । “समानस्येति” सभावः । तान् अस्यति स्पति च सा, पचाद्यच्—उत्तरा कान्ताष्टाप् । सा = गौरी “सा च लक्ष्मीः बुधैः प्रोक्ता गौरी सा स च ईश्वरः”— इत्येकाक्षरकोशः । आस = अमुराधिक्येप । तामुमां नमाम इति परेणान्वयः । कुन्धम् ।

रजोजर्जजजज्जूराऽजी जजज्जरेजाऽजरा ।

रराजौजोऽजिरे राजेर्जज्जराजे रुजोरुजा ॥५२॥

द्वयक्षरः । रजसा = रजोगुणेन, जर्जन्ति = भर्त्सयन्ति “जर्ज भर्त्सनादौ, तुदादि” । तथाभूता ये जजन्तो दैत्ययोद्धाम्, “जज हिंसादौ” भ्वादिः । तान् जूर्दति सा ‘जूरी हिंसायाम्’ अजन्ताष्टाप् । अजी, अजस्य = अजन्मनो भगवतः स्त्री । जजज्जरे = जजतो = युध्यमानान् “जज बुद्धे” जिणाति = वयो दापयति सा “अग्नि वयोदानौ विन्” । उरजा, उरुतो = महत्तो जातापि अजा । अजरा = निरस्तावस्था । राजेः = समूहस्य, दैत्यानामितिभावः रुजा = पीडा जर्जरस्य = क्षीणतां गतस्य, आजैर्बुद्धस्य । ओजोऽजिरे = ओजस्विनि रणाङ्गने रराज = शुशुभे ।

योयायियाययोयायाऽरीरं रो रेरेरेरम् ।

ददाददा ददादुदालेलेला लोललीलला ॥५३॥

एकाक्षरपादः । भीति = मिथ्रयति स्वर्गवनेऽधर्मं स योः = नीचवृत्तो राक्षसादिः । “यु मिथ्रणादौ, विप्” त यातीति यायी = तादृग्विधो रक्ष समूहः यातेणिनि, युक् च, त याति एवम्भूतो यो ययी = मार्गस्त्वस्मिन् यान यस्याः सा, तेषां विध्यन्तायेतिभावः । या प्राप्ते, घन् । अरीरं रोः । अरि = अनुगोस्त्वि इति अरीरम्, ईर क्षेपे । सन् प्रक्षिप्येत्यर्थः । रोः = शब्दायमाना । अदृष्टासादिनेतिभावः । अरेः = सत्रोः समीपे अर = शीघ्रं रेः = गमनशीला । “मि गती” विच् । ददाददा—ददते इति ददः, तमाददते सा ददाददा = दातृणा दात्री । ददादुदा—ददान् = दातन् आदुनोति इति ददादुन् त यति = रण्डयति सा ददादुदा । इलायाः = पृथिव्या, लेला = दीप्तिः । लेलां लीलां लति = आदत्ते सा तथाभूता ।

लातातललला तालोन्नता नीतोन्नतिं नुताम् ।

हंहो ! हंसासिसंहासां नमामो मामुनाममा ॥१४॥

द्वयउत्पादः । लातः = आदत्तो गृहीतो यः अस्य - विष्णोः तलः पादतलमिति भावः ।
तस्मिन् लला - इप्सा यस्याः सा ताम् । तल्लङ्घनताम् । नुताम् = नमस्कारिणा, नीता
दृष्टतिर्नया सा ताम् । हंसः अस्मिन् ताम्यां समः सहासो यस्याः सा ताम् । असा - निरुद्ध
वर्तमानाम्, उमां मा - भगवतीं नमानः ।

नमामहे हेममानभासिता जज्ञता सिभा ।

शियाधाररयायाशि राजिताजिर्जिताजिरा ॥१५॥

प्रतिलोमानुलोमपादः । हेम्ना - सुवर्णेन यो मालः = चित्तसुनुन्नतिः, मत्समो नास्तीति
विचारः, तेन भासिताम् = उज्ज्वलां नमामहे । किम्भूता सा - शिवानाम् = अंगालीना वारस्य
रेवम वाशते तस्मिन् = युद्धे, जज्ञताम् = युध्यमानानां सिभा - नारयित्री । पिबु हिंसार्थः,
पचायचि टाप् । जितनजिर = रणक्षेत्रे यया सा । राजिता भाजिर्वया सा ।

याचते मनसा वाण्या भक्तायादभ्रदापिनी ।

' नोपिदाभ्रदयाऽऽक्ताभण्यावासा नमतेऽचया ॥१६॥ '

गतप्रत्यागतम् । नमता वाण्या वा याचते भक्त्या, भद्रं = प्रचुर दाययति
लब्धला । नोपम् = कदन्य तदस्यास्तीति नीपी = कदम्बप्रेमी भगवान् कृष्णः, तं ददाति
सेव्यत्वेन सा । , अभ्रदयाका = अभ्रवन्मेघवद्वयाऽऽक्ता = आद्रां कोमलमानसा ।
मणिनी = निर्वासितेषु आवासो यस्याः सा । अचया - नास्ति चयः = दुर्दिर्घस्याः सा ।
दुर्दिर्घाकारमप्रत्योपलक्षणम् । तामसौ नमते ।

जलजातलसद्गस्तद्वयायाः शरणं गतः ।

साशङ्काना शरण्यायास्तस्याश्चरणनीरजे ॥१७॥

निरोद्धः । जलजतेन = कमलेन लसन् चोभनानो हस्तो यस्याः सा हया ॥
तस्याः । शशङ्कानां शरण्यायाः चरणनीरजे = पादपद्मे शरणं गतोऽस्मि ।

ततथाग्रे निरुद्धि धो के० के० शास्त्रिणि अथापि "शास्त्रिन् । शास्त्रिन् ।
एदि" - इति ध्वनिः ।

के० के०—आय मि भगवन् ! (सैनिकाभिसुखम्) आ शृणु—

नुमो मा सद्बुधान् दृष्ट्वा मूढमानससूतलान् ।

ददद्वागनुकम्पातो मोदमाना त्वर सुतान् ॥५८॥

अतालव्य । सद्बुधान्—श्रेष्ठकवीन् । मूढम् विचारशून्य मानससूतल येषां तां मभाभूतान् सुतान्—पुनर्विविशेषान् कवीन् । दृष्ट्वा ददद्वागनुकम्पात—दीयमान विवेकपूर्णवाणीरूपया इयया, त्वरम्—शीघ्र मोदमानाम्—हृष्यन्तीं मा नुम ।

पुनरभ्रावि, 'शास्त्रिन् शास्त्रिन्' इति ध्वनि ।

के० के०—एभि प्रियवर ! लक्ष्मीचन्द्र ! एमीत्युत्तीर्य यावद् विपक्षि तावदेव प्रस्तुरपन्नमहोत्कण्ठोऽपच्छद् विचारचतुर सैनिक—देव ! कियद्वयसा महीम् महिता देवेन !

के० के०—चोता शरदा विरातिरागत । मोदेन वयसि सातोपम् ।

अधुना धारासारैरविमलकेशा भजामो माम् ॥५९॥

असयोग । हे आगत ! वयसि—अवस्थाया, सातोप—सानन्द, शरदा विपक्षि शीता—गता । अधुना मोदेन—परमप्रण्णा धारासारे, अविमलकेशा—कृष्णकचा मा—भगवतीं भजाम ।

पुन ध्रुत 'शास्त्रिन् एहि सत्वरम्, व्यत्यति भोजनवेला, शीघ्रताये प्रेरयन्ति विपक्षित—इति ध्वनि ।

के० के०—महोदय, अतुल्लङ्घनीया गुरुजनाज्ञा, भवादशा समागमोऽप्यान इव । पर समाह्वाननिबन्धो मा निवशयति । समयो लब्धेत् चेपुनरपि साक्षात्कारेण सम्भाष्या । मन्य भवक्षिवेशोऽप्यकारणनित्यत्वेन योत्कण्ठा भविष्यन्ति भवदनुचरा । आम्, भवती कि नाम ?

सैनिक—(प्रणमन्) देव, चन्द्र इति ।

के० के०—कुशलम्, अस्तु याम्

पयाते कवी तत्थागविधुर प्रदेश मूर्जा सम्भाव्य चन्द्रोऽपि निजमर्षतमाहरोह !

आसताह निरन्तर धारासम्पातः । गहने तनयि लुप्तौ स्वांचन्द्रमती दृष्टियनेव नागच्छताम् । वशाः, अन्धतनयम्, दन्ताघट्टन शीतम्, वीर्यरसो वयुः, गृहेषु नामि-
प्रज्वलः, कष्टं स्निग्धम्, आरप्यच्च अर्धाः, दीपशलाक्य शीतला, पद्मबोविकानु पद्म-
मवरुद्धम्, गृहाणां निस्तनयनिपुक्तः कटुकर्चसमिधितो गगनच्यौषी कोत्पहतः ।

सर्वेन हाहाकारः प्रवृत्तः । सनाचारपत्राणि शीघ्रस्थले 'त्रयष्टावस्य दुर्मिहस्य च
कुप्राप्य वृत्त प्रतिदिनं प्रद्योतयानामुः । जनसंख्या नगरेभ्यो नगद्विनिधिन्यः पौर-
प्रतिष्ठानेभ्यः सारवृत्तान्मुक्तन्वानि । 'विद्वद्वाचकः सर्वतः पीडितप्रदेशाद् इत्तं
श्रमन् पदंश्चन्द्रो व्यग्रो यम्बु ।

स प्लुदिन्या आतेहरदशनृत्यैव सह सरोजिनीं दुर्मिहरीडिते प्रान्ते प्रेषयन् निराश्रित्य
यन् सा घर्षा परिस्थितिं परित्राय स्थलीयाधिष्ठाभिप्रायदकीं सहायतायादय परिस्थितिं
निनयन्ती मां सूचयेत् । उगादिशब्द "सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः"
तस्मास्मिन् क्षेत्रे नवीना, यज्ज्ञानमद्यावधि नाभ्यसनेन इत्त तदनुभवेन कर्तुं युवमस्मिन्
सगारे प्रेषयामि, एष बहुरोऽवसरः, परमिद सर्वथा श्रेयं यदस्य ससारस्य कष्टोत्थेषु युवयोः
प्रवहण न भवेत्, सकलभूत समागतयोः स्थायते अनुत्पन्नोऽहम् । दृष्टप्रतिष्ठं सादृशिनं
नर प्राकृतिकयो भाषा निवृत्तस्याथ निवायितुं शक्यः" इति ।

एतन्नगरस्य विद्यालो दुर्गः प्रासादश्च पीडितनामावासाय दत्तः । चन्द्रेषोदयोषि
यत् प्रकाशनेन निमित्तः प्रातः प्रकाश एव सम्पत्तिः, प्रकाशो दुःखस्यासु प्रासादोपभोगो
एवान निरपगामिनं करोति । चन्द्रः चिबिरमभ्यशस्वीत् ।

कमल समानीतानां दुःखस्थारीडितानां सेवार्थे "आरोन्माशात्प्रवन्धे निपुण्य,
कम्पा च अर्द्धिहोनलामावासान मोक्षप्रवन्धे च । विपन्नरीप्सिती चौरदुष्टधाम-
बरोषाय सख्येन व्यवस्थानेन च शक्तिधरो नियोजितः । प्रबलो वायुपलेन
प्लवङ्गवनिमग्नं जनसं द्रष्टुं प्रेरितः । एव स सर्वान्निष्ठमुद्दहः कर्मणि निदोऽगारि
न प्रसोदत् । स त्वं राष्ट्रं निर्दिष्टिपुच्छनः "अर्द्धनिनलमाश्रय प्रवृत्तः ।

१ वाद, २ तार से सनाचार, ३ दृष्ट काल, ४ अस्तित्व (Ho fatal) । ५ म्यादर
(Glider) पुरचान कलेवात्य हवाई उड़ाक ।

सर्वत्र पृथ्वी जलाप्लुताऽऽसीत् । उच्चतमभागेष्वभितो जलाः पल्लवो ग्रामाः प्रेक्षन्ते स्म, येषामुदजेषु कूजतां मानवानामार्तनादः सहृदयानां हृदयं व्यथयति । नराः नार्यः शिशवः जलजीर्णशरीरा नाना वृमुक्षिता अदमृता मृताश्च वृक्षेष्वारुढाः सन्ति । जलप्लावे महता वेगेन शुष्कतृणौषा खट्वा गावो महिष्योऽद्या दृष्ट्वाधोऽग्रमाना अलुप्तचेतनाः कणखरेण रक्षितुमाह्वयन्तः पतयः स्त्रियः, स्त्रियः पतीन्, मातरः शिशून् परित्यज्य काष्ठेपूपविष्टाः सहेव हिंस्रैः सर्पादिभिश्चोपेता अवह्वयमाणाः परिस्थित्या मिथ्रतामापन्नाः कन्दन्तः प्रवहन्ति । उत्फोलाः पार्श्वभूमिं भञ्जन्तो गृक्षाश्चात्मसात्कुर्वन्तः शब्दशयनानां बधिरयन्तो भीषयमाणाः व्रजन्ति । पुस्तिनेषु प्रजा एकत्रीभूयापि जलक्षतवपुषः साधनहीना दीना मृत्युमेवापेक्षन्ते । काश्चन पथिषु सुखं व्यादम्य अक्षिणी विस्फार्य १ विस्मृत्य च शून्यदृष्ट्योऽविभ्रान्तभावेनासुरैश्च व्रजन्त्योऽवलोक्यन्ते ।

२ चन्द्रस्य मानसमदो विलोक्य नितरां दुःखितम् । स शीघ्रं प्रत्यावर्त्य वायुयानैः सिद्धं भोजनं ३ वासासि काष्ठं दीपशलाकाः शुष्कमन्त्रं पात्राणि निपातयितुं प्रावृणात् । जले सहस्रशो नव उद्भवाश्च मुक्ताः । ४ अस्त्रस्यपरिवहनां सर्वत्र प्रबन्धो विहितः । सर्वतो "भारवादिमस्तुरै" ५ वर्षाशकटीभिर्वायुयानैश्चात्ताः समाशुद्धं प्रारब्धाः । आरोग्यशालायाः ६ कृतयोग्याचिकित्सका मनोयोगेन तेषां सेवार्थं लग्नाः । आरोग्यशालाया केवलं शय्यासहस्रमासीत् । रुग्णानां सङ्ख्या चासङ्ख्येया । चन्द्रेण अन्तःपुरं रोगिणीनां कृते दत्तम् । कमला च रोगिसंस्थां नै नियोजिताऽऽसीदेव । आरोग्यशालाया अन्तःपुरस्य च कोणं कोणं रुग्णैर्व्याप्तिम् । ७ विरामदेषु शय्यानियोजिताः । कमला आनन्द्याहमारोग्यशालायाम्, अपराहृत आपूर्वेरात्रश्च महिलारोग्यशालायां व्यतियापयति स्म । निशीथे च ८ विमर्दप्रकाशिकामादाय पूर्णमारोग्यशालां पश्यन्ती अवर्तत । चिकित्सका धान्यः परिचारकाः सर्व एव स्वं स्वं कार्यं कौशल्येनाकुर्वन् । प्रतिदिनं सा व्रणिनां व्रजवन्दनं स्वयं चिकित्सकेन वोन्मुच्य व्रणं परिशोधय विषयं च तेषां स्वास्थ्याय भोजनाय विधमाम् निद्रायै च पृच्छन्ती धैर्यमुपदिशन्ती रोह्यमानात्

१ अम्बुलेन्स, २ टूक, ३ रेल्गाडी, ४ योग्या - शल्यकर्माभ्यास, ५ विरामदा - विरामोऽवसानं वा । रुदिभ्यो विधमं गृह्णाय अवसानं वा ददाति सः । ६ टार्च लाइट ।

मृतलङ्घनान्धवान् नष्टधनान् गतशृङ्गान् सान्त्वयन्ती मुग्धस्मितेन स्मय सञ्चारयन्ती रोगिण आहादयत् ।

स्त्रीविभागे कारुण्यपूर्णं दृश्यमासीत् । मृतमातृकाणां शिशुलामपरिसङ्ख्येयाः दास्या आसन् । प्रत्येकस्य कृते एका धात्री क्रीडासाधनानि चासन् । अन्तःपुरस्य सर्वा दास्याः शिशुसेवायां गृहीताः । कमला स्वयं मातृदृष्टेन तान् आलभति स्म । यदा सा विभागे प्रविष्टान्तासीत्, सर्वे शिशवः “अम्मा आगता” इत्युच्चैर्ब्रूयन्तस्त्वां पर्वीरुन्ति स्म ।

लुपमातापितृपतिपुत्राः स्त्रियोऽभारतमार्तं दृष्ट्यो जीवनं हानुं कृतघ्नकृत्या औपधं पश्य भोजनमनश्नस्य उच्छ्वसयन्त्याः कमलां व्यथयन्त्य आसन् । सा तासां परिचय-मधिगत्य जनसेवाविभागतः^१ प्रतिक्षणं दूरात्तापतो लुप्तसम्बन्धिनं कृते जिज्ञासुमाना सान्त्वयन्ती अहस्तेवीपथ पथ्य भोजनं ददती धैर्यमुपदिशन्ती भवर्तत । स्वलै-रहोभिस्ता तां देवीत्याहुः । परं कमलया भगिनीनिर्विशेषं प्रेक्षणाय प्रेरिताः सीद्धान् भगिनीशब्देनोक्तं सयामासुः । सर्वे एव रोगिणो व्यथासमये तां समीपमेव ददृशुः ।

उत्कापानां पुरुषाणां महिलानां च कृते विविधाः कुटोरोद्योगाः स्थापिताः । शिक्षार्थं शविमन्वीक्ष्य शिक्षका नियुक्ताः । शिशवः शिशुशास्त्रायां प्रेरिताः । सर्वेषां नामानि चिन्तापि परिचयेन सह वृत्तपत्रेषु प्रकाशितानि ।

चन्द्रः प्रतिदिनं जलप्लुत क्षेत्रे^२ फलविमानेन स्वयमपश्यत् । एकदा स जलप्लुतं प्रदेशमवेक्ष्य प्रत्यावर्त्तमान एरुस्मिन् पुलिने शिविरसचिवेशमपश्यत् । स्थानमिदं राजनगरतो नातिविदूरमासीत् । सचिवेशश्च सुभगः सुदृष्टैः सैनिकैः कृतरक्षो व्यवस्थितो जलप्लवनेनाप्रभातितः शान्तश्चासीत् ।

एका हीरकमातेव भास्वरा खर्जरामा रमणी नशास्त्रे सान्ध्यविषये अभिर्गम्यमुन-विष्टाऽऽसीत् । शोणितशोणितौ तस्याः करौ बद्धाग्रली आसाम् । सान्धिवेलोऽहनिमा तरसा यत् लोधत इषोलदोर्निपत्य तां सेवयति तस्यादञ्चिं द्विगुणयति । मुग्धा यदा कदा कनोलयोरापततः कंसान् नृदुतगुदुत्तमिन्ननुतनुभिः कराद्बुद्धोभिरपकापति, तां सुखं चन्द्रमिव विरदयति ।

यदेवं विनीता वनिता स्थिताऽऽसीत्तस्मादनन्तिदूरे एवपरं पुलिनमशोभत ।

१ पुलिग । २ म्ह-इह-पुनचाप चत्नेरात्त हवाइ जहाज ।

पुलिनं जलशालनप्रसन्नपत्रपुष्पैः क्षुपैः पूर्णमासीत् । उत्कास, शान्ति, सौन्दर्यम्, प्रकृते सुन्दरतम रूप तत्रासीत् । जगत्स्थिता, तृष्णा, मात्सर्यमभिशाप, आक्रोशः जनसत्तत्र सर्वथा नासीत् । विविधरागाः पतद्विका अलिप्तपञ्च रनासक्तिं घोषयन्त्यः क्रीडन्त्य आसन् ।

धूमितः धुद्रा नवो मध्यकृशा मुग्धा इव प्रवहन्त्य आसन् । प्रचण्डधारासम्पाता-
द्विरता प्रकृतिः सम्प्रति शान्ता भवन्ती नीरवता सानैश्शनैः प्रसारयन्ती मलयानिलेन
निर्जनशान्तिं लालयन्त्यासीत् । सर्वतो जलशालनविमलमला नयनहारिणी विपिन-
विभूतिर्मानस हरति स्म ।

सन्ध्यासमय आसीत् । प्रदेशशान्ततां विचार्य तत्रैव सन्ध्योपासना विधित्पुत्र-
सन्निवेशपुलिने स्थानापत्यया अवतरणाद्यौर्ध्वेण पार्श्वपुलिने फक्कविमानमवतरणायादिशब्द-
नदीशिलातले उपविश्य मुख प्रशाल्याचम्य प्राणानायम्य साम्प्रतिविधिप्रवणोऽभूच्च ।

आकाशबिम्ब स्वच्छनदीजले दृश्यते स्म । चन्द्रो विचारयामास, महद्दिशाल वर्तते
एतदाकाशम् । अहह ! हिमगिरिसदृशा दृशामन्वधयोऽयुतशो वारिधराः सूर्यसदृशा
प्रहाशारिमन् सावकाश चक्रासति । विज्ञायते सूर्यः 'सपादनवकोटिक्रोशमित दूरमस्ति ।
अस्माक पादाङ्गुल्यां कण्टकेन विद्धाया यावता शौघ्रणेण मस्तिष्के ज्ञान भवति ; तदैव
कल्पयता यद्यस्माकमङ्गुली सूर्यसामीप्यमेव तत्तापाद्देहत्, तदा तद्देहन पञ्चदशवर्ष-
स्माभिर्ज्ञात भवेत्, इयान् सूर्योऽस्मत्तो विदूरोऽस्ति । अहह ! एतादृशा अनन्त-
सङ्ख्याः प्रहा आकाशाबिन्द्रे चरन्ति, ये विदूरत्वादस्माभिर्लघुलघवः प्रतीयन्ते ।

अकल्पमानरूपना नीहारिकाशास्मिन्मन्त्रद्रव्याण्डेऽनन्ता असङ्ख्येयाश्च सन्ति,
विवराश्चैरयो यत्—य. प्रकाशः प्रतिक्षणं पृथगीतिसहस्राधिकैकलक्षकोशमितमभ्यामति-
कामति च प्रकाशस्तत्र त्रिशत्लक्षवर्षैर्न जेतु । विज्ञायते एषा भूमिरपि यस्यां सचराचरं
जगदिदं वसति कदापि सूर्यस्व भागो ज्वलद्ग्नारप्रतिम आसीत् । परं प्रकृत्या बहि
शीतलीभूय कच्च काले सूर्यगोलकान्नि सता, अद्यापि तमभितो भ्रमति । एष
चन्द्रोऽपि 'एकान्नवर्षपूर्वं पृथिव्याः सूर्याकृतिर्भाग आसीत् । सोऽयमेकदा पृथ्वी-
तो भिन्नः । तेन भूमौ 'सप्तविंशतिकोशनिम्नः खात' समजनि । स एव समुद्र उच्यते ।

१ सवा नो करोड मील । २ प्रकाश का वेग १ मिन्ट में १८६००० मील है ।
- क्षण = मिन्ट । ३ एक अरब । ४, २७ मील गहरा । सभी जगद् कोशसे मीलही माप्य है ।

एषा भूमिः—अष्टयद्दक्षकोशमिता महती स्थली—आकाशे प्रचण्डगत्या सततमवन्ती वर्तते । पूर्वं यदा चन्द्रो पृथिव्या सहैवासीदितस्या गतिस्तीव्राऽऽसीत्, तदाऽहोरात्रं लब्धेव भवदासीत्, परन्तु अबुनाऽस्या गतिर्मन्दा जाता, प्रतिहोरं^१ केवलं पृथगतोत्तर-पृथग्विषयदक्षकोशमात्रम् । अहह ! यामिमां पृथ्वीं महतीं कल्याणः सैषा आकाशीयताराषु कषवत् प्रतीयते । ज्येष्ठा नाम नक्षत्रमहो ! इयद्विषाल वर्तते, यत्तस्मिन् एत-
'राष्ट्रमिताः पृथ्व्यो मानु' शक्नुवन्ति । हन्त ! एव विधन्नाथर्ववन्ति अनन्तानि नक्षत्राणि आकाशाग्रेने आजन्ते । प्रुवनक्षत्रमस्मत्तः पञ्चाशन्माहापद्माधिकद्विष्टाष्ट्रकोशमितं^२ विदरमस्ति । हन्त ! कोटशो बिलङ्गणाऽनन्तता महाकाशस्य ।

चन्द्रे कलङ्का भवन्तीति शान्नं परिचाययति, परन्तु विज्ञायते तस्मी नद्यो भूधराथ सन्ति—इति सर्वो विजानाति, परन्तु हन्त ! सूर्येऽपि—अनिर्वचनीयद्रव्यरूपे भगवति भासत्यपि इयन्तो महान्तोऽस्थिराः, कलङ्काः भवन्ति, येषु पृथ्वी सावकाश समा-
गच्छेत् । यदि सूर्यो जगद्विधाता सूर्यः सत्तारक्षेणसायकः सूर्यः, निरपेक्षत्वपत्नी, अषान्छितार्यदः सूर्यो न भवेत्, नोदिरात्, यद्यपि नेदं सम्भाव्यते, तदा दिनद्वयेन वायु-
मण्डलस्य प्रत्यक्ष हिमीभूय समस्तं स्थानरज्जुमात्मकं जगदेव नाशयेदिति ।

सूर्यः पश्चिमाशान्ते स्वमार्गवत् । शब्दान्तरेण पृथ्वी पश्चिमाशानुरसर्वं प्रापयत् । क्षणं तमश्नतम्, परं सद्य एव पूर्वाशान्ते^३ दशशब्दोऽद्भुतामास । दशसम्भवा विभा बभौ । भगवतः सुनाकरस्य ज्योत्स्ना 'विद्युज्ज्वलकस्याऽऽलोकं सम्मिल्य एतन्नीह्या कीडन्ति स्म ।

प्रयोगोत्पलविरता स्तिप्रतीका रमणी पूर्णन्तुं प्रयम्य नये च पुष्पाञ्जलि समर्प्य भूधन्द्रनिव चन्द्रं स्नाधिलक्ष्यं विद्यम्य सन्देहविषी सत्यसाधिया निर्मलेन चेतया क्षणं विचिन्त्य एकाचिन्त्येव नावमास्ताऽभिवन्दं प्रतप्ते ।

पुल्लिगन्तराल स्वयमेवासीत्, तरणितीर्षां रमणी पुल्लिप्रदेशं प्राविद्यत् । विविध-
रागाः पुन्नुमावन्दस्वस्या अत्रान्वादिष्य चन्वा अभवन्, यार्सा सरत्तरे विलक्षणं 'संगीत-

१ हर पन्टेमें ६६६०० मील । २ सात नील ७००,००,००,००,००,००० पृथ्वी
समा सछती है । ३ दो नील पचास सार मील, २,५०,००,००, ००,००,००० ।

४ Electric Generator. ५ आरकेष्ट्रा ।

मासीत् । नीरसं शुष्कं वायुमण्डलं वासन्तिकेनोन्मादकेन सौख्येणेव पुष्पपरागपरिमलेन प्रकम्पिताम् । ब्राह्ममौहूर्तिकं तमोऽपहन्नुमुपःप्रभवा विभेव सा शनैश्शनैः पुलिन-
मासीत् । तस्याः मुखं पौष्पिमचन्द्रवदाह्लादकं सामञ्जासीत् । यं प्रसितुकामा
सर्पिणीव वेणी—यस्यां कुन्दमुमनसश्चन्द्रं रक्षितुं वेणीसर्पिणीमावक्रमणेच्छयाऽऽक्षिप्रस्तारा
इदंक्ष्यन्त—आपाणि लम्बमानाऽऽसीत् । साक्षाच्छमीरिव भासमाना सा सम्मुखीभूय
चन्द्रं प्राणमत् ।

चन्द्रेणैतादृशी साधनसम्पन्ना सम्पन्नसौन्दर्या रमणी अद्यावधि नेक्षितासीत् । तस्याः
मुखमण्डलेन सा परिचितेव कदाचिद् दृष्टेव च प्रतीयते स्म । विस्मितः च स्मितावलोकनेन
तामुदतरत् ।

अथ सा “देव ! प्रमदाजनस्य घाट्यर्मक्षम्यम्, परं विपुलं क्षिप्रस्य धार्ढ्यं क्षम्यं
भरति गुणज्ञानाम् । अतोऽहं काव्यपरिचिता काश्चिदपृष्टपूर्वान् प्रश्नान् पिपृच्छिष्यामि,
दयनीयाहं दीनवासलैर्दीना” इति सप्रश्रयमवासीत् ।

तस्याः खरे सज्जीतवत् सुकोमलता माधुर्यवासीत् सौन्दर्यं च कवित्वम् । उत्तेजना-
वशात्तस्या नेत्राभ्यां विचित्रं ज्योतिर्द्योतमानम्, ओष्ठौ स्फुरन्तौ शरीरस्य रोमाञ्चितमासीत् ।
तस्याः स्फुटं विकसितयोषधुपोमादकता, अरुणकपोलयोधोक्तास आसीत् । सौन्दर्यं
तस्याः शरीरसौधेऽद्भुतं कुर्वदासीत् । साधनायांस्तेजोमय्याऽऽभवा सा तपस्विनीव
प्रतीयते स्म ।

अथ चन्द्रस्तस्याः निःसीमं राहस्यम्, उत्कृष्टां वीरतां साधनाच्च, अनितरसाधारणों
प्रतिभाम्, अलौकिकं सौन्दर्यम्, पाणिस्पर्शिनः सुषिकणान् कलत्रललितान् कृष्णोज्ज्वलान्
केशान्, सुभगान्यज्ञानि विलोक्यथकितस्वर्कस्तर्काकुलो नेत्रं लज्जावन्ता अभविद्वत् । सुर-
सुन्दरीव भव्यदर्शना दुधरित्रा भवितुं शक्नोतीति विचारयच्चबोचत्—

चन्द्रः—आम्, स्मैरं स्वैरमभिधीयताम् । अभिधास्ये अभिधेयम् ।

रमणी०—कदापि देवः स्वपवित्रपादविश्लेषणेन किमपि पापाणीभूतं पुरमलयकार ?

चन्द्रः—आम्, एकदा

रमणी०—कतीनां वर्षाणां वार्ता

चन्द्र०—युगादधिकम्भवेत्

रमणी०—सत्यम् तत्र भवान् कति दिनान्यवत्सीत् ?

“नासद्वयम्भवेत् ।”

“राज्ञोऽन्तःपुरमप्यवालोकि ?”

“आ पापाणपुरस्य पापाणीभूतमन्तःपुरमवालोकि ।”

“किं किमवालोकि तत्र ?”

“विपुलमवालोकि, भवत्यप्यवालोकि ।”

“अकार्यमि किमपि ?”—दृष्ट्वा रमणी ग्राह ।”

“विहास्येऽप्रवृत्ताया भक्त्याः साहाय्यमकारि ।”

“वातः परं श्रोतव्यमस्ति देव !”—प्रकृत्स्नयननीरवनीरेण पाशान्मर्चनं स्वयन्ती

घगद्गद्माह अन्तर्निहितहर्षभरभाराक्रमणरक्तमुखी रमणी “देव, साहं मन्दभाम्या राज्ञ-
कुमर्यस्मि, या परातिहारिणा हरिणा हरिणाश्लेग देवेन पापाणपुरे प्रेषिता रक्षितातुल्यमिस्ता
च । दुर्विदग्धदुर्दैवः किमिव विभित्सतीति न कथय प्रमुञ्चतुम् । क्षत्रियवात्सिकातुलभा
ममेयं प्रतिज्ञाऽऽसीद् यदहं गुणामित्यितं पुमांसं वरिष्ये ।” अदृष्ट्वा रमणी रमप्रिया ।
न कोऽपि मानतोपयत् । आखेटतमये देवस्य विलक्षणप्रतिभया भया चाकृष्टा कृतसङ्कल्पा
परं प्रक्षीपसीमाम्या जगद्विमतमहित देवं वीक्ष्यापि स्वाभिप्रायं प्रवक्तुमसंमर्षाऽयं पर्वन्तं
हताश्रीवासम् । यतः प्रचुरपर्वालोकेनापि श्रीमन्तो न लब्धाः । अहं देव, देवाप्यन-
सत्परा विविधप्रतङ्कशास्त्री यमनियमनिस्ता विप्रावस्त्राणि भवतोऽन्वेष्टाय निष्क्रान्ता
परिमितछेनासहायाः । अस्त्रैलं ज्वलतोऽवर्तितकस्य दीपत्वेन मन इशासीत् । मम
सर्मापि श्रीमतामभिज्ञानम्, गान, कुलम्, निवासः, पदमितादि हिमपि नासीदन्वेष्टयाया-
पारभूतम् । ईश्वरो जानाति कानि कानि गणराज्यशशम्, वनान्यविशम्, विविधावासेषु
न्यवसम्, सति तदतरं भयावहस्थानेषु चौरलुप्यकटुन्देऽगमं पश्यन् हन्त ।
भवन्तं मया भासन्तं नात्मने । साधनानिर्दिष्टः कथं प्राप्नुवान्नानवोऽभीक्षितम् ।

ततो विमलपुरवासिना जनेन केनचि किमपि बोधिता कथमरीपन्तं महान्तमप्यन-
मतिव्यग्नं गतराशे राजनगरभूमिं समायता । अन्तःपुरेऽसङ्कचित्ता बने वासनुचितं
मन्ताना भवन्नेल्लोकायमपेक्षमाप्ताऽऽयम् । परमं भगवानिन्द्र संवर्त्तकैरिव मैथीः
प्रच्छिद्योरो मानत्रैव न्यरुणत् । मगवत्कुलया मन पाशं सर्वां सान्नी भासीतः

किमपि कथं नाभूत् । अथ भगवानयममृतमरीचिर्भञ्जीवनेऽपि मुधाविप्रुषो न्यसेच्यत्, यदहं पवित्रचरित्रेण मनसा प्रेर्यमाणोऽऽस्यदेवमध्यगमम् । भवत्यधिगते मम सर्वा-
धिन्ता व्यपगताः । यात्रायामसंस्थेभ्यः कष्टैराशङ्काभिश्च व्याकुलमानसाऽऽसुम्,
परमधुना आशङ्का, चिन्ता, व्याकुलता च युगपदेव व्यपगता । अधुनाऽऽदिशतां
शुटिलकालक्लिश्यमानास्यै दास्यै कथनादेशः, क्षम्यताश्च प्रकृष्टं क्लिष्टस्य प्रमदाजवरस्य
प्राप्तोद्वेगकरी प्रथमा घृष्टा इति ।

सर्वतः प्रसरति प्रावृषेभ्ये सौरभे, ईपत्कम्पने मलयविकम्पने, उज्ज्वलायां चन्द्रिकायाम्,
स्मयमानायां तारावर्याम्, विषने प्रदेशे, नैर्द्यां स्वप्नतायाम्, निर्मायगिरा विवस्वनवचनेन
प्रकृति प्रसादयता प्रसङ्गेन मुखेन, मनः प्रसादयन्त्यामनुष्येयसुन्दर्यां सौपकर्म विवशुरपि
विजयाजित इव स्खलन् ज्वरन्नैयायिक इव समदमबादीत्—

विकसितयौवनारामे । रामे । भवात्क्षीभिर्हृद्योत्सावितमानसोन्मायिमन्मयाभिः,
रणप्रियाभिः प्रतिज्ञाताभिः वैफल्यामाप्नुवन्ति कार्याणि नाम । परमहं विवादितः
परिस्थितिविद्यान्मम तिस्रः स्त्रियः । अहं राष्ट्रे बहुपत्नीकत्वं व्यपाकर्तुं शक्नोः, कथमेतदपहृत्य
स्वयमेव कर्तुं शक्नोमि । पस्यथ मम स्त्रियो लोककल्याणे लभाः । सांसारिकभोगान्
विहाय मदाज्ञया कर्माणि कुर्वतीनां तासां कामिनीमुलभा भोगाः सर्वथाऽपगताः । मम
प्रासादः साधनास्थलम्, न भोगभूमिः । त्वच्च त्रैलोक्यसुन्दरी कथमपि न तत्र मनोऽभिल-
षितान् भोगानवाप्स्यसीत्येष विचार्यो विषयः, अहं विचार्य कथयिष्यामि ।

रमणी० । सत्यम्, विचार्य जल पाययितुर्जलस्य दानेऽदाने वा नान्तरम् ।
पर पिपासाक्षामगलस्य जीवनभरणयोः प्रदत्तः । अथ च होषा देव ! भावनाधयाः ।
बहुपत्नीकत्वं होषोऽपि सद्भावनावशाद् शुणः । साधनास्थले बहवः शिष्याः समाने
शुरौ युगपदेव साधना कर्तुं शक्नोः । मात्सर्यं भोगभूमावेव भवति, न साधनास्थले ।

चन्द्रः० । अनुरागभिलाषिणो विरक्तेन सहाजीवनं सज्जो न सुखावहः । भोगा-
भिलाषिणः सद्योगितो भोगिन एव युजाः ।

रमणी० । मैवम्, स्त्रियो हि द्वेषातुसमाः, परिस्थित्यनुसारं भवितुं शक्नोः । अहं
तिसृणामेव भगिनीनां दास्यमाचरन्ती श्रीमन्तगारापयिष्यामि, नो चेदत्रैवामरणं स्थित्वा
दूरतः श्रीमन्तमर्चयिष्यामि, 'कन्या सकृत् प्रदीयते' देव ! ।

चद्रस्तस्या रणनैपुण्य साहस सौन्दर्य खस्मिन् भावमार्यनारीसमृत्तिश्च विचार्य
बद्धासौतदैव यानचालकोऽसूचयद् यद्राज्यनगरस्य समीपे सेतुभङ्गाद् वाप्यशकटी
दुर्घटनाप्रसवेति वितारदृत्तोद्धोषेणासूचि—इति ।

“इन्त । दौर्भाग्य राष्ट्रस्य, अस्तु, यान सञ्चय । (अभिरामि) अस्तु, जात तज्जातम् ।
आप्रियमेव प्रयसीता दुःखम् । पुलिन न मुखावहम् । भवती प्रासादे विश्राम्यतु,
आज्ञापयतु चानुचराद् दुर्गमागन्तुम् । आरोह यानम्, व्यत्येति वेत्ता । किं नाम देव्या ?”

‘शस्या नाम सूर्यप्रभा’ ।

नद्रो वितारदृत्तोद्धोषकेण सैनिकानौपचारिकयूथश्च^१ घटनास्थल गन्तुमादिश्य स्वयमपि
सूर्यप्रभाया सह जगाम । सेतुर्नवीन आसीत्, क्य स भग्न इत्येव तस्य विचार आसीत् ।

वाप्यशकट्या प्रतिहोर नत्वारिशतकोशवेगेन धावन्त्या सेतोलोहबलमी^२ अकस्माद्
मिच्छा । वाप्यशक्तिमन्त्र^३ सह चतुर्भि^४ पयिकानातेर्नयामपतत् । असङ्ख्या नरा नार्य
स्त्रियश्च सह विपुलेन धनेन नद्या निमग्ना येषां चिह्नमेव नाबलोन्यते स्म । शेषा दद्यादाद्या
उद्धृता^५ अन्योऽन्य प्रविष्टा । मानवा पिञ्चिता, भर्द मृता, तृतीयांशा आहता
चतुर्थांशा साधारणमाहता । नदीनिमग्नानां हृते उत्थापका^६ नियुक्ता, मृतानामाहता-
नाम् प्राथमिकमुपचार कृत्वा अस्त्रस्यपरिवहनेन आरोह्यशालाया प्रबन्धो विहित ।
ययाज्ञान परिचया पत्रेषु प्रकाशिता । घटनास्थले सैनिका आयोजिता । चन्द्रस्य चतौ
दुर्घटनापीडिताद् विलोभ्यावसजम् ।

*

*

*

“दृष्टिपिरता, पर प्रवाहेषु जल प्रतिदिनमेधमान वसते” इति चरेण चन्द्रो न्यवदि ।

चन्द्रेण जलप्लावस्य वाप्यशकटीदुर्घटनानाश्च कारणं ज्ञातुमनुसन्धानमगृह्य^७ नियौ
जितम्, आश्वास्य पञ्चाभ्यन्तरे विवरणदानाय ।

*

*

*

प्रभातिको रामो वातमारुह्य कर्णशृङ्गुलीं प्रविश्य मन आह्लादयति स्म । नेतो-

१ प्राथमिक चिकित्सा करनेवाले । २ लोहे का गाटर । ३ भाप से शक्ति उत्पन्न-
करनेवाला रेल्व इंजिन । ४ डिब्बे । ५ उलट गये । ६ डेन । ७ Investigation

विकर्षिता नावता प्रवृत्ताऽऽद्यात्, यस्या तत्र रणरमका उल्लस स्फूर्ति चतना जनयन्त
 आसन् । इवन इचन प्राप्ते मुहूर्ते विदुषा विरल्य वाचो भगवद्भजन सारत्वन वर्तन्त्य
 ध्रुवन्त स्म । अकस्माद् विदारयन्तनपेयवद् यद् राजनारस्य पक्षिनोत्तरस्या दिशि
 गव्यूतिदशकान्तराळे वातहस्य^१ क्षतिमस्त । चन्द्र उत्थितमात्र एवैतच्छ्रुतवान् ।
 प्रबलोऽमुना वायुराशनेन जलाप्लुत क्षेत्र प्रेक्षितु प्रेषित असीत् । चन्द्रधिनृतयामस्त,
 कथमह कुमुदिन्या अग्रे स्थस्वामि । हन्त ! इता कुमुदिनी ! दुर्भिक्षमस्ते प्रदेशे
 सौत्साह जनान् सेवनाना सा यदह श्रोष्यति हन्त ! घात ! किं विक्रीपसि^२
 प्रयत्न ! सत्य सफल त जीवनम् ।

घटनास्थल प्रक्षिप्तकामो मरुत्तरेण सत्वर गतवान् स । औपचारिका आसन्नोऽहः ।
 योजनविद्याले क्षत्रे वायुयानस्य तस्मिन् स्थितानाञ्च अवयवा अपरिचीयमाना प्रक्षिप्ता
 आसन् । एकनक्ष रिण्डित ज्वालामर्जित वायुयानम् । अग्रिमभागो वायुयाने नासीत् ।

अग्रातसन्तोषो वायुयानावतरणभूमिं^३ गतोऽजिज्ञासुन उत्तरितश्च “वातहृष्टे बालक-
 द्वयम् द्वौ च सनिद्यावास्तवम्, प्रबलो व्यवस्थायै तत्र स्थितः” ।

सन्तोषस्य निश्वासो निरगात् । मनुष्य प्रकृतिं जनु कृतप्रयत्न^४ । जले स्थले
 नभसि निवाधगमन स कृतकृत्यमात्मान मनुते । पर प्रकृतिस्वस्याल्पज्ञता विचिन्त्याह
 हास इवते । किमेव एव प्रकृतिजय ? मानव^५ कथ भ्रान्त ? अल्पेऽपि ज्ञाने
 कीदृशी तस्य मदायता ? इति ॥ विचारयामास ।

*

*

*

माननीया महाराज्ञी सरोजिनी पत्र लिखितुमादिशति

“

—कुमुदिनी

विजयता भारतीया सस्कृति ।

अह जविना^१ जापेन व्यवस्था सग्यादयन्तो प्रान्तममु पर्यगमि । प्रान्ते प्रतिश्रुत

। सवत्र दुर्भिक्षम् । ग्रामेषु बहवो मृता, केचन शमीपत्राणि शमीत्ववध

न्ति । अन्नरहिता अपि नानायाचितु पारयन्ति मनस्विनो ग्राम्याः ।

वायुयान का नाम । २ एरोडम् । ३ जीवयति-युद्धादिषु शीघ्र सुदूर प्रापणेन

स जीप शृपोदरादित्वात्साधु (जीप गाडी) ।

रक्षनाय दारयनिर्भरैः सुराचयकैर्मृदङ्गतालैस्तन्त्रीरणरषकैर्नूपुरशङ्कितैः सह पति-
व्रतानां पातिव्रत्यं कुमारीणां कौमारं निर्दयं निर्वृणं निर्लेज्जं राजतताम्रमुद्राभिः साट्टहातं
लुण्ठन्तो विदुषन्ति । येषां विशालाट्टालिकासु भोगा विलासैः सह रत्नजटितस्वर्णचपकैः
सुरां निषेधं नृत्यन्ति । यत्र कुलाङ्गनानां पतनं वीक्ष्य गर्वितमुख्यधकितहरिणीप्रेक्षणेन
विमोहितसधनाः सुलोचना मन्दोदयौ वारवष्कः स्मयमाना मोदमग्ना नग्ना इवान्वयैर्वि-
विधरागैरम्बरैर्भूयिताः पतङ्गिका इव मनो रञ्जयन्ति । यत्र मृत्याः श्वानश्वाप्यजीर्णम्रस्ता
वभ्यतिष्ठारान् भजन्तश्चिक्त्स्वालयेषु प्रलम्बां पङ्क्तिं विरचयन्ति ।

प्रजाः स्वभावं धिक्कुर्वत्यः स्वाधिकारं स्वभागं स्वाजितं द्रव्यं परैरुपभुज्यमानं विनाश्य-
मानञ्च वीक्ष्यापि न किमपि कुर्वत्यो वपनयोऽकर्मण्याः कायराः^१ कथानि ज्ञेयं सह्यन्ते ।

धनिनो मृत्यानुपदिशन्ति—भगवता परमज्ञानतारेण कृष्णेनोद्योपि यत्
‘कर्तुः कर्मण्येवाधिकारो न फले’ अतोऽहर्निशं धाम्यद्भिः फलभूतस्य वेतनस्याकाङ्क्षैव
महतं पातकम् । अस्माभिरास्तिकैर्नैर्बन्धिं किमपि कर्तव्यं येन भगवद्भक्त्यैर्विरोधः
समापतेद् इति । इन्तः ? कीदृशः स्वार्थान्धः संसारः ?

शासनेन^२ आशयस्य प्रबन्धो विहितः । असरोद्धा सागराद्यो ज्ञेयितः । कोऽपि
पक्ष्मवहवायादिधिमज्जं गृहे विपणौ वा रक्षितुं नाधिकृतः । जगद्धेयिणो व्यापारिणोऽपार-
मज्जं निरुन्धानाः सन्ति व्यसनोपजोविनः कन्यादाः । ते परिवारसदसः सर्वेषां सदस्यानां
नाम्ना पार्थक्येन परिवारान् प्रकल्प्याश्च^३ न्यरुक्न् कूटनिपुणाः ।^४ पुष्टविपणिः सर्वविधान्नेन
परिपूर्णोऽस्ति, अप्रविपणौ चोदुश्चतुल्यसनः^५ मक्षिका मारयन्नेकलः पणो । प्राहृकान् स
कथयति, “भवतां दुःखं पश्यन्महं नितरां दुःखी, परं विवशोऽस्मि, विम्रेतुं^६ मनः समीपे
किमपि नास्ति, शिशुभ्यो दिग्मणमितमन्नं मुद्राशतेनानीतवानस्मि तददर्शनगृहीतलाभो
दातुं शक्नोमि ।”

आचारे व्यवहारे च सर्वत्र विशेषतो नगरेषु च्छलं दोषः समीक्ष्यते । पीडितमानवानां
कृते पौरैः समितयो योजिताः । शतशो युवान् आर्तत्राणाय सज्जा अभूवन् । ते रथ्यासु
दुग्धिप्रीटितानां सेवायै रक्षायै अन्नं नासांश्च धनघायाचन् । जनता मुक्कहस्तेन ददौ ।

^१ वयू । ^२ काये रमन्ते ते, औषादिको दः । ^३ व्या—इषद् अशनम्=आशनम् ।
स्वयं परिमितवाशनम्—राशन । ^४ चोरबाजार । ^५ गद्दी उलटाकर ।

व्यवारीत्—राज्यस्य दशकोटिमुद्राणां वर्षचतुष्टयस्य च व्ययेन निर्मित 'आनन्दबन्धो भद्र । तद्वन्धविघातेनैव सर्वो जनपदो जलप्लावे निमग्न । बन्धनिर्माणे नियुक्तो मृतस्नास्थाने शिकतामुपयोज्य मृतस्नाथं विक्रीय पुत्राय 'पत्रनिर्माणशाला श्यालाय 'दत्तनिर्माणशालायाकारयत् । स एव जनपदस्य योषक्षेमाय रचित आनन्दबन्धो जलमलेन भद्रो जनपद जलेनाप्लावयत् । वाष्पशकट्या सेतौ च राज्यतो दत्तानां लोहबलभीना स्थाने जीर्णा लोहबलभ्यो रागेण रक्षा प्रयुक्ता नवीनाथान्यत्र विक्रीता । जीर्णाश्च निरन्तरप्रवर्षणेन काटयुजो भद्रा, इति ।

“आधर्यम् ॥” चन्द्रश्चिन्तयामास “जनस्य लाभलोभेन विश्वं विहन्तुमुद्युक्त । लोहबलभीविक्रयेण सहस्रं द्विसहस्रं तस्य लाभो भूतो भवेत्, विनाशश्च कोटिमुद्राणां सहस्राणां मानवानाम् । अयमर्थविकार, सग्रहविकार, स्वार्थविकारो जीर्णां लोहबलभी-मुपयुनक्ति मृतस्नास्थाने शिकताम् । दन्तः ॥ विलक्षणोऽर्थविकार । विलक्षणयैव चास्मिन् चिकित्सया भवितव्यम् ।” चन्द्रोऽधिकोपमाप्रापयामास यदमूर्षा धनमनुसन्धातव्यम्, अनुसन्धानं यावत् बन्धसेतुनिर्मुक्ता ससम्बन्धिनो ‘राज्याभिरक्षया पृथीवा स्युः’ इति ।

*

*

*

आग्नेयकिरणैरुह तापितनिरपराधससार परितापपापेनेव पाथोधौ पतित दिनदामणि वीक्ष्य नैरो दामणिः समस्तदिनाकुलप्राणिनः सान्त्वयन्निव, नक्षत्रमुक्तानां विशदविमल-विशालमुज्ज्वलं हारं परिधाय धुमुदव्याजेन विहसन् चर्चितताम्बूलमिवाताम्र गण्डूपेनेव रश्मिजालेन विशोध्य मुखं प्रकटितोज्ज्वलदन्तपङ्क्तिर्गगनशृङ्गे साङ्गनो धावति ।

उन्मुक्तवसना निरक्षणा तपोधवला सुबला तपस्विनीवोदेस्ते कलश्याऽलक्ष्यसेवाव्रता निस्पन्दनीरवतटा प्रगाढां शान्तिं दधाना प्रवहणस्य प्रशान्तमादकलकलेन वासन्तिरु-मधुमत्तमोदिमधुरेणेव मन्द विनादिता नदी मन्द मन्द प्रवहति ।

अशान्तानपि प्रसह्य शमयत् शातं वातावरणम्, मुमयशरितं सौरस्यम्, ज्योत्स्ना धीतानां सम्कुलानां द्रुमदलमुमनसां सौरभम्, मधुरमरीचिमालिनधन्द्रमसो जगज्जयिनी चन्द्रिका, तारकाणां स्पन्दनवृत्यम्, प्रकृतिं सौन्दर्यान्न्दसखीं निर्मातुं सयत्ना आसन् ।

१ ग्राम्य Dam । २ सीमेट । ३ पेपरमिड । ४ क्लोथ मिल । ५ जग खादे हुरे । कट वपावरणयो । ६ बैक । ७ कस्टडी Custody By Government

प्रसवपूण्यायानुत्यक्त्वा विजयननोत्तरे सरित्तट विविधवल्लीकल्पित कोरकमुकुट-
सुश्रुत चतुर्दल'दक्षिण'मन्दारकोविदारो'दुम्बरनिम्बजम्बोरपरिहृत भावधामन्तिकारो
लिङ्गमायकररीरकररीरचाप्येयचम्पकनन्बकनकरुचरुपकनरुचकनकुलकुलानुल निरु-
कुटारम् । तमेव लङ्गीकृत्य अनैश्वर्ये सति प्रशान्तवज्र स्थल विभावयन्ती
धिपयिप्रतिता हरि कुटोरान्तिकमुपेयाय । तर्हि शङ्कुनाऽऽवध्य भूमिभर्तृणो युवा
अभिपुष्टि प्रज्ञन् अखण्डशान्तिस्वरूपनिभमध्यात्मचिन्तननिस्त विरतवासनमात्मक्यनालीव
चात्कल्पनातीत कैलाशविलासकेश सजस्विन मनोज्ञहास्य निरालस्यमुपास्ये निरतमान
समस्तोनैक्य उपविशत् । आनन्दाधुष्कृताननो वर्षायाम् गदन्नागात्—

अस्मिन्निपाशानि मम विधसर्वस्व ! अन्तविरोहिता देवा । ससारे भ्रमतो
अममवने पश्यतो जगज्जालजलनी प्रवहत उन्नतीभूय कर्तव्य विस्मृत जगतो मृगदृष्ट्या
सुनुभावमानस्य स्वेन स्व निद्रतो मे आनुर्यतीतम् । अद्यावधि विकारपेषपातिरिक्त
गन्धर्वकृतवानसि । अभ्यस्तविद्यास्त्रादो सुखरूपेतिऽपि विज्ञते विज्ञो वसन्तपि
कमहमपुनाऽऽश्मान विचारयितुं पारयासि ।

“अप्यधिपानान्महत् सुमेरुन्मूलनादपि ।

अपि बहुन्यशनाद् राम । विषमचित्तनिग्रह ॥”

इति षष्ठोऽङ्कः शुभः । क्षामकशूर विनयनशील जीवन विदतापि नास्मिन् जन्मनि
न चान्यस्मिन् मया विचारायन्यस्तम् । तथापि नाह निराश इत्येव तव हृत् । त्व
नामुच्चरिष्यमि धामसान् करिष्यस्यति म मुहुरो विद्वत् । मनापावनलगत्यम् पर
त्वं दयाप्यनन्ता । सा मां दप्येनैवेदतुं शशा । तव चारुवरणौ सनाश्लिष्टस्य सप्रेम
भवतो बहुच्छिन्नमतिदूर भवत् परं वसते भव सलम् । निश्चितं त्वनेकदा मां
वजसाऽऽलिङ्गिष्यसि । अधीस्ता प्रतापशस्मिन्नवन्द्य । कम्पदन्नेवाह परमां चरमां
रसानुर्गुत श्रयामि वद तदा शप्तौ क्षिणुमवितप्यमिति त्वनिवचनपनव । कदाह
भ्रामोज्ज्वला कौशेयमुमुक्षितकनकेनर्ता परिजतसस्मितरत्नैर्लता शयशय्यामधिशयानस्य
सुम्नामृतान्मेभमतो दर्शनवन्दनमुमविष्यामि ।

दीर्घाण्यघान्यधिगुचीव भवन्त्यहानि

हानिर्वलस्य शरदीव नदीजलस्य ।

दुःखान्यसत्परिभवा इव दुःसहानि

हा ! निःसहोऽस्मि कुरु निशरणेऽनुकम्पाम् ॥ (जगद्धरभट्टस्य)

त विरतवाच शनैरुपसृत्यानम्य युवोवे—

अर्थवादस्य दुर्दम्यपिताचेन कारावास वसितुं बाधितां दुराचारकर्कशलौहशृङ्खल-
निबद्धां भारतीयां भुवः प्रजास्य प्राचीनार्यभारतीयसंस्कृत्या भूषयितुमुन्मुक्तवातावरणे नि श्रुयितुं
नरेन्द्रमण्डलं समाह्वयति शुक्लाज्यध्वजः । तस्मिन्नावसरे तातस्य वामभागीरथ्यां स्थातुं
सर्वे परमोत्सुकः । इति ।

“शक्ते । चिरायुषध्वजस्य साधनार्या व्यवस्थाया मम महान् विश्वासः । मूकसाधकत्वं
राममनुजभूमण इवाशेष निर्वहसि । मया बहव उत्सवा दृष्टा उपदिष्टाः कृताः सञ्चालिताश्च ।
अधुनाहमुपरतः कालात्ययितो न कापि जिगमिषामि गुरुणाऽऽज्ञप्तः । चन्द्र प्रजाभिः
सहयुयुधुभिरन्यै राजभिस्त्वया च परामृश्य यच्चिकीर्षति, तदेव वरम् । “गुणार्जनोच्छ्रान्त-
विरुद्धबुद्धयः प्रकृत्यमित्राणि सतामसाधवः” अतः सर्वे परामर्शो वरीयान्, देवो दिशतु
युष्मभ्यं साफल्यम् । अथ च किमुत्सवैः ? अल प्रबाधनदुरुपयोगेन । विश्वसाम्राज्यमि-
प्सवः सहस्रशः सुन्दरीणां प्रियतमा, लक्षशः कलावता कोटिशः कर्मकराणामाश्रयाः
भगवदनुजग्मान इव मनुजग्मानो दुर्मान् प्रासादानारामान् निर्माप्य ससारसाधकास्मे-
ऽङ्गभारम्भा रमणीयतमानुत्सवानकार्पुः, पर काय ते ? एते भगावशेषा मूकमाक्रन्दयन्तो
जगग्मानमर्हिभिर्वीरैरप्सर सद्दिशौन्दर्याभिः सुन्दरीभिरघ्युषितचरा अपि निर्भर-
मुद्वेषोपयन्ति यद् वयमद्यमदिता यदिता निष्ठुरनियत्याः क्रूरकुरैः । विश्वस्मिन्
स्वविचारान् स्वहचि प्रसारयितुं सयज्ञा हन्त । अथ कः ? तेषां नामकालानुसन्धानमपि
पुरातत्त्वविभागस्थानां शिरोऽस्तिकरम् । एष वायुः, एषा भूमिः, एतदाकाशम्, एतावि-
वनानि तान् तदनुजिगमिषुंश्च निश्चन्द निहसन्तीव । वनरुशेषे निपतति सान्ध्यसूर्या-
लोके क्षणं विविधरागाणां प्रतीतिरिवास्मिन् ससारे सुखानां प्रतीतिः । प्रज्ञावतां प्रज्ञाप-
स्तेव मुकर्म येनानादम्बरमप्रदर्शनं जगतो विराजो भगवतोऽफलाभिलाषमर्चनं भवेदिति” ।

“तदेव देव ! वयं कर्तुं कृतसङ्कल्पाः ।”

*

—

—

पीलोमीपतिपत्तनोपवनपरिमलेनेव परिपूर्णस्य प्रासादस्य विनुधावल्लिलयिते सारस्त-
 द्धातोधरैः सुतीवरैरुद्देशरत्नैराकुले रजाकर इव प्रेक्षमाणे विशाले हाळे सुखमासीनानां
 'सामयिहोमावश्यं घटाननुभूय विचाराय समवेतानां विभिन्नमण्डलरसपालातामेका विचार-
 पापिन् प्रारब्धाः । सङ्गस्य उजायात् विद्वान् ज्ञानस्य प्रतिनिधिनिधिस्तपस्रः परिप्लपतिपद-
 मलवधरः । स्वस्तिपावनानन्तरं समुत्प्लुकेषु तूष्णीम्भूय प्रतांधमाणेषु सर्वेषु चन्द्र
 भामन्त्रणस्य प्रयोजनं विवक्षयन्नुदतिष्ठत् । चन्द्रस्य विशाल शालोभत मुषटितं विमल
 वपुः, पणितप्रादुर्भेद्यजलधरधामानः स्निग्धोज्ज्वला आहृतं रम्या काम्या छाभा
 कुर्वन्त रङ्गयविभूषिणः प्रलम्बितः कृष्णाः केसाः, मानस्य मयादेव तपस्विनः
 साधनैव मांसलोन्नता प्रलम्बा श्रोत्रा, निर्मोघनीलाम्बरे सहस्रोदितस्य सूर्यस्य भग्दलमिव
 तेजसि मोहकमार्च्यकमिन्दिरावन्दित मुखमण्डल सर्वेषु सम्भ्रम सकारयामाण ।
 समयमानः स प्राबोचत्—

आर्यता व्याप्तिरासीत् । अस्माक वचस्ताम्रपत्रलेखायते स्म, पशध सूर्षोदयवदप्रतिरुद्ध
 आसीत् । राष्ट्रान्तराणि यदा तमसाकृतान्यनामृतानि विलेप शयानानि चासन्, अस्माकं
 राष्ट्रं जगद्गुरुर्धनवलकलाविवेकविज्ञानेष्वपास्ततुल्यमासीत् । अत्रैव विश्वस्य प्राचीनतमो
 ग्रन्थ ऋग्वेदः, अस्मादेव विश्वस्मिन् शान्तिस्तत्प्रसारक दर्शनात्मक ज्ञानज्योतिरुदगात् ।
 अस्मादेव आग्नेयपाशुपतवारुणवायव्यवज्रास्त्रप्रमृताणां विश्वभयङ्करापामर्राणामुद्गमः
 प्रशमश्च । ज्ञानज्योतिरोपशया लोकान्तरीया अत्रैवाजिगमिषन्ति स्म । अत्रैव लोक-
 कल्याणैकमनसो मनस्विनस्तपस्विनो विविधा रीतिनीतीः प्रसारयामासुः । सर्वत्र प्रेम,
 वात्सल्यम्, सौहार्दम्, सहयोगिता, अभेदभावः, सहभावः, सद्भावश्चासीत् । परमद्यः
 भूमिः सूर्यश्चन्द्रो वायुराकाश तु ॥ एव सन्ति परं मानवभावताः परिवर्तिताः । अत एवैषा
 धरित्री ध्वस्तेव दृश्यते । हा ! विलक्षणो देवदुर्विपाकः । केन भावेनास्माकं पूर्वजा न्यषसन्,
 वयम् केन निवसामः ।

पुरा सरसि मानसे विकचसारसालिस्त्रलत्-

परागसुरभीकृते पयसि यस्य यातं वयः ।

स पल्लवजलेऽधुना मिलदनेकभेकाकुले

मरालकुलनायकः कथय रे ! कथं वर्त्तताम् ॥ पण्डितराजः ।

प्रतिवेशिनि धुमुक्षिते दीने रुणे च भोजनं गदितमासीत् । कस्मिंश्चिद्वहोने ग्राममायाते
 सर्वं ग्रामीणास्तस्मै साहाय्यं प्रदाय स्वतुल्यमर्ज्वन् । तस्मिन् दुःखितेऽवसन्ने न्यूनेऽवरे ॥
 ग्रामोपानामवरत्वं प्रतिष्ठितमासीत् । लाभार्थं समृद्धो ह्येव आसीत् ।

यदधोऽधःक्षितौ विस्रं निचखान मितम्पचः ।

तदधो निलयं गन्तुं चक्रे पन्थानमप्रतः ॥

कस्यपूर्णानु विपणिषु यथावश्यकं वस्तुपयोगाय विक्रीयते स्म । देवान्तरात केयमानीय
 विक्रयो जनस्यावश्यकतापूर्णश्च व्यापारिणः कर्तव्यम्, तदेव लाभो गण्यते स्म । अर्थार्ज-
 नस्योद्देश्यं नासीत् । सर्वं ज्ञानधनार्जने परस्परं यथोचितेन सहयोगेन सौहार्दनेकपरिवा-
 रम्यवस्थया निवसन्ति स्म । विदूष्यमपरिचितं गृहमागतमीश्वरभावेनामन्यत गृही । ईदृशो
 वन्तावरणे क स्थानमधुना प्रतिपदं प्रतिदिनं स्थापितानां स्थाप्यमानानाञ्च भोजनालयानां

अगुणरूपो गुणराशिर्द्वयमिह देवात् सलानने पतितम् ।

प्रसरति तैलमिवैकः सलिले घृतमिव जडत्वमेत्यन्यः ॥

भवभार्यताम्, अस्माकं निशाले नाष्टमे कपाट्यनरोधिका केवल शृङ्खलैवास्ति न तालकम् । तासकमविश्वासभीत्योः पुञ्जवादपुनयोरपलम् । तच्छलघौल्यराधनस्याभेद-
भावस्यायात्मता भूता, तस्य स्वसिद्धान्ते प्रतिष्ठापनमस्माकमुद्देशम् ।

समाजे सर्वे समाना आसक्त्यदृष्ट्या, पर केचन धूर्ताः स्वपक्षपोषणाय स्वार्थसरक्षणाय शासकैरुत्साहिता आत्मादुरणभयमाधित्य प्रतियोगिताभ्याघीं निर्माय स्वस्थिति दृढयित्वाऽपि गच्छन्तोऽनुगामिन आहन्तुमारेभिरे कृतघ्नाः ।

अज्ञातदेशकालाश्चपलमुखाः पङ्क्तवोऽपि सल्लुतयः ।

नवविहगा इव मुग्धा भक्ष्यन्ते धूर्तमाजारैः ॥ क्षेमेन्द्रः ।

अनुगामिनश्च सकृदाहताः पतिता, परिस्थितिपीडिता बानन्तोऽपि तेषां दानवीभूतानां धौर्त्यं धाव्यं च नोत्थानुमवशा, प्राभवन् ।

उपेक्षते यः सलमाक्षिपन्तं साधुर्मनोऽबुध्यत कारणं तत् ।

द्विजिह्वनेनं स यदेकजिह्व प्रयुक्तिभिर्न क्रमते नियन्तुम् ॥ सोमेश्वर ।

अपि तु परिस्थितिपतितास्तानेवाप्रगामिनो धूर्तान् पोषयामासुः । एते मत्कुणा मशका यूरा इव मानवरक्तमाचूषयन्तः परजीविनो मानवशरीर दुःखयन्तोऽपि मानवशरीरे स्थिताः ।

एते हि कालपुरुषाः पृथुदण्डनिपातहतलोकाः ।

गणनागणनपिशाचाश्चरन्ति भूर्जध्वजा लोके ॥

कस्तेषां विश्वासं यममहिपविपाणकोटिकुटिलानाम् ।

व्रजति, न यस्य विपक्तं कण्ठे पाशः कृतान्तस्य ॥ क्षेमेन्द्र ।

एतेषां शीर्षधातिनां प्रसङ्गापसारण जीवनाय किं न परमावश्यकम् ? सहयोगो नियमनञ्च समाजस्य जीवनभूतौ, तावय इन्त । मृतौ । वस्तुतो धन लोकस्य न्यासः । परम्परया परिस्थित्या वा प्राप्तं धन लोकस्य न्यासः । यथासम्भव शीघ्रं यथारीति तस्य तदधिकारिषु प्रत्यावर्तनं प्रतिदानं न्यासधरस्य योग्यतायां सूचकम् । अतोऽयं वा सम्पत्ति

खलश्च खड्गश्च नहि स्वभावं जहाति कोशार्पणलालितोऽपि ।

यस्यातिमात्रं मलिनात्मकस्य पर द्विधा कुर्वत एव राम ॥ सोमेश्वर ।

अस्यामेक एव सर्वप्राप्ती सुभूपत्यास्तापित्व, परस्पर धनमपजिहीर्षति च । अस्यान
वस्थायामाशङ्कापूर्वे वातावरणे च आनन्दः ? च सुखम् ? मन्यतां भवान् मूल्यमभितपति,
तस्मै किमपि भोजनवस्त्रादिक प्रदाय तस्य श्रेयेण स्वकार्यं चिन्तयति, तदाऽनश्यमेव
भवत्प्रतिवेशिना निर्धनेन भवितव्यम् । भवदैश्वर्यं भवत् प्रतिवेशिनो दारिद्र्येऽवलम्बितम् ।
परम्, राष्ट्रं कथनं भोजनवस्त्रादेरिच्छको न भवेत्, सर्वेषां जीवनव्यापार एवेन
चलेत्तदा मूल्यप्राप्तिरशक्या । वपनम्, पशुचारणम्, भोजनम्, जलनयनम्, लेखन
व्यवहारादिक तैर्नैव कार्यम् । राष्ट्रं तद् यदि सम्पन्नं भवेत्, सर्वेऽयाचका
अनमिलापुकाश्च सुखदा स्वर्णपते स्वर्णस्योपयोगिता पोतपापाण्यण्डतो
नाधिका । तेन सञ्चितमन्नवस्त्रादि शुणादिजर्जरितमेव भविष्यति, यतो न कथना-
काङ्क्षकः । स स्वयम् नाश्रमं न वासासि, न गृहाणि वा शतसहस्रगुणमुपयोषमुपभोक्तुं
वा समर्थः । अतस्तत् सर्वं विनश्यति । बुध्यता तस्य सङ्ग्रहस्य कोऽर्थः । स्वत्पा
यानन्दायापि तेन श्रमिवत् कठिन श्रमितव्यमेव । विशाल क्षेत्रं स स्वयमेकैकी
न वस्तु न लवितुम् न चोपयोक्तुं समर्थः, न च विशालस्य हर्म्यस्य जीर्णोद्धारो उपलभ्ये
किमु वातेऽपि समर्थः । स जीर्णशीर्णानि गृहाणि स्वकीयानि कथयन्नेव ह्वेष्यति ।
भविष्यति चान्यगृहनिर्माणेऽनुत्सुकः । अतः स लघ्वीयसि गृहे उद्याने वा वसन् स्वहस्त
कृतसर्वकार्यं एवावसिस्तुष्टो भविष्यति ।

धनार्जने चतुरो धनमर्जयेत्, पर तस्योपयोगं सार्वदेशिको भवेत् यथा
वायुराकाशं जलं विश्वजनीयानीश्वरप्रदत्तानि च तथैव धनम् । धनं लोकस्य
न्यासः । विचार्यताम्, यदि माता शक्तिशालिनी चतुरा च, तदा किं सा दुर्बलस्य
सिशोर्भोज्यं खादेत् ? यदि खादेत्तदा कस्तां मातरं कथयितुमीह्यत । सर्वे तां डाकिनीं
वदियन्ति । परमत्र विश्वं सर्वसाधनसम्पन्नं पितृस्थानीयो धनी गृहम्,
मातापितरौ, दारपत्यश्च विहायगतानां पुत्रायमाणानां भृत्यानां भृत्यकृपोपार्जितसम्पत्प्रतिष्ठो
निदयं सर्वेष्वहर्तुं सञ्चल्यते ।

अमृतं किरति हिमाशुः विपमेव फणी समुद्गिरति ।

गुणमेव वक्ति साधुर्दोषमसाधुः प्रकाशयति ॥

विचार्यतां श्रीमतां सम्मती स कथं सम्योध्यः ?

आधुनिकं ज्ञान विज्ञानं केवल परिग्रहिणां घनार्जनस्य साधनमात्रम्, परेषामाकर्षणे शोषणे सहायकम् । अथ विज्ञानाविष्कारानि यन्त्राणि मानवमन्यहराणि । प्रतीयते पुनरावोऽयं यन्त्रास्तो मानवजयो । यन्त्रं समाजेऽज्ञानां शक्तिवर्धनाय परिश्रमपरिहाराय कौशलेन समानवस्तुत्पादनाय अवकाशसरक्षणाय च प्रतिष्ठितम् । यक्षयोः शक्तिवर्धनायो-
पनेन दूरीकरणं सूक्ष्मशेषम्, वायुः शक्तयै ध्वनिविस्तारकम्, पादयोः शक्तिवर्धनाय द्विवहिका, मरुत्तम्, धाण्ययावम्, वायुयानम् । इस्तयोः शक्तिवर्धनायासङ्घट्टयेयानि यन्त्राणि, सिपिधमपरिहाराय सुदृशालयः । सोऽयं मानवविकासाय मानवाज्ञानां शतपुरस्काराय गुणोदयाय नौपयोगः सम्मतः । पर योऽवकाशः सर्वविधशक्तीन्मुदयाय यन्त्रेण दत्तस्तस्मिन्नेकाधिकारः पुञ्जवादेन कृतः प्रतिद्वन्द्वितामुत्पद्य । एवमस्या अवकाशभोगिनोऽनत्याधानवकाशयोचिनः संवृताः ।

सन्तापमोहकम्पान् सम्पादयितुं निहन्तुमपि जन्तून् ।

सखि ! दुर्जनस्य हि मतिः प्रसरति दूरं ज्वरस्येव ॥ गोवर्धनावार्यः ।

अयत्नं यन्त्रवैपुल्य मानवीयकलाणां सनातिम्, प्रचुरमेकदा मुलभं सौख्येण ओत्पाद्य धनं केन्द्रितं करोति, फलमिच्छति बाधते, उत्पादने मानवस्पर्शं रुषति च । मनुष्यस्य विकासस्त्वनेन पुञ्जवादप्रतिवेन पादित एव सम्प्रति तद् विकासोपायं मनुष्यमेव विषयवति । विपत्त्या निराकृत्य तत्त्वोपयोगिता केवलमस्माभिर्मन्वस्थाप्या ।

न परं फलति हि किञ्चित् सख एवानर्थमावहति यावत् ।

मारयति सपदि विपतरुराश्रयमाणं श्रमापनुदे ॥

यन्त्रोदयात् पूर्वमस्माभिर्नृहवः पञ्चवः सनाजे सम्येक्षिता उपयोगिता नीताथ, परमधुना पालितधरं गवाधमपि कृतवति । अतुपपुज्यमानस्य रक्षाऽसम्भवाऽवस्थेव । स्वान्भुदये श्रेयमुदयः, पशुतमप्युदयः=सत्कारीऽभिप्रेतः, किन्तु द्वितीयमने । पर स्वान्भुदयीया-
धिष्ठयोत्रनेऽस्माकं चिरपरिवितानां फलितानां पशूनां सयोगिनं नु नितरमावदयम् ।

स्मर्यताम्, राष्ट्रे सर्वे समानाः शरीरेऽङ्गानीव । समये सत्त्वा पर्यवेक्षमाणो लविता
कृपक, सन्धियोगनिपुणो नौनिर्माता, लोहकारः कुम्भकारश्चर्मकारो व्यवस्थापक-
श्चित्सकोऽध्यापकः, गृहकारुः, गृहकार्यदक्षा गृहिणी, स्वयन् संयोज्य गायन्ती गायिका,
सैनिकः, शोधको देशस्य सम्पादका मन्त्रलकर्तारथ । नैते कस्मान्निदपि प्रजाव्यवस्थापकाद्
राज्ञः, सदसद्विवेचयतो न्यायाधीशाद् वा न्यूनाः ।

मम सम्मतौ राज्ञां धनिनाम्नायं विकासक्रमः ।

पुरा प्राम्या प्राम्यं बलवन्तमूखः—“वयं तव जीविकां साधयिष्यामस्व मामं रक्ष” ।
स स्त्रीकृत्य दण्डधरो नैपुण्येन मामं ररक्ष । तस्य कार्यप्रणालीप्रसन्नाः पार्श्ववर्तिनोऽपि
तं प्रामाणां रक्षार्थमनोदयन् । स स्त्रीकृत्य स्वातपुत्र्यान्नियोज्य रक्षितुमारम्भे । एवं
शनैःशनैः स बहूनां नगराणां रक्षको बभूव । “प्रजाहितप्रतिनो वयम्” इत्येव
तस्यादर्शो भासीत् । ग्रामरक्षकाणामावासाय परेषां प्रहारोपायं प्रजानां सुरक्षायै तेनाधुना
विशालं दुर्गं निरमायि । व्याघातकानां कृते तेनावुधनिमित्तिरारब्ध्वा । रक्षकाणां
शिक्षणाय स्वपुत्राणामभ्यापनाय च वनादाहूय विद्वांसो नियोजिताः ।

अभ्यापयन्ति शास्त्राणि तृणीकुर्वन्ति पण्डितान् ।

विस्मारयन्ति जार्ति स्वां वराटाः पञ्चपाः करे ॥

यातायातगुप्ताय ग्रामान्तरेषु लोकपया निर्मिताः । बाह्वानि यच्छृङ्गीतानि, अजितधनेन
सेना च सच्छृङ्गीता । अधुना सोऽधिगतबलः पटुर्जनताया दीर्घस्यमनुभवन् काचित् स्वपक्षे
कृत्वा स्वीरं करं प्रहीतुमारब्धवान् । रक्षकोऽपि सोऽधुना भक्षको भवितुमारम्भे । लोलुपः स
इतररक्षकाणां रक्षाव्यवस्थां विशृङ्खलामकल्याचोत्क्षोभ्य इतरप्रदेशान् स्वायत्तीकृत्यन्
प्रजाहितप्रतितां प्रासारयत् । ॥ एव लगुङ्गधरो राजपदेन स्त्रीकृतः, यस्मै नितोपनो
राजनान् । सम्भाष्यते ॥ एवाधुनिष्ठलगुङ्गिनां पूर्वजः ।

लोकेन च मौदर्यात् राजा सत्ता ग्रामपालावित्ताय राज्ञेऽर्पिता । त्वमस्माकं कल्याण-
नाचर, यदि वयं नेरञ्जनास्तद्धि दण्डयस्वस्माकं कल्याणमारुह, एवाऽनियन्त्रिता सत्ता
राजोपाधिधारिणे ग्रामपालाय प्रदत्ता । राजा सर्वं साधारणो मानवः, न तस्मिन् कापि
मिथ्या सत्ता शक्तिः, या सत्ता शक्तिर्वा सा प्रजानामेव । एवं स लोकस्य सत्तया सत्तया

च स्वार्थसंक्षयाय लोभान् यथेच्छं दण्डयितुमारमत । प्रयत्नतो राजा निर्वान्य भासीत् ,
यतो हि रक्षकस्य निर्वचन रक्षगवोग्यतानुसारि । परं सार्नदसन्नैः सम्प्राप्तसाधनोऽनुरक्त-
विरविषिद्वज्जनः सोऽस्मत्पूर्वजो राज्यं कुम्भनागतकर्कार । वस्तुतोऽस्य स्थितिर्दार-
पल्लवो नाधिक्य । ब्राह्मणैः क्षत्रवन्भुर्हि द्वारपालो निरूपितः । भागवने ।

यथा चादिराजः प्रभुः—

अहं दण्डधरो राजा प्रजानामिह योजितः ।

रक्षिता वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु स्थापिता पृथक्^१ ॥ भागवते ४।१।१२२

राज्ञां सृष्टिर्वित्तरिहाराय जाता ।

रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजन् प्रभुः ॥ मनुः ३।६

प्रभवतीति प्रभुः = प्रवृत्सता (सार्वभौमसत्ता) सम्पन्नाः प्रजाः । विप्रसम्भ्यो दृ-
सहायार्म् ३।२।१८०

नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः । मनुः ७।१०२

दण्डो दमनादित्याहुस्तेनादान्तान् दमयेत् । गौतमस्मृतिः ११ ।

सर्पेन दासनान्द्यामव्यवस्थायाः पार्थन्येऽप्येतदेव कारणम्, यच्छसन द्वारपालादिता-
पीनम्, न्यायश्च विद्वदपीनः । त्यक्त्वास्वाश बने वसन्तो विपरिनिगो विद्व सोऽप्यनुनाड-
द्वारकश्रुती गगनराशिषीषे च मोहिता दुःखाकर वनगतमुन्मूल्य, अमात्यपुरे हतादि-
पदलोत्तरालस्याभिपेक्षनाटकं बकिरे अनुमुमुदिरे च कुम्भनागतकर्नपि दास्यम्, ऊचुध
‘अशान्तां लोकप्राक्तानां वपुर्गंयते वृषः’ इति । सत्यम्,

अपथे पदमर्पयन्ति हि ध्रुवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः ।

यावत्कल्पस्मृतौ (अ. १।३.०९, १०) राजां लङ्घनं प्रयत्नादि—

महोत्साहः स्थूललक्ष्य. रुतसो वृद्धसेनकः ।

पिनीतः सत्यसम्पन्नः कुलीनः सत्यशक्नुः शुचिः ॥

१ अहं प्रभुः प्रजानां कृतिदः—इति दशति रक्षकव्यवस्थानेन च तथाभूते राष्ट्रे
सद्गतरो भगिनुं यानुन्ति । स्वप्ने प्रभुः—नयांसु स्थापिता दण्डधरो रक्षिता च
प्रभुभिर्नोजितः ।

अनीर्घसूत्रं सृष्टिमानशुद्धोऽपरुपस्तथा ।

तस्य कर्म च—

स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तं स्याद् भृशदण्डश्च शत्रुषु ।

मुहुरस्त्रजिह्वं स्निग्धेषु व्राक्षणेषु क्षमान्वित ॥ मनु ७।३२

एव घृत्तस्य नृपते शिलोऽङ्गेनापि जीयते ।

विस्तीर्यते यशो लोके तैलविन्दुरिवाम्भसि ॥ मनु ७।३३

परमस्य त्वेष्वेव दोषेषु सर्वं आकृष्टं मनः । अस्तु, कुलकृन्नागते स्वार्थरहिते
पुत्रवादाप्रभाविते कर्मजन्मभवस्तु गरीयान्, परं पुत्रवादाप्रभाविते तु दौर्गुण्यमेव ।
अतः शास्त्रेणावस्य परिवर्तनवता भवितव्यमेव । अन्यथाऽऽधुनिको राज्ञेवारीगत-
शस्त्रास्त्रः सङ्ग्रहीतसेनो बह्वनकलः हस्तदुर्ब आतङ्गिनवगतः सेवकोऽपि स सेव्यो
भविष्यति, नरपालश्चापि नरपतिः । परिस्थितिपोषितः साधारणोऽप्यसाधारणः । परि-
वर्तने दुर्बलमना उपभुक्तभोगः परिवर्तनेऽनीहः शासनादिरष्ट एव भविष्यति ।

भोगैश्चर्यप्रसक्तानां तत्रापहतचेतसाम् ।

व्यवसायात्मिका बुद्धिः समार्थो^१ न विधीयते ॥ गोता ।

एवमेवोयोगरतिपि परिस्थितिपोषितः ।

यथा च—अमुकग्रामादक्षमाहरं वयं तुभ्यं भोजनं दास्यामः, इति ग्रामौगैर्नोदितः
पदुसेवकः सार्धत्वाहः स बहूनामन्नाहरणेन बहुभोज्यमाप । उन्नोणावशिष्टं तत्रैव
विक्रीणानो विनिमयमानः शनेजातसङ्ग्रहो वैवधिकचरो यान स्थानत्र निनाय
जनस्यावश्यस्तालुसारि वस्तुजातं पार्श्ववर्त्तिभ्य एव क्रोत्वा यथेच्छमून्नेन पार्श्ववर्त्तिभ्य
एव विन्नीतवान् यथेच्छमून्नेन ।

सह वसतामप्यसता जलन्हजलवद् भवत्यसंश्लेषः ।

दूरेऽपि सता वसता प्रीतिः कुन्देन्दुवद् भवति ॥

शनैः सङ्ग्रहीतानो बलवद्सुष्टु शकटबायोग्य ग्रामान्तरेऽपि व्याघ्रिणमापो मूलधन-
मैषणम् । “लाभाहलोभः प्रवर्द्धते” । एष वणिज्यार^२ स धनित्वमध्यगमतः ।
ततोऽप्यध्ययेन धिलानभावना तत्सोत्पत्ता । स प्रीप्तातपे बलीवर्हं बाह्वित्वा पयाशन्मण-
नितमारोप्य इष्टानुशं अर्जयित्वापि स्वसम्पद्वर्द्धने प्रवान्त्सदायकाय परिस्थितिविपदाय मूढाय
बलीवद् यथाकृपयिजीवनधारणयोग्यं कार्यधनं भोज्यं प्राप्तुञ्छेद्व्यापारहरत् । सत्यम् ।

लब्धोदयोऽपि हि सलः प्रथमं त्यजनं नु नयति परितापम् ।

उद्वेगं दयदहनो जन्मनुवं शरु निर्दहति ।

१ समार्थः—अन्तःकरणम् । २ वणिज्याय कृच्छति—गच्छति स । “श्रु-
गतिप्रापनयोः ।” ‘वणिज्याय’ इति छेकः ।

अदीर्घसूत्रः स्मृतिमानक्षुद्रोऽपरुपस्तथा ।

तस्य कर्म च—

स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद् भृशदण्डश्च शत्रुषु ।

सुदृढस्वजिह्वाः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः ॥ मनुः ७।३२

एवं वृत्तस्य नृपतेः शिलोऽङ्गेनापि जीवतः ।

विस्तोर्यते यशो लोके तैलविन्दुरियाम्भसि ॥ मनुः ७।३३

परमद्यात्मासु कति तथाभूताः सन्तीत्यात्मा निरीक्ष्य ।

कुलानि जातीः श्रेणीश्च गणास्त्रानपदांस्तथा ।

स्वधर्मचलितान् राजा विनीय स्थापयेत् पथि ॥ याज्ञवल्क्यः १।३६१

शनैश्शनैर्दुःशीलशासकस्तन्त्रस्तासु प्रजासु शानप्रसाराभावादातङ्केनैव राजानो

भुव शासयामासु —

सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः ॥ मनुः ७।२२

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः दण्ड एवाभिरक्षति ।

समीक्ष्य स धृतः सक्रयक् सर्वा रक्षयते प्रजाः ।

असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः ॥ मनुः ७।१८-१९

इत्यादिगुणैर्लक्षणे कर्तव्यै परिहर्तव्यैर्व्यसनैश्च स सेवको भूत्वा एव च प्रतीयते, नेते
सेव्यमनुसरन्ति । राजाभेतानि व्यसनानि सर्वथा परिहार्याभ्यासन्—

दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च ।

व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ मनुः ७।४५

मृगयाक्षो दिवास्त्रजः परिवादः स्त्रियो मदः ।

तौर्यत्रिकं वृथाट्टया च कामजो दशको गणः ॥ ७।४६

पशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्याऽमूयार्थदूषणम् ।

पागण्डजं च पारुष्यं क्रोवजोऽपि गणोऽष्टकः ॥ ७।४७

परमं त्वेष्वेव देवेषु सर्वं ब्रह्म मनः । अस्तु, कुल्यन्मते त्वार्यरहितं
पुत्रवादाप्रभातिते कर्मन्त्युनवस्तु गतिवन्, पर पुत्रवादाप्रभातिते तु दैर्ग्यम्येव ।
अतः शास्त्रेवावर्त्तं परिवर्त्तनवता भवितव्यमेव । अन्यथाऽऽतुनिको एवेवाभित-
शब्दाद्यः सङ्गृहीतत्वेना बह्वन्वत् इत्युक्तं नातङ्कितवन् सुबकोऽपि स सेव्यो
भविष्यति, नरपालश्चापि नरपतिः । परिस्थितिरपि साधारणोऽप्यसाधारणः । परि-
वर्त्तने दुर्बलता दानुकमेव, परिवर्त्तनेऽर्वाहः शास्त्रादित्य एव भविष्यति ।

भोगैश्चर्यप्रसक्ताना तत्रापहतचेतसाम् ।

व्यवसायात्मिका बुद्धिः नमार्थो^१ न विधीयते ॥ गोता ।

एवमेवोद्योगरतिरपि परिस्थितिरिति ।

यथा च—अनुष्ठानादवनहर वन तुभ्य नोन्न दस्तान्, इति प्रानीनैर्निरितः
पटुपेषः सार्पवाहः स बहूनामवाहरयेत् बहुनोप्यमाय । उन्नोद्योगरतिरिति तदेव
विहीनानो विनिवयमानः एवेव दसष्टमहो वैरपिचयते यात्र म्यान्त्र निनाय
जनम्यवश्यस्तनुकरि वस्तुवत् पार्श्ववर्त्तिन एव कृत्वा दयेच्छमूयेन पार्श्ववर्त्तिन
एव विनीतवान् दयेच्छमूयेन ।

सह यमतामप्यसता जलम्हजलयद् भयतरसंश्लेषः ।

दूरेऽपि सता यमता प्रीतिः कुतुहेन्दुरद् भवति ॥

शबैः सङ्गृह्यतानो बलं बर्हिस्तु शब्दबान्धव प्रमान्तराप्ति व्याप्तिनाचो मूलन-
मैवम् । “लाभाल्लोभः प्रवर्द्धते” । एव इतिज्ज्^२ स धनिन्वमप्यगमत् ।
ततोऽप्यप्यपेन रिक्तनमावता तस्मैत्यता । स प्रीतिप्राप्ते बलं बर्हिं बह्वन्वा पयश्चमन-
मिदमापोष्य दणुना अर्चयित्वाति स्वग्नद्वर्त्तने प्रयान्तरदाहकं परिस्थितिविनाय नूद्य
बलीवदाय यथाकपडिजेकनयननेन कर्मजन नोर्ज प्राप्तच्छेत्तस्तदाहत् । सन्तु ।

लभोदयोऽपि हि सत्यः प्रथमं त्वजनं नु नरति परिप्राप्नु ।

इच्छन् दृष्टदहनो जन्मनुवं दातु निरहति ।

१ धनार्थः = अन्तर्हन् । २ दानिज्ज् = कुतुहे = कुतुहलं स । “द
गतिप्राप्तयोः” ‘धनिज्ज्’ इति वं ६ ।

एषा पुत्रवादस्याद्या भावना । अधुना सोऽनायासेनात्यव्ययेन च नित्यमुपयुज्य-
मानानां वस्तूनां निर्माणेच्छयाऽऽवश्यक्ताग्रस्यान्निर्वर्णास्तुवायास्तक्षकांस्तोहकारान्
कुशलान् काह धामन्दोदया दया कुर्वन्निव नियोज्य वस्तूनि निर्माप्य जीवनधारणयोग्य
प्रयच्छन् प्रचुर धनमैधयत । वराकास्ते च परिस्थितिपीडिता किं कुर्युः, यतो हि
“सर्वारम्भास्तण्डुलप्रस्थमूला ।” सत्यमेव केनापि कविनोक्तम् ।

इयमुदरदरी दुरन्तपूरा यदि न भवेदभिमानभङ्गभूमि ।

कथमपि न सहे भवादृशाना कुटिलकटाक्षनिरीक्षण जनानाम् ॥

वपति वपति लुनोते बोध्यति सोव्यति पुनाति वयते च ।

विदधाति किं न कृत्यं जठरानलशान्तये तनुमान् ॥

अथ च गो लक्षणमथोक्तस्य प्रतिदिनमेकप्रस्थमितं पयं पिबन् प्रतिप्रस्थमाणकद्वय
मूत्रेण सनत्सरे पञ्चचत्वारिंशन्मुद्राणां केवलं पयं पात्यति, शष्पादिकं पृथक् सेवास्यनादि-
भ्यश्च पृथक् । एरुहायनस्य वत्सस्य मूत्रस्य मुद्रापयकम् । चत्वारिंशन्मुद्राणां क्षानिरिति
विचार्य गौर्वत्सं विना कथं दुग्धं दद्यादित्युपायमन्विष्य जातमानमेव वत्समेकया मुद्रया
गोधातिभ्यो विनिमयते केवलं स्वार्थपण्डितः ।

अतिमलिने कर्तव्ये भवति यत्नानामतीव निपुणा भी ।

तिमिरे हि कौशिकानां रूपं प्रतिपद्यते दृष्टिः ॥ सुवन्धुः ।

पुत्रवादे एतादृश्यं कल्पना कला गम्यते विज्ञानं वा । इन्तः । “ऋद्धिश्चित्त-
विभारिणी ।” स्वमातुर्दुःस्पष्टपाने वत्सस्यैवैकाधिकारो रक्षिणस्तु पीतशेपे, नैव तस्य
विचारः । भगवतो वसुधा पश्यन्, वत्सस्य पित्रा यलोर्द्ध्वं दृष्ट्वाऽधिगतमन्तम्, तृष्ट्वा
जातं दृश्यं मनसा स्थायत्तीकृत्य नभेच्छाचरणाय स्वतन्त्रं ईधामुपेक्ष्य, सङ्ग्रहितम्, अप्रति
कुर्वता परिस्थित्या मूर्खानां ॥ हितमपश्यन् परावृत्तस्याहरणाय स्वार्थपोषणाय चेतते परिग्रही ।
एव परिस्थित्यर्जितधनं स भौतिकीमुन्नतियकरोत् । परिस्थितिरेवायं ऊर्ध्वं नयने परमा
सावित्रा । यथा च कश्चन विप्रं शिष्यगृहं गतः शिष्येण प्रोक्तः “भवान्नास्मत्पञ्चमन्ति
नचारमदानीत्तं पयं पिबति, अतो भवानेव पचन्तु जलमाहरन्तु च” इति स स्वस्मै वृत्तवान् ।

। शिष्यस्य क्षियां रुपायां रजस्वलायां वा भूतायामितरज्जातिं शिष्योऽवदन्-

“गुरो ! भवान् पश्यत्येव, आवाभ्यामपि पशु दयताम्, तदर्थं मुद्रानेकां दास्यामि, यतो न विना मूल्यमावां गुरुपाचित खादिप्यावः” इति जनैश्चनैश्चलित एष ध्ववहारोऽय इन्त ! प्राज्ञान् पाचकान् प्रपास्यायिनश्च चकार । इन्त ! दाहणा परिस्थितिः । परिस्थित्या चान्त्यजादशनैश्चनैः कृतवर्षिज्यादय उच वर्गमुपेताः । अस्तु,

अथाप्युद्योगपतिरनवरतमविद्यायिक धाम्यते परिस्थित्या प्रतिकर्तुमसमर्थाय धर्मिणे यथाकथञ्चिज्जीवन धर्तुं क्वचित् प्रक्षिप्य, कार्यायतासु कुटीषु पश्यतासु वाऽऽवाःस्य सवस्व-मपहरत्यज्ञातभावेन । एतच्छोषणं प्रकटितभववायस्याऽऽनन्दोपवनदावानेर्वराकषरमररज पुञ्जरादस्य ज्येष्ठः पुत्रः । एतेषां सञ्चार्णा सहस्राणां वान्यतमः कचन कदाचन कश्चन यद्योर्ध्वं स्तार्ध्वं किमपि ददाति चेत्तद्दानं जीवीं प्रमोष्य शतमुद्रां निष्कास्य ताम्बूलबीडिकाप्रत्यर्पणवत्, यत्र प्रचोर्य सूचिकादानवद्वाऽकिञ्चित्काम् ।

अथ राजानः सामन्ता भूमिदारा भूमिज उद्योगपक्षयो व्यापारिण इतरे च कृपकेषु जीवन्ति । सोऽय सर्वोपजोष्य ईश्वरस्य लघुभ्रातेव लोकजीवनाय सर्वथा सङ्गोऽपि निर्धन एवास्ति । तस्य पशुशालग्रालपरिपक्षिभूषणाः शिखिशिखरङ्कृतावतसाः बालमुकुन्दसमाः शिशवः साधनविहीनाः खाद्याभावदुःखदाद्रिदयविह्वला उच्छ्वसन्तो मृत्युमुखं विद्यन्ति, विवेकमेकविह्विता अज्ञाक्षिता वा जीवनं यापयन्ति पशव इव । ते पयसः प्रपातलोत-सोऽपि पयः पातुं न शक्नुवन्ति, नवनीतस्य निर्मातारोऽपि तन्नादन्ति, वरुणस्य वातारोऽपि नन्ना, अन्नस्यैकमात्र वातारोऽपि निरन्नाः । अन्य एव कश्चन हस्तस्तेषामज्ञानदग्निद्राणां सुगधानां हस्ताप्रसत्याशय तदुपभुङ्क्ते । इन्त ! कृतज्ज्ञानानमस्माक कथं निष्कृतिर्भविष्यति । “कृतज्ञे नास्ति निष्कृतिः ।” तैस्त्वां परिस्थिती ज्ञानविज्ञानयोरुपयोग उपभोगो वा विधास्यते इति वक्तुमशक्यम् । अत्रज्वालास्तीबलयितानां तेषां शशीयो दग्धिं जीवनं पादकुन्दुरुवत् केवलं जनानां प्रकृतान् पादापातान् सोढुमितस्त्वतो धाविनुम्, रेषुपु स्यनाय तिरस्काराय च केवलम्, इन्त ! “दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी” ।

कुलं शीलञ्च सत्यञ्च प्रज्ञा तेजो धृतिर्वलम् ।

गौरवं प्रलयः स्नेहो दारिद्र्येण विनश्यति ॥ चाणक्यः ।

मानो वा दर्पो वा विद्वानं विभ्रमः सुबुद्धिर्वा ।

सर्वं प्रणश्यति समं वित्तहीनो यदा पुरुषः ॥ पञ्चतन्त्रम् ।

पर ते तु धन्या एव येषां श्रुतानां लोकोपकारभावौतप्रोतान्यस्थीन्यपि गुर्वीमुर्वी-
मुदरयन्ति ।

पाटोर ! तव पटोयान् कः परिपाटीमिमामुरीकतुर्म ।

यत् पिपतामपि नृणा तनोपि परिमलैः पुष्टिम् ॥ (पण्डितराजजगन्नाथः)

प्रानोक्षत्यै सर्वौ व्याचष्टे, परमुज्जतिर्नगराणां भवति, वराका वचनैर्बन्धयन्ते ।
आजीविकासाधनान्यपि नगरेष्वेव सन्ति । स्वार्थः, पक्षपोषणम्, लोलपत्वम्, क्रूरत्वम्,
परिमहिषां नागरिकाणां प्रधान धर्मः । वराका ग्राम्या दुर्भिक्षविक्षिताः गतधना जनाः
सुवर्णसुभग मञ्जुलनुसुमसरसमुगन्धगन्धबहोद्भासितामयकुल सुरविटपिवाटीपरिवृतचाम्,
पुञ्जबादपुरक्षनपरिप्लुष्टं शरज्ज्योत्स्नाशुद्ध सौभाग्यशीबवजनन स्वार्थ्यहित माहित
वीतराग तपोवनमिव ग्राममुत्सृज्य स्वर्गाक्षरकमिव मशकमत्स्यमशिक्षासंरक्षितासु
दुर्गेन्धनिधानासु रथ्यासु निवासाय बाध्यन्ते चरकमातुषमाना यक्षमभिक्षिता श्रीवन्तः
परमभ्रमेण सन्निवन्तस्तनीयांसं पाशुमपि न सन्निवन्ति, न च सञ्चेतुं शक्नुवन्ति ।
राज्याधिकारिणोऽपि नित्यनवप्रियाः चाकचक्यैकप्रवणचेतसः सासूयाः ग्रामेषु न
यान्ति । यतो हि न तत्र विविधव्यञ्जनोपबृंहितानि द्विजटत्रिजटस्फुरदिन्दीवरनिन्दि-
सुन्दरवदनामृतहास्यगीतोपेतानि शङ्कितलज्जितरसभरचञ्चलतापविभोचनमधुरहगन्तशो-
मितानि उदग्रसूयमकञ्चुकाञ्चितवक्षोविभूषितानि सधनोपनीतानि गोष्ठीभोज्यानि,
न सौवर्णसज्जनभाजनेपूपहृतान्याहुताध्याप्यमिवन्दनपत्राणि, न प्रच्छन्नच्छलैरुपहृतानि
पुष्पफलाच्छादितानि दीनारपिटराणि, न सुवासितसुमनसां वासितपाषाणो हाराः, न निवासाय
स्वर्गमुखदा आवासाः, न भ्रमणाय चक्षूषि चमत्कर्तुं गच्छन्तो महत्तराः, न च सभोपेतानां
सहस्रशो मनुष्याणां चित्ताहादकः कृतलचनः । को नाम एव विभमाकर्षणमुत्सृज्य
स्थाशुष्केष्वसम्माननदारिद्र्यपूर्णेषु साधनाभ्येषु ग्रामेषु गन्तुमुत्सहेतः ?

पुञ्जवादे मनुष्यो धनसङ्ग्रहस्य यन्त्रम् । केन व्यापारेण कया प्रणत्याऽधिकारिक
धन मे प्रभवेदित्येव तस्योद्देश्यम् । नात्र मनुष्यस्य मूल्यम् । प्रतिदिनं यन्त्रेषु जीवनरत्नं
पहता जनानां कापि मूल्यं निरोक्षितम् ? सौचिकः सूर्या भगवांशो शोचति किमु ?

कारणस्य त्रिगुणत्वम् । एतद् नदं च तस्मै नमः स्वस्तिपेव च तत्
विचरः । अत्र विचरितुं स शीतलन्दनहस्ते स्मः । तत्तद् दृष्ट्वा धनं केवलं
धनस्य मूलम् । धनार्जनस्य च त्विन्द्रः पुत्रः, प्रजिह्वः, पुत्रः, जिह्वः, धर्मः,
न्यायः धर्मः च । निश्चेत्तुं युक्तः । “ना नमः कस्तुतिद्वन्द्वम्” इति विद्वन्मतेन सर्ववन्द्यं
स्त्वित्ये एव प्रहस्य निश्चित्य उत्तमं च वेत्ते । अथ धनम् ! अथ नैर्मलोऽन्व-
क्यस्य सदनस्य तत्तद् दानं, जीवनस्य तत्तद् नमः । परमन्मत्तस्य
नमस्तत्तन्नां न्यायमन्यायः पुनः परमविचार्य यदि तस्मै सपत्न्यस्य स्त्रियं वक्ष्यन् ?
इति न्ततः समयो विहृतो ननन्दः । एव नन्तस्तारापिता, भविष्यन्तः ह्यनर-
नुदा नन्दमुग्रस्मितस्मितमुखारविन्दा बाह्यधनस्य परितोत्तमः, रथ्यासु कर्ण-
पञ्चादधन् प्रयुक्तं, सन्तुष्टं नोषीमरश्चुम्, अङ्गुलिगौरवाः परिपतसारदधराधरा
रदनविदमोष्कसदना निरुगन्धानोदरः नुन्दर्यः कालिदासस्य कृत्य इव मूर्तिनन्तः सत्यं
कमलकोमलकाननाः कल्याण विमलकन्दविद्युत्प्रतापवलिताः सननर्नगरेषु
वैशाल्येषु विचिता नृति वा कर्तुं काप्यन्ते ।

इत्त ! धनेन कीदृशी स्थितिः परिवर्तिता । सर्वे सन् केवलमनेन दृष्टम् । न
केनापि कदापि विचारितमासीद् यद् द्रव्यस्य विनिमयधनस्य ज्ञानजननसे एतदसौ
प्रतिष्ठा भविष्यति । निश्चस्मिन्नास्ति कोऽप्यन्यो यो धनेन न साधयितुं शक्येत ।
अन्यस्य, शोषस्य, व्यभिचारस्य, अज्ञानस्य, चोपस्य, प्रत्याहारस्य, हिंसाया-
श्चापारधित्य धनमेव केवलम् । सत्यम्, वित्तच्छायाया करो निवेकविद्युतो नवति ।
यत्र धर्मो नीतिश्च न स्यात्, सार्धः स्वादिशासो तत्र यदि त्यागस्त्यक्तस्य किनाधर्मम् !
“नीचैरनीचैरतिनीचनोचैः सर्वेष्वप्यर्थननेव साध्यम्” । धन परमेश्वरः ।
वास्तविकः परमेश्वरस्य शुष्कोपानद्विभक्तः क्षताङ्गिहित्वात्ये परिचर्येऽप्यतदेव । सत्यम्,

मा राज्यश्रीरभूत् पुंसः श्रेयस्कामस्य मानदः ।

स्वजनानुत वन्धून् वा न पश्यति ययान्धृक् ॥ भगवते १-१८-६४

इत्त ! दुरयसोऽस्तत्त्वानिवेद्यः । निधुवनराज्यत्यागमदितमदिननिर्मितनसमै-
रानतृप्यैः कर्पमिदमोष्कमित्येवाधर्मम् ।

येनामन्दमरन्दे दलदरचिन्दे दिनान्यनायिपत ।

कुट्टजे रसलु तेने हा । तेनेहा मधुकरेण कथम् ॥ जगन्नाथ ।

अथ प्रतिशतमेकस्यानञितसम्पत्तावधिकारः । व्यापारिपरिषद्भिणौ सगुणौ सधर्मौ परस्पर पेदकौ । एषां मुष्टिमेयमानवानां रक्षायै व्यवस्थायै ये स्वायत्तीकृतपरसम्पदो रक्षणमभिलषन्ति सर्वं क्षिप्यते । एतादृशे नातावरणे कार्यमकुर्वन् धनार्जकधौरागित प्रसन्नाहरको लुब्धको वा चतुरो गण्यन्ते, हन्त ! दस्यतां पुञ्जशब्दे मापदण्डधातुर्यस्य । इतश्च रात्रिन्दिषं कार्यं कुर्वन् 'कृत्ता' इत्युच्यमानोऽपि न फलभाक् । अत्र प्रतिशत नवनवतेद्वानञितसम्पत्ता देव नाधिकार, कथनाज्ञातहस्त एव तामपहरति । परस्य चानञितसम्पत्तौ परधमाधिगतसम्पत्तौ पूर्णाधिकारः ।

एकत समानेऽपरिधाम्यतामिन्द्रियाणि चर्यतामुपयत्यनुपयुज्यमानानि, इतश्चेत रेयामरमुपयोगेन । एतादृशे समाने प्रतिशत नवनवतिर्मनुष्याणां, कठोरधमस्य बाध्यते, एकधानुत्पादकोऽध्राम्यधनारत विभ्रमस्य विषयोपभोगाय सरक्ष्यते । सोऽनीक्षितक्षेत्रोऽसौधधम सर्वेषां धमसधम बुद्धिमतां बुद्धिष्व क्रीत्वा परैषितो धनेनारमान्यतिवर्त्तते, पर तस्य नास्त्यविक्री स्थितिः 'प्रेष्यतोऽधिका वासीत् । पश्य स परास्कन्धी' ।

विषयवर्तोऽप्यतिविषम रसल इति न मृपा वदन्ति विद्वांसः ।

यद्य नकुलद्वेपी सकुलद्वेपी सदा कृपण ॥ सुबधु ।

स्वामिनोऽज्ञातभावेन हृत द्रव्य चौर्यम् । यथा च कृष्केण धमेण तूलमुत्पाद्य प्रतिमुद्र चतुष्प्रस्थ विक्रीतम् । तत्रिंशितानि द्वादश धौतवासासि तेन पट्टत्रिंशन्मुद्राभिः क्रीतानि । विहृतमावलोक्तेनास्वेका मुद्रा तूलस्य, पञ्च कर्मकराणाम्, पञ्च शासनस्य पञ्च प्रबन्धस्य च, पर विंशतिमुद्रा एतादृशेनाज्ञातेन हस्तेनोद्भूता येन न क्षेत्रमवलोकितम्, न निर्माणशालाधमोऽनुभूत, न चालेखन कृतम् । एतच्चौर्यम् । किन्वेतच्चौर्यं व्यापारिकम्, सुसङ्घटितम्, समाजानुमोदितम् । आधुनिकसमाजस्य परिभाषया न स चौरः, अपि तु उद्योगपति, जीवजगतो जीवानु ।

१ वर्कर worker २ पैरासइट Parasite ३ बैरा Bearer ४ परान स्कन्तु
- शोषयितु शीलमस्य 'स्कन्दिर्' गतिशोषणम् 'ताच्छीत्ये णिनि ।

येषां प्राणिबधः क्रीडा नर्म मर्मच्छिदो गिरः ।

कार्यं परोपतापित्वं ते मृत्योरपि मृत्यवः ॥

परमवर्ण्यताम्, नैतत् प्रबुद्धे भारते चलिष्यति । बधमेतदन्याम्भनगर्हत् समवेताः ।

कस्यापि दुष्टस्य वा कोऽपि व्यभान्वितो न भवेत् । अतिक्रमविनाशोऽस्माकमुद्देशम् ।

परितो भोगाङ्गां वीर्यां सङ्घां यन् तन् मुनीनां कङ्कळकूटं रामेन प्रेक्षितम् । शोषणाः शान्तात्मानः पञ्चरात्रे यज्ञबध्नजने ज्ञानविज्ञानविष्करणे प्रयतमाना लोकोन्मूल्ये विप्रस्य भृत्यै भ्रातृन्तः प्रतोचरायणवना मुनयो राक्षसैर्जन्मा, जनस्थाननपि तद्विषयतां वध, मुनिभूमिरपि सा मृत्युगलेवाभूदिति बाल्यादिभूते । परम्, किं सम्भाव्यते यदेतद्वदं कन्दैर्द्वामिवाभूत् ? नहि नहि, अपि तु तेषां नैद्यावतां नीत्या । धनेध्वास्य लघुभ्रान्ता धनीषु मृगुणा रावणेन शोयिताः शान्ताः शान्तिप्रियाः सविनया मुनयः समीक्षिताः समूहयो नृणां, शिष्टावोद्दिमा अवसन्ना दाना मृत्युभ्यः कष्टममि पिण्डमपि दातुं न श्रमवन् । नैते साधनसम्पन्ना दिव्यसिद्धय न्ययस्तेषां वारानसानव्यादृष्टयत्वात् । अपि त्वपास्वजनलक्षणाः प्रजा एव मुनिभ्येन वर्णिताः सुशील्यत्वात् साधुवृत्तत्वात् । रक्षोराजो रावणो दशप्रोवो द्विदशकरध वर्णितः । परं किं सम्भाव्यते यत् कथनं द्विपाद् दशप्रोवो द्विदशकरध भविष्यं घटोति ? वस्तुतस्त्यस्य कर्मणः प्रतीकौ पादौ द्वावेवास्तम्, परं करमादातुं शासकस्य दुर्मददुर्गुणैर्द्विपैतः स विघटिकर, दसेन्द्रियविषयानुपमोक्षुष दद्यान्न इत्यसीत् । अनया सप्रहृष्टोऽस्या शोषणप्रगत्या तु लयन्, मनवान् पीडयन्, सुन्दरराइन् प्रीतोक्त्वा राक्षसमास, अतो रावणवान्ना प्रसिद्धः । तस्य भ्राता मद्यनासम्-हिलानेपुनश्चावको लोकव्यवहारविरको न कल्पादपि किनपि शुभ्रपुनर्दानिकः कुम्भकर्म इति, पक्षे लोकभीषणो विभीषण इति विधत्तः । जनस्थाने वात्य दुर्गौ मुख्यौ शासका-वास्तां सद्यो दूषणध, इमौ गुनावपि सविप्रहानिव पुरुषवद् वर्णितां प्राप्नुयान् प्रावत्यात्त्व । वस्तुतः सः शासनकाठोर्ध्वम्, दूषणध सकलदोषप्रभवम्, जनस्थाने एतयोरेव साम्राज्य-मासीदत एव जनस्थाननरपदां वभार ।

एवमुद्दिमजने षष्ठे दशत्याद्-दसेन्द्रियावि स्या इव (नित्यानि वर्गीकृतानि येन) तस्मात्

१ निशायाम्-अन्यकारे अज्ञानान्धकारे च अस्ति-मझयन्ति ते निशायताः न्तेकमात्रेऽप्याः । २ कुम्भे कपनाथ कियपि फलं सन्तुं शक्नुन्, तथैव तत्र ।

कोशल्यायाम्=कुशलकर्मोपेतार्या राम प्रसूत । स्वकर्मक्षमसर्वेन्द्रिय एव युज्यतम पुमासमु-
त्पादयितु प्रभु । तेन सर्वलोकहितैषिणा त्रैलोक्यरमणाद् राम इत्युपाधि दधता सर्वा मर्यादा
प्रतिष्ठापिता । रमयति विश्व ॥ राम , तस्य स्त्री सीता कृपिप्रतीका राष्ट्रस्याधीविका जनकस्य=
उत्पादकस्य पुत्री । एव स त्रैलोक्यरमण सीतां परिणोय सलक्षण लक्षणम्, विश्वभरणप्रवज
विषयानासक विरक्त ज्येष्ठानुशासनेऽनुरक्त भरतम्, मर्यादाशत्रुणां हनने शत्रुघ्नश्च भ्रातृत्वे
प्रकल्प्य “साधुतपस्त्रिकण्टक विरक्षण राक्षसमुपग्रीयम्” निहत्य सर्वत्रानन्द प्रसारयामास ।
अत एव तस्य पुरी अयोध्या—न केनापि योद्धुं योग्या शक्या वाऽऽसीत् । तस्य राज्य-
मधुनापि स्मयते । यत्र प्रहृष्टमुदितो लोको हृष्ट पुष्ट सुधार्मिक । निरामयो
ह्यरोगश्च दुर्भिक्षमयवर्जित ॥ विविधरूपेण भातुकास्त गायन्त्युपलोक्यन्ति
च । यतस्तस्य जीवनं न स्वस्मै, अपि तु लोकाञ्जनाय । एषैव स्थितिर्हिरण्यकशिपो ।
हिरण्यस्य कशिपु —पर्यङ्को यस्य, यत्र जना जलमय प्रस्तास्तत्र स पमङ्कमपि हिरण्यमय
मकारयत्, एतादृशो दुर्ज्ञेयो भोगाभिलाषी च, य स्तपुत्रायितान् प्रह्लादमानान्^१
जनान् निष्पीड्य स्वैर विचचारोपेक्षितेश्वरान्तर इधरमानी निरङ्कुश प्रचुरैश्वर्य ।
तदा कथं न नरसिंह एवाज्ञातागमनस्त क्षुब्धयामास । प्रह्लाद इत्यभ्यक्त शब्दशयमानस्य
दुःखितसमाजस्योपलक्षणम् ।

एत एव राक्षसा पुरा रक्षका आसन्, आसीच्च तदा सम्मानबोधिका राक्षसपद्मी,
पर सेपा नृशसंगवद्दारेण नैशाचर्या नीत्या च साम्यभोगति गता महत्तरहरिजनक-दवत् ।
एते निशाचरा सामान्यसाधुजनानां शोषणादेव लब्धा रौक्णी कशिपूश्च हिरण्यमान्
कर्तुं प्राभवन् । अस्माक सद्भावनारते निरतनिद्र चे सत्कृतिसम्पन्ने शान्तसन्तुष्टजने
राष्ट्रेऽमितो दिश दृश्यमानान् प्रासादान् परित कञ्चलकूट ततोऽप्यधिकमैक्षिष्यत
यदस्थानाग्रन्यत्रोपयोगो नामनित्यत् । एकस्यां दौवण्या लब्ध्वा शोषक भोगान्तिद्रविण
शासक समुत्तेज मर्यादा प्रतितिष्ठामिषू रामोऽवातरत्, पामधुना परित प्रक्षयमाणान्
दौवणीषु लब्धमितान् सर्वत सरता शोषायमानानां हिरण्यकशिपूयमानानां एवानाद्य कृते
मर्यादा प्रतितिष्ठामिपद्भिर्भवद्भिरेव रामरूपेण नरसिंहरूपेण च भवितव्यम् । यतो हि,

१ रक्षतीति राक्षस, रक्ष शक्ते अयुधन्तात्प्रज्ञायन् । अधुना तु रक्षत्यस्मात् ।

२ अभ्यक्त शब्दायमानात् । हास अभ्यक्ते शब्दे । गुपति द्रुप ।

यस्मिन् यथा वर्त्तते यो मनुष्यस्तस्मिन् यथा वर्त्तितव्यं स धर्मः ।

मायाचारो मायया वारणीयः साध्याचारः साधुना प्रत्युपेयः ॥

नूनं नानामदोन्नद्धाः शान्तिं चेच्छन्त्यसाधवः ।

तेषां हि प्रथमो दण्डः पशूना लघुदो यथा ॥ भागवते १०।६।३१

नैतन् सन्भाष्यते यदेते बोधनेन सत्ये समागमिष्यन्ति ।

भूयोऽपि सिक्तः परसा घृतेन न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति ।

परमेते भ्रान्ताः सनाजेनोच्यनानाः सम्भ्रान्ताः । भ्रान्तानामप्युदयो दयापात्रार्था
सत्यस्यैरेष्टव्य एव । यतः—

रुद्रोऽर्द्धिर्जन्मवि हरिर्द्विविपदो दूरे निदायः शिताः

भोगोन्द्राः प्रपला अपि प्रथमतः पातालमूले स्थिताः ।

लोना पत्रयने सरोजनि लया मन्येऽयिसाधाङ्गिया,

दोनोद्धारपरायणाः कलिजुगे संसूतपाः केवलम् ॥

विह्वारा इतैर्दृष्ट्या न केचि कृत्यत्यभेदात् । एतेऽलङ्घ्यतुर्लभनदविद्याः । एव मद्
एषामपनेयो येताश्रुतिहीनवस्था विहाय प्राकृतिकी दशा भवेतुः । “असतः
श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमाञ्जनम्” । भागवते १०।१०।१३ । एष
उत्सुकोऽनवर । अनुदागुद्रुय देवेषु गतायां श्रिया या स्थितिरैतानामासीत् सैवापा-
स्यारु धर्तिनाम् । “अन्तरापाति हि श्रेयः कार्यसम्पत्तिरुचकम् ।”

भेदभावनायां परकीयभावनानां तीव्रया विपद्यता, तत्त्वानन्त्यानामत्यतराया-
मल्पतनायाव ममताः सम्पद्यता । सर्वेभ्यः सनाता प्रसिरनेदमतस्य पति-
नामस्यादैतभावस्यामिदृशादेव भवति, स एवात्मक साध्यः विरोधपरिहारः,
सर्वत्र समत्वापादनम्, कर्ताध्यनुदया प्रदर्शनरहितं सद्वर्जं कर्म च । शिशुं सेवमाना
माता किं श्रुतान्तु विकारं प्रकलयन्ति ? माता सेवाना आदर्शः । नमोन्मृष्ट पूरा
समुदीयमानः क्रिमुदोपपत्तेः ? यदहं ततोऽपहर्निष्यामि, पश्यामि, प्रेरयिष्यामि, लोकात्
कर्मणि योजयिष्यामि परमेतत्तत्त्व सत्तना स्वतो भवत्येव । परिमर्लं प्रवतन् विविपद्यगैः

किमेतदेव पुण्यम्? एष एव धर्मः? पुण्यानुष्ठायिनामेतदेव ह्यम्? अजित-
तपसामधिगततपःकृतानां तापक्षानामेष एव भावः?

भुज्यन्ते स्वगृहस्थितैरिव सुखं यस्यार्थिभिः सम्पदः

पटौ यस्य भतिः तम.प्रहृतये द्वावेव तौ प्राणितः ।

यस्त्वात्मम्भरिरुन्नतेऽपि विभवे हीनश्च विद्वत्तया

तस्यालेख्यमणेरिषाकृतिवृत्तः सत्ताप्यसत्ता ननु ॥

स्वामिने सम्पत्कूट चिन्वतामनराधिनां मृत्यानामपि धनजिघृक्षयाऽपराधमुद्धोष्य
धनमादाय भविष्यद्बाधानिरोधाय तान् कारायां निरोधयत्सु काय इया, क क्षमा,
क धर्म, कौदार्यम्, क दाक्षिण्यम्, क च सज्जा?

परवादे दशवदनः पररन्ध्रनिरोक्षणे सहस्राक्षः ।

सद्वृत्तवृत्तिहरणे बाहुसहस्राजुर्नो नीचः ॥

धार्मिकम्मन्यानां ग्रन्थेषु, यौस्ते परमात्मवृत्तान् कथयन्ति, द्रव्यं सर्वसद्वृत्तानां
पदम्, अपद पुण्यस्य, निषिद्धमप्राप्त्यनुकम् । द्रव्यवत्तमहमप्राप्य इति भगवानाह ।

“यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्गुण शनैः” । सङ्ग्रह ईश्वरोपासनायाः सर्वथा प्रतिकूलः ।

ऐश्वर्यं विपदां वोजं प्रच्छन्नं ज्ञानवारणम् ।

मुक्तिमार्गागलं दाढ्यं हरिभक्तिव्यपायकम् ॥

प्रज्ञावैवर्त्तपुराण प्र० ख० १६।४८

परं तदपि धार्मिकवृत्तः समाजेनोच्यमाना ईश्वरप्रियाः देवानां प्रियाः परोन्ततिश्रेष्ठेन
शक्त्यानुत्तरा अन्यत्वेन धनमर्जयन्ति । विद्याया दुर्गाविताः प्रासादाः, अधिल्लभ्यजनरोपीनि
श्च यन्यानि सन्तोषस्य चरमिवानरत्नं विदधति सर्वतः । सोद्गोपमवलोक्यन्ते,
मयामिश्रराज्याय गृह्याणां कुङ्कुराणामिव सङ्घर्षस्तान्मयसङ्काय सङ्घर्षकोटं धमते ।
पारस्परिकव्यवहारे स्वल्पमात्रायां यदि स्नेहसहानुभूत्यौ व्यवाहरिष्येताम्, तदा विरुद्धि-
ताम्बन्तराचिरेनपेक्षितं सदृशं कर्मधर्मतायां प्रदर्शयितुं धर्मकोऽवश्यम्, सङ्घर्षधावि
नामविष्यत्, पद्म, क प्रबलमा भोग्यैरस्यदा कठोरत्वाचारैर्षातुक्वपनाभिध एषगृहीत-
रूपनोऽपनैरेवं व्यवहर्त्तुं सज्जः । निषट्प्रिया निहृष्टप्रिया भ्रान्ताः सङ्घोर्षिचाराः

स्वार्थान्धाः स्वामिनो दाहनामादया नीयनाः कृतान्तस्व दूता इव प्रतनुवन्मोदवदस्वर्गवा
वर्गं विनाशोन्मुखाः श्रमिकैः सहमर्यादं दुर्मवदन्ति ।

परक्षतक्षोदविनोदलीलाः खलाश्च काकाश्च यदृच्छयैव ।

पात्रेऽप्यपात्रेऽपि विगर्हणीयां वार्चं च विष्टाश्च समुत्सृजन्ति ॥

ॐ ! कम् ! शुभे ॥

सोमेधरदेवः ।

एकः स एव जीवति हृदयविहो नोऽपि सहृदयो राहुः ।

यो नित्स्थिललपिमकारणनुवरं न विमर्चि दुष्पूरम् ॥

पादाहतं रजोऽपि मूर्खानमपिरोहति, तदा क्व न स्यान्नेतने दुर्निवार्यप्ये समुत्प्लविते
मानवे सङ्घर्षः ? अस्तु, चरित्रमतेषां सायनभिषयनविनाशां वोढृत्या सह समवेतानां घट-
काणां 'वर्णनेतानुमानु' घस्यते, यन्मर्यादा यत्किमुत्तरीकृत्य यन्म, यन्मभ्रमाचारोऽनावरित-
विष्टः क्षारपिम्, भारतीयता यतवाक् सत्येन सह रसतल प्रविर्वरति । नच नये,
दया दूषते, मानो क्षिपते, मौनं चीत्तुस्ते, आर्जव भङ्गते, द्रव्यचर्यं जिह्वेति, प्रावा
रोदिति, दौः प्रफिस्सति, पुखी प्रेक्षति, पार्यं श्रायतेति, पातित्यनुपेयते, सूर्यं उपोपति,
कष्टं कष्टायते, मनीषा शेते, ययः खं जुजुहति । सन्काये माचते त्रिनमाणाव वा
मुष्टिमात्र दित्सन्, ससृतिप्रवापन हनविज्ञानगमोत्रत्यै च प्राधित, सर्वदा
सम्प्राप्तार्थहासि, पर स्वर्णकपोलस्य सर्वस्वं ररक्तुं सर्वदा सज्जः । प्राग्मवसमवित्त-
तनसो यत्न विविधं वाङ्मयुष्मां सुगन्धयुगावचन्तधराः प्राजुपेय वरन्ति । यन तत्र
पैरुनिश्चनर्हस्तानागारस्य कलविष्टतनस्य ससृतिपरिपदो मनोरञ्जनशालया नैश-
भोजनशालयाथ निषेपाभिवप्रकाशानि व्यभिचारदृष्टाणि समेपन्ते, यन स्मेत्वाह-
वदनमिन्द्रियेन्द्रोवरमदाः कृष्णपद्मलास्यो नृत्रार्वास्तिनयोऽज्ज्वलचिद्रुनिद्रुम्बा
नृदुल्लनोरमप्रलम्बाहुलीकास्तनीरननमुस्यो नचोदयोत्तरिहस्तरक्षोत्पलाः स्मिता-
वमतज्योत्स्ता गतवद्वहसाः कलसुर्लक्ष्योत्तरास्तुरन्मिद्रिगुणितानाः सञ्जरोट-
वयनः सल्लक्षितोवतमर्वा नल्लिघनृमालन्दपो विपुल्लिङ्गन्दलीभास्वरः कलपौत-
कटेवर श्रवोन्मिषितयौवना भुषणामाः पादप्रभापरिभूतलङ्घाः धामोदर्यः सुष्ठुर्माः

कुमारो जोषमधुसूतित्वपितृप्रोत्थनञ्जसो जीवन कदर्शयन्ति । यत्र कायशीतांशुसंकाश-
केयाः कपूरस्कटिकेन्दुमुन्दरावदातभ्रूवः प्रवचनधना धनोद्गमधामानोऽहीनभोगा महीन-
भोगास्वर्षपेतसो वपीयांसो धनिनो मकरन्दस्यन्दिनी मधुरस्वारहरीमाकण्डितुकामा
कुमारीकीर्तिशैमुदीकलङ्घनकल्पपङ्कजपितृद्वेष्टरा काककामुखाः प्रकाम प्रेक्षन्ते ।

अनपार्यताम्, एतदपट्टस्यभेकदा राष्ट्रस्य विनाशाय समर्पम् ।

प्रातः समधिगतधनं सार्यं निर्धनः स्वपिति मन्दभाम्यः । यः किं प्रातः पुण्यकर्मां
साक्ष्यं प्रनटपुण्यः ? पुनरपरसप्ताहे चाधिगतपुण्यफलः ? वस्तुतो यावन्ति चट्टकानि
तावत्सो मुद्राः । चतुष्टयलक्षतपति, सहस्रचट्टल सहस्रपति, लक्षचट्टलो लक्षपति,
कोटिचट्टल कोटिपति, तदूर्ध्वं तु चट्टलभ्रमक । पतित्व हि स्वाधीनवस्तुन एव सम्भवति,
छलं हि स्वाधीनं न द्रव्यम्, तस्य गमनशीलत्वात् । अतः कोटिपतिराज्येन
कोटिरुत्पत्तिर्बोद्धव्यः । 'साकशाधिवादित्वात्समाप्तः' ।

मानः कस्य न वल्लभः ? परमुखप्रेक्षित्वदुःस्था स्थितिः

कस्य प्रोतिकरो ? त्रपाभरनतं कस्मै क्षिरो रोचते ?

किन्तु स्वामिनि सावलेपहृदये दासीकृताः शत्रूभिः

सुद्रानद्यतनेश्वरान् घनमदशोवान् निषेवामहे ॥

वस्तुतो ये सु-मुक्त गन्ति-दक्षिं ते सुपञ्चङ्गमन्वा भुगुः ।

अथर्वं यत् संयोगाद् देवत्वम्, कच्छात्त्वत्, दृष्टाक्षरवत् । नल्लुप्तस्य फलम् ।

अथ च पुनरेतदेव कथ्यते, कच्छ उपपद्यते देव फलवेत्, नियममदनादिभिरतदेव प्राप्यते

वेद् द-वप्रभौ दहस्वेततनः पुन्यच, मत्स्य कात्स्व रक्षतले तथा निजातं भवेद् यथा प्रत्यन्तेऽपि

नोपपुंयेतात् । विद्याभनम्, पञ्चुरनम्, हरेचनम्, कलाधनं पुता घनदवाध्यमसीत्,

पानहो । अथ विनिमयसाधनाभि मुद्रितानि कर्मादखण्डानि घनपदव्यवहाराणि ? आद्यधर्मम् ।

अथ विमर्शं शुनग्रन्थिनः पादपाङ्गुलिनिर्गन्धित-तद्वत्तवपरनपीवस्पर्शिनः सार-

सुखरारादौक्यका मुनीदमाना विद्वांसो घनचूडकेत्रिवङ्गदुष्टारदातपिभौ शौवाभितेपु

स्थलेषु निवसन्ति बाधोऽक्षितमाधिता दक्षिणः । एतां राष्ट्रस्य विभूतयो वार्द्धके विविध-

वातिव्यलेभिश्चकारिविन्ना भौषधोपयोपादाभ्यचारयन्तः श्लेष्मतिष्णान्पूर्णिमन्त्रिका

वयाः धापन्ति, परं न कश्चन याचन्ते—

विपमङ्गता अपि युवाः परिभवमित्रा श्रियं न वान्धन्ति ।

न पियन्ति भौममन्त्रः सरजस्कं चातका ह्येते ॥

यत्र वर्तमानो विद्वांस एव संदन्ति, तद् राष्ट्रमुनेष्वर्थात्पादैव यपुष्पाभिता यय-

श्वान्तिता सैक्यैत्यभिता च । इत्यथ बलविनवद्वोऽप्यधस्थितमानवा धनि भयो-

विदितागमा यया सञ्चिद्यन्ते यत्र-तेवाविनागः प्रबन्धन्वास्त्योऽप्यथो भवति ।

तदद्याचारविहीने कथन यानिकोऽस्यास्तदा विनेतव्यी त्यक्षरभरिपत् !

पिगस्तवेया विद्या, धिगपि कविता धिक् सुजनता

वयो रूपं पिग् धिग् धिगपि च कुलं दुर्गन्मताम् ।

असौ जीयादेकः सकलगुणहीनोऽपि-चनवान्,

वहिर्यस्य द्वारि तृणलवसनाः सन्ति गुप्तिनः ॥

कुमार्यो ज्योमभूष तिस्रपितृभोल्यक्षसो जीवनं कदर्ययन्ति । यत्र काशशीतांशुसंकाश-
केनाः कपूरस्कटिकेन्दुसुन्दरावरातभ्रूवः प्रवचनधवा धनोद्दामधामानोऽहीनभोगा महीन-
भोगास्तर्यचेतसो नपीयाधो धनिनो मकरन्दस्यन्दिनी मधुरस्वरलहरीमाकणयितुकामाः
कुमारीकीर्तिकौमुदीकलङ्कनकल्पकलुपितकलेवराः काककामुकाः प्रकामं प्रेक्षन्ते ।

अवधार्यताम्, एतदपकृत्यमेकदा राष्ट्रस्य विनाशाय समर्थम् ।

प्रातः समधिगतधनः साय निर्धनः स्वपिति मन्दनाम्नः । स प्रातः पुण्यकर्मा
सायश्च प्रनष्टपुण्यः ? पुनरपरसप्ताहे चाधिगतपुण्यफलः ? वस्तुतो यावन्ति च्छलानि
तावत्यो मुद्राः । सप्तच्छलश्चतुषतिः, सहस्रच्छलः सहस्रपतिः, लक्षच्छलो लक्षपतिः,
कोटिच्छलः कोटिपतिः, तदूर्ध्वं तु च्छलात्मकः । पतित्व हि स्वाधीनवस्तुन एव सम्भवति,
छल हि स्वाधीन न द्रव्यम्, तस्य गमनशीलत्वात् । अतः कोटिपतिशब्देन
कोटिच्छलपतिर्बोध्यः । 'शाकपाधिवादित्वात्प्रमास' ।

फूटकलारातशिखिरैर्जनधनखिवरैः क्षयक्षपातिमिरैः ।

दिविरैरेव समस्ता प्रस्ता जनता न कालेन ॥ क्षेमेन्द्रः ।

नायैषा सम्मानवाचकत्वं राशसशब्दवत् । राक्षसा एव स्तुतिप्रियाः^१ ।

यन्मोपकारकं यन्न भूषणं यत् प्रकोपमातनुते ।

गुरुणापि तेन कार्यं पदेन किं श्लीपदेनेव ॥ गोवर्धनचार्यः ।

वस्तुत एतान् सत्कृतिविनाशकानां साधुसद्गुणपरिस्थितिपीडितमुनिजनायितानां राज्य
विनाशानां स्वार्थान्धानां देवद्विजदक्षिणापात्रविधवावरकलुषटाकानां पर्यायान् उद्बुद्धा मन्वते,
परिस्थितिपीडिता नापि वक्तुं शक्नुयुः । परिस्थितिपीडितेन केनापि सत्यमेवोचम्—

१ दोष्यतिर्दर्शार्थं, दशैव चामरे देवमेदाः । क्रमशश्चायौपलब्धिः । देवः = क्रीडा-
प्रियः । निदाधरः = निजिगीषुभावापन्नः । अप्सरा = व्यवहारवित्तः । यक्षः = दृति-
प्रियः । रक्षः = स्तुतिप्रियम् । गन्धर्वः = मोदी । किन्नरः = मदसक्तः । पिशाचः =
स्वप्नामिलापी, स्वप्न इत्यज्ञानोपलक्षणम् । गुह्यकः = कामी । सिद्धः = अभ्याहतगतिः ।

२. वैकल्पिकः प्रायशः सर्वगुणोपेतः ।

मानः कस्य न वल्लभः ? परमुखप्रेक्षित्वदु स्या स्थितिः
 कस्य प्रोतिकरी ? त्रपाभरनतं कस्मै शिरो रोचते ?
 किन्तु स्वामिनि सावलेपहृदये दासीकृताः शत्रुभिः
 क्षुद्रानघतनेश्वरान् धनमदक्षोवान् निषेवामहे ॥

बहुरतो ये सु-मुक्तं गन्ति-इति ते सुखलभ्मिन्ना अनुराः ।

अद्यतन धर्म संयोगात् केवलम्, काष्ठालम्बत्, घृणाधरवच्च । नतत्पुण्यस्य फलम् ।
 अथ च पुण्येनैतदेव लभ्यते, कृच्छ्रपञ्चवैतदेव फलमेतत्, निवनयमदमादिभिरेतदेव प्राप्यते
 चेद् दास्यन्तौ इत्येतत्तत्रः पुण्यम्, भस्म चास्य रसातले तथा निखात भवेद् यथा प्रख्यान्तेऽपि
 नोपयुंयेयात् । विद्याधनम्, पशुरनम्, इन्दियनम्, कलाधनं पुनः धनपदवाच्यमासीत्,
 पामहो । अद्य विनिमयसाधनानि मुद्रितानि कर्णदख्खानि धनपदव्यवहायापि ! आश्चर्यम् !

अथ निर्माणं शुभप्रणयिनः पादपाशुरिमर्शपावितपतितरत्नपरमपीवरपापिनः सार-
 स्तक-रादपैकफला मुनीयमाना विद्वांसो धनमृद्धोन्निषत्तुष्टारधातुपयो शौत्वायितेषु
 स्थानेषु निवसन्ति बाह्योऽनुसिमाधिता ददिताः । एतां राष्ट्रस्य विभूतयो बर्द्धके विवि-
 पातिकलैर्मिच्छन्त्यापि विपन्ना नौषधोपयोगानाप्यपारयन्तः श्लेष्मसिद्धिपाणयूनिटमल्लिका
 वयः क्षययन्ति, परं न कश्चन यावन्ते—

विपमङ्गता अपि बुधाः परिभवमिश्रा त्रियं न धाञ्छन्ति ।

न पियन्ति भौममग्भः सरजस्कं चातका ह्येते ॥

यत्र उपस्थितो विद्वांस एव सीदन्ति, तद् राष्ट्रमुन्नेयतीत्याद्यैव खड्गपायिता घय-
 ग्धामिता सैक्यतैलमिता च । इतश्च चर्लचननदयाऽऽर्धशितममना अति मक्तो-
 विदितागमा यथा सन्निवन्ते यजन्तेवाविमानः प्रबन्धम्यासकोऽशको नवर्तः ।
 तदपाचाविहाने कथं यानिकोऽस्यात्यतदा विनेतृदयी स्थितिरभविष्यत् ?

धिगस्तवेपा विद्या, धिगपि कविता धिक् मुजनवा
 वयो रूपं धिग् धिग् धिगपि च कुल दुर्गन्मिताम् ।
 असी जीयादेकः 'सकलगुणक्षीनोऽपि धनवान्',
 ; बहिर्यस्य द्वारि तृणलवसमाः सन्ति गुणिनः ॥

एकस्मिन् भवगहने कृष्णपल्लवलयजालसंज्ञकः ।

कूपः पतन्ति यस्मिन् सुखकुरङ्गा निरालम्बे ॥ क्षेमेन्द्रः ।

एष दीनश्रमिहृदयोर्दुःखत्वां विज्ञाय सन्त्येन मूल्यामेन क्रीता तेन एव महार्घं विक्रीणीते । एष एव मृत्स्वास्थाने सिद्धता नवकलमीस्थाने धीर्णां लौहरलमी-
शुपयुज्य, जीवनरुकेष्वौषधेषु यत्किञ्चिन् समिधुय, शर्करायां विवृणितं दानम्, गोधूम-
चूर्णे तित्तिडीकवीजचूर्णम्, पयसि पानीयमनेकविधं पूर्यान्तरम्, मरिचैर्विष्टम्बचूर्णम्,
हृदिमां पीतां मृक्षम्, घृते वसां तैलान्तराणि च सम्मिश्र्य राष्ट्स्य जनान् कोटिशो धनम्
विनाशयितुं कुशाप्नुवति । एवमनन्त्र स्निग्धः सिद्धश्च तदणकच इव नोचो न
कोटित्वं विजहाति । सहम्, तत्करस्य कुतो धर्मः ।

मातरं पितरं पुत्रं भ्रातरं वा मुह्यन्तमम् ।

लोभाविष्टो नरो हन्ति स्वामिनश्च सहोदरम् ॥

पाम्, क्षिप्तेन राष्ट्रमुनेतुं शक्यते ? गृहं दत्त्वा इज्जालक्षणां मृत्युं सत्यपितुं
शक्यते किम् ? परिवारं परिसमाप्यान्तं सुलभं विधातुमशिल्यते किम् ? भवधारणतम्,
मुनीतैरेव प्रबोध्यतिर्भवति । सम्पत्तेः परमोयोगो यदासम्भवमधिकाधिकं सत्यानां
सप्रमाणां प्रवृत्तचेतसां निश्चिन्तवरायुषां विट्प्रां सृष्ट्या भवति । परमय—

उष्णं निःश्वसिति क्षितिं विलिरति प्रस्तौति न प्रेयसः

प्रीतिं सृष्टिभिरोक्षितुः करतले धत्ते कपोलस्थलीम् ।

वाग्देवी हृदयज्वरेण गुरुणाऽऽक्रान्ता ह्यारौर्ध्वा

नीताऽऽविष्कृतकोपनिष्कृपनृपस्तोत्रपापाप्रताम् ॥

परिधाम्यते पूर्णं पारिश्रमिके दत्ते श्रुतोर्षं तस्मिन् पूर्णोदरे च दानात्पुष्पस्य
उदुपयोगं बोध्यं हर्षितव्यम् । प्रज्वल्यमानावशकः सङ्घमहश्च न भवति, भवति चासुरायाः
समावेऽस्मत्ता । परमय हन्त । अनुना सर्वप्रसिन्नार्थविहारेण जीवन्मुक्ताः सनेत्रान्धाः
सदाष्टमूढा भ्रमनन्विनो मानवाः, कुशकाया यत्तं गतलोचनाः स्वातन्त्र्येण विविधित्य-
भुमस्तस्या विशतवयसः कुब्जाः समात्रस्य चलाः कलश्या सुरानथ निर्मिताः । हन्त ।
कोटिशो विह्वला । शार्धैः प्रतिबोध्यमानैस्त्वस्मादिदं शत्रुमित्रत्वेन गृहीतः ।

निद्राति स्नाति मुदक्ते भ्रमति कचभरं शोपयत्यन्तरास्ते
 दीव्यत्यक्षेन चायं गदितुमवसरो भूय आयाहि याहि ।
 इत्युदण्डे प्रभूणामसकृदधिगतान् वारितान् द्वारि पालै
 पश्यात्मानब्धिकन्ये । सरसिरुहुरुचामन्तरङ्गैरपाङ्गै ॥

परमया धूर्त्ता धर्मस्य वृद्धा केवल नादयन्ति बकभक्ता न च धर्मं चरन्ति । समञ्ज
 समत्वाय गुणकमविभागशयातुर्बर्ण्य चतुरेण सुष्ठम् । परम् शिरो बह्वीकलायते,
 भुजाविपीकायेते, पादौ कलाङ्गयेते, केवलमुदर दानप्रापणकर्म रिक्ताधर्म सुरसाशरोरमिव
 भूगोलार्द्धभागमिव वैधते ।

विवेकहीना समभावोद्गदक सर्वाभ्युदयमहितकर मन्यन्ते । नैतत्ताम्यम्, यत्सर्वे
 परिमार्जनं गृहनिर्माणं वा कुर्यु प्रस्थं वा भक्षयेयुरिति । किन्तु सर्वे स्वस्वयोग्यतानुसारि
 कर्म कुर्वाणा राष्ट्रतो जीवनोपयोगि योग्यतावर्द्धक्य साधन समानं लभेत् ।

धनबलेन स्थापिता सत्ताऽपूर्णं सन्दिग्धा च, पारस्परिकविषयया समत्वे स्थापिता च
 स्थापिनो प्रभावोत्पादिका च । सा यदि प्रतितिष्ठेत्तदा प्रतिदिनं प्रेक्ष्यमाणो धोर पारस्परिक
 सञ्चयौ विनश्येत् । अयायमवधिकार छातेरिको रक्षविकार इव समस्त राष्ट्रं देहमिव
 वृषयति । अनेनार्थविकारेण प्रवृद्धेन रक्षस्य चापेनेव समाजस्य पक्षाघात समजनि,
 हसितेन च रक्षाव्यक्ता । एष समये समये भ्रमिकान् प्रलोभ्य बध्मयति कल्पवृक्षौद्यानानि
 प्रदर्श्य तान् विनाशयति वशीं नादयित्वा कस्तूरीमृगमिव मोहयित्वा हन्ति । परमिदं ज्येय
 यद् यो दरिद्रान् दुग्मयति तस्य दुग्तिर्भवा ।

विश्वास्य मधुरवचनै साधून् ये बध्मयन्ति नम्रतमा ।

तानपि दधासि मात काश्यपि । यातस्तवापि हि विवेक ॥ जगन्नाथ ।

स्वकार्यं विषाद्ययिषु पुञ्जादी नमः, सिद्धौ च राक्षसः । दम्भोऽभिमानश्च
 पुञ्जादस्त्रभावः ।

मत्स्यस्येवाप्सु सदा दम्भस्य ह्यायते गति केन ।

नास्य करो न च पादौ न शिरो दुर्लक्ष्य एवासी ॥ क्षेमेन्द्र ।

एकस्मिन् भवगाहने नृणपट्टयवलयजालसंद्वजः ।

कूपः पतन्ति यस्मिन् मुग्धकुरङ्गा निरालम्बे ॥ हेनेन्द्रः ।

एष दीनश्रमिह्यरुद्धोर्दुस्वस्थां विज्ञानं खत्वेन नृपानेन क्लेशा तेन एव महार्घं
विक्रीयते । एष एव नृपानेन विद्वत्ता नववल्गुस्थाने धीर्गो लौहवल्गु-
मुसुग्धं प्रतनत्तुं यौवनेषु यद्विद्वत्सनेधुः, यद्वरायां विवर्जितं दानम्, बोधम्-
बर्णे विनिर्दिष्टव्योत्रचूर्णम्, पक्षि पावोयनेद्विषं चूर्णान्तरम्, मन्त्रिणविद्वत्तन्त्रम्,
इष्टिमां पीतां वृक्षम्, पृथे वसां तेलान्तरम् च सम्मिश्र्य तत्पुत्र जनम् कौटिल्यो वक्ष्य
विनायपितुं कुम्भापुत्रिः । एवमनन्दं स्निग्धं विषयं तदनकच इव बोधो न
कौटिल्यं विवहाति । पलम्, सत्करस्य कुतो धर्मः ।

मातरं पितरं पुत्रं भ्रातरं वा मुह्यतनम् ।

लोभाविष्टो नरो हन्ति स्वामिनश्च सहोदरम् ॥

पाम्, चिन्तेन रात्रमुनेषुं शयते ? नृहं दृष्ट्वा इष्टालक्षणां मूचं तन्मित्रं
यक्षते हिम् ! परिवारं परिव्रज्यान्मं मुल्यं विद्यामुपनिष्यते हिम् ! भवनापतम्,
मुनीवैरेव प्रबोध्यतिर्भवति । सम्मतेः परमोपयोगो यदसम्भवमधिकाधिकं स्वयन्तां
सम्मानां प्रवचनेषुं विद्विष्यत्वरानुतां विद्वतां सख्या भवति । परमप—

उष्णं निःश्वसिति श्रितं विलिखति प्रस्तौति न प्रेयसः

प्रीतिं सृष्टिभिराशितुः करतले धत्ते ऋषोल्बलीम् ।

वाग्देवो हृदयज्वरेण गुरुणाऽऽक्रान्ता हवारापृथा

नीताऽऽविष्कृतकोपनिष्कृपनृपस्तोत्रपापायताम् ॥

परिधम्यते पूर्वं परिश्रमिके दत्ते अतोयं तस्मिन् पुनोदरे च शनान्तरं
सदुपयोगं बोद्धुं हस्तिप्यम् । द्रव्यस्वभावदृष्टः सङ्ग्रहश्च न भवति, नवति चाप्रान्तम्
पमात्रेऽस्त्यता । पामय हन्त ! अनुता संश्रद्धिवाच्येद्विद्यरेण धोवन्मृताः सनेयान्तरम्
सर्वस्मृता भवनन्विनो मानसाः, कुत्रचाना यत्तंयत्तलोचनाः रात्रिनेत्य विविधित्य-
भुजस्त्वया विरतयशः कुत्राः समारस सतः कृतम् सुखमय निमिताः । हन्त !
कोट्यो विद्वन्ना । शालीः प्रतिबोध्यमानैस्त्वत्प्रमिष्टप्रमिष्टत्वेन गृहीतः ।

शरणे समुज्ज्वले स्वपन् प्रतिबुद्धेन परेण बोधितः ।

तरुणः खलु जातविभ्रमः स्वयमुग्रं भुजगं जिघृक्षति ॥ अश्वपोषः ।

विशालश्वाकाशस्याधो द्योतमानानां चन्द्रतारकाणां प्रकाशम्, शीतं मन्दं प्रवहतो वायोः शान्तसुष्ठुमानन्दं विमुच्य कः कारयिते गृहकोणे विद्युद्ब्यजनवाते वासोत्साभिस्त्रोक्तः । इन्तः । सस्य आनन्द एवायं पुञ्जवात्पूरे प्रौढः । मन्त्रदोषु वेद्यासु बानरभस्त्रकप्रदर्शनेषु निपतन्ति मानवा आनन्दं लिप्सवो दुष्काले बुभुक्षिता अन्नकरोषिव । अहो ! आनन्दाभासे प्रतिरज्ज्वायामेवानन्दमनुभूयति सुरः । अस्माकं जीवने कायोत्साहः ? वयं स्वसिमो बभौ हि प्राणा न निर्यान्ति । परं जीवने जीवनं नास्ति, उत्साहस्य मानसशक्तेरभावः । कलाहीनं नवीनताविहीनं भवनारहितं रौक्ष्यमानं जीवनम् । किमेतदपि जीवनम् ?

वयमार्याः । आर्यसंस्कृतेः प्रसाराय वयमेवाधिकृताः । अस्माभिर्बहवो भोगा भुक्ता परं तृष्णाधुनापि युवतिरेव ।

या दुस्यजा दुर्मतिभिर्जीयतो या न जीर्यति ।

ता तृष्णा दुःखनिनहा शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥ भागवते १।११।१६

अवधार्यताम्, अस्माकं माहुरम्य त्यागेनैव नतु भोगेन । जठरं को न विभति केवलम् । भोगैर्विपद्या न शमिषु पार्यन्ते । अथ च यदि वयं भोगाच्च त्यास्यामस्तथा भोगा अस्मान् विहाय प्रजिघ्रन्ति । यदि वयं प्रज्वालं क्षेमं न साधयिष्यामस्तथा प्रजा स्वतस्तद् साधयिष्यन्ति । तदा अस्माकं वैशिष्ट्यम्, कः च सम्मानः, किञ्च गरीयसोऽध्ययनस्य फलम् ?

याते मय्यचिरान्निदाधमिहिरज्वालाशते शुष्कतां

गन्ता कं प्रति पान्थसन्ततिरियं सन्तापमालाकुला ।

एवं यस्य निरन्तराधिपटलैर्नित्यं वपुः क्षीयते

धन्यं जीवनमस्य मार्गसरसो धिग् वारिधीनां जनु ॥

एष धन्यस्यादप्युक्ता । भूमण्डले बहूनि राष्ट्रानि आचरितानि । इरीचयौ आतयोऽ-

पुनस्तज्ञाना जाताः । अस्माभिरपि जागरितव्यम्, योक्तव्यञ्च विधेयं भूत्वं । सततो-
पकारनिरतयनसो भवादशा एवादो महत् कर्म कर्तुं क्षमाः ।

उद्धृती भवति कस्य वा भुवः श्रीचराहमपहाय योग्यता । माधः ।

एषा च सत्संस्कारस्य दिव्यधारा समस्तजीवने सततं प्रवहेत् । प्रवहणञ्चैकस्यां
दिशि । पर्वते पतित पानीयं सतमार्गेभ्यः प्रवहन् सति निर्मातुं प्रभवेत् । तदेव
चैकस्यां दिशि प्रवहन् स्रोतो भूत्वा धारारूपेण नदीरूपेण परिणम्य समुद्रमिव स्रोदेष्टुं
प्राप्तुं समर्थम् । एषैव स्थितिः सत्कारणाम् । जलं हि निम्ने सर्वतः सत्त्वा द्रिष्टुं स्वयति ।
प्रथमतो भूमेः पोषणं निरुन्धदुर्बराद्याणि हासयति, द्वितीयादौ चैकप्रीभूत विपाकवायुं
प्रसारयन् मराकान् प्रकानमुत्पाद्य विषमज्वरमापादयति । अतो लोकादिताय जलदितय
च तस्य सर्वस्मिन् भूभागे विभाजनमेव वरम् । एवमेव इत्यस्य । इयं हि 'दु गती'
धातोर्भ्युत्पन्नम्, गतिशीलता तस्य प्रज्ञानं धर्मः । निरोपे व्यापत् ।

विविधव्याजहतलोकधनोऽनुत्पादकः स्वतो द्वियमनुभूय, चोरयमाणः परैर्दृष्टो
हासमिषेण द्विय दोष परिहरन्निव स्वाभित्तिं निरुत्तुर्वन् स्वत्वं त्यजेत् । वस्तुतोऽ-
परिभ्राम्यत उपभोगेऽधिकार एव कथम् ? कुमुदिताः पशिनः स्वयमाहाराय यतन्ते ।
शुभार्तस्य शुच्छान्तिः स्वयं भोजनेनैव । कर्तव्यं सर्वत्र फलभाक् ।

समाजो हि सहयोगिनां सहकर्मिणां पारस्परिकभावपूर्णः सामञ्जस्ये सामास्ये च
समाधितः समुदायः । परमेषु तस्मिन् केचनसहकर्माणोऽनुत्पाद्यापि सर्वाधिकं विभ्रम-
जीविनश्च भूता व्यपेतलज्जाः । एतान्तरेण न कापि समाजे शक्तिः । यथा च—

(१) न्यासोपजीवी—इत्यापि सतमुद्रं भूय क्षेत्रं पृष्ठं पद्मादि वा न्यस्य
आवश्यक्तार्पाडिताय पद्मान्मुद्रां ददाति न्यासधराः । एतस्य कुर्वीदं दद्य मुद्राः
प्रतिमासम् । न्यासवर्त्तनावधिमासप्रथम् । परिस्थितिपीडितो न्यासकरोऽवधिमध्ये
कथमपि न्यास प्रत्यावर्त्तयितुं न समर्थः । न्यासधरास्तु कुर्वीदवकादृषा यथा प्रतिभजनोपदे,
द्वाराय तथैव हासः । अत एव स महाजनः । जनो दश्यमानोऽप्यजनः—जनेतः—
मानरोचितगुणरहितः, सोऽपि न सामान्योऽपि नु महान् । अयमा 'अज गतिजेनययोः—
अजनः । न्यासेन सह न्यासपरत्वात्मात्मसात्करणे सत्पृष्ठः सञ्जय, सोऽपि महान् ।

दत्तुमाजस्तु सम्पन्नेभ्योऽपहरति, पत्न्य तु वराकान्क्रियमान्, अमप्रमाणान्, भग्नमनसो विपण्णान्, खिन्नान् सन्तानवसादयति । अत एव प्राकृतैः स 'वानू'^१, 'लाछा'^२ आदिपदैः सम्बोध्यते ।

(२) व्यसनोपजीवी—परेषां व्यसनेन कष्टेन विपत्त्या यो लाभान्वितो भवति स । यथा बाकोलो वैद्यश्च । ज्ञानं हि परेषां शर्मणे । यो ज्ञानं विक्रीणानो लोकस्य विपत्त्या लाभान्वितो बुभूषति स किं ज्ञानोपासकः ? “ते हित्वा काश्चन राक्षि पांशुराशिमुपासते” । स तु व्यापारी भगवत् आशिष आशासानो भक्तः । “न स भक्त स वै वणिक्” । य. शूळ-मातोप्यमाणात् पञ्चसहस्रं मुमूर्षौश्च शतं विपृश्नति विचार्यतां स कीदृशः ? ‘यो मर्तु-कामादपि हर्तुं काम’ ।

नार्थार्थं नापि कामार्थमथ भूतदया प्रति ।

वर्त्तते यच्चिकित्साया स सर्वमतिवर्त्तते ॥ चरकः ।

एतादृशास्तु राष्ट्रस्य गौरवम् । परमयः कियन्तस्तदृष्टा । अद्यत्वे चिकित्सका प्रथमं दृष्टव्यं न हि, तस्य धनं विदुः श्रुते, स जीवतु त्रिमता वा ।

(३) शुल्कोपजीवी—पट्टशुल्केन शकटशुल्केन जवचाहनशुल्केन जीवति, दत्तं सहस्रं वा मानवानां नियतघेतनेन विवोजय यन्त्रादीनां परिवालनेन वार्धगुपार्जयति स ।

(४) पटक —केवलं वार्त्तावित्तं उभयोपभोष्य उभयार्थहरश्च ।

(५) समानशीलस्य धनिनो पोष्यपुत्रोऽपहृतहिरण्यस्य परिरक्षको जगुदौ च ।

अथ वयं सर्वाभ्युदयाय कृतसङ्कल्पाः समवेताः । सर्वेण^१ सर्वस्मै^२ सर्वस्मात्^३ सर्वस्य^४ सर्वस्मि^५ जमि उदयः—सर्वाभ्युदयः । सर्वेषामेकाग्रिभ्यनुदये न सन्तुलनं सम्भाव्यते, अतः समन्तादुदयोऽस्माकमभीष्टः । स चापिदैविकोनामाधिभौतिकीनामाध्यात्मिकीनाञ्च क्षत्तीना-ममितो दिशमुत्कर्षः स्वभावबाधिकाया बाधाया अपनयनश्च । सोऽयं दक्षिणभक्तिदोषानु-

१ वा=सहित, उर्ध्वका उपसर्गः । यथा वा कायदा वा इज्जत । वू=मन्थः । चदनं सुशब्दः यथा । दुर्गन्धार्यः सम्यग्व्यवहारम् केवलं वू कइनेकी प्रणाली है ।
२ ला=ला इत्यनुकरणम् सर्वदा ‘ला’ ‘ला’ इति करोति स । ला आदाने । अथवा परेषां धनं दृष्ट्वा यस्य मुखाल्मलाश्च्योतन्ति सः । ३ जनेन । ४ प्राणिने । ५ उपायात् ।
६ विषयः । ७ काले परिस्थाने च ।

पतिपुत्रादौत्तुमुज्जमत्रो, अभिमाननीपोप्यप्रोप्यकृन्तामृतस्वन्दी जगद्विदंसेद-
 च्छेदो पयभूतभूतवर्णानुष्मो पुत्रादहृष्टरक्षतणुरहर्षवर्षी भवभयातिविनिनामृतवर्षी
 सनदर्शज्वरकरो भान्तगुदागहनोदगूहितधान्तविषयी कलहसदृशद्युरो नायामत-
 निजगदगदहृष्टः सत्यनहर्षा प्रियोऽभयहृष्टो मन्दोद्वर्तमानितृद्विपद जगच्छर्मरक्षां
 आनन्दयामा दिदेशकालकलननिषेऽः क्षरितातद्व उद्वृहेनरुचाम्, सकलकर्मफलोनलम्भः
 रुक्कषयनोऽनुरातन् सौनत्रिजिवनिष्ठगैरुसिप्रोप्यसननशोतमुनगमुपभिसमोः पुत्र-
 वादपुत्रोदुपसारसिधिरौ सुसिन्धुलहरीनिर्मलः कीलितभाग्यरत्नीलक विपन्नगुः
 सनलतागपेतामनराजनप्रथितप्रवीणः प्रायशो विध्वजनवाहनसाऽनुमोदितो नहीमहितो
 विध्वस्य विस्फोटकनयनोऽभ्येयजनचिन्तानिनिष्ठानान्यो वदान्यमान्यो वाद-
 नून्योऽस्माक प्राक्तन आदयः परस्परं फलवपेक्षः सनातः। सर्वोऽय उपरमे
 न पञाय न सम्प्रदायाय अत्र नु लोचन। 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'यो वै भूना
 तस्तुखम्'। स चाय परस्परमभेदभावोऽद्वैते सद्वर्ग्ये च प्रतिष्ठितः। समतोऽप्यपनेचार्यः।
 सम्प्रह् पदनम्—प्राप्तिः (पद गतौ, या प्राप्तिः समेभ्यः सम्यग् रूपेण प्रायते सैव)
 पश्यति, या च विधिद्वारेण (केवळं विधिद्वारेण प्राप्तिः) सा विपत्तिः। यनेको
 निरोदति बवनवतिथ नराणां यते विरोदति सा विपत्तिः पुत्रादस्य फलम्।

अस्यलुटानय शुद्धेन युतेन वनता व्यर्थम्। अयामित्यत्र शान्तेः पर संयोजनं
 सङ्ग्रामस्य, भूमिश्च धर्मस्य वर्णनं म्यभिचारस्य दत्तते, एवं कृते न सफलता। सङ्ग्रामेन
 प्रदतनाने सफलता सत्सुरतिष्ठते पत्नयो इवाऽयम्। अनुष्ठानस्य समन्वयेन। समन्वयो
 मानसमाशो न सङ्घर्षः। इवानां दीपता दीपानाम्प इत्येता समन्वययो, वयोद्वै-
 सतर्तिथः। एष नासाध्यो न चानामात्रेव साध्यः, परं प्रसन्नताप्योऽन्यानिलुठेव
 एव। समन्वित् एष्टे भूमण्डले जीवनचरं च समता अनुशासनेन सह व्यवस्थितेव।
 यदोत्सादस्य भाक्ता, अवररक्षतानुसारि वितरपथानाङ्गुरेऽस्मन्। उत्सादनस्य
 प्रथमं फलमावसक्तयुक्तिः। द्वितीयं वासनाभूतिरसार्जवम्। इतानां नूनं वत्तन
 केवळं वसनाभूते वसनाभाव च निर्मीयन्ते यत्र एष्टस्य धनो व्यर्थः।

वस्तुतो विनिवक्तव्यं यत् परस्परानि दौर्गन्धे च प्रतिष्ठितम्। दुर्गन्धः समावस्य तात्पर्यं
 दौर्गन्धालोचनमिदं आमतोमे नानावश्यकवस्तुनि निर्माणं समावस्य यच्चिरव्यर्थम्

सिद्धान्ततः सर्वाभ्युदयस्यान्तिमा स्थितिः शासनान्नोभूः । नेयमराजकृताञ्चना
 विगृह्यस्तत्रा, अपि तु सर्वेच्छया शानुसन्धानं परस्परोदये समाधिता व्यवस्थापना ।
 स्वास्थ्यापादनं चिकित्साविषयः, एवमनुशासनव्यवस्थापनं शासनस्य विषयः । तस्मिन्
 व्यवस्थिते न शासनस्यावश्यकता स्वस्थाय चिकित्सकस्यैव । वसन्ते पुराणपत्राणीव
 शासनं स्वयमपेयात् । चिकित्सकश्च स एवाभिमतो करोयान् यस्माच्चिकित्सिते
 पुनः रोगान्निर्माणं एव न स्यात् । 'प्रयोगः शमयेद् व्याधिम्', 'शमयेद् यो न कोपयेत्' ।
 एवमेव शासनमपि तदेव वर्तयदन्तर शासनपद्धतेरावश्यकतैव न स्यात् । नागरिक-
 जीवने च विशेषः समागच्छेद् यदन्तरेण शासनं शासनानुसारं कार्यं प्रवर्धयेत् । पुत्रादप्राप्ते-
 नातृद्विषो लोकः परस्परमाद् विभेति न च परस्परस्मिन् विध्वंस्यति, तदा भयापनोदनात्
 शासनस्यावश्यकता, तद्वत् चेन्मानवमानसेभ्यः पलाय्येत, परस्परं विधास्यथ जायेत तदा
 शासनस्य आवश्यकता ।

पुञ्जवादस्य नवीना रचनास्तत्स्थाने समागताः, शुन्धशाला, सज्जस्यामा भक्ष्यशाला, पशु-
पालनम्, महाविद्यालयदद्यावासाश्च केवलं घनेन विविनेयानि जातानि, यदाऽतिथीनां
सेवा, समाजस्य व्यवस्था, गवां संरक्षणम्, लोकहितसाधकानां साधूनां उपमां च विलुप्ता
तदा तत्पूर्व्यं आश्रमाः सत्राणि मोक्षालायां स्थापितानि । परं तान्यपि लुप्तिनुकामः
परिग्रही क्वचित्तुच्छं दातुं प्रतिज्ञाय प्रविश्य अंशयति । दुष्टदाम्भिकः शिष्टवैशमायोज्यैव
दुष्टतां कृत् शक्तः । अनायासं जिह्वीर्षुषा चन्दनकिन्दुमालामाशिना नित्यं गङ्गा-
स्नानिना प्रदर्शनवता च भवितुमेष ।

आमध्याह्नं नदीवासः समाजे देवतार्चनम् ।

सर्वतं शुचिवेशश्चेत्येतद्दम्भस्य जीयितम् ॥ नीलकण्ठः ।

अथ च प्राप्ताधिष्ठाते हि स्वार्थपरो ज्ञानविज्ञानयोर्यर्मस्य संस्कृतेष्वोपयोगं स्वस्य,
केवलं स्वस्य व्यापार्य करोति । पापो हि स्पृष्टेनापि पातयति । पुञ्जवादस्यातिशय-
सम्पन्नैषास्मात्समागतानां दोषानां फलमस्माभिर्भुज्यते, पूर्वजन्मनः कर्मणां फलमिव, भोक्तृ
चानिर्गुणः, परं भविष्यज्जीवनमावधानताऽऽधेयः, यतस्तस्य सम्पर्कः कापि ॥ तिष्ठेत् ।

इदं मधुमुखं विपं हरति जीयितं वत्सुणाद्

अपच्यमिदमाशितं व्यथयते विपाके वपुः ।

इदं कृष्णगणानृतं विलमघो विधत्ते क्षुणाद्

यदत्र मलिनोल्बणैर्द्रविणमर्जितं कर्मभिः ॥ बगद्वरः ।

अधुना वयं सर्वस्य न केवलं बहुजनस्यार्थसिद्धयेऽस्माच्छ्रमायां पश्यति प्रतिष्ठयदितुं
समर्थताः । उदाहरणस्य स्वत्वस्थानम्, अतिश्रान्ततः सत्तनियस्वरूपशास्त्राध्वनिम् ।
वस्तुन्युत्पादयितुः, छेपे वपुः स्नानिता, तदनन्तरं सनायस्य । पुञ्जवादस्य प्रिया पुत्री
प्रतिद्वन्द्विता, प्रतिस्पर्धा, प्रतिप्रेषिता कापि न भवेत्, परं परिस्पर्शा भवेत् । येन मनवस्य
पोषा नैतिकव्यवस्था समेवेत् तदेवोपयोगि नन्देत् । मानममून्यं सर्वांगिद्यायै स्वात् ।
यनय विनिनयस्य सामान्यं साधनम् । वस्तुनाय सुलभता । सर्वत्र जीवनोपयोगिवस्तूनां
सम्प्राप्तौ शक्तिरूपता वस्तुनाय निवेद्यः स्वात् । मानवस्य शारीरबौद्धिकजीनां
समुदायो पोषणम्, तस्य च विकृतिः स्वात् । यत्र न धनी न दक्षिणो न शोष्यो न शोष्यो न

स्वैरो न च स्वैरिणी । अत्र यथाशक्ति श्रमो यथाव्ययमादान न्यायोपेतश्च वितरणम् । पुत्रवादेन शक्तेर्दुरुपयोगो लघुविना भय प्रष्टाचार इति सम्प्रहो भिक्षा चौर्यमिति च निदोषा समाजशरीरे व्याप्ता, एतत्सन्निपातहरणाय सर्वाभ्युदयश्च द्रोदय ।

सबभूतहिते रता सर्वाभ्युदयिनश्चानुत्तिक्ता कम कुर्वीरन् । अनुत्सेक खलु विक्रमालङ्कार । अद्वेष्टा सर्वभूताना मैत्र करुण एव च ।

निर्ममो निरहङ्कार समदुःखसुख क्षमी ॥ श्रोमद्भगवद्गीतायाम्

कर्तॄणा मन सरस्सु काप्यसद्विचारपट्व न तिष्ठेत्, यद् वाङ्ममानास्पर्शैरुदियात् । वय परस्पर साहाय्यमाचरिष्याम, पर न कमप्याश्रयिष्याम । प्रतिदिन मैत्रीद्वरया विश्वमेव मित्र करिष्याम । निष्कामे गुह्यतमे कमणि कर्तुं केवल कर्म, फलञ्च न कस्याश्चिद् व्यक्तैरपि तु व्यापकस्याव्यक्तभगवत् । 'कृपया फलहतव । अत एव जनताजनादनाय स्वेच्छया कर्मफलापणमस्याक्त सर्वाभ्युदयाधनीते प्रमुख सिद्धान्त । यद्यपि पुत्रवादेनैव दोष उदपादि यत्प्राम विना न कोऽपि कर्मणि प्रवर्तते 'स्वार्थ विना भ'दोऽपि न प्रवर्तते' । यत् कर्मण आव्यक्तिमको भावना व्यपगता, फलमर्थस्यानर्थ कारिणो भावना च समागता । पर स्वार्थभाव पराना भावो न बुद्धिबीजिना मानवानाम् । अस्माक सिद्धान्त परजीवनाय जीवनम्, परान् भोजयितु भोजनम्, 'यज्ञशिष्टाशिन सन्तो गुह्यन्ते सबक्तिर्नै' । यज्ञश्च 'यज्ञ वेद्यपूजासङ्गतिकरणदानेषु' । केवलार्थो भवति केवलाबी ।

केनलेन ह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुक ।

याति जीवोऽन्धतामिह चरम तमस पदम् ॥ भागवते १।१०।३३ ।

न ह्यस्मात् पापात् पापीयोऽस्ति यत् प्रतिवेशिनि बुभुक्षिते भक्षणम् । प्रतिवेशिनो मनुष्यानेव नहि पशुपक्षिणो नित्यसहयोगिनोऽथत्यतुलसीप्रभृतौनपि जलमपाययित्वा जलपान दुष्करम् । 'पातु न प्रथम व्यवस्यति जल युष्मास्वपीतेषु या' । तेषा विश्वेनाभेदरूपता ।

भृगोर्भूतस्तरमकासुसरीसृपूत्रगमभिक्षा ।

आत्मन पुत्रवत् परयेत्तरेषामन्तर क्रियत् ॥ भागवते ७।१।१९ ।

परान्प्यापयितुमप्यवनम् दुर्बलाना रक्षायै बलम् यत्र ज्ञानश्च राष्ट्राय । बहवो वैज्ञानिका बोधका कृपयो महर्षयो दाशनिका सिद्धान्तप्रशारश्च परेषा हिताय लोकस्य हिताय कणान्

आध्या दृष्टकोटरे जीवन् यापयित्वापि लोकाय स्तनानि ददुः । विश्वविश्रुतो वेशाकरणो
महामुनिः पाणिनिः, कतुष्कमिनीकर्णमूपणानमानकीर्तिविश्वस्यैकमान दार्शनिको व्यासः,
अतर्कितजगन्मृदितमलमायोऽद्वैतविचारकः शङ्करश्च कर्मस्य साधयितुं पर्यधाम्यन् ?
राणः प्रतापः कस्मै सुखाय घासमघमन् ? महामनाः कस्मै लामाय विश्वविद्यालय
निर्माति ? महात्मा यस्य प्रान्तस्य राजा भवितुं दण्डापातान् सहते ? किं मोहन
भोग भोक्तुं यथाहारं कुरुते यथाहरः ? सहस्रशो बलिवीरा हुतात्मानः कस्मै लामाय
हसन्तः शूलमारोहन्ति ? एतन् प्रोजतमानवस्य पुरुषोत्तमस्य वैशिष्ट्यम् । स स्वार्थं
परित्यज्य ध्यापकायां वतते, अनुक्त एवास्ति लोभमानन्दयति च ।

किं चन्द्रमाः प्रत्युपकारलिप्सया करोति गोभिः कुमुदावबोधनम् ।

स्वभाव एवोत्तमचेतसा सता परोपकारव्यसनं हि जीवितम् ॥

एवाऽस्माकं परम्परा । खेलायामानन्दमनुभवन् बालो व्यायामगुणैर्बुज्यत एव
निरभिलाषोऽपि । परमद्य स स्वभावो नाबवेभ्योऽपगतः । अत एवैष्वधमताऽऽविष्टा ।
यन् नदीप्रवाहवत्तिष्ठत् । नदी प्रतिक्षण निम्नाभिमुखा । एव धनमपि निम्नानामाव-
न्यध्वातमनुभवतामभिमुख भवेत् । “इतिन् भर कौन्तेय । ना प्रयच्छेद्वरे धनम् ।”
परमधुता मनुष्यस्वभावे विकृतिरमादिता पुञ्जवादेव ।

मानवस्त्रिगुणः । (१) विवेकी, (२) भाषावान् (३) अङ्गुष्ठवाध । एतादृशो
योभ्यता प्रक्षणः सृष्टी नान्यरिमन्नुत्पादनेऽस्ति । विवेकेन स सदस्यश्च विचारयति, मानवे-
तरान् वशयति हसति रोदति च । भाषया स्वाभिप्रायजनान् भावयित्वा स्वमतं प्रसारयति,
भाषां लिपिबद्धां कृत्वा स्वविचारं विश्वमिन् कल्यद्वाये च प्रसारयति । अङ्गुष्ठश्च तस्य
कलाया प्रत्यायकः । मानवाङ्गुष्ठः सर्वा अङ्गुलीः स्पृशति । येन स विशालोऽस्ति कर्तुं
समर्थः । शरीरेऽङ्गुष्ठो वक्षसो ज्योतिर्दिशन्त्यायः प्रतिनिधिः । विश्वस्य भयंदास्थापने
महागः प्रतिनिधेर्मानवस्यैव सामर्थ्यम् । “दावानललोपविगत्तिमन्योऽरप्सस्य हस्तं
जलदात् प्रभुः कः” परमस्य मानवः पुञ्जवादेन प्रक्षीणसामर्थ्यः । परिस्थितेर्निदन्तापि पुरुषो
दीर्घत्यात् परिस्थितिप्रतिरूपोऽभूत् । परनेया विहृतिरिष्टम्, अत्मनमिन्त्यु नेष्यति ।

यथा कथनं चोः प्रतिदिनं प्रतिवेदिनो गृहादन् धनं वसथापरहरन् शनैर्दर्शनं सुगुप्त
व्यवहृतया प्रक्रियया शरदा शतं व्यतिपापयति, सन्ततिनम्पर्यैव श्वहारोऽनुवश

स्वरी न च स्वैरिणी । अत्र यथाशक्ति धर्मो यथाव्ययमादानं न्यायोपेतश्च वितरणम् ।
पुत्रवादेन शक्तेर्दुरूपयोगो लघुदिना भय मध्यचार इति, सत्प्रहो मित्रा चौयमिति च
त्रिदोषा समाजशरीरे व्याप्ता, एतत्सन्निपातहरणाय सर्वाभ्युदयध्वजोदय ।

सबभूतहिते रता सर्वाभ्युदयिनश्चास्तुषिका कम कुर्वीरन् । अनुत्सेक खलु
विक्रमालङ्कार । अद्वेष्टा सर्वभूताना मेन करुण एव च ।

निर्ममो निरहङ्कार समदुःखसुर क्षमी ॥ श्रीमद्भगवद्गीतायाम्

कत णा मनःसरस्तु क्वाप्यसद्विचारपट्ट न तिष्ठेत्, यद् बाह्यमानास्पर्शरुदिमात् । य
परस्पर साहाय्यमाचरिष्याम, पर न कमप्याश्रयिष्याम । प्रतिदिन मैत्रीवृथा
विद्वमेव मित्र करिष्याम । निष्काशे गुह्यमेव कमणि कर्तुं केवल कर्म, फलप्र न
कस्याश्चिद् व्यकोरमि तु व्यापकस्याव्यकमभवत् । ‘कृपया फलहृतव ।’ अत एव
जनताजनादनाय स्वेच्छया कर्मफलप्रणमस्माक सर्वाभ्युदयार्थनीचे प्रमुख सिद्धान्त ।
यद्यपि पुत्रवादेनैव दोष उदपादि यत्प्रलभ विना न कोऽपि कर्मणि प्रवर्तते “स्वार्थं विना
मदोऽपि न प्रवर्तते” । यत् कर्मण आध्यात्मिको भावना व्यपगता, केवलमर्थस्यानर्थ
कारिणी भावना च समागता । पर स्वार्थभाव पश्यता भावो न बुद्धिजीविना मानवानाम् ।
अस्माक सिद्धान्त परजीवनाय जीवनम्, परान् भोजयितुं भोजनम्, ‘यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो
मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः’ । यज्ञश्च ‘यज्ञ देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु । केवलाद्यो भवति केवलादौ ।

केवलेन ह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुक ।

याति जीवोऽन्धतामिस्र चरम तमस पदम् ॥ भागवते ३।३.०।३३ ।

॥ अस्मात् पापात् पापीवोऽस्ति यत् प्रतिवेशिनि बुभुक्षिते भक्षणम् । प्रतिवेशिवो
भक्ष्यमानेव नहि पशुपक्षिणो नित्यसहयोगिनोऽध्वत्यतुलसीप्रभृतीनिपि जलमपाययित्वा जलपान
शुक्रम् । पातु न प्रथम व्यवस्थति जल युष्मास्वपीतेषु या” । सैषा विधेनामेदरूपता ।

मृगोष्ट्रखरमर्कास्त्रुसरीसृपसगमक्षिका ।

आत्मन पुत्रवत् पश्येत्तरेषामन्तर क्रियत् ॥ भागवते ७।१.४।९ ।

परमध्यापयितुमभ्ययनम् दुपलाना रक्षार्थं नलम् धन ज्ञानच राष्ट्राय । बहवो वैज्ञानिका
शोधका ऋषयो महर्षयो दाशनिका सिद्धान्तद्वयार्थ परेषा हिताय लोकस्य हिताय कणान्

अथा दृढघोरे जीवनं वासित्वापि लोचनं स्तनं दृष्टुं । निध्विभ्रुतो न्यासगो
महामुनिः पापिनिः, कङ्कणनिर्वाक्यं नृपपावनान्नद्यतिविद्वत्सैक्यं न दार्शनिको व्यासः,
अवस्थितगन्धर्वदिवनलनागोऽद्वैतविचारकः दहस्य कर्मसंयतिनृं परंधम्मन् ।
रान प्रतापः कस्मै सुखाय धनमपसृज् ? महाननाः कस्मै लनाय विध्विनाल्य
निमाति ? नदहन्ता कस्य प्रन्तस्य रात्रि नक्त्तुं दण्डपातन् सहते ? किं मोहन
भोग भोक्तुं दण्डहार पुरते यवहर ? सहस्रधा बलिर्वासा श्रुतरान कस्मै लनय
हसन्तः शूलमारोहन्ति ? एतन् प्रेक्षतमन्वस्य पुरयोत्तमस्य वैद्विष्यन् । स स्वार्थं
परित्यज्य ध्यायद्वापान यतवे, अनुक्त एवानिल लोचनमन्दयति च ।

किं चन्द्रमाः प्रत्युपकारलिप्मया करोति गोभिः कुमुदावबोधनम् ।

स्वभावा एवोत्तमचेतसा सता परोपकारव्यसनं हि जीरितम् ॥

एषाऽस्माकं परमया । खेलायनानन्दमनुभवन् बालो ध्यायामगुणैर्युज्यत एव
निर्मलयोगिनि । परमया स स्वभावो नानवेन्योऽपगतः । अत एवैषमनताऽऽविद्य ।
धनं नदीप्रवाहवतिष्ठत् । नदी प्रतिक्षणं निम्नान्निमुखा । एव धनमपि निम्नान्निमुखा-
द्व्यध्वातमनुभवतान्निमुखं भवेत् । “दष्टिन् नर कोन्तेय । ना प्रयच्छेद्वरे धनम् ।”
परमपुता मनुष्यस्वभावे विद्विष्यतादिता पुष्टवदेन ।

नानवशिष्याः । (१) निवेदी, (२) नयवान् (३) अङ्गुलीय । एतस्या
योग्यता नक्षत्रः सृष्टौ नान्यस्मिन्नुत्पन्नेऽस्ति । विद्वन् स सदस्यं विचारयति, मनव-
तरान् वक्षयति हसति रोदिति च । नयना स्वान्निप्रयत्नान् धावयित्वा समतलं प्रसरयति,
मायां लिखित्वा कृत्वा स्वविचारं विद्वन्मन् कथयति च प्रसरयति । अङ्गुलीय इत्य
कथना प्रत्ययः । मज्जिमाङ्गुलीयं सर्वां अङ्गुलीयः सृष्टयति । येन स विद्वन्नेति कर्तुं
समर्थः । परीरेऽङ्गुलीयं नक्षत्रं चोदितस्य कालां प्रतिनिधिः । विद्वस्य नदहन्ता
महानः प्रतेनयेमानवस्यैव समर्थम् । “एतन्मलखोदविद्वन्निम्नोऽप्यस्य दत्तं
कलशत् प्रमुः क” परमव मानवः पुष्टवदेन प्रक्षीपसामर्थ्यः । परम्यवेतिद्वन्ति पुर्या
देवेत्यन् परिस्थितिप्रतिकूलोऽभूत् । परमेया विद्विष्यतिष्ठत्, जन्मनन्निमुखा नेमते ।

एषा कथनं चोत्तरं प्रतिदिनं प्रतिवर्तिनी तद्दिनं धनं वनप्रवाहरन् यनैर्यनैः सुप्त
व्यवहारा प्रक्रियता सरदां शतं व्यतिशानयति, सन्ततिरन्मर्येव नदहारोऽनुवय

प्रचलति च । एकदा प्रबुद्धेन प्रतिवेशिना ज्ञातम्, हन्त ! अयमस्माकं धर्माजिता सम्पद
चोरस्यन् स्वयमङ्गनधर्मोऽपि सानन्द सामन्तजीवनं यमयति । वयस्यनेन दण्डिता
नरकजीवन जीवितुम् । अनेन लक्षशो मुद्रा अस्माकमपहृताः शतशो जनाश्च विना मूल्य
मृतश्तामुपनीताः । दुष्टोऽयं कथमपि हतं धनं प्रत्यावर्त्तयितुमशक्नो हन्तव्य एव । एष
आततायी । आततायिनमायान्त हन्यादेवाविचारयन्निति मनुः । एतदेव रक्तक्रान्तेर्मूलम् ।
अतः समर्शालानां धनिनामस्माकञ्चैव परिणाम एकदाऽवश्यम्भावी । अतो जीवन सुरक्षितु-
मिच्छद्भिः समयश्पूर्वमेव जागरितव्यं परेषां जीवनाय यत्किंव्यञ्च ।

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ।

अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो वृण्डमर्हति ॥ भागवते । ७।१४।८ ।

वस्तुनः परस्परविरोधस्य हेतुरेवायम् । यत्केचन भौतिकीमुन्नतिं स्वसुखसाधिकां
मत्वा प्रतिवेशिनो हिताहितमविचारयन्तः सङ्घर्षे आक्रोशे सङ्घर्षाः सम्पत्सङ्घर्षहे मग्नाः ।
वस्तुतो य ईश्वरो विश्वमिदं निर्मायैतदविशत् स समप्रसम्पदा सहैव । अतः सा सम्पदी-
ध्वस्त्यैव । यथा वायोः सूर्यस्याकाशस्य जलस्य भूमेधोपयोगोपभोगे वयं साधिका-
स्तथैव सज्जानामन्यासामपि सम्पदां समुपयोगे वयं सर्वे समानत्वेनाधिहृताः । परं पुञ्जवादे-
नैतद्द्वैपम्यमुदादि । तन्निराकरणमस्माकमुद्देशम् । नात्र कथनं परोपजीवी स्यादपि तु
पारस्परोपजीवी । सर्वोऽत्र परस्य सौकर्याय प्रथमं चेष्टत जीवेश्वर । परिधर्मो यत्र मत भवेत् ।

सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।

अनेन प्रसविष्यध्रमेप वोऽस्तिवष्टकामधुक् ॥

‘सत् स्वास्थ्यम्, आवश्यकं धनम्, ऐक्यमत्वं भ्रातृषु, स्वच्छं सुपयः सम्पन्नं सुप्तं पुरं गृहम्,
सुशौलः शिशुः, नीरोगिता, शौलस्यसम्पन्ना रमणी, अनपमानं जीवनम्, सद्भिचारः,
तदनुसारिकर्मप्रभावश्च क्षेत्रे सदस्यसदाजीविका च सुकर्मणि व्ययः—इत्येवं केवलं न सर्वा-
भ्युदयः । एषा भौतिकी समुन्नतिः । अस्माकं सर्वाभ्युदयस्य नैतादृशी मुद्राऽऽधारशिला ।
अस्माकं पृष्ठभूमिराध्यात्मिकी । विविधबाधा अङ्गीकृत्यापि मानवः शान्तमुत्ताभितापः ।

वस्तुतस्तदात्मसम्बन्धि सुखम् । नार्थसम्बन्धि । हन्त । वयमद्य केवलं परिवारस्य भरण-
पोषणे एव स्तं कृतकृत्यं मन्यममहे ।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ! ।

सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

योगः कर्मसु कौशलम् । जीवने सिद्धान्तानामनुष्ठानं कल्यैव योगः । धर्मोऽनुष्ठा-
विनीयतेऽतोऽप्रतिष्ठितः । अकर्म च प्रतिष्ठितम् । अत एव धर्मजीवी साधु जीवन्तवि-
गर्हितो विधमजोषी च गर्हित जीवन्तवि सत्कृतः । एषा पुत्रदादस्य परम्परा ।
परमस्नाभिः धर्मः प्रतिष्ठाप्यः । कर्मैव विधमेऽधिकृतो भवेन्नाकर्मी । धर्मस्य विध्यो-
यदा विनश्यति तदा धर्मो धमनिष्ठो भविष्यति । स्वेच्छया धाम्यतो मनोविनोदः । परस्मै
परामर्शेण परचापेन च धाम्यतोऽपराता दण्ड इव । धर्मी पूर्वैरिमन्नानन्द परस्मिन्
कार्थैर्मनुभवति । इयं वाञ्छामो यच्छ्रमः सम्पत्तिर्भवेत् । सर्वे च तस्या अभिलाषाः ।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।

शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्योदकर्मणः ॥ गीता ।

सर्वाभ्युदयसमाश्रय सर्वत्रैकमत्येन व्यवतिष्ठेत् । बहुमतस्य शासने निरुक्तः स्वकीय-
पक्षस्य स्थापित्वसम्पादने व्यग्रो न लोकाकल्याणं साधयितुं समर्थः । स स्वपक्षस्य
कल्याणे विरोधप्रतिरोधे समाप्तसमयो लोकसेवानामनवच्छेद एव स्यादयमिति । शासना-
दनुशासनं प्रति, पराधीनतायाः साधोऽनर्ता प्रति स्वाभाविकरूपेण गमननस्माकं क्रमः ।
नारिमन् समाजे दाता न च भिक्षुः । सर्वैः सर्वमात्मवत्पश्येत् स्वस्य कर्तव्यं परस्पाधिकारस्य ।
कर्म थोवशास्त्रित्येष्टं सर्वैः कुर्वीत । निरभिलाषं निरपेक्षं निवासनं कर्तव्यं मुख्ये प्रभवति ।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्तप्रा मनोपिणः ।

जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥

वस्तुतः सद्भावेन क्रियनाशस्य कर्मणो न नाशः । लोकः प्रतिदिनं मोक्षे
शरदि पशानु दिने रात्री च शिरसि गर्दभोश्च । भारनाशोऽन्याशनवसननिरपेक्ष पावनः प्रहृष्टं
हृष्टं सहमानम् गर्दभापितान् दुर्गतान् सखारिणो न स्तौति । क्रियेण तस्या न ? पर
लोकाय धर्माय सन्नमपि धाम्यतः स्तौति । यदस्ते निश्चयार्थं धर्मिणः पूर्वं च नार्थम् ।

अतोऽस्मिन्निष्कामभावेनास्मिन् योक्तव्यम् । एव कुर्वता विधमत्माक सहयोगि ।
 'स्वपमेव हि वतोऽग्रे सारथ्यं प्रतिपद्यते' ।

मम मानसे भावनैकास्ति यत् प्रत्येको ग्रामो नागरिककृत्रिमताविरहित एककुटुम्ब
 बद्धव्यवस्थित सरस्वतीविहारभूमिनिर्मलेन ज्ञानालोकेन स्वाभाविकेन सौन्दर्येण विकसित
 पुष्पोपवनसमृद्धो धान्यपूष्पकुसूलो गोदुग्धधाराभिरभिषिक्तो नवनीतनवीनाभनरो
 विद्यत्प्रभविविद्वद्बाल स्वगुरुभ्यो दीप्येत । सुखसलिला नद्य सवत प्रसृता राज
 पथाश्च देश पोषयेयुः । उद्भ्रांसि सरासि हसकलरवैमनो मोदयेयुः । प्रत्येक गृह
 मुल्लासेन वीणविरावेण बालानां काकल्या च मुखरित भवेत् । नाकालमृत्यु स्यात् ।
 पितरि स्थित नात्मजनिधन न च विधवावैहग्य क्वपि भवेत् । सर्व स्वस्वधर्मे कमपि
 च स्थित परस्परेण सह युज्येत । वस्तुतो यतोऽभ्युदयो निधयससिद्धिश्च स धर्मः ।
 दुर्भिक्षस्य कथैव न भूयेत् । न विप्रहो न चौर्य न व्यभिचारो न च लोकव्यवस्था
 पकाना सैनिकानामाज्य वकता भवेत् । जनानां सुपुष्ट मस्तिष्कं नवाविष्काराय सज्ज
 तिष्ठेत । समाजस्य सेवा धारणा, बुद्धि, समृद्धि सर्वाभ्युदये व्यवस्थिता स्यात् ।
 बुद्धिबला शरीरशक्त्यात्र समाना सर्वत्रोद्योगशीलताश्च बुद्धि, समृद्धता च देशे
 न तु व्यक्तौ । सामाजिकविपमतानां शोषणस्य च विनाश । उत्पादनसोपयोगाय ।

शिक्षालयेष्वध्यापनं सायं प्रातर्दिर्भवेच्छित्यशिक्षणम् । अध्ययनायाध्यापनाय शित्य-
शिक्षणाय मनोरञ्जनशरीरक्रियायै चाहोरात्रपञ्चमांशः । शयनकालथाहोरात्रस्य तृतीयांश
आद्यायां शेषासु च चतुर्थींशः । प्रवेशसमये मूत्रप्रवृत्तिविभागे भासं छात्र आवास्यः ।
तदनुमोदनानुसारं विभागे प्रवेशो भवेत् । कक्षस्तिष्ठः । आद्यायां वर्षपट्टम् । मध्यमायाश्च
वर्षत्रयम् । उत्तमाया वर्षद्वयम् । विभागीयाचार्यपरीक्षां प्रविनिधुर्वर्षमेकमधीत्य योग्यता-
परीक्षां प्रविष्टः प्रतिशत प्राप्तवत्यधिकं प्रवेष्टुमधिकृतः । तस्यां वर्षचतुष्टयम् । प्रति-
प्रामनायकक्षायाः पाठशाला । जनपदे च मध्यमाया जनपदच्छात्रावासश्च । अस्याद्वौ
व्ययो जनपदसर्वाभ्युदयसमाजेन देयोऽर्द्धाभिभावेन । भागीयनगरेपूतमावध्यध्यापनं
भवेत् । छात्रावासश्च पूर्ववत् । एतेऽधीयानाः छासनसेवां कुर्युः । केन्द्रनगरे च
विभागीयाचार्यपरीक्षायै महाविद्यालयद्वयत्रावासश्च । छात्रावासव्ययश्च केन्द्रेण सोढव्यः ।
अध्यापकेभ्यः सपरिच्छद् आवासः सर्वाभ्युदयसमाजेन देयो वेतनम् ।

भारतस्य चत्वारो भागाः स्युः । पूर्वनगरम्, दक्षिणनगरम्, पश्चिमनगरम्, उत्तर-
नगरमिति भागीयनगराणि । केन्द्रश्च केवलं छासननगरः प्रदेशरहितस्तिष्ठेत् ।

केन्द्रनगरे प्रजाया वसतिरे स्यात् । अधिकारिणां गृहाणि, सर्वोच्चविद्यालयः, सर्वोच्च-
चिकित्सालयः, विभागानां कार्यालयाः, पुरोहितविभागोऽनुसन्धानविभागः, राजदूतावासाः,
सेनासन्निवेशः, अतिथिनिवासः समाजेन व्यवस्थापिता विपणयो भोजनालयश्च स्युः । पञ्च-
विधतियया पुमान् स्त्री च मन्तव्य प्रकाशयितुं निर्वाच्यतां प्राप्तुं च शक्नुयात् । समस्मिन्
राष्ट्रे एका लिपिः सत्कृता च भाषा स्यात् । एषु भागेष्वेकलक्षनिर्वाचकजनः प्रदेशी
जनपदशब्देन बोद्धव्यः । प्रतिजनपद सर्वाभ्युदयसमाजस्य सष्षमन ग्रामसर्वाभ्युदय-
सष्षमनरापेक्ष भवेत् । उपसहस्रनिर्वाचका ग्रामगणेशं निर्मयुः । स च स्वक्षेत्रे
पञ्चगान् स्वेच्छया निर्मूयात् । गणेशसत्तैर्जनपदसमाज प्रकृत्य तन्मध्यत एषेक
जनपदगणेश मन्त्रिगण निहच्य कार्यं प्रचान्येन । सर्वत्र तृतीयमासस्य निर्वचनं नापिक
भवेत् । अधिकारिणाश्च योग्यतासापेक्षम् । गणेशे चैषा योग्यता द्वास्त्रद्वारैः प्रतिपादितेति
द्वादशविशेषमोपेत एव प्रजाभिनिर्वाच्यः ।

मुमुराः — सर्वदा प्रसन्नमुखः ।

एकदन्तः — स्मिते निःसृतैरुदन्तो मन्दस्मितः । केनापि वृत्तेनाधिरितो गम्भीरः ।

अतोऽस्माभिर्निष्कामभावेनास्मिन् योक्तव्यम् । एव कुर्वतां विधमस्माकं सहयोगि ।
“स्वयमेव हि वातोऽग्रे सारथ्यं प्रतिपद्यते” ।

मम मानसे भावनैकास्ति यत् प्रत्येको ग्रामो नागरिककृत्रिमताविरहित एककुटुम्ब-
वद् व्यवस्थित सरस्वतीविहारभूमिनिर्मलेन ज्ञानालोकेन स्वाभाविकेन सौन्दर्येण विकसित
पुष्पोपवनसमृद्धो धान्यपूर्णकुसुलो मोदुग्धधाराभिरभिषिक्तो नवनीतनवीनामनरो
विद्युत्प्रभविद्वद्बाल स्वर्गनुष्यो दीप्येत । सुखसलिला नद्य सर्वतः प्रसृता राज-
पथाश्च देशे पोषयेयुः । उदम्भासि सरासि हसरुल्लसैमनो मोदयेयुः । प्रत्येकं गृह-
मुत्साहेन वीणाविरावेण बालानां काकल्या च सुखरितं भवेत् । नृकालमृत्युं ह्येत ।
पितरि स्थिते नात्मजनिधौ न च विधवावैकुण्ठ्यं नापि भवेत् । सर्वं स्वस्वधर्मे कर्मणि
च स्थित परस्परं सह युज्येत । वस्तुतो यतोऽभ्युदयो निश्चयसिद्धिश्च स धर्मः ।
दुर्मित्यस्य कथं न ध्रुयेत । न विग्रहो न चौर्यं न व्यभिचारो न च लोकव्यवस्था
पक्वानां सैनिकानामावश्यकता भवेत् । जनानां सुपुष्टं मस्तिष्कं नवाविस्काराय सज्जं
तिष्ठेत । समाजस्य सेवा, धारणा, वृद्धिः, समृद्धिः सर्वाभ्युदये व्यवस्थिता स्यात् ।
वृद्धिबला शरीरबलाश्चात्र समानाः, सर्वत्रोद्योगशीलताया वृद्धिः, समृद्धता च देशे
न तु व्यक्तौ । सामाजिकविषयतानां शोषणस्य च विनाशः । उत्पादनस्योपयोगाय ।

ग्रामाणामवस्थानं पञ्चसहस्रजनसङ्ख्यातो नाधिकं भवेत्, यत्र सर्वे परस्परं जानीयुः ।
ग्रामीणां स्वावश्यकतानुसारि सर्वं स्वयमुत्पादयेयुः । क्रयस्यावश्यकतैव न भवेत् ।
स्त्रियां वा । एषु ग्रामेषु एकाऽज्ञविपणिरेका वासोविपणिरेका घोषयुज्यमानवस्तु
विपणि, बालानां प्रौढानां महिलानाञ्च कृते निःशुल्का नवीनसाधनसम्पन्ना पाठशाला
आरोग्यशाला, उपयोगिपुस्तकावित आकाशवाणियुक्तो वाचनालयः, विविधविषय
प्रदर्शकपट्टं मनोरञ्जनव्यायामादिव्यवस्थं जनोद्यानञ्च सर्वाभ्युदयेन सम्भाल्यति तिष्ठेत ।
न कथनानक्षरस्तिष्ठेत । सृष्टि आरोग्यशालायामेव चिकित्सितो भवेत् । आरोग्याध्यक्षः
कस्मिंश्चित् नृत्येऽनासदस्वमीके तस्य विवरणाय प्रष्टव्योऽक्षमोत्तरो दण्डभाक्, चौर्यं चारक्षकः ।
परपतनविरुद्धसारोपु श्रौचिकारेष्ववबुद्धेषु सर्वाभ्युदये च व्यवस्थिते न चौर्यं सम्भाव्यते ।
व्यवस्थायै न परेषामवश्यकता, ग्राम्या स्वयं व्यवस्थापयेयुः । ग्रामाद् बहिर्व्यन्त्राणाम-
वस्थितिर्भवेत् । यत्राहोरात्रस्य तृतीयांशे कार्यं भवेद्दशवर्षाणि यावत्, उतश्चतुर्थांशे ।

शिक्षालयेष्वध्यापनं साय प्रातर्द्विर्बेच्छित्यशिक्षणम् । अध्ययनाद्यापनाय शिल्प-
शिक्षणाय मनोरञ्जनशारीरक्रियायै चाहोरात्रपञ्चमांशः । शयनकालश्चाहोरात्रस्य तृतीयांशं
आद्यानां शेषानु च चतुर्थांशः । प्रवेद्यसमये मूलप्रवृत्तिविभागे भासं छात्र आवास्यः ।
तदनुमोदनानुसारं विमाने प्रवेद्यो भवेत् । कक्षास्तिष्ठः । आद्यायां वर्षपट्टम् । मध्यमायां
वर्षजयम् । उत्तमायां वर्षद्वयम् । विभागोद्याचार्यशरीक्षां प्रविविधवर्षभेदमर्थव्ययं योग्यता-
परीक्षां प्रविष्टः प्रतिसप्त प्राप्तयष्टपञ्चकाङ्कः प्रवेष्टुमर्हतिष्ठः । तस्यां वर्षचतुष्टयम् । प्रति-
ग्राममाद्यकक्षायाः पाठशाला । जनपदै च मध्यमायां जनपदच्छात्रावासश्च । अस्याद्धौ
प्ययो जनपदसर्वाभ्युदयसमाजेन देवोर्द्ध्वाभिभावकेन । भागीयनगरेषुत्तमावध्यध्यापनं
भवेत् । छात्रावासश्च पूर्ववत् । एतेऽधोरात्राः रात्रनवेयां कुर्युः । केन्द्रनगरे च
विभागीयान्मररीक्षायै महाविद्यालयच्छात्रावासश्च । छात्रावासव्ययश्च केन्द्रेण सौटव्यः ।
अध्यापकेभ्यः सपरिच्छद् अथासः सर्वाभ्युदयसमाजेन देवो वेतवश्च ।

भारतस्य चत्वारो भागाः स्युः । पूर्वनगरम्, दक्षिणनगरम्, पश्चिमनगरम्, उत्तर-
नगरमितिभागीयनगराणि । केन्द्रश्च केवलं शासनयः प्रदेशाद्विस्तृष्टेत् ।

केन्द्रनगरे प्रजाया वसतिर्न स्यात् । अधिकारिणां गृहाणि, सर्वोच्चविद्यालयः, सर्वोच्च-
चिकित्सालयः, विभागानां कार्यालयाः, पुरातत्त्वविभागोऽनुसन्ध'वविभागः, राजदूतावासाः,
सेवासन्निवेशः, अतिथिनिवासः समाजेन व्यवस्थापितां विन्ययो भोजनालयश्च स्युः । पञ्च-
विंशतिवयाः पुमान् स्त्री च मन्तव्यं प्रकाशयितुं निर्वाच्यतां प्राप्नुं च क्षनमुपगच्छेत् । समस्मिन्
राष्ट्रे एका लिपिः ससृष्टा च नाया स्यात् । एषु भागेष्वेकलक्षनिर्वाचकजनः प्रदेशो
जनपदसन्धेन बोद्धव्यः । प्रतिजनपदं सर्वाभ्युदयसमाजस्य सङ्ग्रथनं ग्रामसर्वाभ्युदय-
सङ्ग्रथनसापेक्षं भवेत् । उपग्रहसन्निवाचक्यं ग्रामगणेशं निर्गुः । ए च लक्ष्णेन
पञ्चगान् स्वेच्छ्या निर्गुः । गनेशसन्निवाचक्यं प्रकृत्य तन्मध्यत एवैकं
जनपदगणेशं मन्त्रिगणं निहृद्य कार्यं प्रचान्वेन । सर्वत्र तृतीयभागस्य निर्वाचनं बाधितं
भवेत् । अधिकारिणाम् नोक्त्यसापेक्षम् । गनेशे चैव नोक्ता शास्त्रकारैः प्रतिपादितेति
द्वादशनिर्वाचनोपेत एव प्रजाभिनिर्वाच्यः ।

मुमुक्षुः - सर्वदा प्रसन्नमुखः ।

एकदन्तः - स्मिन्ने निम्नैकदन्तो मन्दरेभ्यः । केनापि वृत्तेनाविरिमतो गम्भीरः ।

कपिलः—कपीनपि लाति—आदत्ते—गृह्णाति—कार्येषु योजयति सः=अयोग्यपुरुषानपि कार्यप्रवर्तनार्हान् कर्तुं निपुणः इति भावः । अथवा साङ्ख्याचार्यः कपिल इवानासक्तः, कर्म कुर्वाणोऽपि निर्लिप्तः ।

राजवणः=सूक्ष्मतमश्रावी । तेन प्रदेशभवनकर्मणा सौहृदयेण श्रोता ।

लम्बोदरः=अत्रोदरशब्दो न पाकस्यत्या नवोदरगुहाया वाचकः, अपि तु मध्यमात्रस्य । प्रदेशात्तत् श्रुत्वाप्यश्रुतः । अविकारिरुत केनाप्यविज्ञात तिष्ठेद्वसरोपयोगाय ।

विकटः=कर्तव्ये निष्पक्षो दृढव्रती । न यत्र प्रेम्णो वैरस्य वा प्रभावस्तिष्ठेत् ।

विघ्ननाशः=प्रान्तहितव्यापातकानां तत्त्वानां नाशकः ।

विनायकः=सर्वाभ्युदये न कोऽपि नायकः सर्वेषां समानाधिकारत्वाद्, व्यवहारप्रचलनाय नियमनस्य च तस्यावश्यकतास्त्येव । अतोऽत्र न नायको नचानायकः, अपि तु विलक्षणो नायकः । अहम्भावे विगतनायकत्वाभिमानः कार्ये च निश्चिष्टः इति वा ।

धूमकेतुः=आकाशे उत्पातविशेषद्योतक वक्षत्रम् । तन्न कस्यापि दुःखदातृ परतस्म दर्शनाज्जना बिभ्यति, भवन्ति चातङ्गिताः । तद्वदेन दृष्ट्वा सर्वे साशङ्काः सम्प्रान्ता वा भवेयुर्दयप्यसौ न कस्यापि दुःखदः ।

गणाध्यक्षः=खगणार्वा कर्मणामधीश्वरः । येन कर्मकरेषु शैथिल्यमुत्कोचपक्षपातो वा नोपेयात् ।

भालचन्द्रः=भालश्चन्द्र इव (आह्लादकः) यस्य सः=तेजस्विरान्तमुखमण्डलः ।

गजाननः=गम्भीरमुखमुदः । वस्तुजात निवेद्य न कोऽपि निवेदको निवेदनस्य भाव ज्ञातुं प्रभवेत् ।

अस्माकं राष्ट्रे सर्वत्रैतादृशा गणेशा अस्मन् । कार्यास्मिन्निर्विघ्न परिसमापनायै सत्कार एतेषामावश्यक आसीत् । अत एवैष शिवस्य=कल्याणस्य पुनः=पत्नम् । परमधुना साम्राज्यवादपुञ्जवादमधुना बीतविवेके जगति तादृशपुण्यरत्नानामुत्पत्तिरेव विलुप्ता । परगतानुगतिका मुग्धा गणेशं नाम्नैव पूजयन्ति सपेऽप्रसृते तस्य रेखामिव ।

निर्वचने प्रचारिणि आजीवन निर्वचने निर्वाचने च नाधिकृताः स्तुः । प्रजाः कानपि योग्यान् स्वेच्छया सानुरोधं निर्वह्युरयमस्माकप्रतिनिधिः । तेषां बहुत्वे कादाचित्के

काचित्के पदगणना भवेन्नान्यथा । एव परस्पर परिचिन्वन्तोऽभय दास्यन्ति मतम्,
नैवं मतं क्रेतुं शक्यम्, न च लघुदिना भवादधेष्टोऽवोच्यो निर्वक्तुं शक्यते ।

जनपदसत्वाभ्युदयसमाजस्यैकवयानुभवः पञ्चाशत्तेनैव निरुक्तो भागीयसत्वाभ्युदय-
सम्प्रवृत्तिनिमित्तेन गच्छेत् । तन्मध्यता भाग्यालस्य मन्त्रिपथ निर्वचनं भवत् ।
मन्त्री च भागपालेनामन्त्र्य राष्ट्रियवरिष्ठसमाजेन च विनृपस्य विभिन्नपदेषु मन्त्रिणो
निपुञ्जीत । भाग्यैकसूत्रतापादनाय सर्वोच्चसत्वाभ्युदयसमाजकर्म साहचर्याय च यतेत ।
जलमवसेचनादिष्वप्यवस्था सुगमा साधारण्यवाप्य कुर्वीत ।

भागीयसत्वाभ्युदयसमाजस्य द्विरांशुभवो दशमोऽंशः सर्वोच्चसत्वाभ्युदयसमाज
प्रत्यस्य तन्मध्यतो वरिष्ठसमाजनेकत्रिंशज्जनाया प्रचल्यचेत् । तन्मध्यत एव भागीय-
समान्यदस्याना सर्वथा बहुमतेन वरिष्ठसमाजस्यैकमत्येन च राज्ञो मन्त्रिपथ निर्वचनं
भवत् । मन्त्री च राजाऽऽमन्त्र्य विभागीयनमन्त्रिणो निपुञ्जात । सर्वोच्चसत्वाभ्युदय-
समाजो वरिष्ठसमाजेन राष्ट्रस्य सर्वकारसम्पादने साधिकारस्तिष्ठेत् ।

निम्नतमकर्मचारिणो वतनात्सार्द्धं वतनं गणयत्स्व, तस्मात्सार्द्धं जनपदमन्त्रिणः,
तस्मात्सार्द्धं जनपदगणेश्वरः, तस्मात् सार्द्धं भागीयनमन्त्रिणः, तस्मात्सार्द्धं भागपालस्य
सर्वोच्चसत्वाभ्युदयसमाजमन्त्रिणाश्च, तस्मात्सार्द्धं प्रधानमन्त्रिणः, तस्मात्सार्द्धं च राष्ट्रः ।
एकः सररिष्ठश्च आकाशो राष्ट्रैष देवो यानवः । कर्मधरा आपटेर्षयस्य समाजसेवा
कुर्वन्तोऽप्यकाशकाळे वायुद्वर्गं तावन्मासं वतनं लभेत् । निरन्तरं पञ्चवर्षं कृयका क्षेत्रस्य,
नियतं पारस्य दशकं शुल्केन गृहावाणिज्यो गृहस्य च स्वतः स्वामिनः स्युः, एककाल
दशवर्षाणां शुल्कशतवार्षाणि । ग्रन्थेषु विरहितु निरन्तरं दशवर्षाणि कर्म कुर्वामा स्वतो
माम्नाय स्युः । सर्वत्र कर्मधराणां नौवनाच्छादनं नौववस्त्रधारिणिरतिष्ठन्-स्यात् ।

सर्वोच्चसत्वाभ्युदयसमाजानुसंस्थितव्या आचरन् भागीयसत्वाभ्युदयसमाजो मुदम्,
विजम्, सान्निधिकम्, शासनव्यवस्थाम्, नातायातव्यवस्थामन्यात्र सर्वभगसम्बन्धिनी
यस्या विदम्य सर्वकार्ये स्वतन्त्रः । स एव स्वज्ञेये येनान् कर्मधराविपुञ्जीत
करादरोत । कस्व पञ्चाशच्च राष्ट्रियसमाजाय दद्यात् । जगद्वर्ता भवता सदयो-
गेन दशभिर्वर्षैरेतत्त्वन्तुं शक्यते । “किं दुरापदं तेषां पुं सन्नुहानचेतयाम् ।” नागवते ।
एवमृतेऽन्यत्र राष्ट्रमनुनाति सर्वस्वमुद्धरणीयमेव ।

नात्युच्चशिखरो मेरुर्नातिनीचं रसातलम् ।

व्यवसायद्वितीयानां नाप्यपारो महोदधिः ॥

स चायमाद्यो विचारः । यथा श्रीमद्भागवते चृणुं त्रिशल्लक्षणवति धर्मं भगवान् व्यास —

अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ।

तेष्व्यात्मदेवताबुद्धिः सुतरा नृपु पाण्डव ! ॥७१११०॥

नाय नवः सम्प्रदायो वादो वा किन्त्वस्माकं पूर्वजानां प्रणाली, मानवस्याद्यः सत्यः स्वभावः । सर्वाभ्युदयिना विचारेऽप्यनाग्रहवत्ता भवितव्यम् । साग्रहो विचारो वादरूपतामवगाहते । यो हिंसाप्रधानत्वादधर्मः । विचारधातौ रूपेयो बुद्धेर्लक्षणम् । विचारस्य ज्ञानस्य न कश्चन निर्माता, केवलमभिव्यञ्जक एव । अत एव ज्ञानमात्रस्त्वपौरुषेयत्वम् । कर्णपरम्परया श्रूयमाणत्वाच्च तदेव धृतिः ।

अस्मिन् कार्ये लग्नानां प्रारम्भिकः सहयोग आधाराश्लेब भविष्यति । आधारशिलं न कोऽपि पश्यति, पश्यति केवल गगनस्पर्शिन सीधम् । पर हर्म्यस्याधारो जनेनानीक्ष्यो विवेकिगम्यो वास्तविकः । अनासक्तश्रुत्या कर्म कर्तुं श्रेष्ठा बुद्धिर्धृतिश्चापेक्ष्यते । उपस्था शीघ्रमेव फलेभ्यः भूमिमवगाहमाना बालाः श्रमेण सह बीजमपि विनाशयन्ति । “धैर्यं धामवतां धनम्” इत्येष वाम् । लोकानां कटुसमालोचनया नास्माकं भीतिः ।

अस्मानवेहि कलमानलमाहृतानां येषां प्रचण्डमुसलैर्यदाततैव ।

स्नेहं विमुच्य सहसा सलता प्रयान्ति ये स्वल्पपीडनवशात्त वयं तिलास्ते ॥

अतो वयं लौकिकनिष्ठया बुद्ध्या धैर्येण च युक्ता अखिबाः साधने यतिष्यामहे । “उत्साहैकधने हि वीरहृदये नाप्नोति खेदोऽन्तरम्” । चिन्तयतस्त्वदनुकूलं व्यवहरतश्च प्रतिपरिवर्तनम् । यथा यथा वृत्तिः परिवर्तते, पूर्वाभ्यासः शैथिल्यं नवीनव्य दार्ढ्यमुर्गति । अतः प्रगल्भश्रुत्या प्रचारिण मनःकरिण गरीयस्या निष्ठारज्ज्वा दृढमावध प्रजरोद्यमेन राष्ट्रस्य करणेयूयम प्रपूर्य प्रणेष्वभिनवामभ्यां स्फूर्ति प्रतिफलमेधमानमुत्साहं क्रियाशीलतां समभावनां सद्भावनया सहोद्दीप्य सर्वतः प्रसृतमज्ञान दारिद्र्यं दुःखं कलहं विनाश्य प्रयतिष्यामहे । अयमस्माकं भूयासि श्रेयासि घटयतु विभुः । अस्माकं प्राक्कालिक

इतिहासो विशदोज्ज्वल उत्साहवर्द्धकः । कर्तव्यास्तु अनेके मानवा अविवक्षिता मृत्युं
सहर्षमातिद्वय विबुधेश्वरस्वाज्ञरागतामुपगताः । सर्वा भूमि दस्तोऽप्यविवक्षिताः । सत्यम्,—

क्रियती पञ्चसहस्री क्रियती लक्षापि कोटिरपि क्रियती ।

औदार्योन्ततमनसा रत्नवती वसुमती क्रियती ॥

येषां नाम स्मरन्तो वयं धन्याः । येषां कीर्तिगोति गायन्तधारणा राष्ट्रं राष्ट्रम्,
नगरं नगरम्, ग्रामं ग्रामम्, वनं वनं सुखरयन्तः शाब्दिक कीर्तितम्भमुच्छ्रापयन्ति । येषां
महिम्ना वयं मूर्खानं साभिमानमुक्त्वाः कर्तुं शक्ताः । “अपि स्वदेहातिक्रमुतेन्द्रियाणां
यद्योषणानां हि यद्यो गरीयाः” ॥ अस्माकमयं प्राचीनो निधिमहार्हः पवित्रश्च ।
तदिदमतोत गौरव यद्यद्भित्तस्याश्रुज्जम्भयांदायै वतितथ्यम् ।

व्यसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन !

यदुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽज्ययसायिनाम् ॥

बुद्धियुक्तो जहातीह भवे सुकृतदुष्कृते ।

तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।

न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥

एतद्वामान्य रेखाभिन्न मनः शस्त्रमाश्रित्य धीमतां समग्रमुरास्थापि, परतश्च समये
सर्वे समाजाः समित्य वैशद्येनापिकाधिकमुपयोगिणो निमग्नान् विधास्यन्ति । अस्मत्पूर्वजैः
पुत्रवादप्रपात्या विषयुक्तं विचारितं भवेत्, परमवया कुलम्, दासिदम्, षष्ठम्, भय
घोषित । आगच्छन्तु वयं प्रगतिविरोधिनामानन्दशत्रूनां व्यूह विचूर्ण्य विश्वं प्रकाशयामः ।
एव मामकीनः प्रस्तावः परतश्च श्रीचरणाः प्रणामम् ।

उचिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निरोधत ।

पुनश्च, अस्माकं राजदमययन्तं कुलक्रमागतमासोद्, विचार्यैवद विदुनि । अताऽय
लोकर न्यास लोकाव प्रत्यर्थ्य प्रतीक्षितमाम् । सम्भाव्यते केचन मां व्रन्तं मन्येत्,
परमय धनः सौख्यस्य यद्विराजन्तस्य निधिय ।

एतस्मिन् प्राचीनाचितेऽपि नवोनवद् भासमाने भुवनमान्ये पथि विचरतां कदाचन
 स्पलनमपि चेद् विश्वसिमि यद् भगवानस्मान् स्वयं रक्षिष्यति । चलनभारभमाणः शिशुर्मात्रो-
 पेक्षितोऽप्यन्वीक्षित एव सा सदा तं पतनाद् वारयत्येव । चाग्रदृशायां रक्षायै सावधानाः,
 यद्यप्यकिञ्चित्कर तत्, पर स्वप्ने यस्य शक्तौ विश्वसन्तो जीवामः सोऽस्मान् रक्षिष्यति ।

विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो योगेश्वरैरपि दुरत्यययोगमायः ।
 क्षेमं विधास्यति स नो भगवत्स्यधीशस्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः
 जीर्णां तरिः सरिदियं च गभीरनीरा नक्राकुला वहति वायुरतिप्रचण्डः ।
 तार्याः स्त्रियश्च शिशावश्च तथैव वृद्धास्तत्कर्णधारभुजयोर्वलमाश्रयामः ॥

“सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहे, तेजस्वि
 नावधीतमस्तु, मा विद्विषावहे ।” ‘सङ्गच्छध्वम्, संवदध्वम्, सं वो
 मनासि जानताम् ।’ ‘मा मा प्रापत् प्रतीचिका’

सुपारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभोगुभिर्वाजिन इव ।

हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं ज्विष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥१॥

ये ते पन्थाः सवितः पूर्यांसोऽरेणवः सुकृता अन्तरीक्षे ।

तेभिर्नो अश्व पथिभिः सुगोभीं रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥२॥

यत् = मनो मनुष्यान्नेनीयते = अत्यर्थमितस्ततो नयति । मनः प्रेरिता एव प्राणिनः
 प्रवर्तन्ते । मनुष्यशब्दः प्राणिमात्रोपलक्षकः । सुपारथि = शोभनो यन्ता यथा अभोगुभिः =
 प्रभेदेरश्वान्नेनीयते, रश्मिभिनयति नियच्छति च । एवं मनोऽपि मानवान् प्रवर्तयति
 नियच्छति च । यच्च मनः हृत्प्रतिष्ठम् = हृदि प्रतिष्ठा यस्य तत् । यच्च मनः, अजिरम् =
 जरारहितम्, घालयुक्स्थविरेप मनसः समानावस्थता । यच्च ज्विष्ठम् = अतिजववद्भेगवत्,
 तन्मे मनः शिवसङ्कल्पम्, शिवः = कल्याणपूर्णः सङ्कल्पो यस्य तादृशमस्तु ॥१॥

हे सवितः । देव । = जगत्-प्रवर्तयाधिष्ठित-तेजोऽधिष्ठातृश्च । ये ते पन्थाः = पन्थानो =
 मार्गाः अन्तरीक्षे सुकृताः साधुकृताः वर्तन्ते । कीदृशास्ते ? पूर्यांसः = पूर्येण कालेषु भवाः
 पूर्याः । अरेणवः = नास्ति रेणुर्यत्र = अपाकुलाः, तेभिः = तैः पथिभिः = मार्गैरस्मान्नय ।

भग एव भगवां अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्वाम ।

तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥३॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्य ।

विश्वं तद् भद्रं यद्वयन्ति देवा बृहद्वदेम विदधे सुवीराः ॥४॥

न्यस्त्यस्तु विश्वस्य सलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ।

मनश्च भद्रं भजताद्वोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहेतुकी ॥

शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः ।

दोषाः प्रयान्तु शान्तिं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥

पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम् ।

नन्दाम शरदः शतम्, मोदाम शरदः शतम् ।

पुनश्च गच्छतोऽस्मान् रज्जु = पालय । अधिभूहि च अधि अशीकृत्व नूहि एते मदीया इति ।

यद्वा अधिभूहि = उपरिष्ठ यदस्माकं हितं पश्यस्य तन् । किम्भूतैः पथिभिः । मुगेभिः =

मुगैः । मुखेन गम्यते येषु ते तैः प्रभूताश्रयैः । व्याधिविद्वद्भितैः ॥३॥

हे देवाः = सस्वप्रधानाः, भग एव भगवानस्तु । भगः = ऐश्वर्यम् । “भग श्रीराम-

माहात्म्यवर्णयन्नार्चकीतिषु” इत्यमरः । “ऐश्वर्यस्य समस्तस्य धर्मस्य यद्यसः धिनः ।

जनवैराग्ययोर्ध्वं पज्यां भग इतीरपा ॥” तेव नगेन वयं भगवन्तः = समस्तैर्धर्मसम्पन्नाः

स्वाम । हे भग ! सर्व इन् = सर्व एव जनः, तं प्रसिद्धं त्वा = त्वां जोहवीति = पुनः

पुनरतिशयेन च आकृष्यति इष्टसिद्धये । हे भग ! विश्वविदितवर्ण्य ! स त्वमिदं नः = अस्माकं

कर्मणि पुर एता = अप्रगल्भी भव । अपेक्षरो भूत्वा सर्वकर्मणि साधय ॥३॥

हे ब्रह्मणस्पते ! त्वमस्य जगतो यन्ता = नियन्ता । सूक्तस्य = अस्मदुक्तस्य सातु-

वचनस्य (कर्मणि पठ्यो) सूक्तं बोधि = बुध्दस्य । अस्मदुक्ता स्तुतिर्नवता श्रयतानिति

भावः । तनयस्य जिन्य = अस्मदन्त्यानि प्रीषाहि, त्वत्प्रसादादेवा यद्वद्रम् = कल्याण-

भवन्ति = पालयन्ति तद् विश्वम् = सर्वम्, भद्रमस्त्यमस्तु । किञ्च सुवीराः = कल्याणपुत्राः

यन्तो वयं विदधे = यत्ते बृहत् = बृहद्ब्रविजम्, वदेम = दीपतां मुज्यतामित्याद्यकारणेन ॥४॥

रामवद्राज्यं प्रशासद् द्वेपणान् दमयन् दृढम् ।
श्रीनिवासं शं नमन् सम्पुष्पितं भवतात् क्षितौ ॥४॥

निःश्वास एष नवमो गतश्चन्द्रमहोपतौ ।
तौहिने नलिनोपत्रे जगत्पत्रे विलासिनि ॥५॥

निरर्थकपदान्यासे मञ्ज्वलद्वारसोमिति ।
निचिते श्रीनिवासेन पण्डितेन्द्राज्जनिञ्जुपा ॥२॥ खगबन्धः ।

फमला तरुणयुधाना कान्त्या हरता कदापि नो चेतः ।
किन्तु समाहितशास्त्रं मानसमधिवसतु हंसीव ॥३॥

न्यासि कचन कचन प्रोत्यै विदुषा मया नु काठिन्यम् ।
नीरजमृदुला तन्यी, कुचयोः कठिनेव सम्भाति ॥४॥

किमिह कृतं प्रत्यग्रं सकटाक्षं भाषिणो बुधा यद्वयः ।
किन्तु समाजे विदुषा विरलाः प्रतिभान्ति कर्तारः ॥५॥

भवाम शरदः शतम्, शृण्वाम शरदः शतम् ।

प्रव्रवाम शरदः शतम्, अजिताः स्याम शरदः शतम् ॥ तैत्तिरीयभारण्यके ।

तस्य मुखहिमवतो निर्मच्छन्ती हितमितं च्योतन्ती ममन्दमरो शब्दनिर्मरिणी
घटीसप्तरुमविरलभावेन श्रावकान् वचनामृतेनाप्लाव्य व्यसन्तम् । लब्धौ गुर्वर्धगम्भीरां
स्थिरतडिल्लेखाभास्वरां सरसां सुवर्णां लोचद्वयप्रेयस्करीमार्गहृदां नानापुराणनिगमात्म-
सम्मता इतिदन्यतश्चाप्युपलब्धां विधूतान्तर्धान्तां वाचमाकर्ष्य साधुवादस्य गगनध्यापिता
हर्षचोषेण सह प्रस्तावानुमोदनपुरस्सर सस्वराज्यमहमहमिरुया सर्वाभ्युदयाय स्वीचकार
वचश्चमत्कारप्रभाक्षित प्रसन्नमनास नरेन्द्रमण्डलम् ।

*

“

*

उद्धोषितो निर्वचनसमयः सम्प्राप्तः । गृहेषु सव्वदुदयः सहीभूय दान्तचेतसा
शासनसामर्थ्यं समाजप्रचालनयोग्यताश्च विचार्य स्वप्रतिनिधौ निश्चिच्युः । ग्राम-
गणेशानां निर्वचनं समस्ते भारते शाम्भ्या प्रेम्णा सौहार्देन जातम् । निरुक्ता-
श्चापरदिने दर्भपाणयः प्राङ्मुखः प्रातर्देशस्य भूत्यै प्रतिजज्ञिरे । तस्माज्जनपदसमाजं
गत्वा समाजं व्यवस्थापयामासुः, तस्माच्च यता भागीयसमाजं ततश्च राष्ट्रियसमाजम् ।
एव विना ध्येयं सर्वत्र निर्वचनमभूत् । राष्ट्रियसमाजश्च देशस्य सर्वा व्यवस्थां सम्पादयितुं
स्वमभ्यत एकत्रिशन्मानवानां वरिष्ठसभां निरुवाच । स्वबहुमान सर्वैरागृहीतो गुणगरी-
याग्नियोजितशक्तिधरो मन्त्रित्वे, जातश्चार्य चन्द्रो महीपतिः पट्टराज्ञी कमला च ।
बहिर्ध्वका गजला गीतिर्द्ववाद्येन सहाध्यत—

अम्बिका भवतु प्रसन्ना रात्रि चन्द्रे भूपतौ (स्थायी)

मारमिव यं वोक्ष्य वध्वो जालमागकृतेक्षणाः

विस्मृतालङ्कारवस्त्रा मूर्च्छिताः पतिताः क्षितौ ॥१॥

यस्य चलवत्कर्म मर्मत्रोटिनो भृशदुःसहम् ।

श्रुत्वा मृतं विज्ञाय दग्धाः शत्रुकामिन्यश्रितौ ॥२॥

यस्य धिपणां नीतिनिपुणा वोक्ष्य नीतिविचक्षणेः ।

तलजे गर्वां मनीषिभिराहितः स्वस्या मतो ॥३॥

रामवद्राज्यं प्रशासद् द्वेषणान् दमयन् दृढम् ।

श्रीनिवासं शं नमन् सम्पुष्पितं भवतान् क्षितौ ॥४॥

निश्श्वास एष नवमो गतश्चन्द्रमर्हीपतौ ।

तौहिने नलिनोपत्रे जगत्पत्रे विलासिनि ॥१॥

निरर्थकपदान्यासे मञ्ज्वलद्वारशोभिनि ।

निचिते श्रीनिवासेन पण्डितेन्द्राञ्जनिञ्जुपा ॥२॥ सङ्गच्छतः ।

कमला तरुणवुधाना कान्त्या हरता कदापि नो चेतः ।

किन्तु समाहितशास्त्रं मानसमधिवसतु हंसीव ॥३॥

न्यासि कचन कचन प्रीत्यै विदुषा नया नु काठिन्यम् ।

नीरजमृदुला तन्यो, कुचयोः कठिनेषु सम्भासि ॥४॥

किमिह कृतं प्रत्यग्रं सखटाक्षं भाषिणो बुधा बहवः ।

किन्तु समाजे विदुषा मिरलाः प्रतिभान्ति कर्तारः ॥५॥

भ्यङ्गाङ्गेन्दु (१६६१) मितेऽन्दे ज्येष्ठे शुक्ले रवौ दिवसे ।

एकादश्यामेव प्रारम्भे श्रीनिवासेन ॥६॥

ताताङ्गिपद्मयुगले सम्प्रीताशेषशास्त्रमकरन्दः ।

परमरक्षाप्रविनोदो श्रवणसितगुरकुलकलेशः ॥७॥

विद्वन्मण्डलकोत्तितकीर्तिः प्रेम्णा मुदे कवीशानाम् ।

भ्रातृणकृष्णवृत्तीयारविदिवसेऽपूरयत्स इमम् ॥८॥

रविदिनविहितारम्भो, रविदिनपूर्णे मनोहरन्यासः ।

सुखयेत्कवीं धिरायासौ चन्द्रः पञ्चसप्ताहः ॥९॥

यस्याभिजनो लाम्बी ह्यधिवसता राजदुर्गमफलेशम् ।
चक्रे विंशे वयसि स्थित्यै भूत्यै च कीर्त्यै वा ॥१०॥

विद्वद्दीक्ष्य उपास्य आस्यरचनै रस्य प्रशस्य समै
सल्लोकव्यवहारशास्त्रविधिभि सम्पूरिताभ्यन्तर ।
रम्यश्चन्द्रमहीपति सुकृतिभि सेव्य सुखाकाङ्क्षिभि-
र्विन्यस्त कमलानिवासकविना हृद्योऽनवद्यश्चिरम् ॥११॥

वित्तो व्याकरणेषु काव्यनिपुण पौराणिकेऽवग्रणी-
र्गण्यो दर्शनवेदिना व्यवहृतौ सम्प्राप्तसम्पादक ।
आयुज्योतिरधीतिना सुकुशलो विज्ञानविज्ञो व्रती
राष्ट्राचारविदा वरो वरमति सृष्ट्यादिद् पुस्तकम् ॥१२॥

वेदेन्द्रध्रुविलोचनेऽ (२०१४) नुसमय सस्कृत्य पौपेऽल्पश
काङ्क्ष्यश्चन्द्रमहीपतिर्मतिमता मोदाय मुद्रापित ।
यस्या निर्भरसेवया बहुविधे व्यस्तेन कार्यक्रमे
स्तौम्यम्या व पतञ्जलेस्तनुमती सेवा क्षमा पार्वतीम् ॥१३॥

पार्वतीविवृताबुद्धतेतराणामप्रसिद्धानां शब्दानां कोषः

मुष्पाङ्किता श दा नवनिर्मिता

अवकर = कूहा

अपधिम = पूर्व

अनुपेया = अनुपानम्

अवगुण्ठन = पू घट

*अटकेलि = अठखेली

*अश्चूणन = पाउडर

अन्तर्हसन्ती दिवाल की सिगरी

*अवस्तारकिङ्किणी = झालरी की घण्टी

*अयोमन्जूपा = तिजोरी

अप्याढरु = सेर से अधिक

अभ्यवहार = भोजन

अभुताभियोग = मुकद्दमे की सुनवाई के बिना

आयति = परिणाम

आरप्यका = वनके छावने

आमनस्य प्रसवकट

*आवास = कम्पार्टमेंट

*आगुश्रुषितरणि अगनगोट

आक्षोभ = राग

आधीन = अवधे एक दिन में जाने योग्य मार्ग

आप्रपदीन = अवकन

आवी = प्रसवव्याधा

इला = पृथ्वी

*उष्णीष = साफ़ा

*उत्तरा = उतावली

उपबर्ह = मसड़

उदन्यन् = पिपासु

उत्कोच रिश्वत

उष्णीषिका = टोपी, पगड़ी

एयम = इस वर्ष (एतर्क)

और्ण = ऊनी

क

कणहृत्स्य = आतृप्ति

*कञ्चुककोश = चैत्रका धन

*करकर्पट

*करवास

} इमान

कविका = घोड़े के मुँह का कड़ा

करटो गज

करोल्का = पृष्ठास्थि

करोटि = शिरोस्थि

कारण्डव = पक्षिभेद

कान्दविक = कन्दोदे, मिठाइनाले

कसर = महिष

कसार हृद

कीकसम् = अस्थि

कुणिन्द = वन्यजाति

*कुचमादी = कुचानां स्तन्य पीत्वा मायति

■ = बाल ।

कुणि = वज्रकर

प्रवात = बचकर (साइकिल)

प्रावरण = ओढ़नेका वस्त्र

*प्राभातिकः = परमाती राग

पाय = बालम्

पानेसमिताः = भोजनकाले एव सज्जता

पारितथ्याः = सोमन्तप्यस्वर्णपट्टिका (खाचा)

पारिहार्यः = (कहन)

पिचित्र = पिचगये

पिचुमन्द = निम्ब

पेरुः = सूर्यः

प्रोन्धन् = पौछटा हुआ

*भौरप्रसिठन = सिटी कापोंरेघन

फ

*फूलफरी = फूलफड़ी

व

वालमिनः = उदयन सूर्यः

म

*भूमिदारः = जमीन्दार

म

*मरुतर = मोटर

*मवनटी = स्ट्रेज एक्स्ट्रेस

*मार्गलाघव = शोटकट

माघवनी = इन्द्र की

मुद्रा = मुद्रा (वाण्डान)

र

*रसगुन्ज = रसगुझा

राजिच्छा = राई

रोमन्य = जुगाली

व

वानीक = सर्पविल (बास्की)

वृत्तसतां = गमांधानार्थ टुपेच्छु गी ।

वचस्तु = बाम्नी

वटक = बड़े

व्यथाः = बेधे

वितान = तम्बू, आसनाना

वायुवनि = हासल

वाचित = पड़ियद

विस्तृज्जुः = वज्रनिघोंषः

*इन्द्रवाय = इण्ड

*विशदिवरण = डायरी देना

वीध्रम् = विमलम्

ल

ललन्तिका = हारः

*लिपटा = लहोट (लिहमटतीति)

ललायः = महिषः

*लोहपयः = राजमार्गः

श

*शकुच्छोयनजीवी = महतर

शामालम् = शमी का भस्म

शिरोरत्नम् = शिरोभूषण, शीर

शुन्धुः = शक्तिः (३०७ उपादि ।)

*शुल्काबाध = शोटल ।

स

समाप्तप्राणीक = सतरनर्य से बूटा

समवाद्म् = पैतरे के साथ

सिद्धतापन्नः = बालू के टीबे

*सेव = (एल)

सधरण = राजमार्ग

सजः = प्रस्तुत, सती खातो वा

कृष्णाप = खिजाव

न

केकरः = विकृतनेत्रः (ऐंचा)

*केशनिर्मोकमोची—बालकी खाल खींचने
वाला

कौलेयक = धा

क्षीरस्नान् = दूध पीने की इच्छा से

ग

गुल्फालङ्करणम् = पाजेब

गोकुणा = गोकिया

गगाधरसः = भक्तिताररोधकौषध ।

घ

*बलचित्र = सिनेमा

*चषकः = प्याला

ज

*जम्बीरबूषिका = डेमनचूस

जीवातुः = जीवनौषधम् ।

जैवातुकः = चन्द्र.

*ज्योतिशलाका = रगशलाई

त

*तरलमञ्च = हिमगद्दार मचाण

ताम्बूलवीटिका = पान बीड़ा

द

दाधित्यम् = दही से संस्कृत

दीपशलाका = दिवासलाई ।

ध

*धूमशकटीपयिकामासः = गुप्ताफिरखाना

निशान्तम् = गृहम्

*निवेद्यक = तम्बू गाढ़ने वाले

निष्ठः = चाण्डाल

निर्वन्धः = आमद

नीविः = अण्टी

नीशार = खाई = सोड

नेमाक्रान्त = आधे दबाये हुए

नैकटिक = भिक्षु

प

परारि = गतवर्ष

पद्मी = छिपकली, छोटा गाव, दाणी ।

*पक्षकोटर = पोकेट

*परिवरण = चौखटा, फ्रेम

*परिवरण = पालिश

पत्रपाश्या = ललाटाभरण = मागटीका

-पटत्कार = पटाखे

पत्ररथ = पक्षी

*पथिकावास = पेसेन्नरट्रेन का डिब्बा

*परबीबी = } दूसरों पर जीने वाले

*परैधित = } (पैरासाइट)

*पदपथा = फुटपाथ

-प्रतानिनी = भालरी

प्रसृति = चुल्लू

*प्रतीक्षाभवन = वेष्टिङ्ग रुम

*प्रतिपरीक्षण = झिड्ड

प्रवात = बबडर (साईकोब)

प्रावरण = ओढनेका वस्त्र

*प्राभातिकः = परभाती समय

पराः = वाल्म

पानेसमिता. = मोजनकुठे एव सज्जता

पारितोष्या = सोमन्तस्थस्वर्णपट्टिका (खाचा)

पारिहार्यः = (कहन)

पिबित = पिबगये

पितुमन्द = निम्ब

पेरुः = सूर्यः

प्रोञ्जन् = पौछता हुभा

*पौरप्रतिष्ठान = सिटी कारोरेसन

फ

*फूलमरी = फूलमझी

व

वाल्मिनः = वरुण सूर्यः

भ

*भूमिशर. = जमीन्दार

म

*महत्तर = मोटर

*मशगतो = स्टेज एक्स्टेस

*मार्गलापव = शोर्टकट

भाषवनी = इन्द्र की

मुद्रा = मुद्रा (वादना)

र

*रसग्रन्थ = रसगुञ्ज

रात्रिका = राई

रोमन्य = जुगम्ली

व

वल्मीक = सर्पविल (वाम्बी)

वृषत्यती = गर्भावधार्य स्पेड्डु गी ।

वचस्तु = वाम्बी

वटक = बडे

व्यथाः = वेधे

वितान = तम्बू, आसमाना

वायुध्वनि = ह्रासल

वारित = पड़िचन्द

विष्टुर्बुधुः = वज्रनिर्घोषः

*वृन्दवाय = वृष्ट

*विपदिवरण = बायरी देना

वीरम् = विमलम्

उ

उलन्तिष्ठा = द्वारः

*लिङ्गाट = लङ्गोट (लिङ्गमटतीति)

लुलावः = महिष

*लोकपयः = राजमार्गः

श

*शकुन्तलोचनजीवी = महतर

शामील्मू = शमी का भस्म

शिरोरत्नम् = शिरोभूषण, वीर

शुन्युः = अग्निः (३०७ उणादिः ।)

*शुक्लवायु = होटल ।

स

समाप्तशतमीक = सत्तरवर्ष से बूढा

समयादम् = पैतरे के साथ

सिन्धुपयतः = बालू के टोवे

*वेव = (एपल)

सघरण = राजमार्ग

सज्ज = प्रस्तुत सतो जातो वा

शुद्धिपत्रम्

उपर नीचे की मात्राएँ, रेफ हट गये, भ म, व व, अनुस्वार म्, आध्वर्यबोधक, सम्बोधन, प्रश्नबोधक, चिह्नों का विपर्यय, ओ, ई की मात्राएँ ठीक न लगीं, ये अशुद्धिया पाठक स्वयं शुद्ध करें। विशेष अशुद्धियों की शुद्धि दी जाती है।—प्रकाशक

शुद्ध	पक्ति अशुद्ध	शुद्ध	शुद्ध	पक्ति अशुद्ध	शुद्ध
१७	४ आधारो	आधारी	७२	१३ प्रत्यैत	प्रत्यैयत
१८	२१ हासप्रिय	उपहासप्रिय	७३	२४ वार्द्धक्य	वार्द्धक
२१	५ वार्द्धक्यभावा	वार्द्धका	७४	२३ प्रत्यैद्	प्रत्यैयत
२३	२ तदनु	तमनु	७५	२० मुदविजीत्	मुदवजयत्
२५	२४ प्रार्थयामि	प्रार्थये	७५	२५ नाक्षिणो	नाक्षणि
२९	११ स्त्व	स्तात्वा	७५	१४ लिहन्	लिहान
३१	१५ ह्यमान	ह्यमानम्	७९	२३ मपानैवान्	मपानैषु
३२	१३ व्यत्या	व्यतिया	८३	२ प्रत्यैत	प्रत्यैयत
३४	५ चक्षते	चक्षते	९६	३२ गृहीदवीं	गृहीतदवीं
३४	६ ”	”	११२	२२ द्वावेव च महोत्कौ = महोत्क	प्रत्यैयत
३७	१४ स्त्रीय	स्त्रीय	१०७	२१ रुद्धरिष्यतिरुद्धर्त्त	शक्यते
४२	२२ ज्ञानत्रात	त्रायध्वम्	१२४	१७ सरोजिनी नितरा मनोरमा	नितरा
५०	६ माने	जाने	१२६	१९ समाकृष्टकामिना समाकृष्ट	कामिनीना
५०	६ दस्था मुग्ध	विदग्धमुग्ध	१२८	१ हात	हीन
५२	२० दूरयन्तो	दवयन्तो	१३३	१७ प्रकृतिको	प्रकृतिक
५४	११ विधास्याम	विधास्याम	१३९	१९ मपेत	मुपेत
६३	१ एलायितु	पलायितु	१४०	१९ वृताभोग	वृताभोगम्
६५	१२ वेत्त	वेत्त	१४०	१८ इयन्ते महान्तम् इयन्महद	
६७	२५ परधो	पर ह्यो			
७१	६ सहन्त	सहमाना			
७१	७ स्मिकार्ये	स्मिन् कार्ये			

पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६१	२	दक्षितार्	दक्षिते	२०३	२	दृष्टेव	दृष्टीन
१६४	२	मुच्छरा	मुच्छरासिद्धिर्त्त-	२०८	२२	जगद्वसि	जगतीऽऽनि
१६५	१५	चक्षनन्त	चाक्षनन्तः	२२४	१९	निष्कन्तो	निर्गन्धो ।
१६८	८	प्रोड	प्रोटो	२२६	९	विस्फार्य	विस्फार्य स्व
१७२	४	शारा.स	शाराभ्ये	"	२१	क्षौद्य.चेन	क्षौद्येन
१७२	१९	द्वितायास	द्वितानामस	२२८	३	अलिप्तपद्	अलिप्तपद्मै
१७८	९	सदसोद्गीय	सदसोद्गीन				

गीतिपरिचयः

पृष्ठे

- २६ शुद्धना दक्षतिच्छविं मन्तरिध्वनिशालिताः ।
 २८६ भन्वि भवतु प्रवदा राज्ञि चन्द्रे भूपतौ ।
 १७३ हा । त. काशी पिनी मे कृष्णदशैः शोभितः
 एतत्तत्त्वं गजलक्ष्मणायाः ।
 १७२ नित्ये हे किं नाम्यः वस्तु मे (स्वामी)
 इदं धाट, ताल च्छरवा ।
 ध्रु स स ग०० गनन० गग रेगस०

मुद्राधम्—(अन्तरा

ध्रु स स ध्रु स सा सूरि ग० सरि गनन ग० रे ग स०

— १. —

१७१

प्रियवर । पद्मेनयोः ।

राजम्हानी नाद

अन्तरा

		ग रे सा नि	सारे ग ग ऽ
		शो — तः	सा — न्द्रो —
— रम' प म रे म ग ऽ		प नि नि नि	पनि सानि प ऽ
रा — यु —	वाँ — ति —	वि — थु न	प — — त्या —
ऽभन ग न	म पप प —	प ग रे ग	सा रे सा —
सह चा —	ग ति	प्रो — पि त	प ति का —
नि — सा —	सरे सानि ध प	व ध व —	प र नि नि
मु — ग्वा —	त — रु — णी	घ न घो —	र उ टा —
— पथ तां नि	ध ऽ प ऽ	सं सानि ध ऽ	प पम ग ग
— — प —	दयं तो	भृ श मे	त द उ दू
रेम नप थप मग	रेम सानि ध प		
वि ज ते —	— — —		